यदीया वाग्गङ्गा विविध-नय कल्लोल-विमला
बृहद्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति ।
इदानीमप्येषा बुधजन मरालैः परिचिता
महावीरस्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

पण्डित भागचन्द, महावीराष्टक

तीर्थंकर महावीर
और
उनकी आचार्य-परम्परा

लेखक
(स्व०) डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य
एम ए, पी-एच. डी, डी. लिट्

श्री भारतवर्षीय दिगम्बरजैन विद्वत्परिषद्

प्रकाशक
मन्त्री, श्री भा० दि० जैन विद्वत्परिषद्

•

प्राप्ति-स्थान
मन्त्री, श्री भा० दि० जैन विद्वत्परिषद्
कार्यालय, वर्णी-भवन
सागर (मध्य प्रदेश)

•

तीर्थंकर महावीरके निर्वाण-रजतशती महोत्सवके
मङ्गलमय अवसरपर प्रकाशित

•

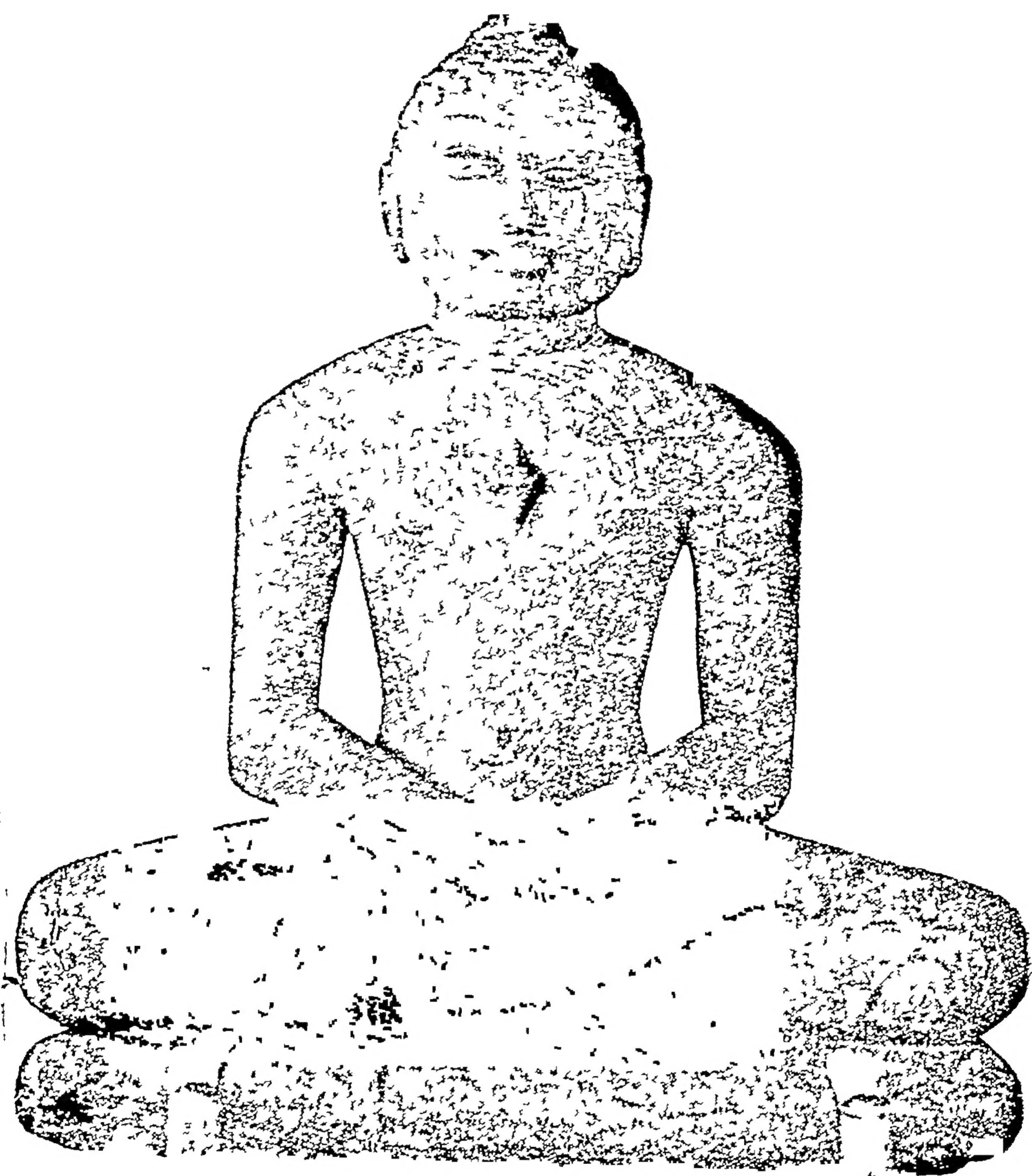
प्रथम संस्करण १५००
दीपावली, वीर-निर्वाण संवत् २५०१
कार्तिक कृष्णा अमावस्या, विक्रम संवत् २०३१
१३ नवम्बर, ईस्वी सन् १९७४

•

मूल्य चालीस रुपये

•

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस
भेलूपुर, वाराणसी–२२१००१



तीर्थङ्कर वर्द्धमान-महावीर
जिनकी निर्वाण-रजतशती राष्ट्र मना रहा है।

प्रकाशककी लेखनीसे

भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्की ओरसे गुरु गोपालदास बरैया-शताब्दी समारोहके प्रसगको लेकर जब श्री बरैया-स्मृति-ग्रन्थका प्रकाशन हुआ, तब समाजके प्रबुद्धवर्गने अत्यधिक प्रसन्नता प्रकट की थी। ग्रन्थका सर्वत्र समादर हुआ और उसकी समस्त प्रतियाँ हाथो-हाथ उठ गयी। भारतवर्षके समस्त विश्वविद्यालयोकी लाइब्रेरियोके लिए यह सग्रहणीय ग्रन्थ विद्वत्परिषद्की ओरसे नि शुल्क भेंट किया गया। उसके उत्तरमे विश्वविद्यालयोके प्रबन्धकोने जो धन्यवादपत्र दिये, उनमे उन्होने उस ग्रन्थरत्नको प्राप्तकर बडा हर्ष प्रकट किया था।

वर्तमानमे चल रहे श्री १००८ भगवान् महावीरके २५०० वे निर्वाण-महोत्सवके उपलक्ष्यमे भी विद्वत्परिषद्की कार्यकारिणीने '**तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा**' नामक ग्रन्थ प्रकाशित करनेका निश्चय किया और इसके लेखनका भार विद्वत्परिषद्के उपाध्यक्ष और बहुमुखी प्रतिभाके धनी श्री नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य, एम०ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०, अध्यक्ष सस्कृत-प्राकृत विभाग एच० डी० जैन कालेज आराको दिया गया। सम्माननीय डाक्टर साहबने इस ग्रन्थके लेखनमे चार-पाँच वर्ष अकथनीय परिश्रम किया है। परन्तु खेद है कि वे अपनी इस महनीय कृतिको अपने जीवन-कालमे प्रकाशित न देख सके। गत जनवरी ७४ मे उनके दिवगत होनेका समाचार देशभरमे सतप्त हृदयसे सुना गया।

यह महान् ग्रन्थ चार भागोमे सम्पूर्ण हुआ है। इसके प्रकाशनके लिए विद्वत्परिषद्के पास अर्थकी व्यवस्था नगण्य थी। परन्तु विद्वत्परिषद्के अध्यक्ष डॉक्टर दरबारीलालजी कोठियाने इसके अग्रिम ग्राहक बनानेकी योजना प्रस्तुत की, जिसे समाजने बड़े उत्साहके साथ स्वीकृत किया। श्री १०८ पूज्य विद्यानन्दजी महाराजने भी अपने शुभाशीर्वादसे इसके प्रकाशनका मार्ग प्रशस्त किया। यह प्रकट करते हुए प्रसन्नता होती है कि इसके सातसौ ग्राहक अग्रिम मूल्य देकर बन गये। ग्रन्थके चारो भागोंका मूल्य ८५) है। परन्तु अग्रिम ग्राहक बननेवालोको यह ग्रन्थ ६१) मे देनेका निर्णय किया गया।

ग्रन्थका आभ्यन्तर-परिचय डॉक्टर दरबारीलालजी कोठिया द्वारा लिखे आमुख तथा ग्रन्थकी विषय-सूचीसे स्पष्ट है।

इस ग्रन्थके सपादन और प्रकाशन तथा अर्थके सग्रहमे विद्वत्परिषद्के अध्यक्ष

श्रीमान् डॉ० दरबारीलालजी कोठिया, न्यायाचार्य, एम० ए०, पी-एच०-डी०, पूर्वरीडर जैन-बौद्धदर्शनविभाग, हिन्दू-विश्वविद्यालय, वाराणसीको महान् परिश्रम करना पड़ा है, प्रेसकी दौड़धूप और प्रूफका देखना आदि कार्य आपने जिस निस्पृह भाव, लगन और निष्ठासे सपन्न किये हैं वह श्लाघ्य है। आपकी इस महनीय सेवाके लिए मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

पूज्य मुनिश्री विद्यानन्दजीने ग्रन्थपर आशीर्वचनके रूपमे बहुमूल्य 'आद्य मिताक्षर' लिखकर हमे कृतार्थ किया, इसके लिए हम उनके प्रति विनत हैं। सिद्धान्ताचार्य श्रीमान् प० कैलाशचन्द्रजी वाराणसीने अपना महत्वपूर्ण 'प्राक्कथन' लिखनेकी कृपा की, अत उनके भी अतिकृतज्ञ हैं।

श्री बाबूलालजी फागुल्ल, सचालक महावीर-प्रेसने बड़ी सुन्दरतासे इसका प्रकाशन किया है, इसके लिए वे धन्यवादके पात्र हैं।

अग्रिम मूल्य भेजकर जिन ग्राहकोने हमारी प्रकाशन-व्यवस्थाको सुकर बनाया है उनके प्रति मैं नम्र आभार प्रकट करता हू। ग्रन्थकी तैयार पाण्डु-लिपिके वाचनमे श्रीमान् सिद्धान्ताचार्य प० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, डॉ० दरबारी-लालजी कोठिया, डॉ० ज्योतिप्रसादजी लखनऊ, आदि विद्वानोने जो समय और सुझाव दिये है उनके प्रति भी मैं सविनय आभार प्रकट करता हूँ।

अन्तमे प्रकाशन-सम्बन्धी अशुद्धियोके लिए क्षमा-याचना करता हुआ आकाक्षा करता हूँ कि भगवान् महावीरके २५०० वे निर्वाण-महोत्सवकी पुण्य-वेलामे इस ग्रन्थका घर-घरमे प्रचार हो और जन-मानस भगवान् महावीरके सिद्धान्तोसे सुपरिचित हो।

विनीत

सागर
९-७-१९७४

पन्नालाल जैन
मत्री
भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्
सागर

आद्य मिताक्षर

'परम्परा' शब्द अपना विशेष महत्त्व रखता है और विश्वके कण-कणसे सम्बन्धित है। परम्पराका इतिहास लेखबद्ध करना वैसे ही कठिन कार्य है, फिर श्रमण-परम्पराका इतिहास तो सर्वथा ही दुरूह है। प्रसगमे जहाँ 'परम्परा' शब्द सद्-आगम और सद्गुरुओका बोधक है, वहाँ यह प्रामाणिकताका द्योतक भी है। परम्परागत आगम और गुरुओको सर्वत्र प्रथम स्थान है। इसीलिए 'आचार्यगुरुभ्यो नम' के स्थान पर 'परम्पराचार्यगुरुभ्यो नम' का प्रचलन है। लोकमे आज भी यह परम्परा प्रचलित है। जैसे गृहस्थोके विवाह आदि सस्कारोमे परम्परा (गोत्रादि) का प्रश्न उठता है, वैसे ही मुनियोके सबधमे भी उनकी गुरु-परम्पराका ज्ञान आवश्यक है।

भारतमे मुनि-परम्परा और ऋषि-परम्परा ये दो परम्पराएँ प्राचीनकालसे रही हैं। ऐतिहासिक दृष्टिसे प्रथम परम्पराका सबध आत्मधर्मा श्रमणोसे रहा है श्रमणमुनि मोक्षमार्गके उपदेष्टा रहे हैं। द्वितीय परम्पराका सबध लोक-धर्मसे रहा है ऋषिगण गृहस्थोके षोडश सस्कारादि सम्पन्न कराते रहे हैं। ऋषियोको जब आत्मधर्मज्ञानकी बुभुक्षा जाग्रत हुई, वे श्रमणमुनियोके समीप जिज्ञासाकी पूर्ति एव मार्गदर्शनके लिए पहुँचते रहे।[1]

स्व० डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री द्वारा रचित ग्रन्थ 'तीर्थङ्कर महावीर और उनकी परम्परा' मे श्रमण मुनि-परम्पराका तथ्यपूर्ण इतिहास है। वस्तुत

१ वातरशना ह वा ऋषय श्रमणा ऊर्ध्वमन्थिनो बभूवुस्तानृषयोऽर्थमायस्तेऽनिलाय-मचरस्तेऽनुप्रविशुः कूष्माण्डानि तास्तेष्वन्वविन्दन श्रद्धया च तपसा च। तानृषयो-ऽब्रुवन कया निलाय चरथेति ते ऋषीनब्रुवन्नमोवोऽस्तु भगवन्तोऽस्मिन् धाम्नि केन व सपर्यामेति तानृषयोऽब्रुवन पवित्र नो ब्रूत येनोरेपस स्यामेति त एतनि सूक्तान्यपश्यन्।'

तैत्तिरीय आरण्यक २ प्रपाठक ७ अनुवाक, १-२

'वातरशन श्रमण-ऋषि ऊर्ध्वमन्थी (परमात्मपदकी ओर उत्क्रमण करनेवाले) हुए। उनके समीप इतर ऋषि प्रयोजनवश (याचनार्थ) उपस्थित हुए। उन्हे देखकर वातरशन कूष्माण्डनामक मन्त्रवाक्योमें अन्तर्हित हो गए, तब उन्हें अन्य ऋषियोने श्रद्धा और तपसे प्राप्त कर लिया। ऋषियोने उन वातरशन मुनियोसे प्रश्न किया किस विद्यासे आप अन्तर्हित हो जाते हैं? वातरशन मुनियोने उन्हें अपने अध्यात्म धामसे आए हुए अतिथि जानकर कहा हे मुनिजनो! आपको नमोऽस्तु है, हम आपकी सपर्या (सत्कार) किससे करें? ऋषियोने कहा हमें पवित्र आत्मविद्याका उपदेश दीजिए, जिससे हम निष्पाप हो जाएँ।

इतिहासकी रचनाके लिए तथ्यज्ञान आवश्यक है। यत

इतिहास इतीष्टं तद् इति हासीदिति श्रुते।
इतिवृत्तमयैतिह्यमाम्नाय चामनन्ति तत् ॥

आचार्य श्रीजिनसेन, आदिपुराण, १।२५

'इतिहास, इतिवृत्त, ऐतिह्य और आम्नाय समानार्थक शब्द हैं। 'इति ह आसीत' (निश्चय ऐसा ही था), 'इतिवृत्तम्' (ऐसा हुआ घटित हुआ) तथा परम्परासे ऐसा ही आम्नात है इन अर्थोमे इतिहास है।

इतिहास दीपकतुल्य है। वस्तुके कृष्ण-श्वेतादि यथार्थ रूपको जैसे दीपक प्रकाशित करता है, वैसे इतिहास मोहके आवरणका नाशकर, भ्रान्तियोको दूर करके सत्य सर्वलोक द्वारा धारण की जानेवाली यथार्थताका प्रकाशन करता है। अर्थात् दीपकके प्रकाशसे पूर्व जैसे कक्षमे स्थित वस्तुएँ विद्यमान रहते हुए भी प्रकाशित नही होती, वैसे ही सम्पूर्ण लोक द्वारा धारण किया गया गर्भभूत सत्य इतिहासके बिना सुव्यक्त नही होता।[1]

प्रस्तुत ग्रन्थके अवलोकनसे स्पष्ट हो जाता है कि विद्वान्‌की लेखनीमे बल और विचारोमे तर्कसगतता है। समाज इनकी अनेक कृतियोका मूल्याकन कर चुका है भलीभाँति सम्मानित कर चुका है। प्रस्तुत कृतिसे जहाँ पाठकोको स्वच्छ श्रमण-परम्पराका परिज्ञान होगा, वहाँ ग्रन्थमे दिये गये टिप्पणोंसे उनके ज्ञानमे प्रामाणिकता भी आवेगी। श्रमण-परम्पराके अतिरिक्त इस ग्रन्थमे श्रमणो-की मान्यताओ एव जैन सिद्धान्तोका भी सफल निरूपण किया गया है। यह ग्रन्थ सभी प्रकारसे अपनेमे परिपूर्ण एव लेखककी ज्ञान-गरिमाको इङ्गित करनेमे समर्थ है।

यहाँ लेखकके अभिन्न मित्र डॉ० दरबारीलाल कोठियाजीके प्रस्तुत ग्रन्थके प्रकाशनमे किए गए सत्यप्रयत्नोको भी विस्मृत नही किया जा सकता है, जिनके द्वारा हमे प्रस्तुत ग्रन्थके लिए कुछ शब्द लिखनेका आग्रहयुक्त निवेदन प्राप्त हुआ। विद्वत्परिषद्‌का यह प्रकाशन-कार्य परिषद्‌के सर्वथा अनुरूप है। ऐसे सत्कार्य-के लिए भी हमारे शुभाशीर्वाद !

विद्यानन्द मुनि

१ इतिहास-प्रदीपेन मोहावरणघातिना।
सर्वलोकधृतं गर्भं यथावत् संप्रकाशयेत् ॥
—महाभारत

प्राक् कथन

भारतवर्षका क्रमवद्ध इतिहास वुद्ध और महावीरसे प्रारम्भ होता है। इनमेसे प्रथम बौद्धधर्मके सस्थापक थे, तो द्वितीय थे जैनधर्मके अन्तिम तीर्थंकर। 'तीर्थंकर' शब्द जैनधर्मके चौवीस प्रवर्तकोके लिए रूढ जैसा हो गया है, यद्यपि है यह यौगिक ही। धर्मरूपी तीर्थके प्रवर्त्तकको ही तीर्थंकर कहते हैं। आचार्य समन्तभद्रने पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथकी स्तुतिमे उन्हे 'धर्मतीर्थमनघ प्रवर्तयन्' पदके द्वारा धर्मतीर्थका प्रवर्त्तक कहा है। भगवान महावीर भी उसी धर्मतीर्थके अन्तिम प्रवर्त्तक थे और आदि प्रवर्त्तक थे भगवान् ऋषभदेव। यही कारण है कि हिन्दू पुराणोमे जैनधर्मकी उत्पत्तिके प्रसगसे एकमात्र भगवान् ऋषभदेवका ही उल्लेख मिलता है किन्तु भगवान् महावीरका सकेत तक नही है जव उन्हीके समकालीन वुद्धको विष्णुके अवतारोमे स्वीकार किया गया है। इसके विपरीत त्रिपिटक साहित्यमे निग्गठनाटपुत्तका तथा उनके अनुयायी निर्ग्रन्थोका उल्लेख वहुतायतसे मिलता है। उन्हीको लक्ष्य करके स्व० डॉ० हर्मान याकोवीने अपनी जैन सूत्रोकी प्रस्तावनामे लिखा है 'इस वातसे अव सव सहमत हैं कि नातपुत्त, जो महावीर अथवा वर्धमानके नामसे प्रसिद्ध है, वुद्धके समकालीन थे। बौद्धग्रन्थोमे मिलनेवाले उल्लेख हमारे इस विचारको दृढ करते हैं कि नातपुत्तसे पहले भी निर्ग्रन्थोका, जो आज जैन अथवा आर्हत नामसे अधिक प्रसिद्ध हैं, अस्तित्व था। जव बौद्धधर्म उत्पन्न हुआ तब निर्ग्रन्थोका सम्प्रदाय एक वडे सम्प्रदायके रूपमे गिना जाता होगा। बौद्ध पिटकोमे कुछ निर्ग्रन्थोका वुद्ध और उनके शिष्योके विरोधीके रूपमे और कुछका वुद्धके अनुयायी वन जानेके रूपमे वर्णन आता है। उसके ऊपरसे हम उक्त अनुमान कर सकते है। इसके विपरीत इन ग्रन्थोमे किसी भी स्थानपर ऐसा कोई उल्लेख या सूचक वाक्य देखनेमे नही आता कि निर्ग्रन्थोका सम्प्रदाय एक नवीन सम्प्रदाय है और नातपुत्त उसके संस्थापक हैं। इसके ऊपरसे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि वुद्धके जन्मसे पहले अति प्राचीन कालसे निर्ग्रन्थोका अस्तित्व चला आता है।"

अन्यत्र डॉ० याकोवीने लिखा है 'इसमे कोई भी सवूत नही है कि पार्श्वनाथ जैनधर्मके संस्थापक थे। जैन परम्परा प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवको जैन धर्मका सस्थापक माननेमे एकमत है। इस मान्यतामे ऐतिहासिक सत्यकी सम्भावना है।'

प्रसिद्ध दार्शनिक डॉ० राधाकृष्णन्ने अपने 'भारतीय दर्शन' मे कहा है 'जैन परम्परा ऋषभदेवसे अपने धर्मकी उत्पत्ति होनेका कथन करती है, जो बहुत-सी शताब्दियो पूर्व हुए है। इस बातके प्रमाण पाये जाते हैं कि ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दीमे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवकी पूजा होती थी। इसमे कोई सन्देह नही है कि जैनधर्म वर्धमान और पार्श्वनाथसे भी पहले प्रचलित था। यजुर्वेद-मे ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि इन तीन तीर्थंकरोके नामोका निर्देश है। भागवत पुराण भी इस बातका समर्थन करता है कि ऋषभदेव जैनधर्मके संस्थापक थे।'

यथार्थमे वैदिकोकी परम्पराकी तरह श्रमणोकी भी परम्परा अति प्राचीन कालसे इस देशमे प्रवर्तित है। इन्ही दोनो परम्पराओके मेलमे प्राचीन भारतीय संस्कृतिका निर्माण हुआ है। उन्ही श्रमणोकी परम्परामे भगवान महावीर हुए थे। बुद्धकी तरह वे भी एक क्षत्रिय राजकुमार थे। उन्होने भी घरका परि-त्याग करके कठोर साधनाका मार्ग अपनाया था। यह एक विचित्र बात है कि श्रमण परम्पराके इन दो प्रवर्त्तकोकी तरह वैदिक परम्पराके अनुयायी हिन्दू-धर्ममे मान्य राम और कृष्ण भी क्षत्रिय थे। किन्तु उन्होने गृहस्थाश्रम और राज्यासनका परित्याग नही किया। यही प्रमुख अन्तर इन दोनो परम्पराओमे है। कृष्ण भी योगी कहे जाते हैं किन्तु वे कर्मयोगी थे। महावीर ज्ञानयोगी थे। कर्मयोग और ज्ञानयोगमे अन्तर है। कर्मयोगीकी प्रवृत्ति बाह्याभिमुखी होती है और ज्ञानयोगीकी आन्तराभिमुखी। कर्मयोगीको कर्ममे रस रहता है और ज्ञानयोगीको ज्ञानमे। ज्ञानमे रस रहते हुए कर्म करनेपर भी कर्मका कर्त्ता नही कहा जाता। और कर्ममे रस रहते हुए कर्म नही करनेपर भी कर्मका कर्त्ता कहलाता है। कर्म प्रवृत्तिरूप होता है और ज्ञान निवृत्तिरूप। प्रवृत्ति और निवृत्तिकी यह परम्परा साधनाकालमे मिली-जुली जैसी चलती है किन्तु ज्यो-ज्यो निवृत्ति बढती जाती है प्रवृत्तिका स्वत ह्रास होता जाता है। इसी-को आत्मसाधना कहते हैं।

यथार्थमें विचार कर देखें प्रवृत्तिके मूल मन, वचन और काय हैं। किन्तु आत्माके न मन है, न वचन है और न काय है। ये सब तो कर्मजन्य उपाधियाँ हैं। इन उपाधियोमे जिसे रस है वह आत्मज्ञानी नही है। जो आत्मज्ञानी हो जाता है उसे ये उपाधियाँ व्याधियाँ ही प्रतीत होती हैं।

इनका निरोध सरल नही है। किन्तु इनका निरोध हुए बिना प्रवृत्तिसे छुटकारा भी सम्भव नही है। इसीके लिए भगवान महावीरने सब कुछ त्याग कर वनका मार्ग लिया था। संसार-मार्गियोकी दृष्टिमे भले ही यह 'पलायनवाद' प्रतीत हो, किन्तु इस पलायनवादको अपनाये बिना निर्वाण-प्राप्तिका दूसरा

मार्ग भी नही है। भोगी और योगीका मार्ग एक कैसे हो सकता है। तभी तो गीतामे कहा है

या निशा सर्वभूताना तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

'सब प्राणियोके लिए जो रात है उसमे सयमी जागता है और जिसमे प्राणी जागते हैं वह आत्मदर्शी मुनिकी रात है।'

इस प्रकार भोगी ससारसे योगीके दिन-रात भिन्न होते है। संयमी महावीर-ने भी आत्म-साधनाके द्वारा कार्तिक कृष्णा अमावस्याके प्रात सूर्योदयसे पहले निर्वाण-लाभ किया। जैनोके उल्लेखानुसार उसीके उपलक्षमे दीपमालिकाका आयोजन हुआ और उनके निर्वाण-लाभको पच्चीस सौ वर्ष पूर्ण हुए। उसीके उपलक्षमे विश्वमे महोत्सवका आयोजन किया गया है।

उसीके स्मृतिमे **'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा'** नामक यह वृहत्काय ग्रन्थ चार खण्डोमे प्रकाशित हो रहा है। इसमे भगवान महावीर और उनके बादके पच्चीस-सौ वर्षोमे हुए विविध साहित्यकारोका परिचयादि उनकी साहित्य-साधनाका मूल्याकन करते हुए विद्वान् लेखकने निबद्ध किया है। उन्होने इस ग्रन्थके लेखनमे कितना श्रम किया, यह तो इस ग्रन्थको आद्योपान्त पढनेवाले ही जान सकेंगे। मेरे जानतेमे प्रकृत विषयसे सम्बद्ध कोई ग्रन्थ, या लेखादि उनकी दृष्टिमे ओझल नही रहा। तभी तो इस अपनी कृतिको समाप्त करनेके पश्चात् ही वे स्वर्गत हो गये और इसे प्रकाशमे लानेके लिए उनके अभिन्न सखा डॉ० कोठियाने कितना श्रम किया है, इसे वे देख नही सके। 'भगवान महावीर और उनकी आचार्यपरम्परा'मे लेखकने अपना जीवन उत्सर्ग करके जो श्रद्धाके सुमन चढ़ाये है उनका मूल्याकन करनेकी क्षमता इन पंक्तियोके लेखकमे नहीं है। वह तो इतना ही कह सकता है कि आचार्य नेमिचन्द्र शास्त्रीने अपनी इस कृतिके द्वारा स्वयं अपनेको भी उस परम्परामे सम्मिलित कर लिया है।

उनकी इस अध्ययनपूर्ण कृतिमे अनेक विचारणीय ऐतिहासिक प्रसग आये हैं। भगवान महावीरके समय, माता-पिता, जन्मस्थान आदिके विषयमे तो कोई मतभेद नही है। किन्तु उनके निर्वाणस्थानके सम्बन्धमे कुछ समयसे विवाद खडा हो गया है। मध्यमा पावामे निर्वाण हुआ, यह सर्वसम्मत उल्लेख है। तदनुसार राजगृहीके पास पावा स्थानको ही निर्वाणभूमिके रूपमे माना जाता है। वहाँ एक तालाबके मध्यमे विशाल मन्दिरसे उनके चरण-

चिन्ह स्थापित हैं। यह स्थान मगधमे है। दूसरी पावा उत्तर प्रदेशके देवरिया जिलेमे कुशीनगरके समीप है। डॉ० शास्त्रीने मगधवर्ती पावाको ही निर्वाण-भूमि माना है।

बिम्बसार श्रेणिक भगवान महावीरका परम भक्त था। उसकी मृत्यु डॉ० शास्त्रीने भगवान महावीरके निर्वाणके बाद मानी है, उन्हे ऐसे उल्लेख मिले हैं। किन्तु यह ऐतिहासिक प्रसग विचारणीय हैं।

उन्होने जैन तत्त्व-ज्ञानका भी बहुत विस्तारसे विवेचन किया है और प्राय सभी आवश्यक विषयोपर प्रकाश डाला है। दूसरा, तीसरा तथा चौथा खण्ड तो एक तरहसे जैनसाहित्यका इतिहास जैसा है। सक्षेपमे उनकी यह बहुमूल्य कृति अभिनन्दनीय है। आशा है इसका यथेष्ट समादर होगा।

कैलाशचन्द्र शास्त्री



आमुख

भारतीय संस्कृतिमे आर्हत संस्कृतिका प्रमुख स्थान है। इसके दर्शन, सिद्धांत, धर्म और उसके प्रवर्तक तीर्थंकरो तथा उनकी परम्पराका महत्त्वपूर्ण अवदान है। आदि-तीर्थंकर ऋषभदेवसे लेकर अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर महावीर[1] और उनके उत्तरवर्ती आचार्योने अध्यात्म-विद्याका, जिसे उपनिषद्-साहित्यमे[2] 'परा विद्या' (उत्कृष्ट विद्या) कहा गया है, सदा उपदेश दिया और भारतकी चेतनाको जागृत एवं ऊर्ध्वमुखी रखा है। आत्माको परमात्माकी ओर ले जाने तथा शाश्वत सुखकी प्राप्तिके लिए उन्होने[3] अहिंसा, इन्द्रियनिग्रह, त्याग और समाधि (आत्मलीनता) का स्वय आचारण किया और पश्चात् उनका दूसरोको उपदेश दिया। सम्भवत इसीसे वे अध्यात्म-शिक्षादाता और श्रमण-संस्कृतिके प्रतिष्ठाता कहे गये हैं। आज भी उनका मार्गदर्शन निष्कलुष एव उपादेय माना जाता है।

तीर्थंकर महावीर इस संस्कृतिके प्रवुद्ध, सबल, प्रभावशाली और अन्तिम प्रचारक थे। उनका दर्शन, सिद्धान्त, धर्म और उनका प्रतिपादक वाङ्मय विपुल मात्रामे आज भी विद्यमान है तथा उसी दिशामे उसका योगदान हो रहा है।

अतएव बहुत समयसे अनुभव किया जाता रहा है कि तीर्थंकर महावीरका सर्वाङ्गपूर्ण परिचायक ग्रन्थ होना चाहिए, जिसके द्वारा सर्वसाधारणको उनके जीवनवृत्त, उपदेश और परम्पराका विशद परिज्ञान हो सके। यद्यपि भगवान् महावीरपर प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दीमे लिखा पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है, पर उससे सर्वसाधारणकी जिज्ञासा शान्त नही होती।

सौभाग्यकी बात है कि राष्ट्रने तीर्थङ्कर वर्द्धमान-महावीरकी निर्वाण-रजत-शती राष्ट्रीय स्तरपर मनानेका निश्चय किया है, जो आगामी कार्तिक कृष्णा अमावस्या वीर-निर्वाण सवत् २५०१, दिनाङ्क १३ नवम्बर १९७४ से कार्तिक

१ धर्मतीर्थकरेभ्योऽस्तु स्याद्वादिभ्यो नमोनम.।
ऋषभादि-महावीरान्तेभ्य स्वात्मोपलब्धये ॥
भट्टाकलङ्कदेव, लघीयस्त्रय, मङ्गलपद्य १।

२ मुण्डकोपनिषद् १।१।४।५।

३, स्वामी समन्तभद्र, युक्त्यनुशासन का० ६।

कृष्णा अमावस्या, वीर-निर्वाण संवत् २५०२, दिनाङ्क १३ नवम्बर १९७५ तक पूरे एक वर्ष मनायी जावेगी। यह मङ्गल-प्रसङ्ग भी उक्त ग्रन्थ-निर्माणके लिए उत्प्रेरक रहा।

अतः अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्ने पाँच वर्ष पूर्व इस महान् दुर्लभ अवसरपर तीर्थंकर महावीर और उनके दर्शनसे सम्बन्धित विशाल एवं तथ्यपूर्ण ग्रन्थके निर्माण और प्रकाशनका निश्चय तथा संकल्प किया। परिषद्ने इसके हेतु अनेक बैठकें की और उनमें ग्रन्थकी रूपरेखापर गम्भीरतासे ऊहापोह किया। फलतः ग्रन्थका नाम 'तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा' निर्णीत हुआ और लेखनका दायित्व विद्वत्परिषद्के तत्कालीन अध्यक्ष, अनेक ग्रन्थोंके लेखक, मूर्धन्य-मनीषी, आचार्य नेमिचन्द्र शास्त्री आरा (बिहार) ने सहर्ष स्वीकार किया। आचार्य शास्त्रीने पाँच वर्ष लगातार कठोर परिश्रम, अद्भुत लगन और असाधारण अध्यवसायसे उसे चार खण्डों तथा लगभग २००० (दो हजार) पृष्ठोंमें सृजित करके ३० सितम्बर १९७३ को विद्वत्परिषद्को प्रकाशनार्थ दे दिया।

विचार हुआ कि समग्र ग्रन्थका एक बार वाचन कर लिया जाय। आचार्य शास्त्री स्याद्वाद महाविद्यालयकी प्रबन्धकारिणीकी बैठकमें सम्मिलित होनेके लिए ३० सितम्बर १९७३ को वाराणसी पधारे थे। और अपने साथ उक्त ग्रन्थके चारों खण्ड लेते आये थे। अतः १ अक्तूबर १९७३ से १५ अक्तूबर १९७३ तक १५ दिन वाराणसीमें ही प्रतिदिन प्रायः तीन समय तीन-तीन घण्टे ग्रन्थका वाचन हुआ। वाचनमें आचार्य शास्त्रीके अतिरिक्त सिद्धान्ताचार्य श्रद्धेय पण्डित कैलाशचन्द्रजी शास्त्री पूर्व प्रधानाचार्य स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी, डॉक्टर ज्योतिप्रसादजी लखनऊ और हम सम्मिलित रहते थे। आचार्य शास्त्री स्वयं वाचते थे और हमलोग सुनते थे। यथावसर आवश्यकता पड़ने पर सुझाव भी दे दिये जाते थे। यह वाचन १५ अक्तूबर १९७३ को समाप्त हुआ और १६ अक्तूबर १९७३ को ग्रन्थ प्रकाशनार्थ महावीर प्रेसको दे दिया गया।

ग्रन्थ-परिचय

इस विशाल एवं असामान्य ग्रन्थका यहाँ संक्षेपमें परिचय दिया जाता है, जिससे ग्रन्थ कितना महत्त्वपूर्ण है और लेखकने उसके साथ कितना अमेय परिश्रम किया है, यह सहजमें ज्ञात हो सकेगा।

यहाँ चतुर्थ खण्ड का परिचय प्रस्तुत है

४. आचार्यतुल्य काव्यकार एवं लेखक

इस चतुर्थ भागमे उन जैन काव्यकारो एव ग्रन्थ-लेखकोका परिचय निबद्ध है, जो स्वय आचार्य न होते हुए भी आचार्य जैसे प्रभावशाली ग्रन्थकार हुए। इसमे चार परिच्छेद है, जिनका प्रतिपाद्य-विषय अधोलिखित है

प्रथम परिच्छेद : संस्कृत-कवि और ग्रन्थलेखक

इसमे परमेष्ठि, धनञ्जय, असग, हरिचन्द, चामुण्डराय, अजितसेन, विजयवर्णी आदि तीस सस्कृत-कवियो एव ग्रन्थलेखकोका व्यक्तित्व एव कृतित्व वर्णित है।

द्वितीय परिच्छेद : अपभ्रंश-कवि एवं लेखक

इस परिच्छेदमे चतुर्मुख स्वयभूदेव, त्रिभुवन स्वयभू, पुष्पदन्त, धनपाल, धवल, हरिषेण, वीर, श्रीचन्द्र, नयनन्दि, श्रीधर प्रथम, श्रीधर द्वितीय, श्रीधर तृतीय, देवसेन, अमरकीर्ति, कनकामर, सिंह, लाखू, यश कीर्ति, देवचन्द्र, उदयचन्द्र, रइधू, तारणस्वामी आदि पैतालीस अपभ्रश-कवियो-लेखको और उनकी रचनाओका सक्षिप्त परिचय निवद्ध है।

तृतीय परिच्छेद : हिन्दी तथा देशज भाषा-कवि एवं लेखक

इसमे बनारसीदास, रूपचन्द्र पाण्डेय, जगजीवन, कुवरपाल, भूधरदास द्यानतराय, किशनसिंह, दौलतराम प्रथम, दौलतराम द्वितीय, टोडरमल्ल, भागचन्द, महाचन्द आदि पच्चीस हिन्दी-कवियो और लेखकोका उनकी कृतियो सहित परिचय अङ्कित है। अन्य देशज भाषाओमे कन्नड, तमिल और मराठीके प्रमुख काव्यकारो एवं लेखकोका भी परिचय दिया गया है।

चतुर्थ परिच्छेद : पट्टावलियां

इस परिच्छेदमे प्राकृत-पट्टावलि, सेनगण-पट्टावलि, नन्दिसघबलात्कारगण-पट्टावलि, आदि नौ पट्टावलियाँ सकलित है। इन पट्टावलियोमे कितना ही इतिहास भरा हुआ है, जो राष्ट्रीय, सास्कृतिक और साहित्यिक दृष्टियोसे बडा महत्त्वपूर्ण एव उपयोगी है।

इस प्रकार प्रस्तुत महान् ग्रन्थसे जहाँ तीर्थंकर वर्धमान-महावीर और उनके सिद्धान्तोका परिचय प्राप्त होगा, वहाँ उनके महान् उत्तराधिकारी इन्द्रभूति आदि गणधरो, श्रुतकेवलियो और बहुसख्यक आचार्यो के यशस्वी योगदान विपुल वाङ्मय-निर्माणका भी परिज्ञान होगा। यह भी अवगत होगा कि इन आचार्यो ने समय-समय पर उत्पन्न प्रतिकूल परिस्थितियोमे भी तीर्थंकर महावीरकी अमृतवाणीको अपनी साधना, तपश्चर्या, त्याग और अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग द्वारा अब तक सुरक्षित रखा तथा उसके भण्डारको समृद्ध बनाया है।

आभार

इस विशाल ग्रन्थके सृजन और प्रकाशनका विद्वत्परिषद्ने जो निश्चय एवं संकल्प किया था, उसकी पूर्णता पर आज हमें प्रसन्नता है। इस सम्बन्धमें विद्वत्परिषद्के प्रत्येक सदस्यका मानसिक या वाचिक या कायिक सहभाग है। कार्यकारिणीके सदस्योंने अनेक बैठकोंमें सम्मिलित होकर मूल्यवान् विचार-दान किया है। ग्रन्थ-वाचनमें श्रद्धेय पण्डित कैलाशचन्द्रजी शास्त्री और डॉ० ज्योति प्रसादजीका तथा ग्रन्थको उत्तम बनानेमें स्थानीय विद्वान् प्रो० खुशालचन्द्रजी गोरावाला, पण्डित अमृतलालजी शास्त्री एवं पण्डित उदयचन्द्रजी बौद्धदर्शनाचार्यका भी परामर्शादि योगदान मिला है।

पूज्य मुनिश्री विद्यानन्दजीने 'आद्य मिताक्षर' रूपमें आशीर्वचन प्रदान कर तथा वरिष्ठ विद्वान् श्रद्धेय पण्डित कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीने 'प्राक्कथन' लिखकर अनुगृहीत किया है।

खतौली, भोपाल, बम्बई, दिल्ली, मेरठ, जबलपुर, तेंदूखेड़ा, सागर, वाराणसी, आरा आदि स्थानोंके महानुभावोंने ग्रन्थका अग्रिम ग्राहक बनकर सहायता पहुँचायी है। विद्वत्परिषद्के कर्मठ मन्त्री आचार्य पण्डित पन्नालालजी सागरके साथ मैं भी इन सबका हृदयसे आभार मानता हूँ।

वीर-शासन-जयन्ती,
श्रावण कृष्णा १, वी० नि० स० २५००,   दरबारीलाल कोठिया
५ जुलाई, १९७४   अध्यक्ष
वाराणसी   अखिल भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्

विषय-सूची

प्रथम परिच्छेद
संस्कृत-भाषाके काव्यकार और लेखक

द्वितीय परिच्छेद
अपभ्रंश-भाषाके कवि और लेखक

तृतीय परिच्छेद

हिन्दी कवि और लेखक

उपसंहार

चतुर्थ परिच्छेद

पट्टावलियाँ

शेषांश पृ० ३०६
(हिन्दीके अन्य चर्चित कवि शीर्षकान्तर्गत)

परिशिष्ट

खण्ड : ४

आचार्यतुल्य काव्यकार एवं लेखक

प्रथम परिच्छेद

संस्कृत-भाषाके काव्यकार और लेखक

आस्वादयुक्त अर्थतत्त्वको प्रेषित करनेवाली महाकवियोकी वाणी अलौकिक और स्फुरणशील प्रतिमाके वैशिष्ट्यको व्यक्त करती है। इस वाणीसे ही सहृदय रसास्वादनके साथ अनिर्वचनीय आनन्दको भी प्राप्त करते हैं। कवि और लेखक जीवनकी विखरी अनुभूतियोको एकत्र कर उन्हे शब्द और अर्थके माध्यमसे कलापूर्ण रूप देकर हृदयावर्जक वनाते हैं। अतएव इस परिच्छेदमे ऐसे आचार्य-परम्परा-अनुयायियोका निर्देश किया जायेगा, जिन्होने गृहस्थावस्थामे रहते हुए भी सरस्वतीकी साधना द्वारा तीर्थंकरकी वाणीको जन-जन तक पहुँचाया है। इस सन्दर्भमे ऐसे आचार्य भी समाविष्ट है, जिनका जीवन अधिक उद्दीप्त है तथा जिनका कविके रूपमे आचार्यत्व अधिक मुखरित है।

काव्य या साहित्यकी आत्मा भोग-विलास और राग-द्वेषके प्रदर्शनात्मक शृङ्गार और वीर रसोमे नही है, किन्तु समाज-कल्याणकी प्रेरणा ही काव्य या साहित्यके मूलमे निहित है। दर्शन, आचार, सिद्धान्त प्रभृति विषयोकी उद्-

भावनाके समान ही जनकल्याणकी भावना भी काव्यमे समाहित रहती है। अतएव समाजके वीच रहने वाले कवि और लेखक गार्हस्थिक जीवन व्यतीत करते हुए करुणभावकी उद्भावना सहज रूपमे करते हैं। एक ओर जहाँ सासारिक सुखकी उपलब्धि और उसके उपायोकी प्रधानता है, तो दूसरी ओर विरक्ति एव जनकल्याणके लिये आत्मसमर्पणका लक्ष्य भी सर्वोपरि स्थापित है।

ऐसे अनेक कवि और लेखक हैं, जो श्रावकपदका अनुसरण करते हुए राष्ट्रीय, सास्कृतिक, जातीय एव आध्यात्मिक भावनाओकी अभिव्यक्तिमे पूर्ण सफल हुए हैं। यद्यपि ऐसे सारस्वतोमे आचार्यका लक्षण घटित नही होता, तो भी आचार्य-परम्पराका विकास और प्रसार करनेके कारण उनकी गणना आचार्यकोटिमे की जा सकती है। अतएव इस परिच्छेदमे गृहस्थावस्थामे जीवन-यापन करने वाले कवि और लेखकोंके साथ ऐसे त्यागी, मुनि और भट्टारक भी सम्मिलित हैं, जिनमे काव्य-प्रतिभाका अधिक समावेश है, तथा जिन्होने आख्यानात्मक साहित्य लिखकर विपयमे उदात्तता, घटनाओमे वैचित्र्यपूर्ण विन्यास, चरित्र-चित्रण, असख्य रमणीय सुभाषित एव मानव-क्रियाकलापोके प्रति असाधारण अन्तर्दृष्टि प्रदर्शित की है। इस श्रेणीकी रचनाओमे मानव-मनोवृत्तियोका विशद और सागोपाँग चित्रण पाया जाता है।

जैन-कवि काव्यके माध्यमसे दर्शन, ज्ञान और चरित्रकी भी अभिव्यञ्जना करते रहे हैं। वे आत्माका अमरत्व एव जन्म-जन्मान्तरोके संस्कारोकी अपरिहार्यता दिखलानेके पूर्व जन्मके आख्यानोका भी सयोजन करते रहे हैं। प्रसगवश चार्वाक, तत्त्वोपप्लववाद प्रभृति नास्तिकवादोका निरसन कर आत्माका अमरत्व और कर्मसस्कारका वैशिष्ट्य प्रतिपादित करते रहे हैं।

जिस प्रकार एक ही नदीके जलको घट, कलश, लोटा, झारी, गिलास प्रभृति विभिन्न पात्रोमे भर लेने पर भी जलकी एकरूपता अखण्डित रहती है, उसी प्रकार तीर्थंकरकी वाणीको सिद्धान्त, आगम, आचार, दर्शन, काव्य आदिके माध्यमसे अभिव्यक्त करने पर भी वाणीकी एकता अक्षुण्ण बनी रहती है। जिन तथ्य या सिद्धान्तोको श्रुतधर, सारस्वत, प्रवुद्ध और परम्परापोषक आचार्योने आगमिक शैलीमे विवेचित किया है, उन तथ्य या सिद्धान्तोकी न्यूनाधिकरूपमें अभिव्यक्ति कवि और लेखको द्वारा भी की गयी है। अतएव तीर्थंकर महावीरकी परम्पराके अनुयायी होनेसे कवि और लेखक भी महनीय हैं। हम यहाँ सस्कृत अपभ्रंश और हिन्दीके जैन कवियोका इतिवृत्त अकित कर तीर्थंकर महावीरकी आचार्य-परम्परापर प्रकाश डालेंगे। हमारी दृष्टिमे साहित्य-निर्माता सभी सारस्वत तीर्थंकरकी वाणीके प्रचारकी दृष्टिसे मूल्यवान हैं।

सुविधाकी दृष्टिसे कवि और लेखकोंका भाषाक्रमानुसार इतिवृत्त उपस्थित करना अधिक वैज्ञानिक होगा। अतएव हम सर्वप्रथम संस्कृत-भाषाके कवि-लेखकोंका व्यक्तित्व और कृतित्व उपस्थित करेंगे।

संस्कृतभाषाके कवि और लेखक

संस्कृत-काव्यका प्रादुर्भाव भारतीय सभ्यताके उषाकालमे ही हुआ है। यह अपनी रूपमाधुरी और रसमयी भावधाराके कारण जनजीवनको आदिम युगसे ही प्रभावित करता आ रहा है। जब संस्कृतभाषा तार्किकोंके तीक्ष्ण तर्क-वाणोंके लिये तूणी बना चुकी थी, उस समय इस भाषाका अध्ययन-मनन न करने वालोंके लिये विचारोंकी सुरक्षा खतरेमे थी। भारतके समस्त दार्शनिकोंने दर्शनशास्त्रके गहन और गूढ ग्रन्थोंका प्रणयन संस्कृतभाषामे प्रारम्भ किया। जैन कवि और दार्शनिक भी इस दौडमे पीछे न रहे। उन्होंने प्राकृतके समान ही संस्कृतपर भी अधिकार कर लिया और काव्य एव दर्शनके क्षेत्रको अपनी महत्त्वपूर्ण रचनाओंके द्वारा समृद्ध बनाया। यही कारण है कि जैनाचार्योंने काव्यके साथ आगम, अध्यात्म, दर्शन, आचार प्रभृति विषयोंका संस्कृतमे प्रणयन किया है। डॉ० विन्टरनित्सने जैनाचार्योंके इस सहयोगकी पर्याप्त प्रशसा की है। उन्होंने लिखा है

I was not able to do full justice to the literary achievements to the Jainas But I hope to have shown that the jainas have contributed their full stare to the religious ethical and scientific literature of ancient India[1]

अतएव यह कहा जा सकता है कि जैनाचार्योंने प्राकृतके समान ही संस्कृत, अपभ्रंश एव हिन्दी आदि विभिन्न भाषाओमे अपने विचारोंकी अभिव्यञ्जना कर वाङ्मयकी वृद्धि की है। हम यहाँ संस्कृतके उन कवियोंके व्यक्तित्व और कृतित्वको प्रस्तुत करेंगे, जिन्होंने जीवनकी स्थिरताके साथ गम्भीर चिन्तन आरम्भ किया है तथा जिनकी कल्पना और भावनाने विचारोंके साथ मिलकर त्रिवेणीका रूप ग्रहण किया है। जीवनकी गतिविधियो, विभिन्न समस्याओ, आध्यात्मिक और दार्शनिक मान्यताओंका निरूपण काव्यके धरातल पर प्रतिष्ठित होकर किया है।

1 The Jainas in the Hisory of Indian literature by Dr Winternitz, Edited by Jina Vijaya Muni, Ahmedabad 1949, Page 4

कवि परमेष्ठी या परमेश्वर

त्रिषष्टिशलाकापुरुषोंके चरितका अंकन करने वाले कवि परमेष्ठी या कवि परमेश्वर हैं। इन कविकी सूचना श्री डा० ए० एन० उपाध्येने नागपुरमे सम्पन्न हुए प्राच्यविद्या-सम्मेलनके अवसर पर अपने एक निबन्ध द्वारा दी है। कवि परमेश्वर अपने समयके प्रतिभाशाली कवि और वाग्मी विद्वान् हैं। चामुण्डरायने अपने पुराणमे इनके कतिपय पद्य उपस्थित किये हैं। इन पद्योसे कविकी प्रतिभा और काव्यक्षमताका परिचय प्राप्त होता है।

कवि परमेश्वरका स्मरण ९वी शतीसे लेकर १३वी शती तकके कन्नड कवि एवं संस्कृतके कवि करते रहे हैं। आदि पम्प (९४१ ई०), अभिनव पम्प (११०० ई०), नयसेन (१११२ ई०), अग्गल (११८९ ई०) और कमलभव इत्यादि कन्नडकवियोने आदरपूर्वक तार्किक कवि समन्तभद्र और वैयाकरण पूज्यपाद इन दोनोंके साथ कवि परमेष्ठीका उल्लेख किया है। आदि पम्पने इन्हे जगत-प्रसिद्ध कवि कहा है

श्रीमत्समन्द्रभद्र
स्वामिगल जगत्प्रसिद्ध कविपरमेष्ठि
स्वामिगल पूज्यपाद
स्वामिगल पदगलीगे शाश्वत पदम' ॥

आदिपुराण १–१५, मैसूर १९००

× × ×

श्रीमत्समन्तभद्र
स्वामिगल नेगलतेवेत्त कविपरमेष्ठि
स्वामिगल पूज्यपाद
स्वामिगल पदगलीगे बोधोदयम ॥

धर्मामृत १–१४, मैसूर १९२४

गुणवर्म द्वितीयने 'पुष्पदन्तपुराण' (अध्याय १, श्लोक २६) मे इन्हे सरस्वतीके समान अभिनन्दनीय माना है। पार्श्व पण्डितने अपने पुराणमे गुणज्येष्ठ विशेषण द्वारा कवि परमेष्ठीका उल्लेख किया है।

स्मरणीय विद्वानोंके साथ आचार्य गुणभद्रने कवि परमेश्वरके गद्यकथाकाव्यका निर्देश किया है

---

१ जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १३, किरण २, पृ० ८१।
२ वही, पृ० ८२।

कविपरमेश्वरनिगदितगद्यकथामातृक पुरोश्चरितम् ।
सकलच्छन्दोलङ्कृतिलक्ष्य सूक्ष्मार्थगूढपदरचनम्[1] ॥

अर्थात् परमेश्वर कविके द्वारा कथित गद्यकाव्य जिसका आधार है, जो समस्त छन्दो और अलकारोका उदाहरण है, जिसमे सूक्ष्म अर्थ और गूढ पदोकी रचना है, जिसने अन्य काव्योको तिरस्कृत कर दिया है, जो श्रवण करने योग्य है, मिथ्याकवियोके दर्पको खण्डित करनेवाला है और अत्यन्त सुन्दर है, ऐसा यह महापुराण है ।

आचार्य जिनसेनने भी कवि परमेश्वरका आदरपूर्वक स्मरण किया है। उन्होंने उनके ग्रन्थका नाम 'वागर्थसग्रह' बतलाया है

स पूज्य कविभिर्लोके कवीना परमेश्वर ।
वागर्थसग्रह कृत्स्न पुराण य समग्रहीत[2] ॥

उपर्युक्त उद्धरणोसे स्पष्ट है कि कवि परमेश्वर अत्यन्त प्रसिद्ध और प्रामाणिक पुराणरचयिता है । उन्होने त्रिषष्टिशलाकापुरुषोके सम्बन्धमे एक पुराण लिखा था, जो गुणभद्रके कथनानुसार गद्यकाव्य है । आचार्य जिनसेनने आदिपुराणकी रचनामे कवि परमेश्वरके इस पुराणग्रन्थका उपयोग किया है। जिनसेनकी दृष्टिमे इस पुराणका नाम 'वागर्थसग्रह' था । चामुण्डरायने भी अपने चामुण्डरायपुराणके लिखनेमे कवि परमेश्वरके पुराणग्रन्थका उपयोग - किया है । अतएव यह निश्चित है कि कवि परमेश्वरका उक्त पुराण जिनसेनके पूर्व अर्थात् ई० सन् ८३७ के पहले ही प्रसिद्ध हो चुका था । कविपरमेश्वरका यह ग्रन्थ सम्भवत चम्पूशैलीमे लिखा गया है। यत चामुण्डरायपुराणमे इसके पद्य उपलब्ध होते हैं और गुणभद्रने इसे गद्यकाव्य कहा है। इसकी प्रसिद्धिको देखते हुए लगता है कि इस ग्रन्थकी रचना समन्तभद्र और पूज्यपादके समकालीन अथवा कुछ समय पश्चात् हुई होगी ।

डॉ० ए० एन० उपाध्येने 'चामुण्डरायपुराण' मे कविपरमेश्वरके नामसे उद्धृत पद्योको उपस्थित कर कविकी प्रतिभा और पाण्डित्यपर प्रकाश डाला है। हम यहाँ उन्ही पद्योमेसे कतिपय पद्य उद्धृत करते है

कविपरमेश्वरवृत्त ।

रामत्व गणवृत्वमप्यभिमत लोकान्तिकत्व तथा
पट्खण्डप्रभुता सुखानुभवन सर्वार्थसिद्ध्यादिषु ।

---

१ उत्तरपुराण, प्रशस्ति, पद्य १७ ।

२. आदिपुराण, भारतीय ज्ञानपीठ सस्करण ११६० ।

इन्द्रत्वं महिमादिभिश्च सहितं प्राप्त न ससारिभि.
तत्प्राप्तो भवहेतुससृतिलताच्छेदे कुत. संयम. ॥

कविपरमेश्वर श्लोक।

कषायोद्रेककालुष्यं व्रतदर्शनसत्तप.।
दूषयत्यचिराद्राजन् ततः क्रोधादि वर्जयेत् ॥
त्यागेन लोभ क्षमया प्रकोप
मान मृदुत्वेन मनोहरेण।
वृत्तेन मायामृजुनाभिवृद्धि
नरेन्द्र हन्यात्परलोककाक्षी ॥

× × ×

तत्सुसाधुवच. सत्य प्राणिपीडापराड्मुखम।
येन सावद्यकर्माणि न स्पृशन्ति भयादिव ॥
नाग्निर्दहत्युग्रशिखाकलापस्तीव्र विषं निर्विषतामुपैति।
शस्त्र गतद्योतविभूषणत्व सत्येन कि ते न भवेदभीष्टम्[1] ॥

काव्य, आचार और दर्शन इन तीनोका समन्वय इन तीनो पद्योमे पाया जाता है। कवि परमेश्वर पौराणिक जैनमान्यताओंसे भी सुपरिचित हैं। वास्तवमे उनके द्वारा रचित पुराणग्रन्थसे ही जैन साहित्यमे पुराण-साहित्यका प्रचार और प्रसार हुआ है और कवि परमेश्वरकी रचना ही समस्त पुराण-साहित्यका मूलाधार है।

महाकवि धनञ्जय

महाकवि धनञ्जयके जीवनवृत्तके सम्बन्धमें विशेष तथ्योंकी जानकारी उपलब्ध नही है। द्विसन्धानमहाकाव्यके अन्तिम पद्यकी व्याख्यामे टीकाकारने इनके पिताका नाम वसुदेव, माताका नाम श्रीदेवी और गुरुका नाम दशरथ सूचित किया है। कवि गृहस्थधर्म और गृहस्थोचित षट्कर्मोंका पालन करता था। इनके विषापहारस्तोत्रके सम्बन्धमे कहा जाता है कि कविके पुत्रको सर्पने डँस लिया था, अत. सर्पविषको दूर करनेके लिये ही इस स्तोत्रकी रचनाकी गयी है।

स्थितिकाल

कविके स्थितिकालके सम्बन्धमे विद्वानोमे मतभेद है। इनका समय डॉ० के० वी० पाठकने ई० सन् ११२३-११४० ई० के मध्य माना है। डॉ० ए० वी०

१. जैनसिद्धान्त भास्कर, भाग १३, किरण २, पृ० ८५-८६।

कीयने अपने संस्कृत-साहित्यके इतिहासमें धनञ्जयका समय पाठक द्वारा अभिमत ही स्वीकार किया[1] है। पर धनञ्जयका समय ई० सन् १२वी शती नही है। यत· इनके द्विसन्धानकाव्यका उल्लेख अचार्य प्रभाचन्द्रने अपने 'प्रमेयकमलमार्तण्ड'-मे किया[2] है। प्रभाचन्द्रका समय ई० सन् ११वी शतीका पूर्वार्द्ध है। अतएव, धनञ्जय सुनिश्चितरूपसे प्रभाचन्द्रके पूर्ववर्ती हैं।

वादिराजने अपने 'पार्श्वनाथचरित' महाकाव्यमे द्विसन्धानमहाकाव्यके रचयिता धनञ्जयका निर्देश किया है और वादिराजका समय १०२५ ई० है। अतएव धनञ्जयका समय इनसे पूर्व मानना होगा। वादिराजने लिखा है

अनेकभेदसन्धाना· खनन्तो हृदये मुहु ।
वाणा धनञ्जयोन्मुक्ता कर्णस्येव प्रिया कथम् ॥ पार्श्व० ११२६

जल्हणने राजशेखरके नामसे सूक्तिमुक्तावलीमे धनञ्जयकी नाममालाके निम्नलिखित श्लोकको उद्धृत किया है

द्विसन्धाने निपुणता सता चक्रे धनञ्जय· ।
यया जात फल तस्य स ता चक्रे धनञ्जय ॥

यह राजशेखर काव्यमीमासाके रचयिता राजशेखर ही है। इनका समय १०वी शती सुनिश्चित है। अत धनञ्जयका समय १०वी शतीके पूर्व होना चाहिये।

डॉ० हीरालालजीने 'षट्खण्डागम' प्रथम भागकी प्रस्तावनामे यह सूचित्त किया है कि जिनसेनके गुरु वीरसेन स्वामीने धवलाटीकामे[3] अनेकार्थनाममाला-का निम्नलिखित्त श्लोक प्रमाणरूपमे उद्धृत किया है

हेतावेवं प्रकाराद्यै· व्यवच्छेदे विपर्यये ।
प्रादुर्भावे समासौ च इतिशब्द विदुर्बुधा ॥

धवलाटीका वि० स० ८०५-८७३ (ई० सन् ७४८-८१६)मे समाप्त हुई थी। अत धनञ्जयका समय ९वी शतीके उपरान्त नही हो सकता।

धनञ्जयने अपनी नाममालामे 'प्रमाणमकलङ्कस्य' पद्यमे अकलकका निर्देश किया है। अतएव वे अकलकके पूर्ववर्ती भी नही हो सकते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणोके आधार पर धनञ्जयका समय अकलकदेवके पश्चात् और धवलाटीकाकार वीरसेनके पूर्व होनेसे ई० सन् की ८वी शतीके लगभग है।

१ A History of Sanskrit literature by A B Keeth, Page 173।
२. प्रमेयकमलमार्तण्ड, पृ० ४०२, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।
३. धवलाटीका, अमरावतीसस्करण, प्रथम जिल्द, पृ० ३८७।

१. धनञ्जयनिघण्टु या नाममाला छात्रोपयोगी २०० पद्योका शब्दकोश है। इस छोटे-से कोशमे बडे ही कौशलसे सस्कृत-भाषाके आवश्यक पर्याय-शब्दोका चयनकर गागरमे सागर भरनेकी कहावत चरितार्थ की है। इस कोशमे कुल १७०० शब्दोंके अर्थ दिये गये हैं। शब्दसे शब्दान्तर बनानेकी प्रक्रिया भी अद्वितीय है। यथा पृथ्वीके आगे 'धर' शब्द या धरके पर्यायवाची शब्द जोड़ देनेसे पर्वतके नाम; 'पति' शब्द या पतिके समानार्थक स्वामिन् आदि जोड़ देनेसे राजाके नाम एव 'रुह' शब्द जोड़ देनेसे वृक्षके नाम हो जाते हैं।

इस नाममालाके साथ ४६ श्लोक प्रमाण एक अनेकार्थनाममाला भी सम्मिलित है। इसमे एक शब्दके अनेकार्थोका कथन किया गया है।

२. विषापहारस्तोत्र भक्तिपूर्ण ३९ इन्द्रवज्रा वृत्तोमे लिखा गया स्तुति-परक काव्य है। इस स्तोत्रपर वि० स० १६वी शतीकी लिखी पार्श्वनाथके पुत्र नागचन्द्रकी सस्कृतटीका भी है। अन्य सस्कृतटीकाएँ भी पायी जाती हैं।

३ द्विसन्धानमहाकाव्य सन्धानशैलीका यह सर्वप्रथम सस्कृतकाव्य है। कविने आद्यन्त राम और कृष्ण चरितोका निर्वाह सफलताके साथ किया है। इस पर विनयचन्द्रपण्डितके प्रशिष्य और देवनन्दिके शिष्य नेमिचन्द्र, रामभट्टके पुत्र देवबट एव बदरीकी सस्कृतटीकाएँ भी उपलब्ध हैं।

यह महाकाव्य १८ सर्गोमे विभक्त है। इसका दूसरा नाम राघव-पाण्डवीय भी है। एक साथ रामायण और महाभारतकी कथा कुशलतापूर्वक निबद्ध की गयी है। प्रत्येक श्लोकके दो-दो अर्थ हैं। प्रथम अर्थसे रामचरित निकलता है और दूसरे अर्थसे कृष्णचरित। कविने सन्धान-विधामे भी काव्य-तत्त्वोका समावेश आवश्यक माना है

चिरन्तने वस्तुनि गच्छति स्पृहां विभाव्यमानोऽभिनवैर्नवप्रिय.।
रसान्तरैश्चित्तहरैर्जनोऽन्धसि प्रयोगरम्यैरुपदशकैरिव ॥३॥
स जातिमार्गो रचना च साऽऽकृतिस्तदेव सूत्र सकल पुरातनम्।
विवर्तिता केवलमक्षरै कृतिर्न कञ्चुकश्रीरिव वर्ण्यमृच्छति ॥४॥
कवेरपार्था मधुरा न भारती कथेव कर्णान्तमुपैति भारती।
तनोति सालङ्कृतिलक्षणान्विता सता मुद दाशरथेर्यथा तनु.[1] ॥५॥

अर्थात् चित्तके लिये आकर्षक तथा क्रमानुसार विकसित, फलत नवीन

१. द्विसन्धानमहाकाव्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १।३–५।

शृंगार आदि रसो, तथा शब्दालंकार और अर्थालकारोसे युक्त, सुन्दर वर्णों द्वारा गुम्फित रचना प्राचीन होने पर भी आनन्दप्रद होती है।

उपजाति आदि छन्द रहते हैं, पद-वाक्यविन्यास भी पूर्वपरम्परागत होता है, गद्य-पद्यमय ही आकार रहता है और सबके सब वही पुराने अलकारनियम रहते है। तो भी केवल अक्षरोके विन्यासको बदल देनेसे ही रचना सुन्दर हो जाती है।

जो वाणी अर्थयुक्त, माधुर्यादि गुणोसे समन्वित, अलकारशास्त्र और व्याकरणके नियमोसे युक्त होती है, वही सज्जनोको प्रमुदित करती है।

इस प्रकार कवि धनञ्जयने सन्धानकाव्यमे भी काव्योचित गुणोको आवश्यक माना है और उनका प्रयोग भी किया है।

प्रस्तुत काव्यमे राम और कृष्णके साथ पाण्डवोका भी इतिवृत्त आया है। काव्यका आरम्भ तीर्थंकरोकी वन्दनासे हुआ है, इतिवृत्त पुराणप्रसिद्ध है, मन्त्रणा, दूतप्रेषण, युद्धवर्णन, नगरवर्णन, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्र, सूर्य, पादप, उद्यान, जलक्रीडा, पुष्पावचय, सुरतोत्सव आदिका चित्रण है। कथानकमे हर्ष, शोक, क्रोध, भय, ईर्ष्या, घृणा आदि भावोका सयोजन हुआ है। शाब्दी क्रीडाके रहने पर भी रसका वैशिष्ट्य वर्तमान है। महत्कार्य और महत्‌उद्देश्यका निर्वाह भी किया गया है। कविने किसी भी अस्वाभाविक घटनाको स्थान नही दिया है। विवाह, कुमारक्रीडा, युवराजावस्था, पारिवारिक कलह, दासियोकी वाचलता आदिका भी चित्रण किया है। कविने शृगार, वीर, भयानक और वीभत्स रसका सम्यक् परिपाक दिखलाया है। यहाँ उदाहरणार्थ भयानकरसके कुछ पद्य प्रस्तुत किये जाते हैं

पतत्रिनादेन भुजङ्गयोषिता पपात गर्भ किल तार्क्ष्यशङ्कया।
नभश्चरा निश्चितमन्त्रसाधना वने भयेनास्यपगारमुद्यता ॥१६॥
समन्ततोऽप्युद्गतधूमकेतव स्थितोर्ध्वबाला इव तत्रसुर्दिश.।
निपेतुरुल्का. कलमाग्रपिङ्गला यमस्य लम्बा कुटिला जटा इव[1] ॥१७॥

राघव-पाण्डवराजाओके पराक्रमपूर्ण युद्धका आतक सर्वत्र छा गया। उनके बाणकी टकारसे गरुडकी ध्वनिका भय हो जानेसे नागपत्नियोके गर्भपात हो गये। खेचर भयविह्वल हो स्तब्ध हो गये। वे तलवारको म्यानसे निकाल न सके और उन्हे यह विश्वास हो गया कि वे मन्त्रबलसे ही सफल हो सकते हैं। युद्धकी भीषणतासे दशो दिशाएँ ऐसी भीत हो गयी थी, जैसेकि चारो

१. द्विसन्धान महाकाव्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, ६।१६–१७।

ओरसे धूमकेतु छा जाने पर होता है और उनके बाल खडे हो जाते हैं। सहस्र सघर्षसे उत्पन्न पके धान्यकी बालोके समान धूसर रगकी बिजलियाँ गिर रही थी, जो यमकी लम्बी और टेढी जटाके समान प्रतीत होती थी।

कविने ११२६, ११२०, ११२२, ११२४, २१२१, ३१४०, ५१३६, ५१६०, और ६१२ मे उपमाकी योजना की है। १११५ मे उत्प्रेक्षा, १११४ मे विरोधाभास, ११४८ मे परिसख्या, २१५ मे वक्रोक्ति, २११४ मे आक्षेप, २११५ मे अतिशयोक्ति, ३१३४ मे निश्चय और २११० मे समुच्चय अलकारकारका प्रयोग किया है। तथा वशस्थ, वसन्ततिलका, वैश्वदेवी, उपजाति, शालिनी, पुष्पिताग्रा, मत्तमयूर, हरिणी, वैतालीय, प्रहर्षिणी, स्वागता, द्रुतविलम्बित, मालिनी, अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीडित, जलधरमाला, रथोद्धता, वशपत्रपतित, इन्द्रवज्रा, जलोद्धतगति, अनुकूला, तोटक, प्रमिताक्षरा, अउप छन्दसिक, शिखरिणी, अपटवक्त्र, प्रमुदितवदना, मन्दाक्रान्ता, पृथ्वी, उद्गता और इन्द्रवंशा इस प्रकार ३१ प्रकारके छन्दोकी योजना की है।

इस द्विसन्धानकाव्यमे व्याकरण, राजनीति, सामुद्रिकशास्त्र, लिपिशास्त्र, गणितशास्त्र एवं ज्योतिष आदि विषयोकी चर्चाएँ भी उपलब्ध हैं। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं

पदप्रयोगे निपुणं विनामे सन्धौ विसर्गे च कृतावधानम् ।
सर्वेषु शास्त्रेषु जितश्रम तच्चापेऽपि न व्याकरण मुमोच ॥३।३६

अर्थात् शब्द और धातुरूपोके प्रयोगमे निपुण, षत्व-णत्वकरण, सन्धि तथा विसर्गका प्रयोग करनेमे न चूकनेवाले और समस्त शास्त्रोके परिश्रमपूर्वक अध्येता वैयाकरण व्याकरणके अध्ययनके समान चापविद्यामे भी बना व्याकरणको नही छोडते हैं।

विश्लेषण वेत्ति न सन्धिकार्यं स विग्रह नैव समस्तसस्थाम् ।
प्रागेव वेवेक्ति न तद्धितार्थं शब्दागमे प्राथमिकोऽभवद्धा ॥५।१०

व्याकरणशास्त्रका प्रारम्भिक छात्र विसन्धि सन्धिहीन अलग-अलग पदोका प्रयोग करता है, क्योकि सन्धि करना नही जानता है। केवल विग्रहपदोका अर्थ करता है। कृदन्त आदि अन्य कार्य नही जानता है और न तद्धित ही जानता है। आगमोका अभ्यासी भी कार्यविशेषका विचारक बन व्यापक सामान्यको भूलता है, विवाद करता है। समन्वय नही सोचता है और अभ्युदय-निःश्रेयसके लिये प्रयत्न नही करता है।

धनञ्जयने व्याकरणशास्त्रका पूर्ण पाण्डित्य प्रदर्शित करनेके लिये अपवादसूत्र और विधिसूत्रोका भी कथन किया है

विशेषसूत्रैरिव पत्तिभिस्तयो पदातिरुत्सर्ग इवाहृतोऽखिलः ॥८।१०

व्याकरणमे दो प्रकारके सूत्र है अपवादसूत्र या विशेषसूत्र और उत्सर्ग-सूत्र या विधिसूत्र। विधिसूत्रो द्वारा शब्दोका नियमन किया जाता है और अपवादसूत्रो द्वारा नियमका निषेध कर, अन्य किसी विशेषसूत्रकी प्रवृत्ति दिखलायी जाती है। व्याकरणमे धातुपाठ, गणपाठ, उणादि और लिङ्गानुशासन ये चार खिलपाठ भी होते हैं। धातुपाठ व्याकरणका एक उपयोगी अश हैं, सार्य धातु-परिज्ञानके अभावमे व्याकरण अधूरा ही रहता है। जितने शब्दसमूहमे व्याकरणका एक नियम लागू होता है, उतने शब्दसमूहको गण कहते हैं। उणसूत्रका आरम्भ होनेसे उणादि कहलाते है। जिन शब्दोकी सिद्धि व्याकरणके अन्य नियमोसे नही होती है, वे शब्द उणादि सूत्रोसे सिद्ध किये जाते हैं। लिङ्गानुशासन द्वारा शब्दोके लिङ्गका निर्णय किया जाता है। इस प्रकार महाकवि धनञ्जयने व्याकरणशास्त्रके नियमोका समावेश किया है।

सामुद्रिकशास्त्रमे भ्रू, नेत्र, नासिका, कपोल, कर्ण, ओष्ठ, स्कन्ध, बाहु, पाणि, स्तन, पार्श्व, उरु, जंघा और पाद इन १४ अगोमे समत्व रहना शुभ माना जाता है। धनञ्जयने महापुरुषोके लक्षणोमे उक्त अगोके समत्वकी चर्चा निम्न प्रकार की है

चतुर्दशद्वन्द्वसमानदेह सर्वेपु शास्त्रेषु कृतावतार ।३।२२

अतएव द्विसन्धानमहाकाव्य शास्त्र और काव्य दोनो ही दृष्टियोसे महत्त्वपूर्ण है।

महाकवि असग

कवि द्वारा रचित शान्तिनाथचरितकी प्रशस्तिसे अवगत होता है कि कविके पिताका नाम पटुमति और माताका नाम वैरेति था। पिता धर्मात्मा मुनिभक्त थे। इन्हे शुद्ध सम्यक्त्व प्राप्त था। माता भी धर्मात्मा थी। इस दम्पतिके असग नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। असगके पुत्रका नाम जिनाप था। यह भी जैन धर्ममे अनुरक्त शूरवीर, परलोकभीरू एव द्विजातिनाथ होनेपर भी पक्षपातरहित था। इस पुण्यात्माकी व्याख्यानशीलता एव पौराणिक श्रद्धाको देखकर कवित्वशक्तिसे हीन होनेपर भी गुरुके आग्रहसे उसके द्वारा यह प्रवन्धकाव्य लिखा गया है। प्रशस्तिमे कविने अपने गुरुका नाम नागनन्दि आचार्य लिखा है। ये व्याकरण, काव्य और जैन शास्त्रोके ज्ञाता थे।

स्थितिकाल

महाकवि असगने श्रीनाथके राज्यकालमे चोलराज्यकी विभिन्न नगरियोमे

आठ ग्रन्थो की रचना की है। 'वर्द्धमानचरित' की प्रशस्तिके अनुसार इस काव्यका रचनाकाल शक संवत् ९१० (ई० ९८८) है। कविने अपने गुरुका नाम नागनन्दि बताया है। इन नागनन्दिका परिचय श्रवणबेलगोलाके अभिलेखोमे पाया जाता है। १०८ वें अभिलेखसे अवगत होता है कि नागनन्दि नन्दिसंघके आचार्य थे, पर नन्दिसघकी पट्टावलीमे नागनन्दिके सम्बन्धमे कोई सूचना उपलब्ध नही होती है। अतएव वर्द्धमानचरितके आधारपर कविका समय ई० सन् की १०वी शताब्दी है।

कविकी दो रचनाएँ प्राप्त हैं वर्द्धमानचरित और शान्तिनाथचरित। वर्द्धमानचरित महाकाव्यमे १८ सर्ग हैं और तीर्थंकर महावीरका जीवनवृत्त अंकित है। इस ग्रन्थका सम्पादन और मराठी अनुवाद जिनदासपार्श्वनाथ फडकुलेने सन् १९३१मे किया है। मारीच, विश्वनन्दि, अश्वग्रीव, त्रिपृष्ठ, सिंह, कपिष्ठ, हरिषेण, सूर्यप्रभ इत्यादि के इतिवृत पूर्वजन्मोकी कथाके रूपमे अंकित किये गये हैं।

महाकवि असगने अपने इस वर्द्धमानचरितकी कथावस्तु उत्तरपुराणके ७४वें पर्वसे ग्रहण की है। इस पुराणमे मधुवनमे रहनेवाले पुरुरवा नामक भिल्लराजसे वर्द्धमानके पूर्वभवोका आरम्भ किया गया है। कविने उत्तरपुराणकी कथावस्तुको काव्योचित बनानेके लिये काट-छाट भी की है। असगने पुरुरवा और मरीचके आख्यानको छोड़ दिया है और श्वेतातपत्रा नगरीके राजा नन्दिवर्द्धनके आँगनमे पुत्र-जन्मोत्सवसे कथानकका प्रारम्भ किया है। इसमे सन्देह नही कि यह आरम्भस्थल बहुत रमणीय है। उत्तरपुराणकी कथावस्तुके प्रारम्भिक अंशको घटितरूपमे न दिखलाकर पूर्वभवावलिके रूपमे मुनिराजके मुखसे कहलवाया है। इस प्रकार उत्तरपुराणकी कथावस्तु अक्षुण्ण रह गयी है।

कथावस्तुके गठनमे कवि असगने इस बातकी पूर्ण चेष्टा की है कि पौराणिक कथानक काव्यके कथानक बन सकें। घटनाओंका पूर्वापर क्रमनिर्धारण, उनमे परस्पर सम्बधस्थापन एव उपाख्यानोका यथास्थान सयोजन मौलिक रूपमे घटित हुआ है। प्रसंगोको व्यर्थ वर्णनविस्तार नही दिया है। मार्मिक प्रसगोके नियोजनके हेतु विश्वनन्दि और नन्दन के जीवनमे लोकव्यापक नाना सम्बन्धोके कल्याणकारी सौन्दर्यकी अभिव्यञ्जना की है। पिता-पुत्रका स्नेह नन्दिवर्द्धन और नन्दनके जीवनमे, भाईका स्नेह विश्वभूति और विशाखभूतिके जीवनमे, पति-पत्नीका स्नेह त्रिपृष्ठ और स्वयप्रभाके जीवनमे, विविध भोगविलास हरिषेणके जीवनमे एव वीरता और चमत्कारोका वर्णन त्रिपृष्ठके जीवनमे अभिव्यक्त कर जीवनकी व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। कथानियोजनमे योग्यता,

अवसर, सत्कार्यता और रूपाकृतिका पूरा ध्यान रखा गया है। अवान्तर कथाओका प्रक्षेपण पूर्वभवावलिके रूपमे किया है। वर्द्धमानका जीवनविकास अनेक भवो जन्मोका लेखा-जोखा है। कर्मवादके भोक्ता नायक-नायिकाएँ मुनिराज द्वारा अपने विगत जीवनके इतिवृत्तको सुनकर विरक्ति धारण करते हैं। जीवनकी अनेक विषमताएँ कथावस्तुमे विकसित हुई है।

कविने रसानुरूप सन्दर्भ और अर्थानुरूप छन्दोकी योजना, जीवनके व्यापक अनुभवोका विश्लेषण एव वस्तुओका अलकृत चित्रण किया है। इस महाकाव्यका प्रतिनायक विशाखनन्दि है, जिसके साथ कई जन्मो तक विरोध चलता है। कवि असगने सगठित कथानकके कलेवरमे जीवनके विविध पक्षोका उद्घाटन करनेके लिए वस्तु-व्यापार, प्रकृतिचित्रण, रसभावसयोजन एव अलकारनियोजन किया है। २।४५मे अनुप्रास, २।२७मे यमक और ५।३५, २।७, ५।८, ६।३४, ६।६८, ७।८, ७।४१, ७।८५, ८।२६, ८।६७, ८।७५, ९।७, ९।१०, ९।२९, ९।३५, ९।३९, १०।२२, १०।२३, १०।२४, १२।१०, १२।११, १२।१६, १३।३८, १३।४५, १३।६१, १३।७३, १४।८, १४।९, १७।१५, १७।२१, एव १८।६मे श्लेषका प्रयोग हुआ है। १।४०मे उपमा, ४।१०मे उत्प्रेक्षा, १३।५८मे रूपक, ५।३४मे भ्रातिमान, ५।११मे अपह्नुति, १।८२मे अतिशयोक्ति, १।४६मे दृष्टान्त, १३।४६ मे विभावना, १३।४४मे अर्थान्तरन्यास, ५।७०मे सन्देह, ५।२०मे व्यतिकर, ३।९मे विरोधाभास, ५।१३मे परिसख्य, १३।४मे एकावली, ५।५४मे स्वभावोक्ति ५।५५में सहोक्ति, ७।२१मे विनोक्ति और १।६४मे विशेषोक्ति अलकार पाये जाते हैं।

छन्दोमे उपजाति, वसन्ततिलका, शिखरिणी, वशस्थ, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, अनुष्टुप्, मालभारिणी, मन्दाक्रान्ता, उपजाति, स्रग्धरा, आख्यानकी, शालिनी, हरिणी, ललिता, रथोद्धता, स्वागता आदि प्रमुख हैं।

कविका 'शान्तिनाथचरित' भी महाकाव्य है। इस काव्यमे १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथका जीवनवृत्त वर्णित है। कथावस्तुकी पृष्ठभूमिके रूपमे पूर्वभवावलि निबद्ध की गयी है। कथावस्तुकी योजनामे कविको पूर्ण सफलता मिली है। सन्ध्या, प्रभात, मध्याह्न, रात्रि, वन, सूर्य, नदी, पर्वत, समुद्र, द्वीप, आदि वस्तुवर्णन सागोपाग है। जीवनके विभिन्न व्यापार और परिस्थियोमे प्रेम, विवाह, मिलन, स्वयवर, सैनिक, अभियान, युद्ध, दीक्षा, नगरावरोध, विजय, उपदशसभा, राजसभा, दूतसप्रेषण एव जन्मोत्सवका चित्रण किया है।

रस, भाव, अलकार और प्रकृति-चित्रणमे भी कविको सफलता मिली है। यह सत्य है कि वर्द्धमानचरितकी अपेक्षा शान्तिनाथचरितमे अधिक पौराणि-

कताका समावेश हुआ है। श्रावक और श्रमण दोनों के आचारतत्व भी वर्णित हैं। इस काव्यका प्रकाशन मराठी अनुवाद सहित सोलापुरसे हो चुका है।

महाकवि हरिचन्द्र

महाकवि हरिचन्द्रका जन्म एक सम्पन्न परिवारमे हुआ था। इनके पिताका नाम आर्द्रदेव और माताका नाम रथ्यादेवी था। इनकी जाति कायस्थ थी, पर ये जैनधर्मावलम्बी थे। कविने स्वय अपनेको अरहन्त भगवान्के चरण-कमलोका भ्रमर लिखा है। इनके छोटे भाईका नाम लक्ष्मण था, जो इनका अत्यन्त आज्ञाकारी और भक्त था। कविने अपने धर्मशर्माभ्युदयकी प्रशस्तिमे लिखा है

मुक्ताफलस्थितिरलकृतिषु प्रसिद्ध
स्तत्रार्द्रदेव इति निर्मलमूर्तिरासीत्।
कायस्थ एव निरवद्यगुणग्रह स
न्नेकोऽपि य कुलमशेषमलचकार ॥२॥
लावण्याम्बुनिधि कलाकुलगृह सौभाग्यसद्भाग्ययो
क्रीडावेश्म विलासवासवलभीभूषास्पद सपदाम्।
शौचाचारविवेकविस्मयमही प्राणप्रिया शूलिन.
शर्वाणीव पतिव्रता प्रणयिनी रथ्येति तस्याभवत् ॥३॥
अर्हत्पदाम्भोरुहचञ्चरीकस्तयो: सुत श्रीहरिचन्द्र आसीत्।
गुरुप्रसादादमला बभूवु. सारस्वते स्रोतसि यस्य वाच ॥४॥
भक्तेन शक्तेन च लक्ष्मणेन निर्व्याकुलो राम इवानुजेन।
य पारमासादितबुद्धिसेतु शास्त्राम्बुराशे परमाससाद[1] ॥५॥

प्रसिद्ध नोमक वशमे निर्मल मूर्तिके धारक आर्द्रदेव हुए, जो अलंकारोमे मुक्ताफलके समान सुशोभित थे। वह कायस्थ थे। निर्दोष गुणग्राही थे और एक होकर भी समस्त कुलको अलकृत करते थे। शिवके लिए पार्वतीके समान रथ्या नामक उनकी प्राणप्रिया थी, जो सौन्दर्यका समुद्र, कलाओका कुलभवन, सौभाग्य और उत्तम भाग्यका क्रीडाभवन, विलासके रहनेकी अट्टालिका एव सम्पदाओंके आभूषणका स्थान थी। पवित्र आचार, विवेक एव आश्चर्यकी भूमि थी। उन दोनोके अरहन्त भगवान्के चरणकमलोका भ्रमर हरिचन्द नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके वचन गुरुओके प्रसादसे सरस्वतीके प्रवाहको

१ ग्रन्थकर्तु प्रशस्ति—धर्मशर्माभ्युदय, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९३३, पृ० १७९।

समृद्ध बनाने वाले थे। उस हरिचन्दके एक लक्ष्मण नामका भाई था, जो उन्हें उतना ही प्रिय था, जितना रामको लक्ष्मण।

कविका वश या गोत्र नोमक न होकर नेमक होना चाहिये, क्योकि नेमक गोत्रका उल्लेख कालञ्जरके एक अभिलेखमे भी आया है

"नेमकान्वयजेन्दकसुततेदुकेन भगवत्या. कारितमण्डपिका प्रसक्षेन तदभार्यया लक्ष्म्या:[1]"।

कविका उपनाम चन्द्र था। १२वी शताब्दीमे धर्मशर्माभ्युदयका एक श्लोक जल्हणकी सूक्तिमुक्तावलीमे चन्द्रसूर्यके नामसे उपलब्ध[2] है। अत कविका चन्द्र उपनाम सिद्ध होता है।

कविका जन्म कहाँ हुआ और उसने अपने इस ग्रन्थकी रचना कहाँ की, इसका निश्चित रूपमे परिचय प्राप्त नही है।

१०वी से १२वी शताब्दीके राजनैतिक और सास्कृतिक इतिहासका अध्ययन करनेसे अवगत होता है कि गुजरात और उसके पार्श्ववर्ती प्रदेशोमे चालुक्य, सोलकी, राष्ट्रकूट, कलचुरी, शिलाहार आदि राजवशोका राज्य था। इनमेसे प्रत्येकने जैनधर्मकी उन्नतिके लिये विशेष योगदान दिया। धर्मशर्माभ्युदयकी सघवी पाडा पुस्तकभंडारकी १७६ सख्यक प्रतिमे गुर्जर और विद्यापुर[3] देशका नाम आया है। विद्यापुर आधुनिक बीजापुर ही है। इस प्रतिको लिखनेवाले झझाक हुम्वडवशीय थे। अतएव हरिचन्द्र बीजापुर अथवा गुजरातके पार्श्ववर्ती किसी प्रदेशके निवासी रहे होगे।

हरिचन्द्रका व्यक्तित्व कवि और आचारशास्त्रके वेत्ताके रूपमे उपस्थित होता है। इन्होने रघुवश, कुमारसभव, किरात, शिशुपालवध, चन्द्रप्रभचरित प्रभृति काव्यग्रन्थोके साथ तत्त्वार्थसूत्र, उत्तरपुराण, रत्नकरण्डश्रावकाचार, उवासगदसा, सर्वार्थसिद्धि प्रभृति ग्रन्थोका भी अध्ययन किया था। दर्शन और काव्यके जो सिद्धान्त इनके द्वारा प्रतिपादित हैं, उनसे कविकी प्रतिभा और

१ एपिग्राफिक इन्डिका, पृ० २१०।

२. धर्मशर्माभ्युदयका २।४४ श्लोक जल्हण-सूक्तिमुक्तावली, पृ० १८५ में चन्द्रसूर्यके नामसे उपलब्ध है।

३ अथास्ति गुर्जरो देशो विख्यातो भुवनत्रये।
विद्यापुर पुर तत्र विद्याविभवसंभवम्॥ १७६ न०की धर्मशर्माभ्युदयकी हस्तलिखित प्रति पाटणसे प्राप्त।

विद्वत्ताका अनुमान सहजमे किया जा सकता है। रस-ध्वनिको कविने सिद्धान्त-रूपमे स्वीकार किया है।

कवि भाग्यवादी है। उसे स्वप्न, निमित्त और ज्योतिषपर विश्वास है। हरिचन्द्रका अभिमत है कि कार्य प्रारम्भ करनेके पहले व्यक्तिको अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिये। बिना विचारे कार्य करनेवाले मनुष्यका निस्सन्देह उस प्रकार नाश होता है, जिस प्रकार तक्षसर्पसे मणि ग्रहण करनेके इच्छुक मनुष्यका होता[1] है। इस कथनसे यह स्पष्ट है कि हरिचन्द्र विवेकशील और सोच-समझकर कार्य करने वाले थे। स्त्रियोके सम्बन्धमे कविकी अच्छी धारणा नही है। कवि स्वाभिमानी, व्रत और चरित्रनिष्ठ है। धर्मशर्माभ्युदय और जीवन्धरचम्पूके अध्ययनसे कविके औदार्य आदि गुणों पर भी प्रकाश पड़ता है।

स्थितिकाल

महाकवि हरिचन्द्रके स्थितिकालके सम्बन्धमे कई विचारधाराएँ उपलब्ध हैं। यत हरिचन्द्र नामके कई कवि हुए हैं। प्रथम हरिचन्द्र नामके कवि चरक-संहिताके टीकाकारके रूपमें उपलब्ध होते हैं। इनका समय अनुमानतः ई० प्रथम शती है। माधवनिदानकी मधुकोशी व्याख्यामे हरिचन्द्र और भट्टारक हरिचन्द्रके नाम आये हैं[2]। बाणभट्टने[3] हर्षचरितके प्रारम्भमे भट्टारक हरि-चन्द्रका उल्लेख किया है। राजशेखरकी काव्यमीमासा[4] और[5] कर्पूरमंजरीमे भी हरिचन्द्रका नामोल्लेख मिलता है। गउडवहोमे[6] भास, कालिदास और सुबन्धुके साथ हरिचन्द्रका भी नामनिर्देश प्राप्त होता है।

स्व० पण्डित नाथूराम प्रेमीने धर्मशर्माभ्युदयकी पाटणकी एक पाडुलिपिका

१ धर्म० १८।२८।

२ अत्र केचित् हरिचन्द्रादिभिर्व्याख्यात पाठान्तर पठन्ति मधुकोशी व्या० माधव-निदान, पृ० १७, पक्ति १०।

३. पदबन्धोज्ज्वलोहारी रम्यवर्णपदस्थिति ।
भट्टारकहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते ॥ हर्षचरित् १।१३, पृ० १०।

४ हरिचन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालयाम ।— का० मी० अ० १०, पृ० १३५ (विहार राष्ट्रभाषा सस्करण १९५४)।

५ विदूषक — (सक्रोधम्) उज्जुअता किण भणइ अम्हाणं चेडिया हरिअद णदिअद-कोट्टिसहालप्पहुदीण वि पुरदो सुकइ त्ति ? कर्पूरमंजरी, चौखम्बा सस्करण, १९५५ जवनिकान्तर, पृ० २९।

६. भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे अजस्स रहुआरे।
सोबन्धवे अबंधम्मि हरिचदे अ आणदो ॥ ८००, गउडवहो, भाण्डारकर, ओरियण्टल इ स्टीट्यूट पूना, १९२७ ई०।

उल्लेख किया है, जिसका प्रतिलिपिकाल वि० स १२८७ (ई० सन् १२३०) है। प्रतिके अन्तमे लिखा है

"१२८७ वर्षे हरिचन्द्रकविविरचितधर्मशर्माभ्युदयकाव्यपुस्तिका श्रीरत्नाकरसूरिआदेशेने कीर्त्तिचन्द्रगणिना लिखितमिति भद्रम्[1]"।

अत इतना स्पष्ट है कि ई० सन् १२३० के पहले ही महाकवि हरिचन्द्रका धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य लिखा जा चुका था।

श्री पडित कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीने अपने 'महाकवि हरिचन्दका समय'[2] शीर्षक निबन्धमे धर्मशर्माभ्युदयके ऊपर वीरनन्दिके चन्द्रप्रभचरित और हेमचन्द्रके 'योगसार' का प्रभाव बताया है। आपने लिखा है कि 'धर्मशर्माभ्युदय' मे भोगोपभोगपरिमाणव्रतके अतिचारोमे १५ खरकर्मोका निर्देश किया है तथा अनर्थदडव्रतके स्वरूपमे खरकर्मोके त्यागको स्थान दिया है। अत. हरिचन्दका समय वि० स० १२०० के लगभग होना चाहिये।' इस कथनका समर्थन प्रो० अमृतलालजी शास्त्रीने "महाकवि हरिचन्द" (जैन सन्देश शोधाक ७) शीर्षक निबन्धमे किया है। आपने श्री पडित कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीके प्रमाणोको दुहराते हुए कुछ नवीन तथ्य भी प्रस्तुत किये, पर मूल तर्क दोनो महानुभावोंके समान हैं।

इस सम्बन्धमे विचारणीय यह है कि क्या खरकर्मोका त्याग हेमचन्द्रके पूर्ववर्ती साहित्यमे भी मिलता है? 'उवासगदसा'के आनन्द अध्ययन और 'समराइच्चकहा' में भी खरकर्मोके त्यागका विवेचन है। अत. कवि हरिचन्दने खरकर्मोके त्यागका कथन हेमचन्द्रके आधार पर न कर 'उवासगदसा' आदि ग्रन्थोके आधार पर किया होगा। अतएव हेमचन्द्रके पश्चात् हरिचन्द्रका समय माननेका कोई सबल प्रमाण नही मिलता है।

प्रो० के० के० हिण्डीकीने हरिचन्द्रको वादीभसिहके पश्चात् (ई० सन् १०७५-११७५)का कवि माना[3] है, पर वादीभसिहके समयके सम्बन्धमे पर्याप्त मतभेद है। स्व० श्रीनाथूरामजी[4] प्रेमी वादीभसिहका काल वि० स०की १२वी शती, श्री पण्डित कैलाशचन्द्रजी शास्त्री[5] अकलकदेवके समकालीन और श्री डॉ०

१ पाटणके सघवीपाडाके पुस्तकभण्डारकी सूची, गायकवाड सीरिजसे प्रकाशित, बडौदा १९३७ ई०।

२. अनेकान्त, वर्ष ८, किरण ११-१२, पृ० ३७६-३८२।

३ भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित जीवन्धरचम्पूका अग्रजी प्राक्कथन (Foreword), पृ० २३।

४. जैनसाहित्य और इतिहास, द्वितीय सस्करण, पृ० ३२१।

५. 'न्यायकुमुदचन्द्र', प्रथम भाग, माणिकचन्द्रग्रन्थमाला, १९३८, प्रस्ता० पृ० १११।

प्रो० दरबारीलालजी कोठिया[1] नवम शती मानते हैं। अतः श्रीहिण्डीकी द्वारा निर्णीत समय भी निर्विवाद नही है।

धर्मशर्माभ्युदय और जीवन्धरचम्पूके आन्तरिक परीक्षण करनेपर कुछ तथ्य इस प्रकार उपलब्ध होते हैं जिनके आधार पर महाकवि हरिचन्द्रके समय-का निर्णय किया जा सकता है। धर्मशर्माभ्युदय (२।४)मे 'आसेचनक' शब्दका प्रयोग आया है। इस शब्दका प्रयोग बाणभट्टने भी हर्षचरितके प्रथम उच्छ्वास-मे किया[2] है। 'नैषधचरित', मे हस दमयन्तीसे कहता है सुन्दरी! अकेला चन्द्रमा तुम्हारे नयनोको किसी प्रकार तृप्ति नही दे सकता। अत नलके मुख-चन्द्रके साथ वह तुम्हारे लोचनोंका आसेचनक[3] बने। स्पष्ट है कि 'आसेचनक' शब्द हर्षचरितसे विकसित होकर धर्मशर्माभ्युदयमें आया और वहांसे नैषधमे गया। नैषधमहाकाव्यपर धर्मशर्माभ्युदयका और भी कई तरहका प्रभाव[4] है।

'धर्मशर्माभ्युदय'का नाम सम्भवत' पार्श्वाभ्युदयके अनुकरण पर रखा गया होगा। सस्कृत-काव्योमे अभ्युदयनामान्तवाले काव्योमे सम्भवत जिनसेनका पार्श्वाभ्युदय सबसे प्राचीन है। ९वी शतीके महाकवि शिवस्वामीका 'कप्फिणा-भ्युदय'[5] महाकाव्य है, जिसका कथानक बौद्धोंके अवदानोंसे ग्रहण किया गया है। १३वी शतीमे दाक्षिणात्य कवि वेंकटनाथ वेदान्तदेशिकने २४ सर्ग प्रमाण 'यादवाभ्युदय'[6] महाकाव्य लिखा है। जिसपर अप्पय दीक्षितने (ई० १६००) एक विद्वत्तापूर्ण टीका लिखी है। महाकवि आशाधरने 'भरतेश्वराभ्युदय' नामक काव्य लिखा है। अत यह निष्कर्ष निकालना दूरकी कौडी बैठाना नही है कि पार्श्वाभ्युदयके अनुकरण पर महाकवि हरिचन्द्रने अपने इस महाकाव्यका नाम-करण किया हो।

महाकवि हरिचन्द्रके समय-निर्णयके लिये एक अन्य प्रमाण यह भी ग्रहण किया जा सकता है कि जीवन्धरचम्पूकी कथावस्तु कविने 'क्षत्रचूडामणि'से ग्रहण की है। श्रीकुप्पुस्वामीने अपना अभिमत प्रकट किया है कि 'जीवकचिन्ता-

१. स्याद्वादसिद्धि, माणिकचन्द्रग्रन्थमाला, सन् १९५० ई०, प्रस्तावना, पृ० २५-२७।
२ आसेचनक-दर्शनं नप्तारम् हर्षचरित, चौखम्बा सस्करण, प्रथम उच्छ्वास।
३ नैषधमहाकाव्य, चौखम्बा सस्करण, ३।११।
४ नैषधपरिशीलन, डॉ० चण्डीप्रसाद शुक्ल द्वारा प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, सन्, १९६० ई०।
५. पजाब विश्वविद्यालय सीरीज, संख्या २६, ई० सन् १९३७में लाहौरसे प्रकाशित।
६. सस्कृत-साहित्यका इतिहास, वाचस्पति, गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६०, पृ० ८६८।

मणि'मे जीवन्धरचरित मिलता है, वह 'क्षत्र-चूडामणि'से प्रभावित है। इस आधार पर कवि हरिचन्द्रका समय १०वी शताब्दीके लगभग होना चाहिये।

महाकवि असग द्वारा विरचित 'वर्द्धमानचरितम्'के अध्ययनसे ऐसा प्रतीत होता है कि कविने कई सन्दर्भ और उत्प्रेक्षाएँ जीवन्धरचम्पू, धर्मशर्माभ्युदय और चन्द्रप्रभचरितसे ग्रहण की हैं। उक्त काव्यग्रन्थोके तुलनात्मक अध्ययनसे यह सहजमे ही स्पष्ट हो जाता है कि हरिचन्द्रने असगका अनुकरण नही किया, बल्कि महाकवि असगने ही हरिचन्द्रका अनुकरण किया है। यथा

प्रथिता विभाति नगरी गरीयसी धुरि यत्र रम्यसुदतीमुखाम्बुजम्।
कुरुविन्दकुण्डलविभाविभावित प्रविलोक्य कोपमिव मन्यते जन ॥

जीवन्धर०, भारतीय ज्ञानपीठ सस्करण, ६।२५

यत्रोल्लसत्कुण्डलपद्मरागच्छायावतसारुणिताननेन्दु. ।
प्रसाद्यते किं कुपितेति कान्ता प्रियेण कामाकुलितो हि मूढ ॥

वर्धमानचरितम्, सोलापुर, ई० १९३१, १।२६

सोदामिनीव जलद नवमञ्जरीव चूतद्रुम कुसुमसपदिवाद्यमासम्।
ज्योत्स्नेव चन्द्रमसमच्छविमेव सूर्यं त भूमिपालकमभूषयदायताक्षी ॥

जीवन्धरचम्पू १।२७

विद्युल्लतेवाभिनवाम्बुवाहं चूतद्रुम नूतनमञ्जरीव।
स्फुरत्प्रभेवामलपद्मराग विभूषयामास तमायताक्षी ॥

वर्धमानचरितम् १।१४

हरिचन्द्रने धर्मशर्माभ्युदयके दशम सर्गमे विन्ध्यगिरिकी प्राकृतिक सुषमाका वर्णन किया है। महाकवि असगने इस सन्दर्भके समान ही उत्प्रेक्षाओंद्वारा विजयार्द्धका वर्णन किया है। अत वर्द्धमानचरितके रचयिता असगने हरिचन्द्रका अनुसरण कर अपने काव्यको लिखा है। इसी प्रकार 'नेमिनिर्वाण' काव्यके रचयिता वाग्भट्टने भी 'धर्मशर्माभ्युदय'का अनेक स्थानोपर अनुसरण किया है। 'धर्मशर्माभ्युदय'के पञ्चम सर्गका नेमिनिर्वाणके द्वितीय सर्गपर पूरा प्रभाव है। असगका समय ई० सन् ९८८ है। अत· हरिचन्द्रका समय इनके पूर्व मानना चाहिये।

श्रीमती स्वप्ना[1] बनर्जीने धर्मशर्माभ्युदयकी हस्तलिखित प्रतिके लेखक विशालकीर्ति और शब्दार्णवचन्द्रिकामे आये हुए विशालकीर्तिको एक मानकर हरिचन्द्रका समय १२वी शतीका अन्तिम पाद सिद्ध किया है। पर धर्मशर्माभ्युदयके अन्तरग अनुशीलनसे हरिचन्द्रका समय ई० सन्‌को १०वी शती है।

१ मरुधरकेसरी-अभिनन्दन-ग्रन्थ, जोधपुर, पृ० ३९५।

रचनाएँ

महाकवि हरिचन्द्रकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं

१. धर्मशर्माभ्युदय

२. जीवन्धरचम्पू

कुछ विद्वान 'जीवन्धरचम्पू' को 'धर्मशर्माभ्युदय' के कर्ता हरिचन्द्रकी कृति नही मानते हैं, पर यह ठीक नही है। यत' इन दोनो रचनाओमे भावो, कल्पनाओ और शब्दोकी दृष्टिसे बहुत साम्य है। जीवन्धरचम्पूमे पुण्यपुरुष जीवन्धरका चरित्त वर्णित है। कथावस्तु ११ लम्भोमे विभक्त है तथा कथावस्तुका आधार वादीभसिंहकी गद्यचिन्तामणि एव क्षत्रचूडामणि ग्रन्थ है। यो तो इस काव्यपर उत्तरपुराणका भी प्रभाव है, पर कथावस्तुका मूलस्रोत उक्त काव्यग्रन्थ ही हैं। गद्य-पद्यमयी यह रचना काव्यगुणोसे परिपूर्ण है। द्राक्षारसके समान मधुर काव्य-रस प्रत्येक व्यक्तिको प्रभावित करता है।

धर्मशर्माभ्युदय

इस महाकाव्यमे १५वें तीर्थंकर धर्मनाथका चरित वर्णित है। इसकी कथावस्तु २१ सर्गोमे विभाजित है। धर्म-शर्म धर्म और शान्तिके अभ्युदय-वर्णनका लक्ष्य होनेसे कविने प्रस्तुत महाकाव्यका यह नामकरण किया है। कविने इस महाकाव्यकी कथावस्तु उत्तरपुराणसे ग्रहण की है। इसमे महाकाव्योचित धर्मका समावेश करनेके लिये स्वयवर, विन्ध्याचल, षड्ऋतु, पुष्पावचय, जलक्रीड़ा, सन्ध्या, चन्द्रोदय एव रतिक्रीड़ाके वर्णन भी प्रस्तुत किये हैं। उत्तरपुराणमे धर्मनाथके पिताका नाम भानु बताया है, पर धर्मशर्माभ्युदयमे महासेन। माताका नाम भी सुप्रभाके स्थान पर सुव्रता आया है। कविने कथावस्तुको पूर्वभवावलीके निरूपणसे आरम्भ न कर वर्तमान जीवनसे प्रारम्भ की है। रघुवशके दिलीपके समान महासेन भी पुत्र-चिन्तासे आक्रान्त हैं। वे सोचते हैं कि जिसने जीवनमे पुत्रस्पर्शका अलौकिक आनन्द प्राप्त नही किया, उसका जन्म-धारण व्यर्थ है। अत. महासेन नगरके बाहरी उद्यानमे पधारे हुए ऋद्धिधारी प्रचेतानामक मुनिके निकट पहुँचते है। वे उनके समक्ष पुत्र-चिन्ता व्यक्त करते हैं। प्रसगवश मुनिराज धर्मनाथकी पूर्वभवावली बतलाते हैं और छह महीनेके उपरान्त तीर्थंकर-पुत्र होनेकी भविष्यवाणी करते हैं। कविने धीरोदात्तनायकमे काव्योचित्त गुणोका समावेश करनेपर भी पौराणिकताकी रक्षा की है। वनमे तीर्थंकर धर्मनाथके पहुँचते ही, षड्ऋतुओके फल-पुष्प एकसाथ विकसित हो जाते हैं। धर्मनाथके निवासके लिये कुबेरने

सुन्दर नगरका निर्माण किया, जन्मके दश अतिशयोको काव्यका रूप देनेका प्रयास किया है। और नायकमे अपूर्व सामर्थ्यका चित्रण करते हुए कहा है कि मार्ग चलनेके कारण क्लान्त न होनेपर भी रुढिवश उन्होने स्नान किया और मार्गका वेश बदला[1]। इस प्रकार कविने नायकको पौराणिकतासे ऊपर उठानेकी चेष्टा की है किन्तु तीर्थंकरत्वकी प्रतिष्ठा बनाये रखनेके कारण पूर्णतया उस सीमाका अतिक्रममण नही हो सका है।

इस महाकाव्यमे इतिवृत्त, वस्तुव्यापार, सवाद और भावाभिव्यञ्जन इन चारोका समन्वित रूप पाया जाता है। प्रकृति-चित्रणमे भी कविको अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। यहाँ उदाहरणार्थ गगाका चित्रण प्रस्तुत किया जाता है

> तापापनोदाय सदैव भूत्रयीविहारखेदादिव पाण्डुरद्युतिम्।
> कीर्तेर्वयस्यामिव भर्तुरग्रतो विलोक्य गङ्गा वहु मेनिरे नरा. ॥१।६८॥
> शम्भोर्जटाजूटदरीविवर्तनप्रवृत्तसस्कार इव क्षितावपि।
> यस्या. प्रवाह. पयसा प्रवर्तते सुदुस्तरावर्ततरङ्गभङ्गुरः ॥१।६९॥

सभी लोग अपने समक्ष गगानदीको देखकर बहुत प्रसन्न हुए। यह नदी जगत्-सतापको दूर करनेके लिये त्रिभुवनमे विहार करनेके खेदसे ही मानो श्वेत हो रही है। यह नदी स्वामी धर्मनाथकी त्रिभुवन-व्यापिनी कीर्त्तिकी सहेली-सी जान पडती है। जिस गंगानदीके जलका प्रवाह पृथ्वीमे भी अत्यन्त दुस्तर आवर्तों और तरगोसे कुटिल होकर चलता है, मानो महादेवजीके जटाजूटरूपी गुफाओमे सचार करते रहनेके कारण उसे वैसा सस्कार ही पड़ गया है।

वह गगा निकटवर्ती वनोकी वायुसे उठती हुई तरंगो द्वारा फैलाये हुए फैनसे चिह्नित है। अत. ऐसी जान पड़ती है मानो हिमालयरूपी नागराजके द्वारा छोडी हुई काँचुली ही हो।

इस प्रकार कविने गगाके श्वेत जलका चित्रण विभिन्न उत्प्रेक्षाओ द्वारा सम्पन्न किया है। उसे रत्नसमूहोसे खचित पृथ्वीकी करधनी बताया है अथवा आकाशसे गिरी हुई मोतियोकी माला ही बताया है। इसी प्रकार कविने सूर्यास्त, चन्द्रोदय, रजनी, वन आदिका भी जीवन्त चित्रण किया है। कवि रानी सुव्रताके ओष्ठका चित्रण करता हुआ कहता है

> प्रवाल-बिम्बीफल-विद्रुमादय. समा बभूवु प्रभयैव केवलम्।
> रसेन तस्यास्त्वधरस्य निश्चितं जगाम पीयूषरसोऽपि शिष्यताम् ॥२।५१॥

1 धर्मशर्माभ्युदय १।१४, १।१५।

किसलय, बिम्बीफल और विद्रुम आदि केवल वर्णकी अपेक्षा ही उसके ओष्ठके समान थे। रसकी अपेक्षा तो अमृत भी निश्चय ही उसका शिष्य बन चुका था। नासिका, कर्ण, मुख, पयोधर, कटि, भ्रू, ललाट प्रभृतिका अपूर्व चित्रण किया है। सुव्रताकी भौहोंका निरूपण करता हुआ कवि कहता है

इमानालोचनगोचरां विधिर्विधाय सृष्टे कलशार्पणोत्सुक. ।
लिलेख वक्त्रे तिलकाङ्कमध्ययोर्भ्रुवोर्मिषादोमिति मङ्गलाक्षरम् ॥२।५५॥

इस निरवद्य सुन्दरीको बनाकर विधाता मानो सृष्टिके ऊपर कलश रखना चाहता था। इसीलिये तो उसने तिलकसे चिन्हित भौहोंके बहाने उसके मुख पर 'ओम्' यह मगलाक्षर लिखा था। इस प्रकार कविने प्रत्येक उत्प्रेक्षाको तर्क-सगत बनाया है।

'धर्मशर्माभ्युदय'मे शृगार और शान्तरसका अपूर्व चित्रण हुआ है। कविने भाव-सौंदर्यकी व्यापक परिधिमे कल्पना, अनुभूति, संवेग, भावना, स्थायी और संचारी भावोंका समावेश किया है। इसमे भावोंकी उमड़-घुमड है, पर सीमाका अतिक्रमण नही। वात्सल्यभावका चित्रण भी षष्ठ सर्गमे आया है। अलकार-योजनाकी दृष्टिसे ७।२२, २०।१०, ७।४२, ११।१२, १४।३६, १७।७६ आदि मे उपमा, १।४५ मे उत्प्रेक्षा, ३।३० मे अर्थान्तरन्यास, १७।८० मे असगति, ४।२० मे उल्लेख, ४।२२मे तद्गुण, १०।१९मे भ्रान्तिमान्, २।६०मे व्यतिरेक, १७।४५ मे विरोधाभास और २।३०मे परिसख्या अलकार वर्तमान हैं। अनुप्रास, यमक, श्लेषकी अपेक्षा ११वाँ और १९वाँ सर्ग प्रसिद्ध है। हरिचन्द्रने १९वें सर्गमे एकाक्षर और द्व्यक्षर चित्रकी योजना की है। १९।८५ मे सर्वतोभद्र, १९।९३ मुरजबन्ध, १९।७८ मे गोमूत्रिका, १९।८४ मे अर्द्धभ्रम, १९।९८ षोड़पदल पद्मबन्ध एव १९।१०१ मे चक्रबन्ध आये हैं। निश्चयत. यह काव्य उदात्त शैलीमे लिखा गया है और इसमे उत्कृष्ट काव्यके सभी गुण विद्यमान हैं। इस काव्यके अन्तिम सर्गमे जैनाचार और जैनदर्शनके तत्त्व वर्णित हैं।

वाग्भट्ट प्रथम

वाग्भट्टनामके कई विद्वान् हुए हैं। 'अष्टागहृदय' नामक आयुर्वेदग्रन्थके रचयिता एक वाग्भट्ट हो चुके हैं। पर इनका कोई काव्य-ग्रन्थ उपलब्ध नही है। जैन सिद्धान्त भवन आराकी विक्रम सवत् १७२७ की लिखी हुई प्रतिमे निम्न लिखित पद्य प्राप्त होता है

अहिच्छत्रपुरोत्पन्नप्राग्वाटकुलशालिन ।
छाहडस्य सुतश्चक्रे प्रबन्धं वाग्भट कवि ॥८७॥

यह प्रशस्ति-पद्य श्रवणबेलगोलाके स्व० प० दौर्बलिजिनदास शास्त्रीके पुस्तकालयवाली नेमिनिर्वाण-काव्यकी प्रतिमे भी प्राप्य है ।[1]

प्रशस्ति-पद्यसे अवगत होता है कि वाग्भट्ट प्रथम प्राग्वाट पोरवाड कुलके थे और इनके पिताका नाम छाहड़ था । इनका जन्म अहिछत्रपुरमे हुआ था । महामहोपाध्याय डॉ० गौरीशकर हीराचन्द्र ओझाके अनुसार नागौरका पुराना नाम नागपुर या अहिछत्रपुर है।[2] महाभारतमे जिस अहिछत्रका उल्लेख है वह तो वर्तमान रामनगर (जिला बरेली उत्तरप्रदेश) माना जाता है ।[3] 'नायाधम्मकहाओ'मे भी अहिछत्रका निर्देश आया है,[4] पर यह अहिछत्र चम्पाके उत्तर-पूर्व अवस्थित था । विविधतीर्थकल्पमे अहिछत्रका दूसरा नाम शखवती नगरी आया है । इस प्रकार अहिछत्रके विभिन्न निर्देशोके आधार पर यह निर्णय करना कठिन है कि वाग्भट्ट प्रथमने अपने जन्मसे किस अहिछत्रको सुशोभित किया था । डॉ० जगदीशचन्द्र जैनने अहिछत्रकी अवस्थिति रामनगरमे मानी है ।[5] किन्तु हमे इस सम्बन्धमे ओझाजीका मत अधिक प्रामाणिक प्रतीत होता है और कवि वाग्भट्ट प्रथमका जन्मस्थान नागौर ही जँचता है । कवि दिगम्बर सम्प्रदायका अनुयायी है, यत मल्लिनाथको कुमाररूपमे नमस्कार किया है ।[6]

स्थितिकाल वाग्भट्ट प्रथमने अपने काव्यमे समयके सम्बन्धमे कुछ भी निर्देश नही किया है । अत. अन्तरग प्रमाणोका साक्ष्य ही शेष रह जाता है । वाग्भटालकारके रचयिता वाग्भट्ट द्वितीयने अपने लक्षणग्रथमे 'नेमिनिर्वाण' काव्यके छठे सर्गके "कान्तारभूमौ" (६।४६) "जहुर्वसन्ते" (६।४७) और "नेमिविशालनयनयो" (६।५१) पद्य ४।३५, ४।३९ और ४।३२ मे उद्धृत किये हैं । नेमिनिर्वाणके सातवें सर्गका "वरण· प्रसूनविकरावरणा" २९वाँ पद्य भी वाग्भटालकारके चतुर्थ परिच्छेदके ४०वें पद्यके रूपमे आया है । अत नेमिनिर्वाण-काव्यकी रचना वाग्भटालकारके पूर्व हुई है । वाग्भटालकारके रचयिता वाग्भट्ट द्वितीयका समय जयसिहदेवका राज्यकाल माना जाता है । प्रो० 'बूलर'ने अनहिलवाडके चालुक्य राजवशकी जो वशावली अकित की है उसके

१. जैनहितैषी, भाग ११, अक ७-८, पृ० ४८२ ।
२. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, काशी, भाग २, पृ० ३२९ ।
३. महाभारत, गीताप्रेस, ५।१९।३० ।
४ नायाधम्मकहाओ १५।१५८ ।
५. Life in Ancient India as depicted in the Jain Canons, Bombay, 1947, pp. 264–265
६ नेमिनिर्वाण काव्य १।१९ ।

अनुसार जयसिंहदेवका राज्यकाल ई० सन् १०९३-११४३ ई० सिद्ध होता है। आचार्य हेमचन्द्रके द्वयाश्रय-काव्यसे सिद्ध होता है कि वाग्भट्ट चालुक्यवंशीय कर्णदेवके पुत्र जयसिंहके अमात्य थे। अतएव 'नेमिनिर्वाण'की रचना ई० ११७०के पूर्व होनी चाहिए।

'चन्द्रप्रभचरित', 'धर्मशर्माभ्युदय' और 'नेमिनिर्वाण' इन तीनों काव्योंके तुलनात्मक अध्ययनसे यह ज्ञात होता है कि 'चन्द्रप्रभचरित'का प्रभाव 'धर्मशर्माभ्युदय' पर है और 'नेमिनिर्वाण' इन दोनो काव्योंसे प्रभावित है। धर्मशर्माभ्युदयके "श्रीनाभिसूनोश्चिरमङि्घ्रयुग्मनखेन्दव." (धर्म० १।१) का नेमिनिर्वाणके "श्रीनाभिसूनो पदपद्मयुग्मनखा" (नेमि० १।१) पर स्पष्ट प्रभाव है। इसी प्रकार "चन्द्रप्रभ नौमि यदीयमाला नून" (धर्म० १।२) से "चन्द्रप्रभाय प्रभवे त्रिसन्ध्य तस्मै" (नेमि० १।८) पद्य भी प्रभावित है। अतएव नेमिनिर्वाणका रचनाकाल ई० सन् १०७५-११२५ होना चाहिए।

रचनाएँ

वाग्भट्ट प्रथमका व्यक्तित्व श्रद्धालु और भक्त कविका है। उन्होंने अपने महनीय व्यक्तित्व द्वारा जैनकाव्यको विशेषरूपसे प्रभावित किया है। इनके द्वारा लिखित एक ही रचना उपलब्ध है, वह है "नेमिनिर्वाणकाव्य"। यह महाकाव्य १५ सर्गोंमे विभक्त है और तीर्थंकर नेमिनाथका जीवनचरित अंकित है। चतुर्विंशति तीर्थंकरोके नमस्कारके पश्चात् मूलकथा प्रारम्भ की गई है। कविने नेमिनाथके गर्भ, जन्म, विवाह, तपस्या, ज्ञान और निर्वाण कल्याणकोंका निरूपण सीधे और सरलरूपमे किया है। कथावस्तुका आधार हरिवंशपुराण है। नेमिनाथके जीवनकी दो मर्मस्पर्शी घटनाएँ इस काव्यमे अंकित है। एक घटना राजुल और नेमिका रैवतक पर पारस्परिक दर्शन और दर्शनके फलस्वरूप दोनोके हृदयमे प्रेमाकर्षणकी उत्पत्तिरूपमे है। दूसरी घटना पशुओंका करुण क्रन्दन सुन विलखती राजुल तथा आर्द्रनेत्र हाथजोडे उग्रसेनको छोड़ मानवताकी प्रतिष्ठार्थ वनमे तपश्चरणके लिए जाना है। इन दोनो घटनाओंकी कथावस्तुको पर्याप्त सरस और मार्मिक बनाया है। कविने वसन्तवर्णन, रैवतकवर्णन, जलक्रीड़ा, सूर्योदय, चन्द्रोदय, सुरत, मदिरापान प्रभृति काव्यविषयोका समावेश कथाको सरस बनानेके लिए किया है। कथावस्तुके गठनमे एकान्वितिका सफल निर्वाह हुआ है। पूर्व भवावलिके कथानकको हटा देने पर भी कथावस्तुमे छिन्न-भिन्नता नही आती है। यों तो यह काव्य अलंकृत शैलीका उत्कृष्ट उदाहरण है, पर कथागठनकी अपेक्षा इसमे कुछ शैथिल्य भी पाया जाता है।

कविने इस काव्यमे नगरी, पर्वत, स्त्री-पुरुष, देवमन्दिर, सरोवर आदिका सहज-ग्राह्य चित्रण किया है। रसभाव-योजनाकी दृष्टिसे भी यह काव्य सफल है। शृगार, रौद्र, वीर और शान्त रसोका सुन्दर निरूपण आया है। विरहकी अवस्थामे किये गये शीतलोपचार निरर्थक प्रतीत होते है। एकादश सर्गमे वियोग-शृगारका अद्भुत चित्रण आया है।

अलकारोमे २।४२ मे अनुप्रास, १।९ मे यमक, १।११ मे श्लेष, ३।४० और ३।४१ मे उपमा, ४।५ मे रूपक, १।१८ मे विरोधाभास, १०।१० मे उदाहरण, ८।८० मे सहोक्ति, १।४२ मे परिसख्या और १।४१ मे समासोक्ति प्राप्त हैं।

उपजाति, वसततिलका, मालिनी, रुचिरा, हरिणी, पुष्पिताग्रा, स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, पृथ्वी, रथोद्धता, अनुष्टुप, वशस्थ, द्रुतविलम्बित, आर्या, शशिवदना, वन्धूक, विद्युन्माला, शिखरिणी, प्रमाणिका, हँसरुत, रुक्मवती, मत्ता, मणिरग, इन्द्रवज्रा, भुजगप्रयात, मन्दाक्रान्ता, प्रमिताक्षरा, कुसुमविचित्रा, प्रियम्वदा, शालिनी, मौक्तिकदाम, तामरस, तोटक, चन्द्रिका, मजुभाषिणी, मत्तमयूर, नन्दिनी, अशोकमालिनी, स्रग्विणी, शरमाला, अच्युत, शशिकला, सोमराजि, चण्डवृष्टि, प्रहरणकलिका, नित्यभ्रमरविलासिता, ललिता और उपजाति छन्दोका प्रयोग किया गया है। छन्दशास्त्रकी दृष्टिसे इस काव्यका सप्तम सर्ग विशेष महत्त्वपूर्ण है। जिस छन्दका नामाकन किया है कविने उसी छन्दमे पद्यरचना भी प्रस्तुत की है। कवि कल्पनाका धनी है। सन्ध्याके समय दिशाएँ अन्धकारद्रव्यसे लिप्त हो गई थी और रात्रिमे ज्योत्स्नाने उसे चन्दन-द्रव्यसे चर्चित कर दिया, पर अब नवीन सूर्यकिरणोसे ससार कुकुम द्वारा लीपा जा रहा है।

सन्ध्यागमे तततमोमृगनाभिपङ्कैर्नवत च चन्द्ररुचिचन्दनसचयेन।
यच्चर्चित तदधुना भुवन नवीनभास्वत्करौघघुसृणैरुपलिप्यते स्म ॥३।१५॥
मग्ना तम प्रसरपकनिकायमध्याद् गामुद्धरन्सपदि पर्वततुङ्गशृङ्गाम्।
प्राप्योदय नयति सार्थकता स्वकीयमहसा पति• करसहस्रमसावखिन्न ॥३।१६॥

अन्धकाररूपी कीचड़मे फँसी हुई पृथ्वीका पर्वतरूपी उन्नत शृगोसे उद्धार करते हुए उदयको प्राप्त सूर्यदेवने हजारो किरणोको फैलाकर सार्थक नाम प्राप्त किया है। इस प्रकार काव्य-मूल्योकी दृष्टिसे यह काव्य महत्त्वपूर्ण है। इसका प्रकाशन काव्यमालासिरीजमे ५६ सख्यक ग्रथके रूपमे हुआ है।

चामुण्डराय

चामुण्डराय 'वीरमार्त्तण्ड', 'रणरगसिंह', 'समरधुरन्धर' और 'वैरिकुल-

कालदण्ड' होने पर भी कलाकार एव कलाप्रिय है। बाहुबलिचरितमे इनकी माताका नाम कालिकादेवी बतलाया गया है। इनके पिता तथा पूर्वज गंग-वंशके श्रद्धाभाजन राज्याधिकारी रहे होगे। वे महाराज मारसिंह तथा राज-मल्ल द्वितीयके प्रधानमंत्री थे। इनका वंश ब्रह्मक्षत्रियवंश बताया गया है।[1] चामुण्डरायपुराणसे यह भी अवगत होता है कि इनके गुरुका नाम अजितसेन था। अभिलेखोसे यह भी निर्विवाद ज्ञात होता है कि चामुण्डराय जन्मना जैन थे। नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीने अपने गोम्मटसारमे 'सो अजियसेणणाहो जस्स गुरु'[2] कहकर अजितसेनको उनका दीक्षागुरु बताया है। मन्त्रीवर चामुण्डरायने आचार्य नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीसे भी शिक्षा प्राप्त की थी।

चामुण्डराय अपनी मातृभाषा कन्नडके साथ संस्कृतमे भी पारगत विद्वान् थे। वे इन दोनो भाषाओमे साधिकार कविता एव लेखनकार्य करते थे।

उनकी उपाधियोंके सम्बन्धमे कहा गया है कि खेडगयुद्धमे वज्ज्वलदेवको हरानेसे उन्हे 'समरधुरन्धर'की उपाधि, नोलम्बयुद्धमे गोलूरके मैदानमे उन्होने जो वीरता दिखलाई उसके उपलक्ष्यमे उन्हे 'वीरमार्त्तण्डकी उपाधि', उच्चगीके किलेमे राजादित्यसे वीरतापूर्वक लड़नेके उपलक्ष्यमे 'रणरंगसिंह'की उपाधि, बागेयूरके किलेमे त्रिभुवनवीरको मारने और गोविन्दारको उसमे न घुसने देनेके उपलक्ष्यमे 'वैरिकुलकालदण्ड', राजाकामके किलेमे राजवास सिवर, कुडामिक आदि योद्धाओको हरानेके कारण उन्हें 'भुजविक्रम'की उपाधि; अपने छोटे भाई नागवर्माके घातक मदुराचयको मार डालनेके उपलक्ष्यमे 'समर-परशुराम'की उपाधि एव एक कबोलेके मुखियाको पराजित करनेके उपलक्ष्यमे 'प्रतिपक्षराक्षस'की उपाधि प्राप्त हुई थी।

नैतिक दृष्टिसे 'सम्यक्त्वरत्नाकर', 'शौचाभरण', 'सत्ययुधिष्ठिर' और 'सुभटचूडामणि' उपाधियां प्राप्त थी।

चामुण्डराय गोम्मट, गोम्मटराय, राय और अण्णके नामोसे भी प्रसिद्ध था। संभवत गोम्मट इनका घरेलू नाम था। इसीसे बाहुबलीकी मूर्त्ति गोम्म-टेश्वर कही जाने लगी। विन्ध्यगिरिपर्वतपर इस मूर्त्तिके अतिरिक्त उन्होने एक त्यागद ब्रह्मदेवनामक स्तम्भ भी बनवाया था। इस पर चामुण्डरायकी एक प्रशस्ति भी अंकित है। इन्होने चन्द्रगिरि पर एक मन्दिरका निर्माण कराया, जो चामुण्डरायबसतिके नामसे प्रसिद्ध है। चामुण्डरायपुराण एव अन्य

१ "जगत्पवित्रब्रह्मक्षत्रियवंशमागे", चा० पु०, पृ० ५।

२. गोम्मटसार कर्मकाण्ड, गाथा ९६६।

प्राप्त सामग्रीसे यह भी ज्ञात होता है कि इन्हें एक पुत्र भी था, जिसका नाम जिनदेवन था। उसने बेलगोलामें जिनदेवका एक मन्दिर बनवाया था। चामुण्डरायका परिवार धर्मात्मा और श्रद्धालु था।

स्थितिकाल

चामुण्डरायने अपने 'त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराण'में कुछ प्रमुख आचार्यों और ग्रन्थकारोंका निर्देश किया है तथा कुछ संस्कृत और प्राकृतके पद्य भी उद्धृत किये हैं। गृद्धपिच्छाचार्य, सिद्धसेन, समन्तभद्र, पूज्यपाद, कवि परमेश्वर, वीरसेन, गुणभद्र, धर्मसेन, कुमारसेन, नागसेन, चन्द्रसेन, आर्यनन्दि, अजितसेन, श्रीनन्दि, भूतवलि, पुष्पदन्त, गुणधर, नागहस्ती, यतिवृषभ, उच्चारणाचार्य, माघनन्दि, शामकुण्ड, तेम्बुलूराचार्य, एलाचार्य, शुभनन्दि, रविनन्दि और जिनसेन आचार्योंका उल्लेख चामुण्डरायपुराणमें पाया जाता है। इन उल्लेखोंसे चामुण्डरायके समयपर प्रकाश पड़ता है। चामुण्डरायने अपने महापुराणको शक सं० ९०० (ई० सन् ९७८) में पूर्ण किया है। इन्होंने श्रवणबेलगोलामें बाहुबलि स्वामीकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा ई० सन् ९८१में की है।[1]

ब्रह्मदेवस्तम्भपर ई० सन् ९७४का एक अभिलेख पाया जाता है। गोम्मटेश्वरकी मूर्तिके समीप ही द्वारपालकोंकी बाँयी ओर प्राप्त एक लेखसे, जो ११८० ई० का है, मूर्तिके सम्बन्धमें निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं

भगवान बाहुबलि पुरुके पुत्र थे। उनके बड़े भाई द्वन्द्वयुद्धमें उनसे हार गये। लेकिन भगवान बाहुबलि पृथ्वीका राज्य उन्हें ही सौंपकर तपस्या करने चले गये। और उन्होंने कर्मपर विजय प्राप्त की। पुरुदेवके ज्येष्ठ पुत्र भरतने पोदनपुरमें बाहुबलिकी ५२५ धनुष ऊँची एक मूर्ति बनवाई। कुछ कालोपरान्त उस स्थानमें, जहाँ बाहुबलिकी मूर्ति थी, असंख्य कुक्कुट सर्प उत्पन्न हुए। इसीलिए उस मूर्तिका नाम कुक्कुटेश्वर भी पड़ा। कुछ समय बाद यह स्थान साधारण मनुष्योंके लिए अगम्य हो गया। उस मूर्तिमें अलौकिक शक्ति थी। उसके तेज पूर्ण नखोंको जो मनुष्य देख लेता था वह अपने पूर्व जन्मकी बातें जान जाता था। जब चामुण्डरायने लोगोंसे इस जिनमूर्त्तिके बारेमें सुना, तो उन्हें उसे देखनेकी उत्कट अभिलाषा हुई। जब वे वहाँ जानेको तैयार हुए। तो उनके गुरुओंने उनसे कहा कि वह स्थान बहुत दूर और अगम्य है। इस पर चामुण्डरायने इस वर्त्तमान मूर्त्तिका निर्माण करवाया।

इस अभिलेखसे यह स्पष्ट है कि ई० सन् ११८० के पूर्व चामुण्डरायका

१ जैनसिद्धान्तभास्कर, भाग ६, किरण ४, पृ० २६१।

यश व्याप्त हो चुका था और वे गोम्मटेशमूर्तिके प्रतिष्ठापकके रूपमे मान्य हो चुके थे। अतएव सक्षेपमे चामुण्डरायका समय ई० सन् की दशम शताब्दी है।

रचना

चामुण्डराय सस्कृत और कन्नड़ दोनो ही भाषाओमे कविता लिखते थे। इनके द्वारा रचित चामुण्डरायपुराण और चारित्रसार ये दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं। चामुण्डरायपुराणका अपर नाम त्रिषष्ठिपुराण है। यह ग्रन्थ कन्नडगद्यका सबसे प्रथम ग्रन्थ है। यद्यपि कविपरम्परासे आगत लेखकके प्रसाद और माधुर्यकी झलक इस ग्रन्थमे पर्याप्त है तो भी स्पष्ट है कि यह कृति सर्वसाधारणके उपदेशके लिए लिखी गई है। यद्यपि इसमे पम्पका उपयुक्त शब्द-अर्थ-चयन, रण्णका लालित्य तथा बाणका शब्द-अर्थ-माधुर्य नही है, तो भी इसका अपना सौष्ठव निराला है। इसमे जातक कथाओ-सी झलक मिलती है। यो तो इस ग्रन्थमे ६३ शलाकापुरुषोकी कथा निबद्ध की गई है, पर साथमे आचार और दर्शनके सिद्धान्त भी वर्णित हैं।

चारित्रसार

आचारशास्त्रका सक्षेपमे स्पष्टरूपसे वर्णन इस ग्रन्थमे गद्यरूपमे प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रथका प्रकाशन माणिकचन्द्रग्रथमालाके नवम ग्रन्थके रूपमे हुआ है। आरम्भमे सम्यक्त्व और पचाणुव्रतोका वर्णन है। सकल्पपूर्वक नियम करनेको व्रत कहते हैं। इसमे सभी प्रकारके सावद्योका त्याग किया जाता है। व्रतोको नि शल्य कहा है। लिखा है

'अभिसधिकृतो नियमो व्रतमित्युच्यते, सर्वसावद्यनिवृत्त्यसभवादणुव्रतं द्वीद्रियादीना जगमप्राणिना प्रमत्तयोगेन प्राणव्यपरोपणान्मनोवाक्कायैश्च निवृत्त । अगारीत्याद्यणुव्रतम् ।'

व्रतोके अतिचार, रात्रिभोजनत्याग व्रतका कथन भी अणुव्रतकथनप्रसगमे आया है।

द्वितीय प्रकरणमे सप्तशीलोका कथन आया है। साथ ही उनके अतिचार भी वर्णित है। अनर्थदण्डव्रतका कथन करते हुए अपध्यान, पापोपदेश, प्रमादाचरित, हिंसाप्रदान और अशुभश्रुति ये पाँच उसके भेद कहे हैं। जय, पराजय, वन्ध, वध, अगच्छेद, सर्वस्वहरण आदि किस प्रकार हो सके, इसका मनसे चिन्तन करना अपध्यान है। पापोपदेशके क्लेशवाणिज्य, तिर्यग्वाणिज्य, वधकोपदेश और आरम्भकोपदेश भेद हैं। क्लेशवाणिज्यका कथन करते हुए लिखा है कि दासी-दास आदि जिस देशमे सुलभ हो उनको वहाँसे लाकर अर्थलाभके हेतु वेचना क्लेशवाणिज्य है। गाय-भैंस आदि पशुओको अन्यत्र ले जाकर बेचना तिर्यग्-

वाणिज्य है। पक्षीमार और शिकारियोको किसी प्रदेशविशेषमे रहने वाले पशुपक्षियोकी सूचना देना बधकोपदेश है। अधिक मिट्टी, जल, पवन, वनस्पति आदिके आरम्भका उपदेश देना आरम्भकोपदेश है। अनर्थदण्डव्रतका और भी अधिक विश्लेषण किया है तथा विष, शस्त्र आदिके व्यापारको अनर्थदण्डके अन्तर्गत माना है। इस प्रकार सात शीलोका विस्तारपूर्वक निरूपण किया है। गृहस्थके इज्या, वार्त्ता, दत्ति, स्वाध्याय, सयम, तप इन छः षट्कर्मोका कथन भी आया है। इज्याका अर्थ अर्हत्पूजासे है। इसके नित्यमह, चतुर्मुख, कल्पवृक्ष, अष्टाह्निक और इन्द्रध्वज भेद हैं। वार्त्तासे अर्थ असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प आदि आजीविकावृत्तियोसे है। दत्तिका अर्थ दान है। इसके दयादत्ति, पात्रदत्ति, समदत्ति और सकलदत्ति ये चार भेद है। सात शीलोके पश्चात् मारणान्तिक सल्लेखनाका कथन आया है।

तृतीय प्रकरणमे षोडशभावनाका निरूपण है। दर्शनविशुद्धता, विनय-सम्पन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, सवेग, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, साधुसमाधि, वैयावृत्तिकरण, अर्हद्भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुत-भक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्गप्रभावना और प्रवचनवात्सल्य इन सोलह भावनाओके स्वरूप हैं।

चतुर्थ प्रकरणमे अनगारधर्मका वर्णन है। आरभमे दश धर्मोकी व्याख्या की गयी है। अनन्तर तीन गुप्ति और पाँच समितियोका कथन आया है। संयमी निर्ग्रंथोके पाँच भेद बतलाये हैं पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रंथ और स्नातक। इनके स्वरूप और भेद-प्रभेद भी वर्णित है। परीषहजयप्रकरणमे २२ परिषहोका उल्लेख करनेके अनन्तर किस गुणस्थानवालेको किन परिषहोको सहन करना चाहिए, इसका वर्णन आया है। अन्तिम प्रकरण तप-वर्णनका है। इसी सदर्भमे द्वादश अनुप्रेक्षाओका वर्णन भी आया है। तपका लक्षण बतलाते हुए लिखा है

'रत्नत्रयाविर्भावार्थमिच्छानिरोधस्तप। अथवा कर्मक्षयार्थं मार्गाविरोधेन तप्यत इति तप। तद्द्विविधम्, बाह्यमाभ्यन्तरञ्च। अनशनादिबाह्यद्रव्यापेक्षत्वा-त्परप्रत्ययलक्षणत्वाच्च बाह्य, तत् षड्विध, अनशनावमोदर्यवृत्तिपरिसख्या-नरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशभेदात्। आभ्यन्तरमपि षड्विध, प्राय-श्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानभेदात्।'[1]

इस सदर्भमे उग्र तपश्चरणसे प्राप्त ऋद्धियोका कथन भी आया है। इस

१. चारित्रसार, माणिकचन्द्र-ग्रन्थमाला, पृष्ठ ५९।

प्रकार चामुण्डरायने चारित्रसारग्रंथमे श्रावक और मुनि दोनोंके आचारका वर्णन किया है। चामुण्डरायका सस्कृत और कन्नड गद्यपर अपूर्व अधिकार है। उन्होने ग्रंथान्तरोके पद्य भी प्रमाणके लिये उपस्थित किये हैं।

अजितसेन

अलकारचिन्तामणिनामक ग्रथके रचयिता अजितसेननामके आचार्य हैं। इन्होने इस ग्रथके एक सदर्भमे अपने नामका अकन निम्न प्रकार किया है

'अत्र एकाद्यङ्कक्रमेण पठिते सति अजितसेनेन कृतश्चिन्तामणि '[1]

डॉ० ज्योतिप्रसादजीने[2] अजितसेनका परिचय देते हुए लिखा है कि अजितसेन यतीश्वर दक्षिणदेशान्तर्गत तुलुवप्रदेशके निवासी सेनगण पोरारि-गच्छके मुनि सभवतया पार्श्वसेनकेप्रशिष्य और पद्मसेनके गुरु महासेनके सधर्मा या गुरु थे।

अजितसेनके नामसे शृगारमञ्जरीनामक एक लघुकाय अलकार-शास्त्र-का ग्रथ भी प्राप्त है। इस ग्रन्थमे तीन परिच्छेद हैं। कुछ भडारोकी सूचियोमे यह ग्रथ 'रायभूप'की कृतिके रूपमे उल्लिखित है। किन्तु स्वय ग्रथकी प्रशस्तिसे स्पष्ट है कि इस शृगारमजरीकी रचना आचार्य अजितसेनने शीलविभूषणा रानी विट्ठलदेवीके पुत्र और 'राय' नामसे विख्यात सोमवशी जैन नरेश कामरायके पढनेके लिए सक्षेपमे की है।[3]

एक प्रतिके अन्तमे 'श्रीमदजितसेनाचार्यविरचिते ' तथा दूसरीके अन्तमे 'श्रीसेनगणाग्रगण्यतपोलक्ष्मीविराजितसेनदेवयतीश्वरविरचित.' लिखा है। निःसन्देह विजयवर्णीने राजा कामरायके निमित्त शृगारार्णवचन्द्रिका ग्रथ लिखा है। सोमवशी कदम्बोकी एक शाखा वगवशके नामसे प्रसिद्ध हुई। दक्षिण कन्नड जिले तुलुप्रदेशके अन्तर्गत बंगवाडिपर इस वशका राज्य था। १२वी-१३वी शतीमे तुलुदेशीय जैन राजवशोमे यह वश सर्वमान्य सम्मान प्राप्त किये हुए था। इस वशके एक प्रसिद्ध नरेश वीर नरसिहवगराज (११५७-१२०८ ई०)के पश्चात् चन्द्रशेखरवग और पाण्ड्यवगने क्रमश राज्य किया। तदनन्तर पाण्ड्यवंगकी बहन रानी विट्ठलदेवी (१२३९-४४ ई०) राज्यकी सचा-लिका रही। और सन् १२४५मे इस रानी विट्ठलाम्बाका पुत्र उक्त कामराय प्रथम वंगनरेन्द्र राजा हुआ। विजयवर्णीने उसे गुणार्णव और राजेन्द्रपूजित लिखा है।

१ अलकारचिन्तामणि, शोलापुर सस्करण, पृ० ४४, पक्ति ९।
२. जैन संदेश, शोधाक २, नवम्बर २०, १९५४, पृ० ७९।
३. जैन ग्रथ-प्रशस्ति-संग्रह, भाग १, वीरसेवा मन्दिर, दिल्ली, पृ० ८९-९१।

डॉ० ज्योतिप्रसादजीने ऐतहासिक दृष्टिसे अजितसेनके समयपर विचार किया है। उन्होने अजितसेनको अलकारशास्त्रका वेत्ता, कवि और चिन्तक विद्वान् वतलाया है। इसमे सन्देह नही कि अजितसेन सेनसघके आचार्य थे। शृंगारमञ्जरीके कर्त्ताने भी अपनेको सेनगण-अग्रणी कहा है। अत. इन दोनो ग्रथोके कर्त्ता एक ही अजितसेन प्रतीत होते है।

स्थितिकाल

अजितसेनने अलकारचिन्तामणिमें समन्तभद्र, जिनसेन, हरिचन्द्र, वाग्भट्ट, अर्हद्दास आदि आचार्योके ग्रथोके उदाहरण प्रस्तुत किये है। हरिचन्द्रका समय दशम शती, वाग्भट्टका ११वी शती और अर्हद्दासका १३वी शतीका अन्तिम चरण है। अतएव अजितसेनका समय १३वी शती होना चाहिये। डॉ० ज्योतिप्रसादजीका कथन है कि अजितसेनने ई० सन् १२४५के लगभग शृगारमञ्जरीकी रचना की है, जिसका अध्ययन युवकनरेश कामराय प्रथम वगनरेन्द्रने किया। और उसे अलकारशास्त्रके अध्ययनमे इतना रस आया कि उसने ई० सन् १२५०के लगभग विजयकीर्तिके शिष्य विजयवर्णीसे शृगारार्णवचन्द्रिकाकी रचना कराई। आश्चर्य नही कि उसने अपने आदिविद्यागुरु अजितसेनको भी इसी विषयपर एक अन्य विशद ग्रथ लिखनेकी प्रेरणा की हो और उन्होने अलकारचिन्तामणिके द्वारा शिष्यकी इच्छा पूरी की हो।

अर्हद्दासके मुनिसुव्रतकाव्यका समय लगभग १२४० ई० है और इस काव्य ग्रंथकी रचना महाकवि प० आशाधरके सागारधर्मामृतके वाद हुई है। आशाधरने सागरधर्मामृतको ई० सन् १२२८मे पूर्ण किया है। अतएव अलकारचिन्तामणिका रचनाकाल ई० १२५०–६०के मध्य है।

रचनाएँ

अजितसेनकी दो रचनाएँ 'शृगारमञ्जरी' और 'अलंकारचिन्तामणि' हैं। अलकारचिन्तामणि पाँच परिच्छेदोमे विभाजित है। प्रथम परिच्छेदमे १०६ श्लोक हैं। इसमे कवि-शिक्षापर प्रकाश डाला गया है। कवि-शिक्षाकी दृष्टिसे यह ग्रथ वहुत ही महत्त्वपूर्ण है। महाकाव्यनिर्माताको कितने विषयोका वर्णन किस रूपमे करना चाहिए, इसकी सम्यक् विवेचना की गई है। नदी, वन, पर्वत, सरोवर, आखेट, ऋतु आदिके वर्णनमे किन-किन तथ्योको स्थान देना चाहिए, इसपर प्रकाश डाला गया है। काव्य आरभ करते समय किन शब्दोका प्रयोग करना मगलमय है, इसपर भी विचार किया गया है। यह प्रकरण अलकारशास्त्रकी दृष्टिसे विशेष उपादेय है।

द्वितीय परिच्छेदमें शब्दालंकारके चित्र, वक्रोक्ति, अनुप्रास और यमक ये चार भेद बतलाकर चित्रालंकारका विस्तारपूर्वक निरूपण किया है।

तृतीय परिच्छेदमें वक्रोक्ति, अनुप्रास और यमकका विस्तारसहित निरूपण आया है।

चतुर्थ परिच्छेदमें उपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, स्मृति, रूपक, परिणाम, सन्देह, भ्रान्तिमान्, अपह्नव, उल्लेख, उत्प्रेक्षा, अतिशय, सहोक्ति, विनोक्ति, समासोक्ति, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति, व्याजोक्ति, मीलन सामान्य, तद्गुण, अतद्गुण, विरोध, विशेष, अधिक, विभाव, विशेषोक्ति, असंगति, चित्र, अन्योन्य, तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, श्लेष, परिकर, आक्षेप, व्याजस्तुति, अप्रस्तुतस्तुति, पर्यायोक्ति, प्रतीप, अनुमान, काव्यलिंग, अर्थान्तरन्यास, यथासंख्य, अर्थापत्ति, परिसंख्या, उत्तर, विकल्प, समुच्चय, समाधि, भाविक, प्रेम, रस्य, ऊर्जस्वी, प्रत्यनीक, व्याघात, पर्याय, सूक्ष्म, उदात्त, परिवृत्ति, कारणमाला, एकावली, माला, सार, संसृष्टि और संकर इन ७० अर्थालंकारोंका स्वरूप वर्णित है।

पञ्चम परिच्छेदमें नव रस, चार रीतियाँ, द्राक्षापाक और शय्यापाक शब्दका स्वरूप, शब्दके भेद रूढ, यौगिक और मिश्र, वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्यार्थ, जहत्लक्षणा, अजहत्लक्षणा, सारोपा लक्षणा और साध्यवसाना लक्षणा, कौशिकी, आरभटी, सात्त्वती और भारती वृत्तियाँ, शब्दचित्र, अर्थ-चित्र, व्यंग्यार्थके परिचायक संयोगादि गुण, दोष और अन्तमें नायक-नायिका भेद-प्रभेद विस्तार-पूर्वक निरूपित हैं।

वक्रोक्ति अलंकारका कथन दो संदर्भोंमें आया है तृतीय परिच्छेद और चतुर्थ परिच्छेद। इसमें पुनरुक्तिकी शंका नहीं की जा सकती है, यतः वक्रोक्ति शब्द शक्तिमूलक और अर्थशक्तिमूलक होता है। तृतीय परिच्छेदमें शब्दशक्तिमूलक और चतुर्थ परिच्छेदमें अर्थशक्तिमूलक वक्रोक्ति निरूपित है।

इस अलंकारग्रन्थमें नाटकसम्बन्धी विषय और ध्वनिसम्बन्धी विषयोंको छोड़ शेष सभी अलंकारशास्त्रसम्बन्धी विषयोंका कथन किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है लक्षण और लक्ष्य उदाहरण। लक्षणसम्बन्धी सभी पद्य अजितसेनके द्वारा विरचित हैं और उदाहरणसम्बन्धी श्लोक महापुराण, जिनशतक, धर्मशर्माभ्युदय और मुनिसुव्रतकाव्य आदि ग्रन्थोंसे लिये हैं। इसकी सूचना भी ग्रन्थकारने निम्नलिखित पद्यमें दी है

अत्रोदाहरणं पूर्वपुराणादिसुभाषितम् ।
पुण्यपूरुषसंस्तोत्रपरं स्तोत्रमिद ततः ॥ ५ ॥

अपने मतकी पुष्टिके लिए 'वाग्भटालकार'के लक्षण और उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं। इनका निरूपण 'उक्तच' लिखकर किया है।

शब्दालकारोके वर्णनकी दृष्टिसे यह ग्रंथ अद्वितीय है। विषयोका विशद वर्णन प्रत्येक पाठकको यह अपनी ओर आकृष्ट करता है।

विजयवर्णी

विजयवर्णीने 'शृगारार्णवचन्द्रिका' नामक ग्रथकी रचना कर अलकार-शास्त्रके विकासमे योगदान दिया है। इनके व्यक्तिगत जीवनके सम्बन्धमे कुछ भी जानकारी प्राप्त नही है। ग्रन्थप्रशस्ति और पुष्पिकासे यह ज्ञात होता है कि वे मुनीन्द्र विजयकीर्त्तिके शिष्य थे। एक दिन बातचीतके क्रममे वगवाडीके कामरायने इनसे कविताके विभिन्न पहलुओकी व्याख्या प्रस्तुत करनेका आग्रह किया। राजाकी प्रार्थनापर इन्होने 'अलकारसग्रह' अपरनाम 'शृगारार्णवचन्द्रिका'की रचना की।

इस रचनामे विजयवर्णीने विभिन्न विषयोपर विचार करते हुए अलकार, अलकारोके लक्षण और उदाहरण लिखे हैं। उदाहरणोमे कामरायकी प्रशसा की गयी है। रचनाकी प्रस्तावनामे विजयवर्णीने कर्णाटकके कवियोकी कविताओके सदर्भ दिये हैं। इन सदर्भोके अध्ययनसे इस तथ्यपर पहुँचते हैं कि विजयवर्णीने गुणवर्मन आदि कवियोकी रचनाओका अध्ययन किया था। वे राजा कामरायके व्यक्तिगत सम्पर्कमे थे।

ग्रन्थके आरम्भमे लिखा है

"श्रीमद्विजयकीर्तीन्दो सूक्तिसदोहकौमुदी।
मदीयचित्तसताप हृत्वानन्द दद्यात्परम् ॥१४॥
श्रीमद्विजयकीर्त्याख्यगुरुराजपदाम्बुजम्।
मदीयचित्तकासारे स्थेयात् संशुद्धधीजले ॥१५॥
गुणवर्मादिकर्नाटकवीना सूक्तिसचयः।
वाणीविलास देयात्ते रसिकानन्ददायिनम् ॥१७॥"

विजयवर्णीने अपनी प्रशस्तिमे आश्रयदाता कामरायका निर्देश किया है। इन्हे स्याद्वादधर्ममे चित्त लगानेवाला और सर्वजन-उपकारक बताया है।

ई० सन् ११५७मे वगवाडीपर वीर नरसिह शासन करता था। उसका एक भाई पाण्ड्यराज था। चन्द्रशेखर वीर नरसिहका पुत्र था और यह १२०८

ई० में सिंहासनासीन हुआ था और उसका छोटा भाई पाण्डयप्प ई० सन् १२२४मे राज्यपर अभिषिक्त हुआ था। उनकी बहन विट्ठलदेवी ई० सन् १२३९मे राज्यप्रतिनिधि नियुक्त की गयी। विट्ठलदेवीका पुत्र ही कामराय था, जो ई० सन् १२६४मे राज्यासन हुआ। इतिहास बतलाता है कि सोमवंशी कदम्बोकी एक शाखा बंगवंशके नामसे प्रसिद्ध थी और इस वशका शासन दक्षिण कन्नड जिलेके अन्तर्गत वंगवाडीपर विद्यमान था। वीर नरसिंह वंगराजने ई० सन् ११५७से ई० सन् १२०८ तक शासन किया। इसके पश्चात् चन्द्रशेखरवग और पाण्ड्यवगने ई० सन् १२३९ तक राज्य किया। पाण्ड्यवंगकी बहन रानी विट्ठलदेवी ई० सन् १२३९से ई० सन १२४४ तक राज्यासीन रही। तत्पश्चात् रानी विट्ठलदेवी अथवा विट्ठलाम्बाका पुत्र कामराय वंगनरेन्द्र हुआ। 'विजयवर्णी'ने उसे गुणार्णव और 'राजेन्द्रपूजित' लिखा है। प्रशस्तिमे बताया है

"स्याद्वादधर्मपरमामृतदत्तचित्त
सर्वोपकारिजिननाथपदाब्जभृङ्ग। ।
कादम्बवशजलराशिसुधामयूख:
श्रीरायवंगनृपतिर्जगतीह जीयात् ॥
कीर्तिस्ते विमला सदा वरगुणा वाणी जयश्रीपरा
लक्ष्मी: सर्वहिता सुखं सुरसुखं दानं विधानं महत् ।
ज्ञानं पीनमिद पराक्रमगुणस्तुङ्गो नय कोमलो
रूप कान्ततरं जयन्तनिभ भो श्रीरायभूमीश्वर ॥"[1]

कामरायको वर्णीने पाण्ड्यवगका भागिनेय बताया है

'तस्य श्रीपाण्ड्यवङ्गस्य भागिनेयो गुणार्णव: ।
विट्ठलाम्बामहादेवीपुत्रो राजेन्द्रपूजित: ॥'[2]

विजयवर्णीके समयका निश्चय करनेके लिए 'शृंगारार्णवचन्द्रिका'का प्रतापरुद्रयशोभूषण, शृंगारार्णव और अमृतनन्दिके अलकारसंग्रहके साथ तुलनात्मक अध्ययन करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि 'शृंगारार्णवचन्द्रिका' विषय और प्रतिपादनशैलीकी दृष्टिसे 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' और 'अलकारसंग्रह'से बहुत प्रभावित है। अथवा यह भी समव है कि इन दोनो ग्रंथोको शृंगारार्णवचन्द्रिकाने प्रभावित किया हो। डॉ० पी० वी० काणेने 'प्रतापरुद्रयशोभूषण'का

१ शृंगारार्णवचन्द्रिका, दशम परिच्छेद, पद्यसंख्या १९५ एव १९७।
२. वही, प्रथम परिच्छेद, पद्यसंख्या १६।

रचनाकाल १४वी शती माना है और श्रीबालकृष्णमूर्त्तिने अमृतानन्दिका १३वीं शती निर्धारित किया है। पर सी० कुन्हनराजा अमृतानन्द योगीका समय १४वी शतीका प्रथम अर्द्धांश मानते हैं। इस प्रकार 'शृंगारार्णवचन्द्रिका'का रचनाकाल १३वी शती माना जा सकता है।

वगरायकी जैसी प्रशंसा कविने की है उससे भी यही ध्वनित होता है कि विजयवर्णी वंगनरेश कामरायका समकालीन है। कामरायके आश्रयमे रहकर उनकी प्रार्थनासे ही शृंगारार्णवचन्द्रिकाका प्रणयन किया गया है।

रचना

विजयवर्णीकी शृंगारार्णवचन्द्रिका नामक एक ही रचना प्राप्त होती है। विजयवर्णीने पूर्वशास्त्रोका आश्रय ग्रहण कर ही इस अलकारग्रन्थको लिखा है। उन्होने व्याख्यात्मक एव परिचयात्मक पद्यपंक्तियाँ मौलिकरूपमे लिखी हैं। विषयके अध्ययनसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि कविने परम्परासे प्राप्त अलकारसम्बन्धी विषयोको ग्रहण कर इस शास्त्रकी रचना की है। कविकी काव्यप्रतिभा सामान्य प्रतीत होती है। वह स्थान-स्थानपर यतिभग दोष करता चला गया है। यद्यपि विषयवस्तुकी अपेक्षा यह ग्रथ साहित्यदर्पणादि ग्रन्थोकी अपेक्षा सरल और सरस है तो भी पूर्व कवियोका ऋण इसपर स्पष्टत. झलकता है।

शृंगारार्णवचन्द्रिका दश परिच्छेदोमे विभक्त है

१ वर्णगणफलनिर्णय, २ काव्यगतशब्दार्थनिर्णय, ३. रसभावनिर्णय- ४ नायकभेदनिर्णय, ५ दसगुणनिर्णय, ६ रीतिनिर्णय, ७. वृत्तिनिर्णय, ८. शय्याभागनिर्णय, ९ अलकारनिर्णय और १०. दोषगुणनिर्णय।

प्रथम परिच्छेदमे मगलपद्यके पश्चात् कदम्बवशका सामान्य परिचय दिया गया है और बताया गया है कि कामरायकी प्रार्थनासे विजयवर्णीने अलकार-शास्त्रका निरूपण किया। काव्यकी परिभाषाके पश्चात् पद्य, गद्य और मिश्र ये तीनो काव्यके भेद वर्णित हैं। इस अध्यायका नाम वर्णगणफलनिर्णय है। अत. नामानुसार वर्ण और गणका फल बतलाया गया है। किस वर्णसे काव्य आरम्भ होनेपर सुखप्रद होता है और किस वर्णसे काव्य आरम्भ होनेपर दुःखप्रद होता है, इसका कथन आया है। लिखा है

अकारादिक्षकारान्ता वर्णास्तेषु शुभावहा.।
केचित् केचिदनिष्टाख्य वितरन्ति फल नृणाम्॥
ददात्यवर्ण· सप्रीतिमिवर्णो मुदमुद्वहेत्।
कुर्यादुवर्णो द्रविण ततः स्वरचतुष्टयम्॥

अपख्यातिफलं दद्यादेच सुखफलावहा. ।
ङञविन्दुविसर्गास्तु पदादौ सभवन्ति नो ॥
कखगघाञ्च लक्ष्मी ते वितरन्ति फलोत्तमाम् ।
दत्ते चकारोऽपख्यातिं छकार प्रीतिसौख्यद. ॥
मित्रलाभं जकारोऽय विधत्ते भीमृतिद्वयम् ।
झ करोति टठौ खेददुःखे द्वे कुरुत क्रमात् ॥

अर्थात् अकारसे छकार पर्यन्त सभी वर्ण शुभप्रद हैं; पर बीच-बीचमे कुछ वर्ण अनिष्टफलप्रद भी बताये गये हैं। अवर्णसे काव्यारम्भ करनेपर प्रीति यवर्णसे काव्य आरम्भ करनेपर आनन्द और उवर्णसे काव्यारम्भ करने पर धनकी प्राप्ति होती है। ऐच्, ए, ऐ, ओ, औ वर्णोसे काव्यारम्भ करनेपर सुख फल प्राप्त होता है और ऋॡ ॠॡ वर्णोसे काव्यारम्भ करनेपर अपकीत्ति होती है। ङ, ञ, और पदादिमे नही रहते हैं। क ख ग घ वर्णोसे काव्यारम्भ करनेपर उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। चकारसे काव्यारम्भ करनेपर अपकीत्ति, छकारसे काव्यारम्भ करनेपर प्रीति-सौख्य, जकारसे काव्यारम्भ करनेपर मित्रलाभ, झकारसे काव्यारम्भ करनेपर भय और टकार-ठकारसे काव्यारम्भ करनेपर खेद और दुख प्राप्त होते हैं। डकारसे काव्यारम्भ करनेपर शोभाकर, ढकारसे काव्यारम्भ करनेपर अशोभाकर णकारसे काव्यारम्भ करनेपर भ्रमण और तकारसे काव्यारम्भ करनेपर सुख होता है। इस प्रकार वर्ण और गणोका फल बताया गया है।

द्वितीय परिच्छेदने काव्यगत शब्दार्थका निश्चय किया है। इसमे ४२ पद्य हैं। मुख्य और गौण अर्थोके प्रतिपादनके पश्चात् शब्दके भेद बतलाये गये हैं।

तृतीय परिच्छेदमे रसभावका निश्चय किया गया है। आरम्भमे ही बताया है कि निर्दोष वर्ण और गणसे युक्त रहनेपर भी निर्मलार्थ तथा शब्दसहित काव्य नीरस होनेपर उसी प्रकार रुचिकर नही होता जिस प्रकार विना लवणका व्यञ्जन। पश्चात् विजयवर्णीने स्थायीभावका स्वरूप, भेद एवं रसोका निरूपण किया है। लिखा है

'निरवद्यवर्णगणयुतमपि काव्य निर्मलार्थ शब्दयुतम् ।
निर्लवणशाकमिव तन्न रोचते नीरस सता मानसे ॥३।१॥'

सात्त्विकभावका विश्लेषण भी उदाहरण सहित किया गया है। रसोके सोदाहरणस्वरूप निरूपणके पश्चात् रसोके विरोधी रसोका भी कथन किया है।

चतुर्थ परिच्छेद नायकभेदनिश्चयका है। नायकमे जनानुराग, प्रियंवद,

वाग्मित्व, शौच, विनय, स्मृति, कुलीनता, स्थिरता, दृढता, माधुर्य, शौर्य, नवयौवन, उत्साह, दक्षता, बुद्धि, त्याग, तेज, कला, धर्मशास्त्रज्ञता और प्रज्ञा ये नायकके गुण माने गये हैं। नायकके चार भेद हैं धीरोदात्त, धीरललित, धीरशान्त और धीरोद्धत। क्षमा, सामर्थ्य, गाम्भीर्य, दया, आत्मश्लाघाशून्य आदि गुण धीरोदात्त नायकके माने गये हैं। इस प्रकार नायक, प्रतिनायक आदिके स्वरूप, भेद और उदाहरण वर्णित हैं।

पाँचवे परिच्छेदमे दस गुणोका कथन आया है। षष्ठ परिच्छेदमे रीतिका स्वरूप और भेद, सप्तममे वृत्तिका भेद और स्वरूप बताया गया है। कैशिकी, आर्यभटी, भारती और सात्वती इन चारो वृत्तियोका उदाहरणसहित निरूपण आया है।

अष्टम परिच्छेदमे शय्यापाक और द्राक्षापाकके लक्षण आये हैं। नवम परिच्छेदमे अलकारोका निर्णय किया गया है। उपमाके विपर्यासोपमा, मोहोपमा, संशयोपमा, निर्णयोपमा, श्लेषोपमा, सन्तानोपमा, निन्दोपमा, आचिख्यासोपमा, विरोधोपमा, प्रतिशेधोपमा, चटूपमा, तत्त्वाख्यानोपमा, असाधारणोपमा, अभूतोपमा, असभावितोपमा, बहूपमा, विक्रियोपमा, मालोपमा, वाक्यार्थोपमा, प्रतिवस्तूपमा, तुल्ययोगोपमा, हेतूपमा, आदि उपमाके भेदोका सोदाहरण स्वरूप बतलाया है। रूपक अलंकारके प्रसगमे समस्तरूपक, व्यस्तरूपक, समस्तव्यस्तरूपक, सकलरूपक, अवयवरूपक, अयुक्तरूपक, विषमरूपक, विरुद्धरूपक, हेतुरूपक, उपमारूपक, व्यतिरेकरूपक, क्षेपरूपक, समाधानरूपक, रूपकरूपक, अपह्नुतिरूपक आदि भेदोका विवेचन किया है। वृत्तिअलकारके अन्तर्गत उसके भेद-प्रभेद भी वर्णित हैं। दीपक, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, आक्षेप, उदात्त, प्रेय, ऊर्जस्व, विशेषोक्ति, तुल्ययोगिता, श्लेष, निदर्शना, व्याजस्तुति, आशी, अवसरसार, भ्रान्तिमान्, सशय, एकावली, परिकर, परिसख्या, प्रश्नोत्तर, संकर, आदि अलंकारोके भेद-प्रभेदो सहित लक्षण व उदाहरणोका विवेचन किया है।

दशम परिच्छेदमें दोष और गुणोका विवेचन किया है। यह परिच्छेद काव्यके दोष और गुणोको अवगत करनेके लिए विशेष उपयोगी है। इस प्रकार इस ग्रंथमे अलकारशास्त्रका निरूपण विस्तारपूर्वक किया गया है। आचार्य विजयवर्णीने सरस शैलीमे अलकार-विषयका समावेश किया है।

अभिनव वाग्भट्ट

अलंकारशास्त्रके रचयिताओमे वाग्भट्टका महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये व्याकरण, छन्द, अलकार, काव्य, नाटक, चम्पू आदि विधाओके मर्मज्ञ विद्वान थे।

इनके पिताका नाम नेमिकुमार था। नेमिकुमारने राहडपुरमे भगवान नेमिनाथ-का और नलोटपुरमे २२ देवकुलकाओ सहित आदिनाथका विशाल मदिर निर्मित किया था। काव्यानुशासनमे लिखा है

नाभेयचैत्यसदने दिशि दक्षिणस्या। द्राविंशतिर्विदधता जिनमन्दिराणि।
मन्ये निजाग्रवरप्रभुराहडस्य। पूर्णीकृतो जगति येन यश. शशाकः ॥

काव्यानुशासन पृ० ३४

नेमिकुमारके पिताका नाम मक्कलप और माताका नाम महादेवी था। इनके राहड और नेमिकुमार दो पुत्र थे, जिनमे नेमिकुमार लघु और राहड ज्येष्ठ थे। नेमिकुमार अपने ज्येष्ठ भ्राता राहडके परम भक्त थे और उन्हे श्रद्धा और प्रेमकी दृष्टिसे देखते थे।

कवि वाग्भट्ट भक्तिरसके अद्वितीय प्रेमी थे। उन्होने अपने अराध्यके चरणो-मे निवेदन करते हुए वताया है कि मैं न मुक्तिकी कामना करता हूँ और न धनवैभवकी। मै तो निरन्तर प्रभुके चरणोका अनुराग चाहता हूँ

नो मुक्त्यै स्पृहयामि विभवै कार्यं न सांसारिकै.,
किंत्वायोज्य करौ पुनरिद त्वामीशमभ्यर्चये।
स्वप्ने जागरणे स्थितौ विचलने दु खे सुखे मदिरे,
कान्तारे निशि वासरे च सतत भक्तिर्ममास्तु त्वयि।

अर्थात् हे नाथ मैं मुक्तिपुरीकी कामना नही करता और न सासारिक कार्योकी पूर्त्तिके लिए धन-सम्पत्तिकी ही आकाक्षा करता हूँ; किन्तु हे स्वामिन् हाथ जोड़ मेरी यही प्रार्थना है कि स्वप्नमे, जागरणमे, स्थितिमे, चलनेमें, सुख-दु.खमे, मन्दिरमे, वन, पर्वत्त आदिमे, रात्रि और दिनमे आपकी ही भक्ति प्राप्त होती रहे। मैं आपके चरणकमलोका सदा भ्रमर बना रहूँ।

कवि वाग्भट्टने अपने ग्रथोमे अपने सम्प्रदायका उल्लेख नही किया है, पर काव्यानुशासनकी वृत्तिके अध्ययनसे उनका दिगम्बर सम्प्रदायका अनुयायी होना सूचित होता है। उन्होने समन्तभद्रके वृहत्स्वयभूस्तोत्रके द्वितीय पद्यको "प्रजा-पतिर्यः प्रथमं जिजीविषु." आदि "आगमआप्तवचनं यथा" वाक्यके साथ उद्धृत किया है। इसी प्रकार पृष्ठ ५५पर यह ६५वाँ पद्य भी उद्धृत है

नयास्तवस्यात्पदसत्यलाछिता रसोपविद्धा इव लोहधातव.।
भवन्त्यभि प्रेतगुणा यतस्ततो भवन्तमार्याः प्रणता हितैषिण.॥

इसी प्रकार पृष्ठ १५५पर आचार्य वीरनन्दीके मगल-पद्यको उद्धृत किया है। पृष्ठ १६५पर नेमिनिर्वाण काव्यका निम्नलिखित पद्य उद्धृत है

गुणप्रतीतिं सुजनाज्जनस्य दोषेष्ववज्ञा खलजल्पितेषु ।
अतो ध्रुवं नेह मम प्रबन्धे प्रभूतदोषेऽप्ययशोवकाश. ॥१।२७

इन उद्धरणोसे यह स्पष्ट है कि वे दिगम्बर सम्प्रदायके कवि हैं। इस ग्रन्थमे 'चन्द्रप्रभ' और 'नेमिनिर्वाण'के अतिरिक्त धनञ्जयकी नाममाला और राजीमतिपरित्यागके भी उद्धरण मिलते हैं ।

स्थितिकाल

काव्यानुशासन और छन्दोनुशासनके रचयिता वाग्भट्टका समय आशाधरके पश्चात् होना चाहिए। कविने नेमिनिर्वाणके साथ राजीमतिपरित्याग या राजीमतिविप्रलंभके उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। काव्यानुशासनमे आये हुए निम्नलिखित उद्धरणसे भी वाग्भट्टके समयपर प्रकाश पड़ता है

"इति दण्डिवामनवाग्भटादिप्रणीता दशकाव्यगुणा.। वय तु माधुर्यौजप्रसादलक्षणास्त्रीनेव गुणा मन्यामहे, शेषास्तेष्वेवान्तर्भवन्ति। तद्यथा माधुर्ये कान्ति. सौकुमार्यं च, ओजसि श्लेष' समाधिरुदारता च। प्रसादेऽर्थव्यक्ति. समता चान्तर्भवति।"[1]

इस अवतरणमे दण्डी, वामन और वाग्भट्टकी मान्यताओका कथन आया है। वाग्भट्टने वाग्भटालकारकी रचना जयसिहके राज्यकालमे अर्थात् वि० स० की १२वी शताब्दिमें की है। अतएव काव्यानुशासनके रचयिता वाग्भट्टका समय १२वी शताब्दिके पश्चात् होना चाहिए। आशाधरके 'राजीमतिविप्रलभ' या 'राजीमतिपरित्याग' काव्यके उद्धरण आनेसे इन वाग्भट्टका समय आशाधरके पश्चात् अर्थात् वि० की १४वी शतीका मध्यभाग होना चाहिए।

रचनाएँ

वाग्भट्ट केवल अलकार या छन्द शास्त्रके ही ज्ञाता नही हैं, अपितु उनके द्वारा प्रबन्धकाव्य, नाटक और महाकाव्य भी लिखे गये हैं। काव्यानुशासनकी वृत्तिमे लिखा है

"विनिर्मितानेकनव्यनाटकच्छन्दोऽलकारमहाकाव्यप्रमुखमहाप्रबन्धबन्धुरोऽपारतारशास्त्रसागरसमुत्तरणतीर्थायमानशेमुषी 'महाकविश्रीवाग्भटो ।"

इस अवतरणसे स्पष्ट है कि वाग्भट्टने अनेक ग्रन्थोकी रचना की है, पर अभी तक उनके दो ही ग्रन्थ उपलब्ध हैं छन्दोनुशासन और काव्यानुशासन। छन्दोनुशासनकी पाण्डुलिपि पाटणके श्वेताम्बरीय ज्ञानभण्डारमे विद्यमान है।

१. काव्यानुशासन २।३१।

इसकी ताड़पत्रसंख्या ४२ और श्लोकसंख्या ५४० है। इसपर स्वोपज्ञवृत्ति भी पायी जाती है। मंगलपद्यमे कविने बताया है

> विभु नाभेयमानम्य छन्दसामनुशासनम्।
> श्रीमन्नेमिकुमारस्यात्मजोऽहं वच्मि वाग्भट ॥

यह छन्दग्रन्थ पाँच अध्यायोमे विभक्त है १. संज्ञा, २ समवृत्ताख्य, ३ अर्द्धसमवृत्ताख्य, ४ मात्रासमक और ५ मात्राछन्दक।

काव्यानुशासनके समान इस ग्रंथमे दिये गये उदाहरणोमे राहड और नेमिकुमारकी कीर्तिका खुला गान किया गया है। छन्दशास्त्रकी दृष्टिसे यह ग्रन्थ उपयोगी मालूम पडता है।

काव्यानुशासन

यह रचना निर्णयसागर प्रेस बम्बईसे छप चुकी है। रस, अलंकार, गुण, छन्द और दोष आदिका कथन आया है। उदाहरणोमे कविने बहुत ही सुन्दर-सुन्दर पद्योको प्रस्तुत किया है। यथा

> कोऽयं नाथ जिनो भवेत्तव वशी हु हु प्रतापी प्रिये
> हु हु तर्हि विमुञ्च कातरमते शौर्यावलेपक्रिया।
> मोहोऽनेन विनिर्जित प्रभुरसौ तत्किङ्करा के वयं
> इत्येव रतिकामजल्पविषय सोऽयं जिनः पातु व. ॥

अर्थात् एक समय कामदेव और रति जगलमे विहार कर रहे थे कि अचानक उनकी दृष्टि ध्यानस्थ जिनेन्द्रपर पड़ी। जिनेन्द्रके सुभग शरीरको देखकर उनमे जो मनोरजक सवाद हुआ उसीका अकन उपर्युक्त पद्यमे किया गया है। जिनेन्द्रको मेरुवत् निश्चल ध्यानस्थ देखकर रति कामदेवसे पूछती है कि हे नाथ, यह कौन है? कामदेव उत्तर देता है यह जिन है रागद्वेष आदि कर्म-शत्रुओको जीतने वाले। पुन रति पूछती है कि ये तुम्हारे वशमे हुए हैं? कामदेव उत्तर देता है प्रिये वे मेरे वशमे नही हुए, क्योकि प्रतापी हैं। पुन. रति कहती है कि यदि तुम्हारे वशमे ये नही हैं तब तुम्हारा त्रैलोक्य-विजयी होनेका अभिमान व्यर्थ है। कामदेव रतिसे पुन कहता है कि इन जिनेन्द्रने हमारे प्रभु मोहराजको जीत लिया है। अतएव जिनेन्द्रको वश करनेकी मेरी शक्ति नही।

इसी प्रकार कारणमालालंकारके उदाहरणमे दिया गया पद्य भी बहुत सुन्दर है

जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणं, गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते ।
गुणप्रकर्षेण जनोऽनुरज्यते, जनानुरागप्रभवा हि सम्पद ॥

इस प्रकार यह काव्यानुशासन काव्यशास्त्रकी शिक्षा देता है। इसमें अलकारोंके साथ गुणदोष और रीतियोका भी कथन आया है।

'अष्टांगहृदय'के कर्त्ता वाग्भट्ट जैनेतर मालूम पड़ते हैं।

महाकवि आशाधर

आशाधरका अध्ययन बडा ही विशाल था। वे जैनाचार, अध्यात्म, दर्शन, काव्य, साहित्य, कोष, राजनीति, कामशास्त्र, आयुर्वेद आदि सभी विषयोके प्रकाण्ड पण्डित थे। दिगम्बर परम्परामे उन जैसा बहुश्रुत गृहस्थ-विद्वान् ग्रन्थकार दूसरा दिखलाई नही पड़ता।

आशाधर माण्डलगढ (मेवाड) के मूलनिवासी थे। किन्तु मेवाड पर मुसलमान बादशाह शहाबुद्दीन गोरीके आक्रमणोके होनेसे त्रस्त होकर मालवाकी राजधानी धारा नगरीमे अपने परिवार सहित आकर बस गये थे। पं० आशाधर बघेरवाल जातिके श्रावक थे। इनके पिताका नाम सल्लक्षण एवं माताका नाम श्रीरत्नी था। सरस्वती इनकी पत्नी थी, जो बहुत सुशील और सुशिक्षिता थी। इनके एक पुत्र भी था, जिसका नाम छाहड था। सागारधर्मामृतके अन्तमे इन्होने अपना परिचय देते हुए लिखा है

व्याघ्रेरवालवरवंशसरोजहस:
काव्यामृतौघरसपानसुतृप्तगात्र ।
सल्लक्षणस्य तनयो नयविश्वचक्षु-
राशाधरो विजयता कलिकालिदास ॥

आशाधरजीने अपने सुयोग्य पुत्रकी स्वय प्रशसा की है। कहा जाता है कि इनके पिता अपनी योग्यताके कारण मालवानरेश अर्जुन वर्मदेवके सन्धिविग्रह मन्त्री थे। आशाधरजीने धारा नगरीमे व्याकरण और न्यायशास्त्रका अध्ययन किया था। इनके विद्यागुरु प्रसिद्ध विद्वान् प० महावीर थे।

विन्ध्यवर्माका राज्य समाप्त होनेपर आशाधर नालछा-नलकच्छपुरमे रहने लगे थे। उस समय नलकच्छपुरके राजा अर्जुन वर्मदेव थे। उनके राज्यमे इन्होने अपने जीवनके ३५ वर्ष व्यतीत किये और वहाँके अत्यन्त सुन्दर नेमिचैत्यालयमे ये जैन साहित्यकी उपासना करते रहे।

आशाधरके पाण्डित्यकी प्रशंसा उस समयके सभी भट्टारक विद्वानोंने की है। उदयसेनने आपको "नयविश्वचक्षु" तथा 'कलि-कालिदास' कहा है। मदनकीर्त्ति यतिपतिने 'प्रज्ञापुञ्ज'[1] कहकर आशाधरकी प्रशंसा की है। स्वयं गृहस्थ रहनेपर भी बड़े-बडे मुनि और भट्टारकोंने इनका शिष्यत्व स्वीकार किया है।

जैनधर्मके अतिरिक्त अन्य मतवाले विद्वान् भी आपकी विद्वत्तापर मुग्ध थे। मालवानरेश अर्जुनदेव स्वय विद्वान् और कवि थे। अमरुकशतककी रस-सञ्जीवनी नामकी एक संस्कृतटीका काव्यमालामे प्रकाशित हुई है। इस टीकामे 'यदुक्तमुपाध्यायेन बालसरस्वत्यपरनाम्ना मदनेन' इस प्रकार लिखकर मदनोपाध्यायके श्लोक उदाहरणस्वरूप उद्धृत किये हैं और भव्यकुमुदचन्द्रिका टीकाकी प्रशस्तिके नवम श्लोकके अन्तिम पादकी टीकामे प० आशाधरने 'आपु. प्राप्ता बालसरस्वतिमहाकविमदनादय.' लिखा है। इससे स्पष्ट है कि अमरुकशतकमे उद्धृत उदाहरणस्वरूप श्लोक आशाधरके शिष्य महाकवि मदनके हैं। इसके अतिरिक्त प्राचीन लेखमालामे अर्जुन वर्मदेवका तीसरा दानपत्र प्रकाशित हुआ, जिसके अन्तमे 'रचितमिद राजगुरुणा मदनेन' लिखा है। अत यह स्पष्ट है कि आशाधरके शिष्य मदनोपाध्याय, जिनका दूसरा नाम बालसरस्वती था, मालवाधीश महाराज अर्जुनदेवके गुरु थे।

अमरुकशतककी टीकामे आये हुए पद्योसे यह भी ज्ञात होता है कि मदनोपाध्यायका कोई अलकारग्रन्थ भी था, जो अभी तक अप्राप्त है।

मदनकीर्त्तिके सिवा आशाधरके अनेक मुनि शिष्य थे। व्याकरण, काव्य, न्याय, धर्मशास्त्र आदि विषयोमे उनकी असाधारण गति थी। बताया है

यो द्राग्व्याकरणाब्धिपारमनयच्छुश्रूषमाणान्न कान्
षट्तर्कीपरमास्त्रमाप्य न यत. प्रत्यर्थिन केऽक्षिपन्।
चेरु. केऽस्खलित न येन जिनवाग्दीपं पथि ग्राहिताः
पीत्वा काव्यसुधा यतश्च रसिकेष्वापुः प्रतिष्ठा न के॥ ९॥

अर्थात् शुश्रूषा करनेवाले शिष्योमेसे ऐसे कौन हैं, जिन्हे आशाधरने व्याकरणरूपी समुद्रके पार शीघ्र ही न पहुँचा दिया हो तथा ऐसे कौन हैं, जिन्होने आशाधरके षट्दर्शनरूपी परमशस्त्रको लेकर अपने प्रतिवादियोके न जीता हो, तथा ऐसे कौन हैं जो आशाधरसे निर्मल जिनवाणीरूपी दीपक ग्रहण करके

१ इत्युदयसेनमुनिना कविसुहृदा योऽभिनन्दित प्रीत्या।
प्रज्ञापुञ्जोसीति च योऽभिहितो मदनकीर्तियतिपतिना॥

मोक्षमार्गमें प्रवृद्ध न हुए हों और ऐसे कौन शिष्य हैं जिन्होने आशाधरसे काव्यामृतका पान करके रसिकपुरुषोमे प्रतिष्ठा न प्राप्त की हो ?

आशाधरने अपने अन्य दो शिष्योके नाम भी दिये हैं वादीन्द्र विशालकीर्त्ति और भट्टारक देवचन्द्र। विशालकीर्त्तिको षड्दर्शनन्यायकी शिक्षा दी थी और देवचन्द्रको धर्मशास्त्रकी। मदनोपाध्यायको काव्यका पण्डित बनाकर अर्जुनवर्मदेव जैसे रसिक राजाका राजगुरु बनाया था। इससे स्पष्ट हैं कि आशाधर महान् विद्वान् थे और इनके अनेक शिष्य थे।

धारा नगरीसे दस कोसकी दूरीपर नलकच्छपुर स्थित था। यहाँ आकर आशाधरने सरस्वतीकी साधना विशेपरूपसे की।

आशाधरका व्यक्तित्व बहुमुखी था। वे अनेक विषयोके विद्वान् होनेके साथ असाधारण कवि थे। उन्होने अष्टागहृदय जैसे महत्त्वपूर्ण आयुर्वेद ग्रन्थपर टीका लिखी। काव्यालकार और अमरकोशकी टीकाएँ भी उनकी विद्वत्ताकी परिचायक हैं। आशाधर श्रद्धालु भक्त थे। उनके अनेक मित्र और प्रशसक थे। उनका व्यक्तित्व इतना सरल और सहज था, जिससे मुनि और भट्टारक भी उनका शिष्यत्व स्वीकार करनेमे गौरवका अनुभव करते थे। उनकी लोकप्रियताकी सूचना उनकी उपाधियाँ ही दे रही हैं।

स्थितिकाल

महाकवि आशाधरने अपने ग्रन्थोमे रचना-तिथिका उल्लेख किया है। उन्होने अनगारधर्मामृतकी भव्यकुमुदचन्द्रिका टीका कार्त्तिक शुक्ला पचमी सोमवार वि० स० १३०० को पूर्ण की थी। इस समय इनकी आयु ६५-७० वर्षकी रही होगी। इस प्रकार उनका जन्म वि० स० १२३०-३५ के लगभग आता है। प० आशाधरके तीन ग्रन्थ मुख्य हैं और सर्वत्र पाये जाते हैं। जिनयज्ञकल्प, सागारधर्मामृत और अनगारधर्मामृत। जिनयज्ञकल्पकी प्रशस्तिमे कई ग्रन्थोके नाम आये हैं

स्याद्वादविद्याविशदप्रसाद प्रमेयरत्नाकरनामधेय. ।
तर्कप्रबन्धो निरवद्यपद्यपीयूषपूरो वहतिस्म यस्मात् ॥१०॥
सिद्धयङ्कं भरतेश्वराभ्युदयसत्काव्य निबन्धोज्ज्वलम्
यस्त्रैविद्यकवीन्द्रमोदनसह स्वश्रेयसेऽरीरचत् ।
योऽर्हद्वाक्यरस निबन्धरुचिर शास्त्र च धर्मामृतम्
निर्माय न्यदधान्मुमुक्षुविदुषामानन्दसान्द्र हृदि ॥११॥
आयुर्वेदविदामिष्टा व्यक्तु वाग्भटसहिताम् ।
अष्टाङ्गहृदयोद्योत निबन्धमसृजञ्च य ॥१२॥

अर्थात् स्याद्वादविद्याका निर्मल प्रसादस्वरूप प्रमेयरत्नाकरनामका न्याय-ग्रन्थ, जो सुन्दर पद्यरूपी अमृतसे भरा हुआ है, आशाधरके हृदय-सरोवरसे प्रवाहित हुआ। भरतेश्वराभ्युदयनामक उत्तम काव्य अपने कल्याणके लिये बनाया, जिसके प्रत्येक सर्गके अन्तमे 'सिद्ध' शब्द आया है, जो तीनों विद्याओंके जानकार कवीन्द्रोको आनन्द देनेवाला है और स्वोपज्ञटीकामे प्रकाशित है। इनके अतिरिक्त 'धर्मामृत' शास्त्र, वाग्भट्टसंहिताकी अष्टांगहृदयोद्योतिनी टीका रची। मूलाराधना और इष्टोपदेशपर भी टीकाएँ लिखी। अमरकोशपर क्रियाकलापनामक टीका बनायी। आराधनासार और भूपालचतुर्विशतिका आदि की टीकाएँ भी लिखी। वि० स० १२८५ के पूर्व रचे हुए ग्रन्थोकी तालिका जिनयज्ञकल्पकी प्रशस्तिमे पाई जाती है। इसके पश्चात् वि० स० १२८६ से १२९६ तकके मध्यमे रचे गये ग्रन्थोका उल्लेख सागारधर्मामृतकी टीकामे पाया जाता है। १२९६ के अनन्तर जो ग्रन्थ रचे, उनका निर्देश अनागारधर्मामृत-टीकामे पाया जाता है। इस टीकामे राजीमतिविप्रलम्भनामक खण्डकाव्य, अध्यात्मरहस्य और रत्नत्रयविधान इन तीन ग्रन्थोका निर्देश मिलता है।

आशाधरके समयकी पुष्टि अर्जुनवर्मदेवके दानपत्रोसे भी होती है। अर्जुनवर्मदेवके तीन दानमात्र प्राप्त हुए हैं १ वि० स० १२६७ का, २. वि० स० १२७० का, ३. वि० स० १२७२ का। इसके पश्चात् अर्जुनदेवके पुत्र देवपालदेवके राज्यत्वकालका एक अभिलेख हरसोदामे मिला है, जो वि० स० १२७५ का है। इससे ज्ञात होता है कि १२७२ और १२७५ के बीचमे अर्जुनदेवके राज्यका अन्त हो चुका था। अर्जुनदेवके राज्यका प्रारम्भ वि० स० १२६७ के कुछ पहले हुआ है। वि० स० १२५० मे जब आशाधर धारामे आये थे तब विन्ध्यवर्माका राज्य था, क्योकि विन्ध्यवर्माके मन्त्री विद्यापति विल्हणने आशाधरकी विद्वत्ताकी प्रशसा की है। यदि आशाधरके विद्याभ्यासकाल ७-८ वर्ष माना जाय, तो विन्ध्यवर्माका राज्य वि० स० १२५७-५८ तक रहता है। विन्ध्यवर्माके पश्चात् सुभटवर्माका राज्यकाल ७-८ वर्ष माना जाय, तो अर्जुनदेवके राज्यकालका समय वि० स० १२६५ आता है। इसी समयके लगभग आशाधर नलकच्छमे आये होगे।

पिप्पलियाके अर्जुनदेवके दानपत्रमे[1] उनकी कुलपरम्परा निम्न प्रकार आई है

१ बगाल एशियाटिक सोसाइटीका जर्नल, जिल्द ५, पृ० ३७८ तथा भाग ७, पृ० २५ और ३२।

भोज उदयादित्य नरवर्मा, यशोवर्मा, अजयवर्मा, विन्ध्यवर्मा या विजयवर्मा, सुभटवर्मा और अर्जुनवर्मा। अर्जुनवर्माके कोई पुत्र नही था। इसलिये उसके पीछे अजयवर्माके भाई लक्ष्मीवर्माका पौत्र देवपाल और देवपालके पश्चात् उसका पुत्र जयतुगिदेव (जयसिंह) राजा हुआ।

आशाधर जिस समय धारामे आये उस समय विन्ध्यवर्माका राज्य था और वि० स० १२९६ मे जब उन्होने सागारधर्मामृतकी टीका लिखी तब जयतुगिदेव राजा थे। इस प्रकार आशाधर धाराके सिंहासनपर पाँच राजाओको देख चुके थे। विन्ध्यवर्माके मन्त्री विद्यापति विल्हणने आशाधरकी विद्वत्तापर मोहित होकर लिखा

"आशाधरत्वं मयि विद्धि सिद्ध निसर्गसौन्दर्यमजर्यमार्य।
सरस्वतीपुत्रतया यदेतदर्थे परं वाच्यमय प्रपञ्च ॥"

इस प्रकार आशाधरका समय वि० की तेरहवी शती निश्चित है।

रचनाएँ

आशाधरने विपुल परिमाणमे साहित्यका सृजन किया है। वे मेधावी कवि, व्याख्याता और मौलिक चिन्तक थे। अबतक उनकी निम्नलिखित रचनाओके उल्लेख मिले हैं

१. प्रमेयरत्नाकर, २ भरतेश्वराभ्युदय, ३ ज्ञानदीपिका, ४ राजीमतिविप्रलभ, ५. अध्यात्मरहस्य, ६. मूलाराधनाटीका, ७. इष्टोपदेशटीका, ८ भूपालचतुर्विंशतिकाटीका, ९ आराधनासारटीका, १० अमरकोशटीका, ११ क्रियाकलाप, १२. काव्यालकारटीका, १३ सहस्रनामस्तवन सटीक, १४. जिनयज्ञकल्प सटीक, १५ त्रिषष्ठिस्मृतिशास्त्र, १६ नित्यमहोद्योत, १७ रत्नत्रयविधान, १८. अष्टागहृदयोतिनीटीका, १९ सागारधर्मामृत सटीक और २० अनगारधर्मामृत सटीक।

अध्यात्मरहस्य

प० आशाधरजीने अपने पिताके आदेशसे इस ग्रन्थकी रचना की। साथ ही यह भी बताया है कि यह शास्त्र प्रसन्न, गम्भीर और आरब्ध योगियोके लिये प्रिय वस्तु है। योगसे सम्बद्ध रहनेके कारण इसका दूसरा नाम योगोद्दीपन भी है। कविने लिखा है

"आदेशात् पितुरध्यात्म-रहस्य नाम यो व्यधात्।
शास्त्र प्रसन्नगम्भीर-प्रियमारब्धयोगिनाम् ॥"

अन्तिम प्रशस्ति इस प्रकार है

'इत्याशाधर-विरचित-धर्मामृतनाम्नि सूक्ति-संग्रहे योगोद्दीपनो नामाष्टादशोऽध्याय ।'

इस ग्रन्थमे ७२ पद्य हैं और स्वात्मा, शुद्धात्मा, श्रुतिमति, ध्याति, दृष्टि और सद्गुरुके लक्षणादिका प्रतिपादन किया है । पश्चात् रत्नत्रयादि दूसरे विषयोका विवेचन किया है । वस्तुत. इस अध्यात्मरहस्यमे गुण-दोष, विचार-स्मरण आदिकी शक्तिसे सम्पन्न भावमन और द्रव्यमनका बडा ही विशद विवेचन किया है । यह योगाभ्यासियो और अध्यात्मप्रेमियोके लिये उपयोगी है ।

धर्मामृत

आशाधरने धर्मामृत ग्रन्थ लिखा है, जिसके दो खण्ड हैं अनगारधर्मामृत और सागारधर्मामृत । अनगारधर्मामृतमे मुनिधर्मका वर्णन आया है तथा मुनियोके मूलगुण और उत्तरगुणोंका विस्तारपूर्वक निरूपण किया है । आशाधर विषयवस्तुके लिये मूलाचारके ऋणी हैं ।

सागारधर्मामृतमे गृहस्थधर्मका निरूपण आठ अध्यायोमे किया है । प्रथम अध्यायमे श्रावकधर्मके ग्रहणकी पात्रता बतलाकर पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत तथा सल्लेखनाके आचरणको सम्पूर्ण सागरधर्म बतलाया है । उक्त १२ प्रकारके धर्मको पाक्षिक श्रावक अभ्यासरूपसे, नैष्ठिक आचरणरूपसे और साधक आत्मलीन होकर पालन करता है ।

आठ मूलगुणोंका धारण, सप्त व्यसनोका त्याग, देवपूजा, गुरूपासना और पात्रदान आदि क्रियाओका आचरण करना पाक्षिक आचार है । धर्मका मूल अहिंसा और पापका मूल हिंसा है । अहिंसाका पालन करनेके लिये मद्य, मांस, मधु और अभक्ष्यका त्याग अपेक्षित है । रात्रिभोजनत्याग भी अहिंसाके अन्तर्गत है ।

गृह-विरत श्रावक आरम्भिक हिंसाका पूर्ण त्याग करता है और गृह-रत श्रावक, सकल्पी हिंसाका । सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत और परिग्रहपरिमाणाणुव्रतका धारण करना भी आवश्यक है । श्रावक गुणव्रत और शिक्षाव्रतोका पालन करता हुआ अपनी दिनचर्याको भी परिमार्जित करता है । वह एकादश प्रतिमाओका पालन करता हुआ अतमे सल्लेखना द्वारा प्राणोका विसर्जन कर सद्गति लाभ करता है । इस प्रकार धर्मामृतमे श्रमण और श्रावक दोनोकी चर्याओका वर्णन किया है ।

जिनयज्ञकल्प

प्रतिष्ठाविधिका सम्यक् प्रतिपादन करनेके लिये आशाधरने छ. अध्यायोमे जिनयज्ञकल्पविधिको समाप्त किया है । प्रथम अध्यायमे मन्दिरके योग्य भूमि,

मूर्तिनिर्माणके लिये शुभ पाषाण, प्रतिष्ठायोग्य मूर्ति, प्रतिष्ठाचार्य, दीक्षागुरु यजमान, मण्डप-विधि, जलयात्रा, यागमण्डल-उद्धार आदि विषयोका वर्णन है। द्वितीय अध्यायमे तीर्थजल लानेकी विधि, पञ्चपरमेष्ठिपूजा, अन्य देव-पूजा, जिनयज्ञादिविधि, सकलीकरणक्रिया, यज्ञदीक्षाविधि, मण्डपप्रतिष्ठा-विधि और वेदीप्रतिष्ठाविधि वर्णित है। तृतीय अध्यायमे यागमण्डलकी पूजा-विधि और यागमण्डलमे पूज्य देवोका कथन किया है।

चतुर्थ अध्यायमे प्रतिष्ठेय प्रतिमाका स्वरूप अर्हन्तप्रतिमाकी प्रतिष्ठाविधि, गर्भकल्याणककी क्रियाओंके अनन्तर जन्मकल्याणक, तपकल्याणक, नेत्रोन्मीलन, केवलज्ञानकल्याणक और निर्वाणकल्याणककी विधियोका वर्णन आया है।

पञ्चम अध्यायमे अभिषेक-विधि, विसर्जन-विधि, जिनालय-प्रदक्षिणा पुण्याहवाचन, ध्वजारोहण-विधि एव प्रतिष्ठाफलका कथन आया है। षष्ठ अध्यायमे सिद्ध-प्रतिमाकी प्रतिष्ठा-विधि वृहद्सिद्धचक्र और लघुसिद्धचक्रका उद्धार, आचार्य-प्रतिष्ठा-विधि, श्रुतदेवता-प्रतिष्ठा-विधि एव यक्षादिकी प्रतिष्ठाविधिका वर्णन है। षष्ठ अध्यायके अन्तमे ग्रन्थकर्त्ताकी प्रशस्ति अंकित है। परिशिष्टमे श्रुतपूजा, गुरुपूजा आदि सगृहीत हैं।

त्रिषष्ठिस्मृतिशास्त्र

इस ग्रन्थमे ६३ शलाका-पुरुषोका सक्षिप्त जीवन-परिचय आया है। ४० पद्योमे तीर्थंकर ऋषभदेवका, ७ पद्योमे अजितनाथका, ३ पद्योमे सभव-नाथका, ३ पद्योमे अभिनन्दनका, ३ मे सुमतिनाथका, ३ मे पद्मप्रभका, ३ मे सुपार्श्व जिनका, १० मे चन्द्रप्रभका, ३ मे पुष्पदन्तका, ४ मे शीतलनाथका, १० मे श्रेयांस तीर्थंकरका, ९ मे वासपूज्यका, १६ मे विमलनाथका, १० मे अनन्त-नाथका, १७ मे धर्मनाथका, २१ मे शान्तिनाथका, ४ मे कुन्थुनाथका, २६ मे अरनाथका, १४ मे मल्लिनाथका और ११ में मुनिसुव्रतका जीवनवृत्त वर्णित है। इसी सदर्भमे राम-लक्ष्मणकी कथा भी ८१ पद्योमे वर्णित है। तदनन्तर २१ पद्योमे कृष्ण-वलराम, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती आदिके जीवनवृत्त आये हैं। नेमिनाथका जीवन-वृत्त भी १०१ पद्योमे श्रीकृष्ण आदिके साथ वर्णित है। अनन्तर ३२ पद्योमे पार्श्वनाथका जीवन अंकित किया गया है। पश्चात् ५२ पद्योसे महावीर-पुराण-का अकन है। तीर्थंकरोंके कालमे होनेवाले चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण आदिका भी कथन आया है। ग्रन्थके अन्तमे १५ पद्योमे प्रशस्ति अंकित है। ग्रन्थ-रचनाकालका निर्देश करते हुए लिखा है

नलकच्छपुरे श्रीमन्नेमिचैत्यालयेऽसिधत्।
ग्रन्थोऽयं द्विनवद्वयेकविक्रमार्कसमात्यये ॥१३॥

अर्थात् वि० सं० १२९२मे इस ग्रंथकी रचना की है।

महाकवि अर्हद्दास

संस्कृत गद्य और पद्यके निर्माताके रूपमे महाकवि अर्हद्दास अद्वितीय है। मुनिसुव्रतकाव्य, पुरुदेवचंपू और भव्यजनकंठाभरणकी प्रशस्तियोसे यह स्पष्ट है कि महाकवि अर्हद्दास प्रतिभाशाली विद्वान् थे। कविने इन ग्रंथोकी प्रशस्तियोमे आशाधरका नाम बडे आदरके साथ लिया है। अत. यह अनुमान लगाना सहज है कि इनके गुरु आशाधर थे। मुनिसुव्रतकाव्यके एक पद्यसे यह ध्वनित होता है कि अर्हद्दास पहले कुमार्गमे पडे हुए थे, पर आशाधरके धर्मामृतके अध्ययनसे उनके परिणामोमे परिवर्त्तन हुआ और वे जैनधर्मानुयायी हो गये। बताया है

धावन्कापथसभृते भववने सन्मार्गमेकं परम्।
त्यक्त्वा श्रांततरश्चिराय कथमप्यासाद्य कालादमुम्॥
सद्धर्मामृतमुद्धृत जिनवच क्षीरोदधेरादरात्।
पायं पायमितश्रम' सुखपद दासो भवाम्यर्हतः॥१०।६४

× × ×

अर्हद्दास सभक्त्युल्लसितमवसितं भूधरे तत्र कृत्वा।
कल्याणं तीर्थकर्तुः सुरकुलमहितः प्रापदात्मीयलोकम्॥
अर्हद्दासोऽयमित्यं जिनपतिचरितं गौतमस्वाम्युपज्ञं।
गुम्फित्वा काव्यबन्धं कविकुलमहित प्रापदु-चै प्रमोदम्॥१०।६३

अर्थात् कुमार्गोसे भरे हुए संसाररूपी वनमे जो एक उत्तम सन्मार्ग था, उसे छोडकर बहुतकाल तक भटकता हुआ मैं अत्यन्त थक गया। किसी प्रकार काललब्धि वश उसे प्राप्त किया। उस सन्मार्गको पाकर जिनवचनरूपी क्षीर-समुद्रसे उद्धृत किये और सुखके स्थान समीचीन धर्मामृतको आदरपूर्वक पी-पीकर थकान रहित होता हुआ मैं अर्हन्त भगवानका दास होता हूँ।

देवताओंसे पूजित तथा अर्हद् भगवान्के दास इन्द्रदेव उस सम्मेदपर्वत पर तीर्थंकर भगवान मुनिसुव्रतनाथका मोक्षकल्याणक सम्पन्न कर सानन्द अपने स्वर्गलोकको लौट आये तथा कविकुलपूजित अर्हद्दासने भी गौतम स्वामीसे कहे गये श्रीजिनेन्द्रचरितको काव्यरूपमे ग्रथित कर बडी भारी प्रसन्नता प्राप्त की।

उपर्युक्त ६४वें पद्यमे आया हुआ 'धर्मामृत' पद आशाधरके 'धर्मामृत' ग्रन्थका सूचक है। इस पद्यसे यह अवगत होता है कि अर्हद्दास पहले कुमार्गमे पड़े

हुए थे। आशाधरके धर्मामृतने और उनकी उक्तियोने उन्हे सुमार्गमें लगाया। बहुत संभव है कि कवि अर्हद्दास पहले जैनधर्मानुयायी न होकर अन्य धर्मानुयायी रहे हो। यही कारण है कि उन्हें ब्राह्मणधर्म और वैदिक-पुराणोका अच्छा परिज्ञान है।

'दासो भवाम्यर्हत' पद्यसे भी यही ध्वनित होता है। श्री पं० नाथूरामजी प्रेमीका अनुमान है कि अर्हद्दास नाम न होकर विशेषण जैसा है। उन्होंने लिखा है "चतुर्विंशतिप्रबन्धकी पूर्वोक्त कथाको पढनेके बाद हमारा यह कल्पना करनेको जी अवश्य होता है कि कही मदनकीर्त्ति ही तो कुमार्गमे ठोकरें खाते-खाते अन्तमे आशाधरकी सूक्तियोसे अर्हद्दास न बन गये हो। पूर्वोक्त ग्रथोमे जो भाव व्यक्त किये गये हैं उनसे तो इस कल्पनाको बहुत पुष्टि मिलती है और फिर यह अर्हद्दास नाम भी विशेषण जैसा ही मालूम होता है। सभव है उनका वास्तविक नाम कुछ और ही रहा हो। यह नाम एक तरहकी भावुकता और विनयशीलता ही प्रकट करता है"।[1] 'प्रेमी'जीने मदनकीर्त्तिको ही विशालकीर्त्ति और आशाधरको प्रेरणासे अर्हद्दासके रूपमे परिवर्त्तित स्वीकार किया है, पर पुष्ट प्रमाणोंके अभावमे प्रेमीजीके इस कथनको स्वीकार नही किया जा सकता। तथ्य जो भी हो, पर इतना तो स्पष्ट है कि अर्हद्दासको आशाधरके ग्रन्थो और वचनोसे बोध प्राप्त हुआ है।

स्थितिकाल

कवि अर्हद्दासने मुनिसुव्रतकाव्य, पुरुदेवचम्पू और भव्यकण्ठाभरणमे आशाधरका निर्देश किया है। आशाधरने वि० स० १३००मे अनगारधर्मामृतकी टीका पूर्ण की थी। अत. कवि अर्हद्दास आशाधरके पूर्ववर्त्ती नही हो सकते हैं। अब विचारणीय यह है कि वे आशाधरके समकालीन है या उनके पश्चात्वर्त्ती विद्वान् हैं। उन्होने अपने ग्रथोमे आशाधरका उल्लेख जिस रूपमे किया है उससे यही अनुमान लगाया जा सकता है कि वे आशाधरके समकालीन रहे हो।

मुनिसुव्रतकाव्यकी प्रशस्ति

मिथ्यात्वकर्मपटलैश्चिरमावृते मे युग्मे दृशो कुपथयाननिदानभूते ॥
आशाधरोक्तिलसदजनसप्रयोगैरच्छीकृते पृथुलसत्पथमाश्रितोऽस्मि ॥१०।६५॥

अर्थात् मेरे नयन-युगल चिरकालसे मिथ्यात्वकर्मके पटलसे ढके हुए थे और मुझे कुमार्गमे ले जानेमे कारण थे। आशाधरके उक्तिरूपी उत्तम अजनसे उनके स्वच्छ होनेपर मैंने जिनेन्द्रदेवके महान् सत्पथका आश्रय लिया।

१ जैन साहित्य और इतिहास, प्रथम संस्करण, पृ० १४२–४३।

पुरुदेवचंपूका अन्तिम पद्य

मिथ्यात्वपंककलुषे मम मानसेऽस्मिन् आशाधरोक्तिकतकप्रसरैः प्रसन्ने ।
उल्लासितेन शरदा पुरुदेवभक्त्या तच्चम्पुदम्भजलजेन समुज्जजृम्भे ॥

कविप्रशस्ति

अर्थात् मेरा यह मानसरूप सरोवर मिथ्यात्वरूपी कीचड़से कलुषित था। आशाधरकी उक्तिरूपी निर्मलीके प्रभावसे जब वह निर्मल हुआ तो ऋषभदेवकी भक्तिसे प्रसन्न हुई शरद् ऋतुके द्वारा उसमेसे चम्पूरूप कमल विकसित हुआ।

इन पद्योंसे इतना ही स्पष्ट होता है कि आशाधरकी उक्तियोंसे उनकी दृष्टि या मानस निर्मल हुआ था; पर वे आशाधरके समकालीन थे या उत्तरकालीन थे, इस पर कुछ प्रकाश नहीं पडता है। भव्यजनकण्ठाभरणमे एक ऐसा पद्य आया है, जो कुछ अधिक प्रकाश देता है

सूक्त्यैव तेषां भवभीरवो ये गृहाश्रमस्थाश्चरितात्मधर्माः ।
त एव शेषाश्रमिणां सहाय्या धन्याः स्युराशाधरसूरिमुख्याः ॥२३६॥

आचार्य उपाध्याय और साधुका स्वरूप बतलानेके पश्चात् ग्रन्थकार कहते हैं कि उन आचार्य आदिकी सूक्तियोके द्वारा ही जो ससारसे भयभीत प्राणी गृहस्थाश्रममे रहते हुए आत्मधर्मका पालन करते हैं और शेष ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और साधु आश्रममे रहने वालोकी सहायता करते हैं वे आशाधर सूरि प्रमुख श्रावक धन्य हैं।

इस पद्यमे प्रकारान्तरसे आशाधरकी प्रशसा की गई है और बताया गया है कि गृहस्थाश्रममे रहते हुए भी वे जैनधर्मका पालन करते थे तथा अन्य आश्रमवासियोकी सहायता भी किया करते थे। इस पद्यमे आशाधरकी जिस परोपकारवृत्तिका निर्देश किया गया है उसका अनुभव कविने सभवत प्रत्यक्ष किया है और प्रत्यक्षमे कहे जाने वाले सद्वचन भी सूक्ति कहलाते हैं। अतएव बहुत सभव है कि अर्हद्दास आशाधरके समकालीन हैं। अतएव अर्हद्दासका समय वि० स० १३०० मानना उचित ही है। यदि अर्हद्दासको आशाधरका समकालीन न मानकर उत्तरकालीन माना जाय तो उनका समय वि० की १४वी शतीका प्रथम चरण आता है।

रचनाएँ

अर्हद्दासकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं १ मुनिसुव्रतकाव्य, २ पुरुदेवचम्पू और ३ भव्यजनकण्ठाभरण।

मुनिसुव्रतकाव्य

इस महाकाव्यमे २०वे तीर्थंकर मुनिसुव्रतकी कथा वर्णित है। कविने १० सर्गोमे काव्यको समाप्त किया है। कथा मूलत उत्तरपुराणसे गृहीत है। कविने कथानकका मूलरूपमे ग्रहणकर प्रासगिक और अवान्तर कथाओकी योजना नही की है। काव्यमे शृगारभावनाका आरोप किये बिना भी मानव-जीवनका सागोपाग विश्लेषण किया है।

काव्यके इस लघु कलेवरमें विविध प्राकृतिक दृश्योका चित्रण भी किया गया है। मगधदेशकी विशेषताओको प्रकृतिके माध्यम द्वारा अभिव्यक्त करते हुए कहा है

नगेषु यस्योन्नतवशजाता सुनिर्मला विश्रुतवृत्तरूपा ।
भव्या भवन्त्यासगुणाभिरामा मुक्ता सदा लोकगिरोविभूषा ॥१।२४॥
तरगिणीना तरुणान्वितानामतुच्छपद्मच्छदलाञ्छितानि ।
पृथूनि यस्मिन्पुलिनानि रेजु काचीपदानीव नखाञ्चितानि ॥१।२६॥

मगधके उत्तरी भागमे फैली हुई पर्वतश्रेणीपर विविध वृक्ष, मध्य भागमे लहलहाते हुए जलपूर्ण खेत और उनमे उत्पन्न रक्तकमल दर्शकोके चित्तको सहजमे ही आकृष्ट कर लेते है। राजगृहके निरूपण-प्रसंगमे विविध वृक्ष-लता-कमलोसे परिपूर्ण सरोवरोके रेखाचित्र भी अकित किये गये।

द्वितीय पद्यमें बताया है कि वृक्ष-पक्तिसे युक्त नदियोके सुन्दर विकसित कमलपत्रोसे चिह्नित विस्तृत पुलिन नायिकाके नखक्षत जघनके समान सुशोभित होते हैं। वाटिकाओके वृक्षो और क्रीड़ापर्वतोपर स्नान करनेवाली रमणियोका चित्रण करते हुए कविने लिखा है--

वहिर्वने यत्र विधाय वृक्षारोह परिष्वज्य समर्पितास्या ॥
कृताधिकारा इव कामतत्रे कुर्वन्ति सग विटपैर्व्रतत्य ॥१।३८॥
आरामरामाशिरसीव केलिशैले लताकुन्तलभासि यत्र ॥
सकुङ्कुमा निर्झरवारिधारा सीमन्तसिन्दूरनिभा विभाति ॥१।३९॥

राजगृहके वाहरी उपवनोमे वृक्षोपर चढी हुई लतायें काम-शास्त्रमे प्रवीण उपपतियोका आलिगन तथा चुम्वन करती हुई कामिनियोके समान जान पड़ती हैं।

जिस राजगृहमे स्त्रीरूपिणी वाटिकाओमे उनके मस्तकके समान वेणी रूपिणी लताओसे मडित क्रीडापर्वतोपर स्त्रियोके स्नान करनेसे कुकुममिश्रित जलधारा झरनेसे गिरती हुई सीमन्तके सिन्दूरके समान शोभित थी।

कविने उक्त दोनो पद्योमे प्रकृतिका मानवीकरण कर मनोरम और मधुर रूपोको प्रस्तुत किया है। उत्प्रेक्षाजन्य चमत्कार दोनो ही पद्योमें वर्त्तमान है।

दशम सर्गमे जिनेन्द्र-सान्निध्यसे नीलीवनके अशोकसप्तच्छद, चम्पक, आम्र आदि वृक्षोका क्रमश सुन्दरी स्त्रियोंके चरणघात, चाटुवाद, छाया, कटाक्ष आदिके विना ही पुष्पित होना वर्णित है। कविने यहाँ काव्यरूढ़ियोका भी अतिक्रमण किया है।

आलम्बनरूपमे प्रकृतिचित्रण करते हुए कविने वर्षाकालमे मेघगर्जन, हसशावको और वियोगीजनोंके कम्पित होने, सर्पोंके विलसे निकलने, मयूरोके नृत्यमग्न होने एव चातकोंके अधरपुटके उन्मीलित होनेके वर्णन द्वारा वर्षा-कालीन प्रकृतिका भव्यरूप उपस्थित किया है।[1]

प्रकृतिमे मानवीय व्यापारों और चेष्टाओंके भी सुन्दर उदाहरण आये हैं। हेमन्त वर्णन-प्रसगमे प्रात कालीन विखरे हुए ओस-विन्दुओंसे सुशोभित, लताओंसे लिपटे हुए और उनके गुच्छोरूपी स्तनोका आलिगन किये हुए वृक्षो-पर संभोगान्तमे निस्सृत श्वेतकणोंसे युक्त युवकोका आरोप स्वभावत उद्दीपक है।[2]

वर्षाकालमे नायक और आकाशमे नायिकाका आरोपकर गाढालिगनका सरस वर्णन प्रस्तुत किया गया है। आकाश-नायिकाके स्तनप्रदेशपर स्थित माला टूट जाती है, जिससे उसके मोती और मूँगे इन्द्रवधूटी और ओलोके रूपमे विखरे हुए दीख पड़ते हैं।[3]

कविने वसुधामे वात्सल्यमयी माताका आरोप कर भावोकी सूक्ष्म अभि-व्यञ्जना की है। माता अपने पुत्रो वृक्षोका अत्याचारी सूर्यसतापसे रक्षण करनेके हेतु उसके सामने दाँत निकालकर गिडगिडा रही है

प्रासादचैत्यपरिखालतिकाद्रुमक्ष्मा जाता ध्वजद्युकुजहर्म्यगणक्षमाश्च।
पीठानि चेति हरसख्यभुवस्तदंतरेकातकेलिसदनं जिनवोधलक्ष्म्या ॥९।१०॥

इस प्रकार इस काव्यमे कविने कल्पनाओ और उत्प्रेक्षाओ द्वारा सदर्भागो-को चमत्कारपूर्ण और सरस वनाया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, परिसख्या,

१. मुनिसुव्रतकाव्य ९।१३।
२ वही ९।२८।
३ वही ९।२२।

एकावली आदि अलंकार रसोत्कर्ष उत्पन्न करनेमें सहायक हैं। इस काव्यमें पौराणिक मान्यताएँ भी वर्णित हैं; पर यथार्थत यह शास्त्रीय महाकाव्य है।

पुरुदेवचम्पू

इस चम्पूकाव्यमे आदितीर्थंकर ऋषभदेवका जीवनवृत्त वर्णित है। कथा-वस्तु १० स्तवकोमे विभक्त है। कविने गद्य और पद्य दोनो ही प्रौढरूपमे लिखे हैं। मंगलपद्योके अनन्तर जम्बूद्वीपका विस्तृत वर्णन है। अतिबलके राज्यका परिसख्याद्वारा वर्णन करते हुए लिखा है

'यस्मिन्महीपाले महीलोकलोकोत्तरप्रसाद शातकुम्भमयस्तम्भायमानेन निज-भुजेन धरणीयेगदर्निर्विशेषमाविभ्राणे, बधनस्थिति कुसुमेपु चित्रकाव्येषु च अलकाराश्रयता महाकविकाव्येषु कामिनीजनेषु च, घनमलिनाबरता प्रावृषेण्यदि-वसेषु कृष्णपक्षनिशासु च, परमोहप्रतिपादन प्रमाणशास्त्रेपु युवतिजनमनोहरागेषु च, शुभकरवालशून्यता कोदडधारिषु कच्छपेषु च पर व्यवतिष्ठत ॥'

कविने भावात्मक विषयोका समावेश पद्योमे किया है और वर्णनात्मक सदर्भोंका गद्यमे। वर्णनशैली बड़ी ही रमणीय और चित्ताकर्षक है। देवागनाएँ जन्माभिषेकके पश्चात् नृत्य करती हुई भावपूर्वक ऋषभदेवकी पूजा करती है

"नटत्सुरवधूजनप्रविसरत्कटाक्षावलिं।
कपोलतलसगता त्रिभुवनाधिपस्यादरात् ॥
सुराधिपतिसुन्दरी स्नपनतोयशकावशात्।
प्रमार्जयितुमुद्यता किल बभूव हासास्पदम् ॥५।१३॥"

इस प्रकार इस चम्पूमे काव्यात्मक सभी गुण वर्त्तमान हैं। इसकी गद्य-शैली तो पद्योकी अपेक्षा अधिक प्रौढ है।

भव्यजनकण्ठाभरण

इस काव्यमे कुल २४२ पद्य हैं। इसमे आचार, नीति, दर्शन और सूक्ति इन सभीका समन्वय है। कतिपय पौराणिक मान्यताओकी समीक्षा भी की गई है। इस ग्रन्थके प्रारभमे वैदिक-पुराणोकी कई मान्यताएँ अकित है। गणेश, कार्त्तिकेय, शिव-पार्वतीके आख्यान निर्दिष्ट कर सकेतरूपमे उनकी समीक्षा भी की गई है। प्रसगवश इस ग्रन्थमे यापनीय-सम्प्रदाय, श्वेताम्बर-सम्प्रदाय, आदिकी भी समीक्षा की गई है। कविने बताया है कि धर्म सदा अहिंसासे होता है, हिंसासे नही। जिस प्रकार कमल जलसे ही उत्पन्न हो सकता है अग्नि से नही, उसी प्रकार इन्द्रियनिग्रह और कषायविजय अहिंसा द्वारा ही सभव है, हिंसा द्वारा नही

सदाप्यहिंसाजनितोऽस्ति धर्मं स जातु हिंसाजनित कुत स्यात् ।
न जायते तोयजकञ्जमग्नेर्न चामृतोत्थ विषतोऽमरत्वम् ॥८१॥

अहिंसाके पालनार्थ मद्य, मास, मधुके त्यागका और निर्मल आचरण पालन करनेका कथन किया है। कविने आप्तमे सर्वज्ञताकी सिद्धि करते हुए लिखा है

'तत्सूक्ष्मदूरान्तरिता पदार्था कस्यापि पुसो विशदा भवन्ति ।
व्रजन्ति सर्वेऽप्यनुमेयता यदेतेऽनलाद्या भुवने यथैव ॥१२३॥'

अर्थात् ससारमे जो परमाणु इत्यादि सूक्ष्म पदार्थ हैं, राम-रावण आदि अन्तरित पदार्थ हैं और हिमवन आदि दूरवर्त्ती पदार्थ हैं वे किसीके प्रत्यक्ष अवश्य है क्योकि इन सभी पदार्थोको हम अनुमानसे जानते हैं। जो पदार्थ अनुमानसे जाना जाता है वह किसीके प्रत्यक्ष भी होता है। जैसे पर्वतमे छिपी हुई अग्निको हम दूरसे उठता हुआ धुँआ देखकर अनुमानसे जानते हैं। पश्चात् उसका प्रत्यक्षीकरण होता है।

इस ग्रन्थपर 'समन्तभद्र'के 'रत्नकरण्डश्रावकाचार'का विशेष प्रभाव है। ग्रन्थकर्त्ताने ११६ पद्यो तक कुदेवोकी समीक्षा की है। आप्तका स्वरूप बतलानेके अनन्तर जिनवाणीका माहात्म्य ७ पद्योमे दिखलाया गया है। तत्पश्चात् सम्यग्दर्शनका वर्णन आया है। इस सदर्भमे ३ मूढता, ८ मद और ८ अंगोका स्वरूप भी दर्शाया गया है। तत्पश्चात् सम्यक्दर्शनका माहात्म्य बतलाकर सज्जाति आदि सप्त परमस्थानोका स्वरूप भी एक एक पद्यमे अकित किया गया है। २०६ पद्यसे २१२ पद्य तक परमस्थानोका स्वरूप-वर्णन है। २१३वे और २१४वे पद्यमे सम्यक्ज्ञानका कथन आया है। कविने रत्नत्रयको ही वास्तविक धर्म कहा है और उसका महत्त्व २२४वें और २२५वें पद्यमे प्रदर्शित किया है। २२६वें पद्यसे २३३वें पद्य तक पञ्चपरमेष्ठीका स्वरूप वर्णित है। इस प्रकार इस लघुकाय ग्रन्थमे जैनसिद्धान्तोका वर्णन आया है।

पद्मनाभ कायस्थ

राजा यशोधरकी कथा जैनकवियोको विशेष प्रिय रही है। पद्मनाभने यशोधरचरितकी रचना कर इस शृखलामे एक और कडी जोडी है। पद्मनाभको जैनधर्मसे अत्यधिक स्नेह था और इस धर्मके सिद्धान्तोंके प्रति अपूर्व आस्था थी।

पद्मनाभका संस्कृत-भाषापर अपूर्व अधिकार था। उन्होने भट्टारक गुणकीर्तिके सान्निध्यमे रहकर जैनधर्मके आचार-विचारो और सिद्धान्तोका अध्ययन किया था। गुणकीर्त्तिके उपदेशसे ही इन्होने यशोधरचरित या दया-

सुन्दरविधान काव्यग्रन्थ राजा वीरमदेवके राज्यकालमें लिखा है। जब कवि-का काव्य पूर्ण हो गया, तो सन्तोषनामके जयसवालने उसकी बहुत प्रशंसा की और विजयसिंह जयसवालके पुत्र पृथ्वीराजने उक्त ग्रन्थकी अनुमोदना की।

कुशराज जयसवालकुलके भूषण थे और ये वीरमदेवके मन्त्री थे। इन्हींकी प्रेरणासे यशोधरचरित लिखा गया। कुशराज राज्यकार्यमें बड़े ही निपुण थे। इनके पिताका नाम जैनपाल और माताका नाम लोणादेवी था। पितामहका नाम लण्ण और पितामहीका नाम उदितादेवी था। आपके पाँच और भाई थे, जिनमें चार बडे और एक सबसे छोटा था। हंसराज, सैराज, रैराज, भवराज और क्षेमराज। क्षेमराज सबसे बड़ा और भवराज सबसे छोटा था। कुशराज राजनीतिज्ञ होनेके साथ धर्मात्मा भी था। इसने ग्वालियरमें चन्द्रप्रभजिनका एक विशाल जिनमंदिर बनवाया था और उसकी प्रतिष्ठा करवायी थी।

कुशराजकी तीन पत्नियाँ थी रल्हो, लक्षणश्री और कोशीरा। रल्हो गृहकार्यमें कुशल और दानशीला थी। वह नित्य जिनपूजा किया करती थी। इससे कल्याणसिंह नामका पुत्र उत्पन्न हुआ था, जो बडा ही रूपवान्, दानी और श्रद्धालु था। शेष दोनों पत्नियाँ भी धर्मात्मा और सुशीला थी। कुशराजने श्रुतभक्तिवश यशोधरचरितकी रचना कराई।

पद्मनाभ मेधावी कवि होनेके साथ समाजसेवी विद्वान् थे। जैन भट्टारकों और श्रावकोंके सम्पर्कसे उनका चरित्र अत्यन्त उज्जवल और श्रावकोचित था। ग्रन्थप्रशस्तिसे पद्मनाभके सम्बन्धमें विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती है, पद्मनाभने अपने प्रेरक कुशराजके वंशका विस्तृत परिचय दिया है।

स्थितिकाल

पद्मनाभने अपना यह काव्यग्रन्थ वीरमदेवके राज्यकालमें लिखा है। वीरमदेव बडा ही प्रतापी राजा तोमर-वंशका भूषण था। लोकमें उसका निर्मल यश व्याप्त था। दान, मान और विवेकमें उस समय उसकी कोई समता करनेवाला नहीं था। यह विद्वानोंके लिए विशेषरूपसे आनन्दायक था। यह ग्वालियरका शासक था। वीरमदेवके पिता उद्धरणदेव थे, जो राजनीतिमें दक्ष और सर्वगुणसम्पन्न थे। ई० सन् १४०० या उसके आस-पास ही राज्यसत्ता वीरमदेवके हाथमें आयी। ई० सन् १४०५में मल्लू एकबालखांने ग्वालियरपर आक्रमण किया था। पर उस समय उसे निराश होकर ही लौटना पड़ा। दूसरी बार भी उसने आक्रमण किया, पर वीरमदेवने उससे सन्धि कर ली। आचार्य अमृतचन्द्रकी 'तत्त्वदीपिका'की लेखकप्रशस्तिसे वीरमदेवका राज्यकाल

वि० सं० १४६६ तक वर्तमान रहा। अतएव उनके राज्यकालकी सीमा ई० सन् १४०५-१४१५ ई० तक जान पड़ती है। इसके पश्चात् ई० सन् १४२४से पूर्व वीरमदेवके पुत्र गणपतिदेवने राज्यका सचालन किया है। इन उल्लेखोसे स्पष्ट है कि पद्मनाभने ई० सन् १४०५-१४२५ ई० के मध्यमे किसी समय 'यशोधरचरित'की रचना की है।

रचना

राजा यशोधर और रानी चन्द्रमतीका जीवन-परिचय इस काव्यमे अकित है। पौराणिक कथानकको लोकप्रिय बनानेकी पूरी चेष्टा की गई है।

कथावस्तु ९ सर्गोमे विभक्त है। नवम सर्गमे अभयरुचि आदिका स्वर्गगमन बताया गया है। कविता प्रौढ है। उत्प्रेक्षा, रूपक, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग आदि अलकारो द्वारा काव्यको पूर्णतया लोकप्रिय बनाया गया है।

ज्ञानकीर्त्ति

ज्ञानकीर्त्ति यति वादिभूषणके शिष्य थे। इन्होने यशोधरचरितकी रचना नानूके आग्रहसे सस्कृतभाषामे की। नानू उस समय बगालके गवर्नर महाराजा मानसिंहके प्रधान अमात्य थे। कविने सम्मेदशिखरकी यात्रा की है और वहाँ उन्होने जीर्णोद्धार भी कराया है। ज्ञानकीर्ति बगालप्रान्तके अकब्बरपुर नामक नगरमे निवास करते थे।

यशोधरचरितके अन्तमे लम्बी प्रशस्ति दी गई है, जिससे अवगत होता है कि शाह श्रीनानूने यशोधरचरित लिखाकर भट्टारक श्रीचन्द्रकीर्तिके शिष्य शुभचन्द्रको भेंट किया था।

इस ग्रन्थमे रचनाकाल स्वय अकित किया है

'शते षोडशएकोनषष्टिवासरके शुभे।
माघे शुक्लेऽपि पचम्यां रचित भृगुवासरे॥ ५॥

अर्थात् सोलहसौ उनसठ (१६५९) मे माघ शुक्ल पञ्चमी शुक्रवारको ग्रन्थ समाप्त हुआ। यह काव्य मानसिंहके समयमे लिखा गया है। काव्यके अन्तकी प्रशस्ति निम्न प्रकार है

"इति श्रीयशोधरमहाराजचरिते भट्टारकश्रीवादिभूषणशिष्याचार्य-श्रीज्ञानकीर्त्तिविरचिते राजाधिराजमहाराजमानसिंहप्रधानसाहश्रीनानूनामाकिते भट्टारकश्रीअभयरुच्यादिदीक्षाग्रहणस्वर्गादिप्राप्तिवर्णनो नाम नवम सर्ग॥"

स्पष्ट है कि यह यशोधरचरित भी ९ सर्गोंमे पूर्ण हुआ है। ज्ञानकीर्त्तिने अपनी पूरी पट्टावली अंकितकी है। बताया है कि मूलसघ कुन्दकुन्दान्वय, सरस्वती-गच्छ और बलात्कार गणके भट्टारक वादिभूषणके पट्टधर शिष्य थे। ज्ञानकीर्त्ति पद्मकीर्त्तिके गुरुभाई भी हैं।

ज्ञानकीर्त्तिने सोमदेव, हरिषेण, वादिराज, प्रभंजन, धनञ्जय, पुष्पदन्त और वासवसेन आदि विद्वानोंके द्वारा लिखे गये यशोधर महाराजके चरितको अनुभवकर स्वल्पबुद्धिसे सक्षेपमे इसकी रचना की है। ज्ञानकीर्तिने पूर्ववर्ती आचार्योंमें उमास्वामि, समन्तभद्र, वादीभसिंह, पूज्यपाद, भट्टाकलक और प्रभाचन्द्र आदि विद्वानोंका स्मरण किया है। ग्रन्थकी भाषाशैली प्रौढ है। यहाँ उदाहरणार्थ एक पद्य उद्धृत किया जाता है

दोर्दण्डचण्डबलत्रासितशत्रुलोको रत्नादिदानपरिपोषितपात्रओघ ।
दीनानुवृत्तिशरणागतदीर्घशोक. पृथ्व्या बभूव नृपतिर्वरमानसिंह ॥१६॥

इस प्रकार ज्ञानकीर्तिका यह काव्य काव्यगुणोसे युक्त होनेके कारण जनप्रिय है।

धर्मधर

कवि धर्मधर इक्ष्वाकुवशमे समुत्पन्न गोलाराडान्वयी साहू महादेवके प्रपुत्र और आशपालके पुत्र थे। इनकी माताका नाम हीरादेवी था। विद्याधर और देवधर धर्मधरके दो भाई थे। प० धर्मधरकी पत्नीका नाम नन्दिका था। नन्दिकासे दो पुत्र और तीन पुत्रियाँ उत्पन्न हुई थीं। पुत्रोका नाम पराशर और मनसुख था।

कविने सस्कृतमे 'नागकुमारचरित' की रचना की। इस चरित-काव्यके आरम्भमे मूलसघ सरस्वतीगच्छके भट्टारक पद्मनन्दी, शुभचन्द्र और जिनचन्द्र-का उल्लेख किया गया है। लिखा है

भद्रे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाभिधो गुरु ।
तदाम्नाये गणी जात॰ पद्मनन्दी यतीश्वर ॥ ५ ॥
तत्पट्टे शुभचन्द्रोऽभूज्जिनचन्द्रस्ततोऽजनि ।
नत्वा तान् सद्गुरून् भक्त्या करिष्ये पचमीकथा ॥ ६ ॥
शुभां नागकुमारस्य कामदेवस्य पावनी ।
करिष्यामि समासेन कथा पूर्वानुसारत ॥ ७ ॥

अतएव स्पष्ट है कि कवि मूलसघ सरस्वतीगच्छका अनुयायी था।

स्थितिकाल

कविने नागकुमारचरितका रचनाकाल ग्रन्थकी प्रशस्तिमे दिया है। इस

प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि वि० सं० १५११ मे श्रावणशुक्ला पूर्णिमा सोमवारके दिन इस ग्रन्थको लिखा है

व्यतीते विक्रमादित्ये रुद्रेषु शशिनामनि ।
श्रावणे शुक्लपक्षे च पूर्णिमाचन्द्रवासरे ॥ ५३ ॥

कविने नागकुमारचरित यदुवंशी लम्बकचुकगोत्री साहू नल्हूकी प्रेरणासे रचा है। साहू नल्हू चन्द्रपाट या चन्द्रपाड नगरके दत्तपल्लीके निवासी थे। नल्हू साहूके पिताका नाम धनेश्वर या धनपाल था, जो जिनदासके पुत्र थे। जिनेदासके चार पुत्र थे शिवपाल, जयपाल, धनपाल, द्युद्पाल। नल्हू साहूकी माताका नाम लक्षणश्री था। उस समय चौहानवंशी राजा भोजराजके पुत्र माधवचन्द्र राज्य कर रहे थे। धनपाल मन्त्री पदपर प्रतिष्ठित था साहू नल्हूके भाईका नाम उदयसिंह था। साहू नल्हू भी राज्य द्वारा सम्मानित थे। इनकी दो पत्नियाँ थी दूमा और यशोमती। तेजपाल, विजयपाल, चन्दनसिंह और नरसिंह ये चार पुत्र थे। इस प्रकार साहू नल्हू सपरिवार धर्मसाधना करते थे।

नागकुमारचरितकी प्रशस्तिमे साहू नल्हूके समान ही चौहानवंशी राजाओंका परिचय प्राप्त होता है। सारंगदेव और उनके पुत्र अभयपालका निर्देश आया है। अभयपालका पुत्र रामचन्द्र था, जिसका राज्य वि० स० १४४८ मे विद्यमान था। रामचन्द्रके पुत्र प्रतापचन्द्रके राज्यमें रइधूने ग्रन्थ-रचना की है। प्रतापचन्द्रका दूसरा भाई रणसिंह था। इनका पुत्र भोजराज हुआ। भोजराजकी पत्नीका नाम शीलादेवी था। इसके गर्भसे माधवचन्द्र नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। इस माधवचन्द्रके कनकसिंह और नृसिंह दो भाई थे। माधवचन्द्रके राज्यकालमे ही कवि धर्मधरने नागकुमारचरितकी रचना की है। माधवचन्द्रका राज्यकाल वि० स० की १६ वी शती है। अत कवि धर्मधरका समय नागकुमारकी प्रशस्तिमे उल्लिखित पुष्ट होता है।

रचनाएँ

कवि धर्मधरकी दो रचनाएँ उल्लिखित मिलती है श्रीपालचरित और नागकुमारचरित। पुण्यपुरुष श्रीपालकी कथा बहुत ही प्रसिद्ध रही है। इस कथाका आधार ग्रहण कर विभिन्न भाषाओमे काव्य लिखे गये।

नागकुमार चरितकी रचना धर्मधरने अपभ्रशके महाकवि पुष्पदन्तके 'णायकुमारचरिउ' के आधार पर की है। ग्रन्थके परिच्छेदके अन्तमे पुष्पिकावाक्य निम्न प्रकार मिलता है

'इति श्रीनागकुमारकामदेवकथावतारे शुक्लपंचमीव्रतमाहात्म्ये साधुनल्हूकारापिते पण्डितागपालात्मजधर्मधरविरचिते श्रेणिकमहाराजसमवसरणप्रवेशवर्णनो नाम प्रथम परिच्छेद समाप्तः।'

नागकुमारचरित सरल और बोधगम्य शैलीमे लिखा गया काव्य है। इसका काव्य और इतिहासकी दृष्टिसे अधिक मूल्य है।

गुणभद्र द्वितीय

गुणभद्र नामके कई जैनाचार्य हुए हैं। सेनसघी जिनसेन स्वामीके शिष्य और उत्तरपुराणके रचयिता प्रथम गुणभद्र हैं और प्रस्तुत धन्यकुमारचरितके कर्त्ता द्वितीय गुणभद्र हैं। द्वितीय गुणभद्रके सम्बन्धमे कहा जाता है कि वे माणिक्यसेनके प्रशिष्य और नेमिसेनके शिष्य थे। ये सिद्धान्तके विद्वान् थे। मिथ्यात्व तथा कामके विनाशक और स्याद्वादरूपी रत्नभूषणके धारक थे। इन्होने राजा परमार्दिके राज्यकालमे विलासपुरके जैन मन्दिरमे रहकर लम्बकचुक वशके महामना साहू शुभचन्द्रके पुत्र वल्हणके धर्मानुरागसे धन्यकुमारचरितकी रचना की थी।

ग्रन्थकी प्रशस्तिमे परमार्दिका नाम आता है। डा० ज्योतिप्रसादजीने परमार्दिका निर्णय करते हुए लिखा है "दसवी-चौदहवी शतीके बीच दक्षिण भारतमे गग, पश्चिमी चालुक्य, कलचुरी परमार आदि अनेक वशोके किन्ही-किन्ही राजाओका उपनाम या उपाधि पेर्मांडि, पेम्र्मडि, पेर्मावडि, पेर्माडिदेव, पेम्र्मडिराय आदि किसी-न-किसी रूपमे मिलता है, किन्तु 'परमार्दिन' रूपमे कही नही मिलता। उत्तर भारतमे महोबेके चन्देलोमे चन्देल परमाल एक प्रसिद्ध नरेश हुआ है। वह दिल्ली, अजमेरके पृथ्वीराज चौहानका प्रबल प्रतिद्वन्द्वी था और सन् ११८२ ई० मे उसके हाथो पराजित भी हुआ था। ११६७ ई० से बुन्देलखण्डके जैन शिलालेखोमे इस राजाका नामोल्लेख मिलने लगता है और १२०३ ई० मे उसकी मृत्यु हुई मानी जाती है। यह राजा चन्देलनरेश मदन वर्मदेवका पौत्र एव उत्तराधिकारी था। इसके पिताका नाम पृथ्वीवर्मदेव था और उसके उत्तराधिकारीका नाम त्रैलोक्यवर्मदेव था। इसके अपने शिलालेखोमे इसका नाम 'परमार्दिदेव' या 'परमार्दि' दिया है, जो कि धन्यकुमारचरितमे उल्लिखित 'परमार्दिन' से भिन्न प्रतीत नही होता।"[1]

इस उद्धरणसे यह स्पष्ट है कि गुणभद्रने धन्यकुमारचरितकी रचना चन्देल-परमारके राज्यमे १२ वी या १३ वी शतीमे की होगी। विचारके लिए जब माणिक्यसेन और नेमिसेनके सेनसघी नामोको लिया जाता है तो एक ही माणिकसेनके शिष्य नेमिसेन मिलते हैं, जिनका निर्देश शक स० १५१५ के प्रतिमालेखमे पाया जाता है। सम्भवत ये कारजाके सेनसघी भट्टारक थे।

१ जैन सन्देश, शोधाक ८, २८ जुलाई १९६०, पृ० २७५।

अतः धन्यकुमार चरितके रचयिता गुणभद्र और उनके गुरु प्रगुरु भट्टारक नही थे।

बिजौलिया-अभिलेखके रचयिता गुणभद्र भी स्वयको महामुनि कहते हैं। ११४२ ई० के एक चालुक्य-अभिलेखमे किन्ही वीरसेनके शिष्य एक माणिक्य-सेनका उल्लेख मिलता है। सभव है उनके कोई शिष्य नेमिसेन रहे हो, जिनके शिष्य बिजौलिया-अभिलेखके रचयिता गुणभद्र हो।

ई० सन् १३७८ मे रचित जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदयमे अय्यपार्यने एक पूर्ववर्ती प्रतिष्ठाशास्त्रकारके रूपमे गुणभद्रका उल्लेख किया है। सभव है कि बिजौ-लियामे मन्दिरप्रतिष्ठा करानेवाले यह आचार्य गुणभद्र ही अय्यपार्य द्वारा अभिप्रेत हो। अतएव धन्यकुमारचरितकी रचना महोबेके चन्देलनरेश परमादि-देवके शासनकालमे की गई होगी। बिजौलिया-अभिलेखके रचयितासे इनकी अभिन्नता मालूम पडती है।

धन्यकुमारचरितकी प्रशस्ति वि० स० १५०१ की लिखी हुई है। अत. धन्यकुमारचरितका रचनाकाल इसके पूर्व होना चाहिए।

ललितपुरके पास मदनपुरसे प्राप्त होनेवाले एक अभिलेखमे बताया गया है कि ई० सन् ११८२ वि० स० १२३९ मे महोबाके चन्देलवशी राजा परमादि-देवपर सोमेश्वरके पुत्र पृथ्वीराजने आक्रमण किया था। बहुत सभव है कि इसका राज्य विलासपुरमे रहा हो। अतएव धन्यकुमारचरितकी रचनाकाल वि० की १३वी शती होना चाहिए।

धन्यकुमारचरितकी कथावस्तु ७ परिच्छेदो या सर्गोमे विभक्त है। और इसमे पुण्यपुरुष धन्यकुमारके आख्यानको प्राय अनुष्टुपछन्दोमे लिखा है। पुष्पिकावाक्यमे लिखा है

'इति धन्यकुमारचरिते तत्त्वार्थभावनाफलदर्शके आचार्यश्रीगुणभद्रकृते भव्य-वल्हण-नामाङ्किते धन्यकुमारशालिभद्रयति-सर्वार्थसिद्धिगमनो नाम सप्तम: परिच्छेद ।'

श्रीधरसेन

श्रीधरसेन कोष-साहित्यके रचयिताके रूपमे प्रसिद्ध हैं। इनका विश्वलोचन कोष प्राप्त है। इस कोषका दूसरा नाम मुक्तावली-कोष है। कोषके अन्तमे एक प्रशस्ति दी हुई है, जिससे श्रीधरसेनकी गुरुपरम्पराके सम्बन्धमे जानकारी प्राप्त होती है

सेनान्वये सकलसत्त्वसमर्पितश्री
श्रीमानजायत कविर्मुनिसेननामा ।
आन्वीक्षिकी सकलशास्त्रमयी च विद्या
यस्यास वादपदवी न दवीयसी स्यात् ॥ १ ॥
तस्मादभूदखिलवाङ्मयपारदृश्वा
विश्वासपात्रमवनीतलनायकानाम् ।
श्रीश्रीधरः सकलसत्कविगुम्फितत्त्व-
पीयूषपानकृतनिर्जरभारतीक ॥ २ ॥
तस्यातिशायिनि कवे. पथि जागरूक-
धीलोचनस्य गुरुशासनलोचनस्य ।
नानाकवीन्द्ररचितानभिधानकोशा-
नाकृष्य लोचनमिवायमदीपि कोश ॥ ३ ॥
साहित्यकर्मकविताागमजागरूकै-
रालोकित पदविदां च पुरे निवासी ।
वर्त्मन्यधीत्य मिलित प्रतिभान्विताना
चेदस्ति दुर्जनवचो रहित तदानीम् ॥ ४ ॥

अर्थात् कोशकी प्रशस्तिके अनुसार इनके गुरुका नाम मुनिसेन था, ये सेनसघके आचार्य थे । इन्हें कवि और नैयायिक कहा गया है । श्रीधरसेन नाना शास्त्रोके पारगामी और बडे-बड़े राजाओ द्वारा मान्य थे । सुन्दरगणिने अपने धातुरत्नाकरमे विश्वलोचनकोशके उद्धरण दिये हैं और धातुरत्नाकरका रचनाकाल ई० १६२४ है, अत श्रीधरसेनका समय ई० १६२४ के पहले अवश्य है । विक्रमोर्वशीय पर रगनाथने ई० १६५६ मे टीका लिखी है । इस टीकामे विश्वलोचनकोशका उल्लेख किया गया है । अत यह सत्य है कि विश्वलोचनकी रचना १६वी शताब्दीके पूर्व हुई होगी । शैलीकी दृष्टिसे विश्वलोचनकोश पर हैम, विश्वप्रकाश और मेदिनी इन तीनो कोशोका प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है । विश्वप्रकाशका रचनाकाल ई० ११०५, मेदिनीका समय इसके कुछ वर्ष पश्चात् अर्थात् १२वी शतीका उत्तरार्द्ध और हेमका १२वी शतीका उत्तरार्द्ध है । अत विश्वलोचनकोशका समय १३वी शतीका उत्तरार्ध या १४वी का पूर्वार्ध मानना उचित होगा ।

इस कोशमे २४५३ श्लोक हैं । स्वरवर्ण और ककार आदिके वर्णक्रमसे शब्दोका सकलन किया गया है । इस कोशकी विशेषताके सबधमे इसके सपादक श्रीनन्दलाल शर्माने लिखा है "सस्कृतमे कई नानार्थ कोश हैं, परन्तु जहाँ तक

हम जानते है, कोई भी इतना वडा और इतने अधिक अर्थोको वतलानेवाला नही है। इसमे एक-एक शब्दको लीजिये जहाँ अमरमे इसके चार व मेदिनीमे दश अर्थ वतलाये गये हैं, वहाँ इसमे १२ अर्थ वतलाये गये है, यही इस कोशकी विशेषता है।"

नागदेव

नागदेव संस्कृतके अच्छे कवि और गद्यकार है। इन्होने 'मदनपराजय' ग्रन्थके आरम्भमे अपना परिचय दिया है। वताया है कि पृथ्वी पर पवित्र रघुकुलरूपी कमलको विकसित करनेके लिये सूर्यके समान चंगदेव हुआ। चंगदेव कल्पवृक्षके समान याचकोके मनोरथको पूर्ण करनेवाला था। इसका पुत्र हरिदेव हुआ। हरिदेव दुर्जन कवि-हाथियोके लिये सिंहके समान था। हरिदेवका पुत्र नागदेव हुआ, जिसकी प्रसिद्धि इस भूतलपर महान् वैद्यराजके रूपमे थी।

नागदेवके हेम और राम नामक दो पुत्र हुए। ये दोनो भाई भी अच्छे वैद्य थे। रामके प्रियंकर नामक एक पुत्र हुआ, जो अर्थियोके लिये वडा प्रिय था। प्रियंकरके भी श्री मल्लुगित् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। श्री मल्लुगित् जिनेन्द्र भगवान्के चरणकमलके प्रति उन्मत्त भ्रमरके समान अनुरागी था और चिकित्साशास्त्रसमुद्रमे पारगत था।

मल्लुगित्का पुत्र मैं नागदेव हूँ। मैं अल्पज्ञ हूँ। छन्द, अलंकार, काव्य और व्याकरणशास्त्रका भी मुझे परिचय नही है।[1]

इस प्रशस्तिसे स्पष्ट है कि नागदेव सारस्वतकुलमे उत्पन्न हुआ था और उसके परिवारके सभी व्यक्ति चिकित्साशास्त्र या अन्य किसी शास्त्रसे परिचित थे।

१ य शुद्धरामकुलपद्मविकासनार्को
जातोऽर्थिना सुरतरुर्भुवि चङ्गदेव ।
तन्नन्दनो हरिरसत्कविनागसिंह
तस्माद्भिषड्जनपतिर्भुवि नागदेव ॥ २ ॥
तज्जावुभौ सुभिषजाविह हेमरामौ
रामात्प्रियंकर इति प्रियदोऽर्थिना य ।
तज्जश्चिकित्सितमहाम्बुधिपारमास
श्रीमल्लुगिज्जिनपदाम्बुजमत्तभृङ्ग ॥ ३ ॥
तज्जोऽहं नागदेवाख्य स्तोकज्ञानेन संयुत ।
छन्दोऽलंकारकाव्यानि नाभिधानानि वेद्म्यहम् ॥ ४ ॥

स्थितिकाल

नागदेवने 'मदनपराजय'की रचना कब की, इसका निर्देश कही नही मिलता है। 'मदनपराजय' पर आशाधरका प्रभाव दिखलाई पडता है तथा ग्रन्थकर्त्ताने स्वय इस बातको स्वीकार किया है कि हरदेवने अपभ्रशमे 'मदनपराजय' ग्रथ लिखा है उसी ग्रन्थके आधारपर सस्कृत-भाषामे 'मदनपराजय' लिखा गया है। अत हरदेवके पश्चात् ही नागदेवका समय होना चाहिए। हरदेवने भी 'मयणपराजउ'का रचनाकाल अकित नही किया है। इस ग्रन्थको आमेर भडारकी पाण्डुलिपि वि० स० १५७६ की लिखी हुई है। अत हरदेवका समय इसके पूर्व सुनिश्चित है। साहित्य, भाषा एव प्रतिपादन शैलीकी दृष्टिसे 'मयणपराजउ'का रचनाकाल १४ वी शती प्रतीत होता है। अतएव नागदेवका समय १४वी शतीके लगभग होना चाहिए। यदि आशाधरके प्रभावको नागदेवपर स्वीकार किया जाय, तो इनका समय १४वी शतीका पूर्वार्द्ध सिद्ध होता है। यत. आशाधरने 'अनगारधर्मामृत'की टीका वि० स० १३०० मे समाप्त की थी। इस दृष्टिसे नागदेवका समय वि० की १४ वी शती माना जा सकता है। नागदेवने अपने ग्रन्थमे अनेक ग्रन्थोके उद्धरण प्रस्तुत किये है। इन उद्धरणोके अध्ययनसे भी नागदेवका समय १४ वी शती आता है। 'मदनपराजय'की जो पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं उनमे एक प्रति भट्टारक महेन्द्रकीर्त्तिके शास्त्रभण्डार आमेर की है। यह प्रति वि० स० १५७३ मे सूर्यसेन नरेशके राज्यकालमे लिखी गई है। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमे बताया है कि मूलसंघ कुन्दकुन्दाचार्यके आम्नाय तथा सरस्वतीगच्छमे जिनेन्द्रसूरिके पट्टपर प्रभाचन्द्र भट्टारक हुए, जिनके आम्नायवर्ती नरसिहके सुपुत्र होलाने यह प्रति लिखकर किसी व्रती पात्रके लिये समर्पित की। नरसिह खण्डेलवासके निवासी पाम्पल्य कुलके थे। इनकी पत्नीका नाम मणिका था। दोनोके होला नामक पुत्र था, जिसकी पत्नीका नाम वाणभू था। होलाके बाला और पर्वत नामक दो भाई थे और इस प्रतिको लिखानेमे तथा व्रतीके लिए समर्पण करनेमे इन दोनो भाइयोका सहयोग था। इस लेखसे यह भी प्रतीत होता है कि बाला की पत्नीका नाम धान्या था। और इसके कुम्भ और बाहू नामक दो पुत्र भी थे।

इस पाण्डुलिपिके अवलोकनसे इतना स्पष्ट है कि नागदेवका समय वि० स० १५७३ के पूर्व है। अतएव सक्षेपमे ग्रन्थके अध्ययनसे नागदेवका समय आशाधरके समकालीन या उनसे कुछ ही बाद होना चाहिए। नागदेव बडे ही प्रतिभाशाली और सफल काव्यलेखक थे।

'मदनपराजय'के पुष्पिका-वाक्योंमे लिखा मिलता है इति "ठाकुरमाइन्द-

देवस्तुतजिन (नाग) देवविरचिते स्मरपराजये संस्कृतबन्धे श्रुताववस्थानाम-प्रथमपरिच्छेदः" ।

ठाकुर माइन्ददेव और जिनदेवको किस प्रकार इस ग्रन्थका कर्त्ता बतलाया गया है । श्री जैनसिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था कलकत्तासे प्रकाशित और श्री प० राजाधरलालजी न्यायतीर्थ द्वारा अनूदित 'मकरध्वजपराजय'के परिच्छेदके अन्तमे भी मदनपराजयके कर्त्ताको ठाकुर माइन्ददेवसुत जिनदेव सूचित किया गया है । यो तो मदनपराजयके प्रारम्भमे ही नागदेवने अपने पिताका नाम मल्लुगित बताया है । नागदेवसे पूर्व छठी पीढीमे हुए हरदेवने 'मदनपराजय' को अपभ्रशमे लिखा है । श्री डा० हीरालालजीने अपने एक निबन्धमे लिखा है—"इस काव्यका ठाकुर मयन्ददेवके पुत्र जिनदेवने अपने स्मरपराजयमे परिवर्द्धन किया, ऐसा प्रतीत होता है"[1], पर जबतक 'मदनपराजय' और 'स्मरपराजय' ये दोनो रचनाएँ स्वतन्त्र रूपसे उपलब्ध नही होती है तब तक यह केवल अनुमानमात्र है । हमारा अनुमान है कि नागदेवने 'मदनपराजय'को ही स्मर-पराजय, मारपराजय और जिनस्तोत्रके नामसे अभिहित किया है । अतएव नागदेवका ही अपरनाम जिनदेव होना चाहिए ।

रचना

नागदेव द्वारा रचित मदनपराजय प्राप्त होता है । सम्यक्त्वकौमुदी और मदनपराजयमे भाषासाम्य, शैलीसाम्य और ग्रन्थोद्धृत पद्यसाम्य होनेसे सम्यक्त्वकौमुदीके रचयिता भी नागदेव अनुमानित किये जा सकते है, पर यथार्थत नागदेवका एक ही ग्रन्थ मदनपराजय उपलब्ध है ।

'मदनपराजय'मे रूपकशैली द्वारा मदनके पराजित होनेको कथा वर्णित है । यह कथा रूपकशैलीमे लिखी गई है । बताया है कि भवनामक नगरमे मकरध्वज नामक राजा राज्य करता था । एक दिन उसकी सभामे शल्य, गारव, कर्मदण्ड, दोष और आश्रव आदि सभी योद्धा उपस्थित थे । प्रधान सचिव मोह भी वर्त्तमान था । मकरध्वजने वार्त्तालापके प्रसगमे मोहसे किसी अपूर्व समाचार सुनानेकी बात कही । उत्तरमे उसने मकरध्वजसे कहा राजन् आज एक ही नया समाचार है और वह यह है कि जिनराजका बहुत ही शीघ्र मुक्ति-कन्याके साथ विवाह होने जा रहा है । मकरध्वजने अबतक जिनराजका नाम नही सुना था और मुक्तिकन्यासे भी उसका कोई परिचय नही था । वह जिनराज और मुक्तिकन्याका परिचय प्राप्तकर आश्चर्यचकित हुआ ।

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५० अक ३, ४ पृ० १२१ ।

वह मुक्ति कन्याका वर्णन सुनते ही उसपर मुग्ध हो गया और उसने विचार व्यक्त किया कि सग्रामभूमिमे जिनराजको परास्त कर वह स्वय ही उसके साथ विवाह करेगा। मोहने नीतिकौशलसे उसे अकेले सग्रामभूमिमे उतरनेसे रोका। मकरध्वजने मोहकी बात मान ली। किन्तु उसने मोहको आज्ञा दी कि वह जिनराजपर चढाई करनेके लिए शीघ्र ही अपनी समस्त सेना तैयार करके ले आये।

मकरध्वजकी रति और प्रीति नामक दो पत्नियाँ थी। उसने रतिको मुक्ति-कन्याको मकरध्वजके साथ विवाह करानेके हेतु समझानेको भेजा। मार्गमे मोहकी रतिसे भेंट हुई। मोहने रतिको लौटा दिया और मकरध्वजको बुरा-भला कहा। मोहकी सम्मतिके अनुसार मकरध्वजने राग-द्वेष नामके दूतोको जिनराजके पास भेजा। दूतोने जिनराजकी सभामे जाकर मकरध्वजका सदेश सुनाया। वे कहने लगे कि मकरध्वजका आदेश है कि आप मुक्ति-कन्याके साथ विवाह न करें और आप अपने तीनो रत्न महाराज मकरध्वजको भेंट कर दें और उनकी अधीनता स्वीकार कर लें। जिनराजने मकरध्वजके प्रस्तावको स्वीकार नही किया। जब राग-द्वेष बढ-बढकर बातें करने लगे, तो सयमने उन्हे चाँटा लगाकर उन्हे सभासे अलग कर दिया। सयमसे अपमानित होकर राग-द्वेष मकरध्वजके पास आ गये। मकरध्वज जिनेन्द्रके समाचारको सुनकर उत्तेजित हुआ। उसने अन्यायको बुलाकर अपनी सेनाको तैयार करनेका आदेश दिया। जिनराजकी सेना सवेगकी अध्यक्षतामे तैयार होने लगी। मकरध्वजने बहिरात्माको जिनराजके पास भेजा और क्रोध, द्वेष आदिने वीरता-पूर्वक सवेग, निर्वेदके साथ युद्ध किया। जिनराजने शुक्लध्यानरूपी वीरके द्वारा कर्म-धनुषको तोडकर मुक्ति-कन्याको प्रसन्न किया। मकरध्वजकी समस्त सेना छिन्न-भिन्न हो गई और मुक्तिश्रीने जिनराजका वरण किया।

इस रूपक काव्यमे कवि नागदेवने अपनी कल्पनाका सूक्ष्म प्रयोग किया है। इस संदर्भमे कविने मुक्ति-कन्याका जैसा हृदयग्राही चित्रण किया है वैसा अन्यत्र मिलना दुष्कर है।

अलकार, रस और भाव सयोजनकी दृष्टिसे भी यह काव्य कम महत्त्वपूर्ण नही है।

पंडित वामदेव

प० वामदेव मूलसंघके भट्टारक विनयचन्द्रके शिष्य त्रैलोक्यकीर्तिके प्रशिष्य और मुनि लक्ष्मीचन्द्रके शिष्य थे। प० वामदेवका कुल नैगम था। नैगम या

निगम कुल कायस्थोंका है। इससे स्पष्ट है कि प० वामदेव कायस्थ थे। वामदेव प्रतिष्ठादि कर्मकाण्डोके ज्ञाता और जिनभक्तिमे तत्पर थे।[1]

इन्होने नेमिचन्द्र सिद्धान्तिचक्रवर्तीके त्रिलोकसारको देखकर त्रैलोक्यदीपक ग्रथकी रचना की है। इस ग्रन्थकी रचनामे प्रेरक पुरवाड वंशके कामदेव प्रसिद्ध थे। उनकी पत्नीका नाम नामदेवी था, जिसने राम-लक्ष्मणके समान जोमन और लक्ष्मण नामक दो पुत्र उत्पन्न किये थे। इनमे जोमनका पुत्र नेमिदेव नामका था, जो गुणभूषण और सम्यक्त्वसे विभूषित था। वह बडा उदार, न्यायी और दानी था। कामदेवकी प्रार्थनासे ही त्रैलोक्यदीपककी रचना सम्पन्न हुई है।

स्थितिकाल

पं० वामदेवका स्थितिकाल निश्चितरूपसे नही बतलाया जा सकता है। त्रैलोक्यदीपक ग्रन्थकी एक प्राचीन प्रति वि० सं० १४३६मे फिरोजशाह तुगलकके समय योगिनीपुर (दिल्ली)मे लिखी गई मिली है। यह प्रति अतिशय-क्षेत्र महावीरजीके शास्त्र-भण्डारमे विद्यमान है, जिससे इस ग्रन्थका रचनाकाल वि० स० १४३६के बाद नही हो सकता है। बहुत सभव है कि पं० वामदेव वि० स० १४३६के आस-पास जीवित रहे हों। अतएव वामदेवका समय वि० की १५वी शती है।

रचनाएँ

प० वामदेवकी दो रचनाएँ 'त्रैलोक्यदीपक' और 'भावसग्रह' उपलब्ध हैं। 'भावसग्रह'मे ७८२ पद्य है। इस ग्रन्थके अन्तमे प्रशस्ति भी दी हुई है। इस प्रशस्तिके आधारपर प० वामदेवके गुरु मुनि लक्ष्मीचन्द्र थे।

'भावसग्रह'की रचना देवसेनके प्राकृत भावसग्रहके आधारपर ही हुई

१. भूयाद्भव्यजनस्य विश्वमहित श्रीमूलसघ श्रिये
यत्राभूद्विनयेन्दुरद्भुतगुण. सच्छीलदुग्धार्णव ।
तच्छिष्योऽजनि भद्रमूर्तिरमलस्त्रैलोक्यकीर्ति. शशी ।
येनैकान्तमहातम प्रशमितं स्याद्वादविद्याकरै. ॥७७९॥

× × × ×

तच्छिष्य क्षितिमण्डले विजयते लक्ष्मीन्दुनामा मुनि ॥७८०॥
श्रीमत्सर्वज्ञपूजाकरणपरिणतस्तत्त्वचिन्तारसालो
लक्ष्मीचन्द्राघ्रिपद्मभमधुकर. श्रीवामदेव सुधी ।
उत्पत्तिर्यस्य जाता शशिविशदकुले नैगमश्रीविशाले
सोऽय जीव्यात्प्रकाम जगति रसलसद्भावशास्त्रप्रणेता ॥७८१॥

प्रतीत होती है। यह प्राकृत भावसग्रहका संस्कृत अनुवाद प्रतीत होता है। यद्यपि वामदेवने स्थान-स्थानपर परिवर्त्तन, परिवर्द्धन और संशोधन भी किये हैं। पर यह स्वतंत्र ग्रथ नही है। यह देवसेन द्वारा रचित भावसग्रहका रूपान्तर मात्र है। वामदेवने 'उक्तं च' कहकर ग्रन्थान्तरोके उद्धरण भी प्रस्तुत किये हैं। गीताके उद्धरण कई स्थलोपर प्राप्त होते हैं। वैदिकपुराणोसे भी उद्धरण ग्रहण किये गये हैं। नित्यैकान्त, क्षणिकैकान्त, नास्तिकवाद, वैनेयकमिथ्यात्व, अज्ञान, केवलि-भुक्ति, स्त्री-मोक्ष, सग्रथ-मोक्षकी समीक्षाके पश्चात् १४ गुण-स्थानोका स्वरूप और ११ प्रतिमाओके लक्षण प्रतिपादित किये गये हैं। इज्या, दत्ति, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, सयम, तप आदिका कथन आया है।

भावसग्रहके अतिरिक्त वामदेवके द्वारा रचित निम्नलिखित ग्रन्थ और भी मिलते हैं

१. प्रतिष्ठासूक्तिसंग्रह	२ तत्त्वार्थसार
३. त्रैलोक्यदीपक	४ श्रुतज्ञानोद्यापन
५ त्रिलोकसारपूजा	६ मन्दिरसस्कारपूजा

पं० मेधावी और उनकी रचना

मेधावीके गुरुका नाम जिनचन्द्र सूरि था। इन्होने 'धर्मसग्रह-श्रावकाचार' नामक ग्रथकी रचना हिसार नामक नगरमे प्रारभ की थी और उसकी समाप्ति नागपुरमे हुई। उस समय नागपुर पर फिरोजशाहका शासन था। मेधावीने 'धर्मसग्रहश्रावकचार'के अन्तमे प्रशस्ति अकित की है, जिसमे बताया है कि कुन्द-कुन्दके आम्नायमे पवित्र गुणोके धारक स्याद्वादविद्याके पारगामी पद्मनन्दि आचार्य हुए। इन पद्मनन्दिके पट्टपर द्रव्य और गुणोके ज्ञाता शुभचन्द्र मुनि-राज हुए। इन शुभचन्द्र मुनिराजके पट्टपर श्रुतमुनि हुए। इन श्रुतमुनिसे मेधावीने अष्टसहस्री ग्रथका अध्ययन किया। जिनचन्द्रके शिष्योमे रत्नकीर्त्ति-का भी नाम आया है। मेधावी श्रावकाचारके अद्वितीय पडित थे। इन्होने समन्तभद्र, वसुनन्दि और आशाधर इन तीनो आचार्योंके श्रावकाचारोका अध्ययन कर धर्मसग्रह श्रावकाचारकी रचना की है। मेधावीने ग्रथरचना-कालका निर्देश कर अपने समयकी सूचना स्वय दे दी है। बताया है

सपादलक्षे विषयेऽतिसुन्दरे
श्रिया पुर नागपुर समस्ति तत्।
पेरोजखानो नृपति प्रपाति स-
न्यायेन शौर्येण रिपून्निहन्ति च ॥ १८॥

× × ×

मेधाविनामा निवसन्नहं बुध·
पूर्णं व्यधां ग्रन्थमिमं तु कार्त्तिके।
चन्द्राब्धिबाणैकमितेऽत्र (१५४१) वत्सरे
कृष्णे त्रयोदश्यहनि स्वशक्तितः ॥ २१ ॥

वि० सं० १५४१ कार्त्तिक कृष्णा त्रयोदशीके दिन धर्मसंग्रहश्रावकाचारकी समाप्ति हुई है। इस प्रकार मेधावीने ग्रंथरचनाका समय सूचित कर अपने समयका निर्देश कर दिया है। अतएव कविका समय वि० की १६वी शती है।

कविका एक ही ग्रन्थ उपलब्ध है- धर्मसंग्रहश्रावकाचार। इस श्रावकाचारमे १० अधिकार हैं। प्रथम अधिकारमे श्रेणिक द्वारा गौतम गणधरसे श्रावकाचार सम्बन्धी प्रश्न पूछना और गौतमका उत्तर देना वर्णित है। इस अधिकारमे प्रधानत राजगृहके विपुलाचल पर्वत पर तीर्थंकर महावीरके समवशरणका वर्णन आया है और उसका द्वितीय अधिकारमें विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। मानस्तभ, वीथियों, गोपुर, वप्र, प्राकार, तोरण आदि भी इसी अधिकारमे वर्णित हैं। तृतीय अधिकारमे श्रेणिक महाराजका समवशरणमे पहुँचकर अपने कक्षमे बैठना एव महावीरकी दिव्यध्वनिका खिरना वर्णित है। चतुर्थ अधिकारमें सम्यग्दर्शनका निरूपण आया है। सम्यग्दर्शनको ही धर्मका मूल बतलाया है। जब तक व्यक्तिकी आस्था धर्मोन्मुख नही होती तब तक वह अपनी आत्माका उत्थान नही कर सकता। अत· मेधावीने सम्यग्दर्शनके साथ अष्टमूलगुण, द्वादश प्रतिमाएँ, सात तत्त्व, नव पदार्थ आदिका कथन किया है। इसी प्रसगमे ३६३ मिथ्यावादियोकी समीक्षा भी की गई है। चतुर्थ अधिकारका ८१वां पद्य आशाधरके सागारधर्मामृतके प्रथम अध्यायके १३वें पद्यसे बिल्कुल प्रभावित है। ऐसा प्रतीत होता है कि मेधावीने चतुर्थ अध्यायके ७७, ७८ और ७९वे पद्य भी आशाधरके सागारधर्मामृतके अध्ययनके पश्चात् ही लिखे है। पंचम अधिकारमे दर्शन-प्रतिमाका वर्णन किया गया है और प्रसगवश मद्य, मांस और मधुके त्याग पर जोर दिया गया है। नवनीत, पंचउदुम्बरफल, अभक्ष्यभक्षण, द्यूतक्रीडाके त्यागका भी निर्देश किया गया है। षष्ठ अधिकारमे पंचाणुव्रतोका स्वरूप आया है और सप्तममे सात शीलोका वर्णन किया है। अष्टम अधिकारमे सामायिकादि दश प्रतिमाओका वर्णन किया गया है। नवम अधिकारमें ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और उत्सर्ग इन पाँच समितियोंके स्वरूपवर्णनके पश्चात् नैष्ठिक श्रावकके लिए विधेय कर्त्तव्योपर प्रकाश डाला गया है। इस अधिकारमे संयम, दान, स्वाध्याय सल्लेखनाका भी वर्णन आया है। दशम अधिकारमे विशेष रूपसे समाधिमरणका कथन किया गया है।

जो साधक अपनी मृत्युके समयको शान्तिपूर्वक सिद्ध कर लेता है वह सद्गति लाभ करता है। इस प्रकार मेधावीने धर्मसंग्रहश्रावकाचारकी रचना कर श्रावकाचारको संक्षेपमे बतलानेका प्रयास किया है। इस ग्रन्थका प्रकाशन बाबू सूरजभान वकील देवबन्द द्वारा १९१० में हो चुका है।

रामचन्द्र मुमुक्षु

रामचन्द्र मुमुक्षुने 'पुण्यास्रव-कथाकोश'की रचना की है। इस ग्रन्थकी पुष्पिकाओमे बताया गया है कि वे दिव्यमुनि केशवनन्दिके शिष्य थे। प्रशस्तिमे लिखा है

"यो भव्याब्जदिवाकरो यमकरो मारेभपञ्चाननो
नानादु.खविधायिकर्मकुभृतो वज्रायते दिव्यधी।
यो योगीन्द्रनरेन्द्रवन्दितपदो विद्यार्णवोत्तीर्णवान्
ख्यात. केशवनन्दिदेवयतिप श्रीकुन्दकुन्दान्वय ॥१॥
शिष्योऽभूत्तस्य भव्य. सकलजनहितो रामचन्द्रो मुमुक्षु-
र्ज्ञात्वा शब्दापशब्दान् सुविशदयशस. पद्मनन्द्याह्वयाद्वै।
वन्द्याद् वादीभसिहात् परमयतिपते सोऽव्यधाद्भव्यहेतो-
र्ग्रन्थ पुण्यास्रवाख्य गिरिसमितिमितै (५७) दिव्यपद्यै. कथार्थै. ॥२॥

अर्थात् आचार्य कुन्दकुन्दकी वशपरम्परामे दिव्यबुद्धिके धारक केशवनन्दि नामके प्रसिद्ध यतीन्द्र हुए। वे भव्यजीवरूप कमलोको विकसित करनेके लिए सूर्यसमान, सयमके परिपालक, कामदेवरूप, हाथीके नष्ट करनेमे सिहके समान पराक्रमी और अनेक दु खोंको उत्पन्न करनेवाले कर्मरूपी पर्वतके भेदनेके लिए कठोर वज्रके समान थे। बडे बडे ऋषि और राजा महाराजा उनके चरणोकी वन्दना करते थे। वे समस्त विद्याओमे निष्णात थे।

उनका भव्य शिष्य समस्त जनोके हितका अभिलाषी रामचन्द्र मुमुक्षु हुआ। उसने यशस्वी पद्मनन्दि नामक मुनिके पासमे शब्द और अपशब्दोको जानकर व्याकरणशास्त्रका अध्ययन करके कथाके अभिप्रायको प्रकट करनेवाले ५७ पद्यो द्वारा भव्यजीवोंके निमित्त इस पुण्यास्रव कथा ग्रन्थको रचा है। वे पद्मनन्दि मुनीन्द्र फैली हुई अतिशय निर्मल कीर्तिसे विभूषित, वन्दनीय एव वादीरूपी हाथियोको परास्त करनेके लिए सिहके समान थे। कुन्दकुन्दाचार्यकी इस वशपरम्परामे पद्मनन्दि त्रिरात्रिक हुए। वे देशीयगणमे मुख्य और सघके स्वामी थे। इसके पश्चात् माधवनन्दि पडित हुए, जो महादेवकी उपमाको धारण करते थे। इनसे सिद्धान्तशास्त्रके पारगत मासोपवासी गुणरत्नोसे विभूषित, पडितोमे प्रधान वसुनन्दि सूरि हुए। वसुनन्दिके शिष्य मौलिनामक गणी हुए।

ये निरन्तर भव्यजीवरूप कमलोंके प्रफुल्लित करनेमे सूर्यके समान तत्पर थे। ये देवोके द्वारा वन्दनीय थे।

उनके शिष्य मुनिसमूहके द्वारा वन्दनीय श्रीनन्दि सूरि हुए। उनकी कीर्ति चन्द्रमाके समान थी। वे ७२ कलाओमे प्रवीण थे। उन्होने अपने ज्ञानके तेजसे सभी दिशाओको आलोकित कर दिया था। श्रीनन्दि चार्वाक, बौद्ध, जैन, साख्य, शैव आदि दर्शनोके विद्वान् थे।

उपर्युक्त प्रशस्तिसे यह स्पष्ट है कि केशवनन्दि अच्छे विद्वान् थे और उन्हीके शिष्य रामचन्द्र मुमुक्षु थे। रामचन्द्रने महायशस्वी वादीभसिंह महामुनि पद्मनन्दिसे व्याकरण शास्त्रका अध्ययन किया था। कुछ विद्वानोका अभिमत है कि प्रशस्तिके अतिम छ पद्य पीछेसे जोडे गये हैं। ये प्रशस्ति पद्य ग्रंथका मूल भाग प्रतीत नही होते। यह सभव है कि इस प्रशस्तिमे उल्लिखित पद्मनन्दि रामचन्द्रके व्याकरणगुरु रहे हो। प्रशस्तिके आधारपर, पद्मनन्दि, माधवनन्दि, वसुनन्दि, मौली या मौनी और श्रीनन्दि आचार्य हुए है। सिद्धान्त-शास्त्रके ज्ञाता वसुनन्दि मूलाचारटीकाके रचयिता वसुनन्दि यदि है तो इनका समय १२३४ ई० के पूर्व होना चाहिए।

रामचन्द्र मुमुक्षु सस्कृत-भाषाके प्रौढ गद्यकार हैं। उन्होने सस्कृत और कन्नड दोनो भाषाओकी रचनाओका पुण्यास्रवकथाकोशके रचनेमे उपयोग किया है। कन्नड भाषाके अभिज्ञ होनेसे उन्हे दक्षिणका निवासी या प्रवासी माना जा सकता है। रामचन्द्रके इस कथाकोशसे यह स्पष्ट होता है कि रचयिताकी कृतिमे व्याकरण-शैथिल्य है। इनकी शैली और मुहावरोसे भी यही सिद्ध होता है।

स्थितिकाल

रामचन्द्र मुमुक्षुने अपने लेखनकालके सम्बन्धमे कुछ भी उल्लेख नही किया है। इनके स्थितिकालका निर्णय ग्रन्थोके उपयोगके आधारपर ही किया जा सकता है। इन्होने हरिवशपुराण, महापुराण और बृहद्कथाकोशका उपयोग किया है। हरिवशपुराणका समय ई० सन् ७८३, महापुराणका समय ई० सन् ८९७ और बृहद्कथाकोशका ई० सन् ९३१-३२ है। अतएव रामचन्द्रका समय ई० सन् की १०वी शताब्दीके पश्चात् है। रामचन्दकी कृतिके आधारसे कन्नड कवि नागराजने ई० सन् १३३१मे कन्नडचपूकी रचना की है। अतएव १३३१ के पूर्व इनका समय सभाव्य है। यदि प्रशस्तिमे उल्लिखित वसुनन्दि मूलाचारकी टीकाके रचयिता सिद्ध हो जायें, तो रामचन्द्रका समय १३वी शतीके मध्यका भाग होगा।

दूसरी बात यह है कि रत्नकरण्डके टीकाकार प्रभाचन्द्रने रामचन्द्रकी कथाएँ इस टीकामे ग्रहण की हैं तो रामचन्द्र प्रभाचन्द्रसे भी पूर्व सिद्ध होगे।

हमारा अनुमान है कि पुण्यास्रवकथाकोशके रचयिता केशवनन्दिके शिष्य रामचन्द्र आशाधरके समकालीन या उनसे कुछ पूर्ववर्त्ती हैं।

रचनाएँ

रामचन्द्र मुमुक्षुकी पुण्यास्रवकथाकोशके साथ शान्तिनाथचरित कृति भी बतलायी जाती है। पद्मनन्दिके शिष्य रामचन्द्र द्वारा रचित धर्मपरीक्षा ग्रन्थ भी सभव है। पुण्यास्रव ४५०० श्लोकोमे रचित कथा-ग्रन्थ है। इस ग्रन्थका साराश कविने ५७ पद्योमे निबद्ध किया है। आठ कथाये पूजाके फलसे, नौ कथाएँ पचनमस्कारके फलसे; ७ कथायें श्रुतोपयोगके फलसे, ७ कथाएँ शीलके फलसे सम्बद्ध; ७ कथाएँ उपवासके फलसे और १५ कथाएँ दानके फलसे सम्बद्ध हैं। शैली वैदर्भी है, जिसे पूजा, दर्शन, स्वाध्याय आदिके फलोको कथाओके माध्यम द्वारा व्यक्त किया गया है।

वादिचन्द्र

बलात्कारगणकी सूरत-शाखाके भट्टारकोमे कवि वादिचन्द्रका नाम उपलब्ध होता है। इनके गुरु प्रभाचन्द्र और दादागुरु ज्ञानभूषण थे। इनकी जाति हुवड़ बतायी गई है। सूरत-शाखाके भट्टारकपट्टपर पद्मनन्दि, देवेन्द्रकीर्ति, विद्यानन्दि, मल्लिभूषण, लक्ष्मीचन्द्र, वीरचन्द्र, ज्ञानभूषण, प्रभाचन्द्र और वादिचन्द्रके नाम उपलब्ध होते हैं। वादिचन्द्रके पट्टपर महीचन्द्र आसीन हुए थे। वादिचन्द्र काव्यप्रतिभाकी दृष्टिसे अन्य भट्टारकोकी अपेक्षा आगे हैं। उनकी भाषा प्रौढ है और उसमे भावगाभीर्य पाया जाता है। ग्रथरचना करनेके साथ उन्होने मूर्त्तियोकी प्रतिष्ठा भी करवाई थी। धर्म और साहित्यके प्रचारमे उनका बहुमूल्य योग रहा। मूलसघ सरस्वतीगच्छ और बलात्कारगणके विद्वानोमे इनकी गणना की गई है।

स्थितिकाल

भट्टारक वादिचन्द्र सूरिके समयमे वि० स० १६३७ (ई० सन् १५८०)मे उपाध्याय धर्मकीर्त्तिने कोदादामे श्रीपालचरितकी प्रति लिखी है। बताया है

"सवत् १६३७ वर्षे वैशाख वदि ११ सोमे अद्येह श्रीकोदादाशुभ-स्थाने श्री शीतलनाथचैत्यालये श्रीमूलसघे" भ० श्रीज्ञानभूषणदेवा। तत्पट्टे भ० श्री

प्रभाचन्द्रदेवा तत्पट्टे भ० श्रीवादिचन्द्र तेषां मध्ये उपाध्याय धर्मकीर्ति स्वकर्मक्षयार्थं लेखि।"[1]

वि० सं० १६४० (ई० सन् १५८३)मे वाल्मीकिनगरमे पार्श्वपुराण[2] की रचना, वि० सं० १६५१ (ई० सन् १५९४)मे श्रीपाल आख्यान[3] एव वि० स० १६५७ (ई० सन् १६००)मे अकलेश्वरमे यशोधरचरितका[4] प्रणयन कवि द्वारा हुआ है। वादिचन्द्रने ज्ञानसूर्योदयनाटककी रचना माघ शुक्ला अष्टमी वि० स० १६४८ (ई० सन् १५९१)मे मधूकनगर गुजरातमे समाप्त की थी।[5]

कविकी एक अन्य रचना पवनदूतनामक खण्डकाव्य भी उपलब्ध है। पर इस काव्यमे कविने रचनाकालका निर्देश नही किया है। वादिचन्द्रका समय वि० स० १६३७–१६६४ सभव है।

रचनाएँ

कवि वादिचन्द्रने खण्डकाव्य, नाटक, पुराण एव गीतिकाव्योका प्रणयन किया है। इनके द्वारा लिखित निम्नलिखित ग्रथ उपलब्ध हैं .

१. पार्श्वपुराण इस पौराणिक ग्रन्थमे २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथका चरित वर्णित है। इसका परिमाण १५८० अनुष्टुप् श्लोक है।

२ श्रीपाल-आख्यान गुजरातीमिश्रित हिन्दीमें यह गीतिकाव्य लिखा गया है। भाषाका नमूना निम्न प्रकार है

प्रगट पाट त अनुक्रमे मानु ज्ञानभूषण ज्ञानवतजो।
तस पद कमल भ्रमर अविचल जस प्रभाचन्द्र जयवतंजो ॥
जगमोहन पाटे उदयो वादीचन्द्र गुणालजो।
नवरसगीते जेणे गायो चक्रवर्ति श्रीपालजो ॥

३. सुभगसुलोचनाचरित यह कथात्मक काव्य है। इसमे ९ परिच्छेद हैं। कविने अन्तिम प्रशस्तिमे उक्त काव्यकी विशेषतापर प्रकाश डालते हुए लिखा है

"विहाय पदकाठिन्य सुगमैर्वचनोत्करै।
चकार चरितं साध्वा वादिचन्द्रोऽल्पमेधसा ॥"

१ भट्टारक-सम्प्रदाय, शोलापुर, लेखाक ४९१।
२ शून्याब्दे रसाब्जाके वर्षे पक्षे समुज्ज्वले।
कार्त्तिके मासि पंचम्या वाल्मीके नगरे मुदा। पार्श्वपुराण, लेखाक–४९२।
३ "संवत सोल एकावनावर्षे कीधो ये परबंधजी।" श्रीपाल-आख्यान, लेखाक ४९४।
४. "सप्तपचरसाब्जाके वर्षेकारि सुशास्त्रकम्" यशोधरचरित, लेखाक ४९५।
५ "वसुवेद रसाब्जाके वर्षे माघे सिताष्टमी दिवसे" ज्ञानसूर्योदयनाटक, लेखाक ४९३।

स्पष्ट है कि कविने समस्यन्त कठोर पदोंको छोड सरल और लघु असमस्यन्त पदोका चयन इस काव्यमे किया है।

४ ज्ञानसूर्योदय नाटक इस नाटकके पात्र भावात्मक हैं। सूत्रधार और नटीके वीच सम्पन्न हुए वार्त्तालापमें कहा गया है लोक स्वभावतः उपशान्त है। किसी कर्मके प्रभावसे व्यक्ति भ्रान्त होते हैं और पुनः शान्ति प्राप्त करते हैं। चैतन्य-आत्माकी सुमति और कुमति नामक दो पत्नियोंसे पृथक्-पृथक् दो कुल उत्पन्न हुए हैं। सुमतिके पुत्र विवेक, प्रवोध, सन्तोष और शील हैं तथा कुमतिके मोह, मान, मार, क्रोध और लोभ हैं। कुमतिकी प्रेरणासे आत्माने मोह और काम नामक पुत्रोंको राज्य दे दिया। विवेकको यह अच्छा न लगा।-अतएव वह ध्यान आदिकी सहायतासे मोह और कामको वश करता है तथा मुक्तिलाभ करता है।

५. पवनदूत—इसमे १०१ पद्य हैं। यह मेघदूतकी शैलीमे लिखा गया एक स्वतन्त्र काव्य है। इसमे वताया है कि उज्जयिनीमे विजयनरेश नामक राजा रहता था। उसकी पत्नीका नाम तारा था। अपनी रानीसे वहुत प्रेम करता था। एक दिन अशनिवेग नामका एक विद्याधर ताराको हरकर ले गया। रानीके वियोगसे राजा दु खी रहने लगा। विरहावस्थामे वह पवनको दूत वनाकर रानीके पास भेजनेका निश्चय करता है। अपनी विरहावस्थाका चित्रण करनेके अनन्तर पवनको वह मार्ग वतलाता है। इस सन्दर्भमे वन, नदी, पर्वत, नगर और नगरोमे निवास करनेवाली स्त्रियो तथा उनकी विलासमयी चेष्टाओका वड़ा सुन्दर वर्णन किया है। पवन राजाका सन्देश लेकर अशनिवेगके नगरमे पहुँचता और अशनिवेगके महलमे जाकर ताराको उसके प्रियका सन्देश सुनाता है। तदनन्तर अशनिवेगकी सभामे जाकर उसे ताराके वापस दे देनेका परामर्श देता है। अशनिवेग विजयनरेशको युद्धकी धमकी देता है; पर उसकी माता उसे युद्ध न करनेका परामर्श देती है। और ताराको पवनके हाथ सौंप देती है। पवन ताराको लेकर वापस आ जाता है।

यह काव्य मन्दाक्रान्ता छन्दोमे लिखा गया है। भाषा सरल, सरस और प्रसादगुणमय है। ऋतुओका चित्रण काव्यात्मक शैलीमे किया गया है। ताराके शीलकी अभिव्यञ्जना वहुत ही सुन्दर हुई है।

६ पाण्डवपुराण इसमे पाण्डवोंका वृत्तान्त वर्णित है।
७. यशोधरचरित्त महाराज यशोधरकी लोकप्रिय कथा इसमे दी है।
८. होलिकाचरित्त एक सरस चरितकाव्य है।

कवि वादिचन्द्रने अपनी रचनाशैली द्वारा लोकरुचिको तो परिष्कृत किया ही है, कोमल पदावली एव भाषाका व्यवहार कर नई उद्भावनाएँ प्रसूत की है। इनके साहित्यके प्रधान तीन गुण है ललित पद, सुकुमार भाव एव अविकटाक्षर-वन्ध।

कविकी एक अन्य विशेषता रूपकात्मकताकी भी है। भावात्मक पदार्थों-काम, मोह, विवेक, सुमति, कुमति आदिका प्रयोग स्थूलपात्रके रूपमे विहित है। अत प्रतीक काव्य लिखनेमे भी कवि किसीसे पीछे नही है। राजा पवनसे प्रार्थना करता हुआ कहता है

"क्षित्या नीरे हुतभुजि परव्योम्नि काले विशाले
त्व लोकाना प्रथममकथि प्राणसत्राणतत्त्वम्।
तस्माद्वातोवरचलगते तान्वियोगे हि नार्या,
स्यान्नैवान्तर्विपुलकरुण. सत्त्वरक्षानपेक्ष॥"—पवनदूत। पद्य ३

हे पवन! हर समय प्राणकी रक्षा करनेवाले पञ्चभूतोमे पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और कालमे तुम्हारी गणना प्रधानरूपसे की जाती है। अतएव मेरे वियोगमे जो मेरी प्रियाके प्राण निकलनेको तैयारी कर रहे हैं उन्हे तुम जाकर रोक दो। अत जीवके हृदयमे दयाका भाव उमड़ा रहता है वे प्राणियोकी रक्षासे कदापि विमुख नही होते। पवनका महत्त्व बतलाते हुए राजा पुन कहता है

"एते वृक्षा सति नवघनेऽप्यत्र सर्वत्र भूमौ
वोभूयन्ते न हि वहुफलास्त्वा विनेति प्रसिद्धि।
तस्मात्तास्त्वं घनफलघनान्सप्रय ञ्छन्प्रकुर्या
प्राय प्राप्ता पवनमतुला पुष्टितामानयन्ति॥"—पवनदूत ४

देखो समस्त संसारमे तुम्हारे विषयमे यह प्रसिद्धि है कि नवीन वर्षाके होनेपर भी वृक्ष तुम्हारे विना अधिक नही फलते। अत. तुम जाते समय इस वातकी याद रखना कि तुम्हे मार्गमे जो-जो वृक्ष मिलें उन्हे खूब फलयुक्त वनाते हुए जाना, क्योकि पवनको प्राप्त कर प्राय सभी पुष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार कविने विरही नायक द्वारा पवनसे विभिन्न प्रकारकी वातें कराई हैं। सक्षेपमे कवि वादिचन्द्रको अपनी रचनाओके प्रणयनमे पर्याप्त सफलता मिली है।

दोड्डय्य

कवि दोड्डय्यने 'भुजबलिचरितम्' नामक एक ऐतिहासिक खण्डकाव्यकी रचना की है। ये आत्रेय गोत्रीय विप्रोत्तम और जैन धर्मावलम्बी थे। ये पिरियपट्टणके निवासी करणिकतिलक देवप्पके पुत्र थे। इनके गुरुका नाम पडित मुनि था। कविने अपना परिचय देते हुए लिखा है

आदिब्रह्मविनिर्मितामलमहावशाब्धिचन्द्रायमा
नात्रेयोद्भवविप्रगोत्रतिलक. श्रीजैनविप्रोत्तम।
दोड्डय्य सुगुणाकरोऽस्ति पिरिराजाख्यानसत्पत्तने,
तेनासौ जिनगोम्मटेशचरित भक्त्या मुदा निर्मितम्॥

स्थितिकाल

श्री प० के० भुजबलि शास्त्रीने कविका समय १६वी शताब्दी माना है। भाषा और शैलीकी दृष्टिसे भी इस कविका समय १६वी शतीके आसपास प्रतीत होता है।

रचना और काव्यप्रतिभा

कविकी एक ही रचना 'भुजवलिचरितम्' उपलब्ध है। यह रचना जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १०, किरण २ मे प्रकाशित है। 'भुजबलिचरित'का नाम 'भुजवलिशतकम्' भी है। इस काव्यमे मैसूर राज्यान्तर्गत श्रवणबेलगोलस्थ प्रसिद्ध अलौकिक एव दिव्य गोम्मटस्वामीकी मूर्त्तिका इतिहास वर्णित है। कविने चरित आरम्भ करते ही रूपक-अलंकार द्वारा प्रशस्त भुजबलिचरितको प्रारम्भ करनेकी प्रतिज्ञा की है।

श्रीमोक्षलक्ष्मीमुखपद्मसूर्यं नाभेयपुत्र वरदोर्वलीशम्।
नत्वादिकाम भरतानुजात तस्य प्रशस्ता सुकथा प्रवक्ष्ये॥ १॥

कविने प्रस्तुत पद्यमे नाभेयपुत्र भुजवलिको मोक्षलक्ष्मी मुखपद्मको विकसित करनेवाला सूर्य कहा है। इस सन्दर्भमे उपमेय और उपमानके साधर्म्यका पूरा विस्तार पाया जाता है। नाभेयपुत्रमे सूर्य साधर्म्य न होकर तादूरूप्य बन गया है। अत यहाँ तादूरूप्यप्रतीतिजन्य चमत्कार पाया जाता है।

कतिपय पद्योको पढनेसे कालिदासकी रचनाओकी स्मृति हो आती है। कुमारसम्भवके "अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा" १।१ का स्पष्ट प्रभाव निम्नलिखित पद्यपर वर्त्तमान है

सदुत्तरस्यां दिशि पौदनाख्यापुरी विभाति त्रिदशाधिपस्य ।
पुरप्रभास्वत्प्रतिबिम्बितादर्शमिव जैनक्षितिमण्डलेऽरिगान् ॥१६॥

कवि गोम्मटेशकी मूर्तिको कामधेनु, चिन्तामणि, कल्पवृक्ष आदि उपमानोसे तुलना करता हुआ उसका वैशिष्ट्य निरूपित करता है

अकृत्रिमार्हत्प्रतिमापि कायोत्सर्गेण भातीव सुकामधेनु ।
चिन्तामणिः कल्पकुज पुमानाकृति विधत्ते जिनबिम्बमेतत् ॥२१॥

कविकी भाषा प्रौढ है। एक-एक शब्द चुन-चुनकर रखा गया है। गोम्मटेशके मस्तकाभिषेकका वर्णन करता हुआ कवि कहता है

अष्टाधिक्यसहस्रकुम्भनिभृते सन्मन्त्रपूतात्मकै
कर्पूरोत्तमकुंकुमादिविलसद्गन्धच्छटामिश्रितै ।
गंगाद्युद्धजलैरशेषकलिलोत्सन्तापविच्छेदकै
श्रीमद्दोर्बलिमस्तकाभिषवण चक्रे नृपाग्रेसर ॥४४॥

अभिषेकमे प्रयुक्त जलकी विशेषता और पवित्रताका मूर्त्तिमान चित्रण करता हुआ कवि कहता है

पीयूषवत्साधुकरैर्निर्धेश्चोच्पोद्भवे सारतरैर्जलौघै ।
श्रीगुम्मटाधीश्वरमस्तकाग्रे स्नान चकार क्षितिपाग्रगण्य ॥४५॥

कविने भावव्यञ्जनाको स्पष्ट करनेके लिए रूपक-अलकारकी अनेक पद्योमे सुन्दर योजना की है। हेमसेन मुनिको कुन्दकुन्दवशरूपी समुद्रकी समृद्धिके लिए चन्द्रमा, देशीयगणरूपी आकाशके लिए सूर्य, वक्रगच्छके लिए हर्म्यशेखर एव नन्दिसघरूपी कमलवनके लिये राजहस कहा है

कुन्दकुन्दवशवार्धिपूर्णचन्द्रचारुदे
शीगणाभ्रसूर्यवक्रगच्छहर्म्यशेखर ।
नन्दिसघपद्मपण्डराजहस भूतले
त्वं जयात्र हेमसेनपण्डितार्य सन्मुने ॥९२॥

राजमल्ल

राजमल्लके जीवन-परिचयके सम्बन्धमे लाटीसहिताके अन्तमे प्रशस्ति उपलब्ध है। इस प्रशस्तिसे यद्यपि सम्पूर्ण तथ्य सामने नही आते केवल उससे निम्नलिखित परिचय ही प्राप्त होता है

एतेषामस्ति मध्ये गृहनृपर्णचिमान् फामन' सघनाय-
स्तेनोच्चै कारितेय सदनसमुचिता सहिता नाम लाटी ।

श्रेयोऽर्थं फामनीयैः प्रमुदितमनसा दानमानासनाद्यै.।
स्वोपज्ञा राजमल्लेन विदितविदुषाम्नायिना हैमचन्द्रे ॥३८॥

लाटीसंहिता ग्रन्थकर्त्ता प्रशस्ति, पद्य ३८

इस पद्यसे ग्रन्थकर्त्ताके सम्बन्धमें इतना ही अवगत होता है कि वे हेमचन्द्रकी आम्नायके एक प्रसिद्ध विद्वान थे और उन्होने फामनके दान, मान, आसनादिकसे प्रसन्नचित्त होकर लाटीसंहिताकी रचना की थी। यहाँ जिन हेमचन्द्रका निर्देश आया है वे काष्ठासंघी भट्टारक हेमचन्द्र हैं, जो माथुरगच्छपुष्करगणान्वयी भट्टारक कुमारसेनके पट्टशिष्य तथा पद्मनन्दि भट्टारकके पट्टगुरु थे, जिनकी कविने लाटीसंहिताके प्रथमसर्गमे बहुत प्रशंसा की है। बताया है कि वे भट्टारकोंके राजा थे। काष्ठासंघरूपी आकाशमे मिथ्या-अंधकारको दूर करनेवाले सूर्य थे और उनके नामकी स्मृतिमात्रसे दूसरे आचार्य निस्तेज हो जाते थे।

इन्ही भट्टारक हेमचन्द्रकी आम्नायमे ताल्हू विद्वान्‌को भी सूचित किया गया है। इस विषयमे कोई सन्देह नही रहता कि कवि राजमल्ल काष्ठासंघी विद्वान् थे। इन्होने अपनेको हेमचन्द्रका शिष्य या प्रशिष्य न लिखकर आम्नायी बताया है। और फामनके दान, मान, आसनादिकसे प्रसन्न होकर लाटीसंहिताके लिखनेकी सूचना दी है। इससे यह स्पष्ट है कि राजमल्ल मुनि नही थे। वे गृहस्थाचार्य या ब्रह्मचारी रहे होगे।

राजमल्लका काव्य अध्यात्मशास्त्र, प्रथमानुयोग और चरणानुयोगपर आधृत है। 'जम्बूस्वामीचरित'मे कविने अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए लिखा है कि मै पदमे तो सबसे छोटा हूँ ही, वय और ज्ञान आदि गुणोमे भी सबसे छोटा हूँ

'सर्वेभ्योऽपि लघीयाश्च केवलं न क्रमादिह।
वयसोऽपि लघुर्वृद्धो गुणैर्ज्ञानादिभिस्तथा ॥११३४॥'

जम्बूस्वामीचरित ११३४।

स्थितिकाल

कवि राजमल्लने लाटीसंहिताकी समाप्ति वि० सं० १६४१मे आश्विन दशमी रविवारके दिन की है। प्रशस्ति निम्न प्रकार है

(श्री) नृपतिविक्रमादित्यराज्ये परिणते सति।
सहैकचत्वारिंशद्भिरब्दानां शतषोडश ॥२॥

तत्रापि चाश्विनीमासे सितपक्षे शुभान्विते ।
दशम्यां च दशरथे शोभने रविवासरे ॥३॥

जम्बूस्वामीचरितके रचनाकालका भी निर्देश मिलता है। यह ग्रन्थ वि० स० १६३२ चैत्र कृष्णा अष्टमी पुनर्वसु नक्षत्रमे लिखा गया है। इस काव्यके आरम्भमे बताया गया है कि अर्गलपुर (आगरा)मे बादशाह अकबरका राज्य था। कविका अकबरके प्रति जजिया कर और मद्यकी बन्दी करनेके कारण आदर भाव था। इस काव्यको अग्रवालजातिमे उत्पन्न गर्गगोत्री साहु टोडरके लिए रचा है। ये साहु टोडर अत्यन्त उदार, परोपकारी, दानशील और विनयादि गुणोसे सम्पन्न थे। कविने इस सदर्भमे साहु टोडरके परिवारका पूरा परिचय दिया है। उन्होने मथुराकी यात्रा की थी और वहाँ जम्बूस्वामी क्षेत्रपर अपार धनव्यय करके ५०१ स्तूपोकी मरम्मत तथा १३ स्तूपोका जीर्णोद्धार कराया था। इन्हीकी प्रार्थनासे राजमल्लने आगरामे निवास करते हुए जम्बूस्वामीचरितकी रचना की है। अतएव सक्षेपमे कवि राजमल्लका समय विक्रमकी १७वी शती है। हमारा अनुमान है कि पञ्चाध्यायीकी रचना कविने लाटीसंहिताके पश्चात् वि० स० १६५०के लगभग की होगी। श्री जुगलकिशोर मुख्तार जीने लिखा है[1] "पञ्चाध्यायीका लिखा जाना लाटीसहिताके बाद प्रारभ हुआ है। अथवा पचाध्यायीका प्रारभ पहले हुआ हो या पीछे, इसमे सन्देह नही कि वह लाटीसहिताके बाद प्रकाशमे आयी है। और उस वक्त जनताके सामने रखी गई है जबकि कवि महोदयकी यह लोकयात्रा प्राय. समाप्त हो चुकी थी। यही वजह है कि उसमे किसी सन्धि, अध्याय, प्रकरणादिक या ग्रथकर्त्ताके नामादिकी कोई योजना नही हो सकी और वह निर्माणाधीन स्थितिमें ही जनताको उपलब्ध हुई है।"

अतएव यह मानना पडता है कि पञ्चाध्यायी कवि राजमल्लकी अतिम रचना है और यह अपूर्ण है।

रचनाएँ

कवि राजमल्लकी निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त होती हैं

१ लाटीसहिता
२ जम्बूस्वामीचरित
३ अध्यात्मकमलमार्त्तण्ड
४ पञ्चाध्यायी
५ पिङ्गलशास्त्र

१. श्री प० जुगलकिशोर मुख्तार, वीर वर्ष ३ अंक १२-१३।

जम्बूस्वामी चरित इस चरितकाव्यमे पुण्यपुरुष जम्बूस्वामीकी कथा वर्णित है। १३ सर्ग है और २४०० पद्य। कथामुखवर्णनमे आगराका बहुत ही सुन्दर वर्णन आया है। इस ग्रन्थकी रचना आगरामे ही सम्पन्न हुई है। इस काव्यकी कथावस्तुको दो भागोमे विभक्त कर सकते हैं पूर्वभव और वर्तमान जन्म। पूर्वभवावलीमे भावदेव और भवदेवके जीवनवृत्तोका अकन है। कविने विद्युच्चरचोरका आख्यान भी वर्णित किया है। आरभके चार परिच्छेदोमे वर्णित सभी आख्यान पूर्वभवावलीसे सम्बन्धित हैं। पञ्चम परिच्छेदसे जम्बूस्वामीका इतिवृत्त आरभ होता है। जम्बूकुमारके पिताका नाम अर्हद्दास था। जम्बूकुमार बड़े ही पराक्रमशाली और वीर थे। इन्होंने एक मदोन्मत्त हाथीको वश किया, जिससे प्रभावित होकर चार श्रीमन्त सेठोने अपनी कन्याओका विवाह उनके साथ कर दिया। जम्बूकुमार एक मुनिका उपदेश सुन विरक्त हो गये और वे दीक्षा लेनेका विचार करने लगे। चारो स्त्रियोने अपने मधुर हाव-भावो द्वारा कुमारको विषयभोगोके लिए आकर्षित करना चाहा; पर वे मेरुके समान अडिग रहे। नवविवाहिताओका कुमारके साथ नानाप्रकारसे रोचक वार्त्तालाप हुआ और उन्होने कुमारको अपने वशमे करनेके लिए पूरा प्रयास किया। पर अन्तमे वे कुमारको अपने रागमे आवद्ध न कर सकी। जम्बूकुमारने जिनदीक्षा ग्रहणकर तपश्चरण किया तथा केवलज्ञान और निर्वाण पाया।

कविने कथावस्तुको सरस बनानेका पूर्ण प्रयास किया है। युद्धक्षेत्रका वर्णन करता हुआ कवि वीरता और रौद्रताका मूर्त्तरूप ही उपस्थित कर देता है

"प्रस्फुरत्स्फुरदस्त्रौघा भटा सदर्शिता. परे।
औत्पातिका इवानीला सोल्का मेघा समुत्थिता ॥
करवाल करालाग्र करे कृत्वाऽभयोऽपर।
पश्यन् मुखरसं तरिगान् स्वसौन्दर्यं परिजज्ञिवान् ॥
कराग्र विधृत खड्ग तुलयत्कोऽप्यभाद्भट।
प्रमिमिसुरिवानेन स्वामीसत्कारगौरवम् ॥"

जम्बूस्वामीचरित, ७।१०४-१०६

कविने इस सदर्भमे दृश्य-बिम्बकी योजना की है। समरमे भास्वर अस्त्र धारण किये हुए योद्धा इस प्रकारके दिखलाई पड़ते है जिसप्रकार उत्पातकालमे नीले मेघ उल्कासे परिपूर्ण परिलक्षित होते हैं। यह निमित्तशास्त्रका नियम है कि उत्पातकालमे टूटकर पड़नेवाली उल्काएँ अनियमित रूपसे झटित गति करती हैं और वे नीले मेघोके साथ मिलकर एक नया रूप प्रस्तुत करती है। कविने इसी बिम्बको अपने मानसमे ग्रहणकर दीप्तिमान अस्त्रोसे परिपूर्ण योद्धाओको

आभाका चित्रण किया है। द्वितीय पद्यमे हाथके अग्रभागमे धारण किये गये करवालमे योद्धाओको रोषपूर्ण अपने मुखका प्रतिबिम्ब दिखलाई पड़ता है। इस कल्पनाको भी कविने चमत्कृतरूपमे ग्रहण किया है। इस प्रकार जम्बूस्वामी-चरितमे बिम्बो, प्रतीको, अलकारो और रसभावोकी सुन्दर योजना की गई है। एकादश सर्गमे सूक्तियोका सुन्दर समावेश हुआ है।

लाटीसहिता लाटीसहिताकी रचना कविने वैराट नगरके जिनालयमे की है। यह नगर जयपुरसे ४० मीलकी दूरी पर स्थित है। किसी समय यह विराट मत्स्यदेशकी राजधानी था। इस नगरकी समृद्धि इतनी अधिक थी कि यहाँ कोई दीन-दरिद्री दिखाई नही पड़ता। अकबर बादशाहका उस समय राज्य था। और वही इस नगरका स्वामी तथा भोक्ता था। जिस जिनालयमे बैठकर कविने इस ग्रन्थकी रचना की है वह साधु दूदाके ज्येष्ठ पुत्र और फामन के बडे भाई 'न्योता'ने निर्माण कराया था। इस सहिताग्रंथकी रचना करनेको प्रेरणा देने वाले साहू फामनके वशका विस्तार सहित वर्णन है। और उससे फामनके समस्त परिवारका परिचय प्राप्त हो जाता है। साथ ही यह भी मालूम होता है कि वे लोग बहुत वैभवशाली और प्रभावशाली थे। इनकी पूर्वनिवास-भूमि 'डौकनि' नामकी नगरी थी। और ये काष्ठासघी भट्टारकोकी उस गद्दी-को मानते थे, जिसपर क्रमश कुमारसेन, हेमचन्द्र, पद्मनन्दि, यश कीर्त्ति और क्षेमकीर्त्ति नामके भट्टारक प्रतिष्ठित हुए थे। क्षेमकीर्त्तिभट्टारक उस समय वर्त्तमान थे और उनके उपदेश तथा आदेशसे उक्त जिनालयमे कितने ही चित्रो-की रचना हुई थी। इस प्रकार कवि राजमल्लने वैराटनगर, अकबर बादशाह काष्ठासघी भट्टारक वश, फामन कुटुम्ब, फामन एव वैराट जिनालयका गुण-गान किया है। लाटीसहितामे श्रावकाचारका वर्णन है और इसे ७ सर्गोमे विभक्त किया गया है। प्रथम सर्गमे ८७ पद्य हैं और कथामुखभाग वर्णित है। द्वितीय सर्गमे अष्टमूलगुणका पालन और सप्तव्यसनत्यागका वर्णन आया है। इस सर्गमे २१९ पद्य हैं। तृतीय सर्गमे सम्यग्दर्शनका सामान्यलक्षण वर्णित है और चतुर्थ सर्गमे सम्यग्दर्शनका विशेष स्वरूप निरूपित है और इसमे ३२२ पद्य हैं। पञ्चम सर्गमे २७३ पद्योमे त्रसहिसाके त्यागरूप प्रथमाणुव्रतका वर्णन किया गया है। षष्ठ सर्गमे सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत और परि-ग्रहपरिमाणाणुव्रतका २८६ पद्योमे कथन किया गया है। इसी अध्यायमे गुणव्रत और शिक्षाव्रतोका भी अतिचार सहित वर्णन आया है। सप्तम अध्यायमे सामा-यिक आदि प्रतिमाओका वर्णन आया है। अन्तमे ४० पद्य प्रमाण ग्रथकर्त्ताकी प्रशस्ति दी गई है। पर इस प्रशस्तिमे कविका परिचय अकित नही है।

'अध्यात्मकमलमार्त्तण्ड' छोटी-सी रचना है और उसमे अध्यात्म-विषयका कथन आया है। अध्यात्मशास्त्रका अर्थ है परोपाधिके विना मूलवस्तुका निर्देश करना। अध्यात्मरूपी कमलको विकसित करनेके लिए यह कृति सूर्यके समान है। इसपर 'समयसार' आदि ग्रथोका प्रभाव है। इस ग्रंथमे ४ अध्याय और १०१ पद्य हैं। प्रथम अध्यायमे निश्चय और व्यवहार दोनो प्रकारके रत्नत्रयका, दूसरे अध्यायमे जीवादि सप्ततत्त्वोके प्रसगसे, द्रव्य, गुण और पर्याय तथा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यका, तीसरे अध्यायमे जीवादि छ द्रव्योका और चौथे अध्याय-मे आस्रव आदि शेष तत्त्वोका निरूपण किया है।

पिङ्गलशास्त्र इसमे छन्दशास्त्रके नियम, छन्दोंके लक्षण और उनके उदाहरण आये हैं। इसकी रचना भूपाल भारमल्लके निमित्तसे हुई है। ये श्रीपाल जातिके प्रमुखपुरुष वणिक्सघके अधिपति और नागोरी तपागच्छ आम्नायके थे। इनके समयमे इस पट्ट पर हर्षकीर्त्ति अधिष्ठित थे। इसकी रचना नागोरमे हुई है। ऐसा अनुमान होता है कि कवि आगरासे नागोर चला गया था। भूपाल भारमल्ल भी वहीके रहनेवाले थे।

पञ्चाध्यायी यह ग्रथ अपूर्ण है; फिर भी जैनसिद्धान्तको हृदयंगत करने-के लिए यह ग्रथ बहुत उपयोगी है। जिस प्रकार अन्य ग्रथोके निर्माणका हेतु है उसी प्रकार पञ्चाध्यायीके निर्माणका भी कोई हेतु होना चाहिए। इसमे सन्देह नही कि इस ग्रथकी रचना कविने दीर्घकालीन अभ्यास, मनन और अनुभवके बाद की है। मंगलाचरण प्रवचनसारके आधारपर किया गया है।

इस ग्रंथके दो ही अध्याय उपलब्ध होते है। प्रथम अध्यायमे सत्ताका स्वरूप, द्रव्यके अंशविभाग, द्रव्य और गुणोका विचार, प्रत्येक द्रव्यमे सभव गुणोका कथन, अर्थपर्याय और व्यञ्जनपर्यायोका विशेष वर्णन, गुण, गुणाश, द्रव्य और द्रव्यांशका निरूपण भी पाया जाता है। द्रव्यके विविध लक्षणोका समन्वय करने के पश्चात् गुण, गुणोका नित्यत्व, भेद, पर्याय, अनेकान्तदृष्टिसे वस्तुविचार, सत् पदार्थ, नयोके भेद, नयाभास, जीवद्रव्य और उसके साथ सलग्न कर्मसस्कार-का भी कथन किया गया। दूसरे अध्यायमे सामान्यविशेषात्मक वस्तुसिद्धिके पश्चात् अमूर्त्त पदार्थोंकी सिद्धि और द्रव्योकी क्रियावती और भाववती शक्तियो-का भी कथन आया है। स्वाभाविकी और वैभाविकी शक्तियोके विचारके पश्चात् जीवतत्त्व, चेतना, ज्ञानीका स्वरूप, ज्ञानीके चिह्न, सम्यग्दर्शनका लक्षण, उसके प्रशमादि भेद, सप्तभय, सम्यग्दर्शनके आठ अग, तीन मूढता आदिका भी निरूपण आया है। इसी अध्यायमे औदयिकभावोका स्वरूप, ज्ञानावरणादि कर्मोंका

विचार, मिथ्यात्व आदि पर प्रकाश डाला गया है। जैन दर्शनकी प्रमुख बातों-की जानकारी इस अकेले ग्रंथसे ही संभव है।

इस प्रकार राजमल्लने उपयोगी कृतियोका निर्माण कर श्रुतपरम्पराके विकासमे योग दिया है। काव्य प्रतिभाकी दृष्टिसे भी राजमल्ल कम महत्त्वपूर्ण नही हैं।

पद्मसुन्दर

वि० स०की १७वी शतीमे पद्मसुन्दर नामके अच्छे सस्कृत-कवि हुए हैं। प० पद्मसुन्दर आनन्दमेरुके प्रशिष्य और पं० पद्ममेरुके शिष्य थे। कविने स्वय अपने-को और अपने गुरुको पंडित लिखा है। इससे यह अनुमान होता है कि प० पद्मसुन्दर गद्दीधर भट्टारकके पाण्डेय या पडित शिष्य रहे होगे। भट्टारकोकी गद्दियो पर कुछ पडित शिष्य रहते थे, जो अपने गुरु भट्टारककी मृत्युके पश्चात् भट्टारकपद तो प्राप्त नही करते थे। पर वे स्वय अपनी पडितपरम्परा चलाने लगते थे। और उनके पश्चात् उनके शिष्य-प्रतिशिष्य पडित कहलाते थे।

पं० पद्मसुन्दरने 'भविष्यदत्तचरित'की रचना की है। और इस ग्रथके अन्त-मे जो प्रशस्ति अकित की गई है उसमे काष्ठासंघ, माथुरान्वय और पुष्करगण-के भट्टारको-की परम्परा भी अकित है। कविके आश्रयदाता और ग्रथ रचनेकी प्रेरणा करनेवाले साहू रायमल्ल इन्ही भट्टारकोकी आम्नायके थे।

ग्रथ रचनेकी प्रेरणा उन्हे 'चरस्यावर' मे उस समयके प्रसिद्ध धनी साहू राय-मल्लकी प्रार्थनासे प्राप्त हुई थी। यह 'चरस्यावर' मुजफ्फरनगर जिलेका वर्त्त-मान 'चरथावल' जान पडता है।

साहू रायमल्ल गोयलगोत्रीय अग्रवाल थे। इनके पूर्वज छाजू चौधरी देश-विदेशमे विख्यात थे। इनके पाँच पुत्र हुए, जिनमे एक नरसिंह नामका भी था। इसी नरसिंहके पौत्ररूपमे साहू रायमल्ल हुए थे। रायमल्लकी दो पत्नियाँ थी। इनमें प्रथम पत्नी ऊधाहीसे अमीचन्द्र नामक पुत्र और मीनाहीसे उदयसिंह, शालिवाहन और अनन्तदास नामक तीन पुत्र हुए।

काष्ठासंघ माथुरान्वय पुष्करगणके उद्धरसेनदेव, देवसेन, विमलसेन, गुण-कीर्त्ति, यश कीर्त्ति, मलयकीर्त्ति, गुणभद्र, भानुकीर्त्ति और कुमारसेन भट्टारकों-की भविष्यदत्तचरितमे नामावली आयी है। कुमारसेनके समयमे इस भविष्यदत्त-चरितकी प्रतिलिपि की गई है।

स्थितिकाल

पं० पद्मसुन्दरने अपने ग्रन्थोमे रचनाकालका अकन किया है। अतः इनके स्थितिकालके सम्बन्धमे जानकारी प्राप्त करना कठिन नही है। प्रशस्तिके अनुसार भविष्यदत्तचरितका रचनाकाल कार्तिक शुक्ला पचमी वि० सं० १६१४ और रायमल्लाभ्युदयका रचनाकाल ज्येष्ठ शुक्ला पचमी वि० सं० १६१५ है। अतएव प० पद्मसुन्दरका समय वि० सं० की १७वी शती निश्चित है।

रचनाएँ

पं० पद्मसुन्दरकी दो ही रचनाएँ उपलब्ध हैं भविष्यदत्तचरित और रायमल्लाभ्युदयमहाकाव्य। भविष्यदत्तचरितमे पुण्यपुरुष भविष्यदत्तकी कथा अंकित है। श्री प० नाथूरामजी प्रेमीकी सूचनाके अनुसार फाल्गुन शुक्ला सप्तमी वि० स० १६१५ की लिखित भविष्यदत्तचरितकी अपूर्ण प्रति बंबईके ऐलक पन्नालाल सरस्वतीभवनमे विद्यमान है। भविष्यदत्तकी कथा पाँच सर्गों या परिच्छेदोमे विभक्त है।

रायमल्लाभ्युदयमहाकाव्यमें २५ सर्ग हैं। इसमें २४ तीर्थंकरोंके जीवनवृत्त गुम्फित किये गये हैं। ग्रंथका प्रारंभिक अंश और अन्त्यप्रशस्ति इतिहासकी दृष्टिसे उपयोगी है। ग्रथके अन्तमे पुष्पिकावाक्य निम्नप्रकार लिखा गया है

"इति श्रीपरमाप्तपुरुषचतुर्विंशतितीर्थंकरगुणानुवादचरिते पं० श्रीपद्ममेरुविनेये प० पद्मसुन्दरविरचिते वर्द्धमानजिनचरितमगलकीर्तन नाम पचविंशः सर्गः।"

पं० जिनदास

पं० जिनदास आयुर्वेदके निष्णात पडित थे। इनके पूर्वज हरिपतिको पद्मावतीदेवीका वर प्राप्त था। ये पेरोजशाह द्वारा सम्मानित थे। इन्हीके वशमे पद्मनामक श्रेष्ठि हुए, जिन्होने याचकोको बहुत-सा दान दिया। पद्म अत्यन्त प्रभावशाली थे। अनेक सेठ, सामन्त और राजा इनका सम्मान करते थे। पद्मका पुत्र वैद्यराज बिझ था। बिझने शाह नसीरसे उत्कर्ष प्राप्त किया था। इनके दूसरे पुत्रका नाम सुहृजन था, जो विवेकी और वादिरूपी मृगराजोके लिये सिंहके समान था। यह भट्टारक जिनचन्द्रके पदपर प्रतिष्ठित हुआ और इसका नाम प्रभाचन्द्र रखा गया। इसने राजाओं जैसी विभूतिका परित्याग किया था। उक्त बिझका पुत्र धर्मदास हुआ, जिसे महमूदशाहने बहुमान्यता प्रदान की थी। यह वैद्यशिरोमणि और यशस्वी था। इनकी धर्मपत्नीका नाम

धर्मश्री था, जो अद्वितीय दानी सद्दृष्टिरूपसे मन्मथविजयी और हँसमुख थी। इसका रेखा नामक पुत्र आयुर्वेदशास्त्रमें प्रवीण वैद्योका स्वामी और लोक-प्रसिद्ध था। रेखा चिकित्सक होनेके कारण रणस्तम्भ नामक दुर्गमें बादशाह शेरशाहके द्वारा सम्मानित हुए थे। प्रस्तुत जिनदास रेखाके ही पुत्र थे। इनकी माताका नाम रेखश्री और धर्मपत्नीका नाम जिनदासी था, जो रूप-लावण्यादि गुणोसे अलंकृत थी। पं० जिनदास रणस्तंभ दुर्गके समीपस्य नव-लक्षपुरके निवासी थे।[1]

स्थितिकाल

जिनदासकी एक 'होलीरेणुकाचरित' रचना उपलब्ध है। इस रचनाके अन्तमे कविने इसका लेखन-काल दिया है। अत. जिनदासके समयमें किसी भी प्रकारका विवाद नही है। प्रशस्तिमे लिखा है

> वसुखकायगीतांशुमिते (१६०८) संवत्सरे तथा।
> ज्येष्ठमासे सिते पक्षे दशम्या शुक्रवासरे ॥६१॥
> अकारि ग्रंथः पूर्णोऽयं नाम्ना दृष्टिप्रवोधकः।
> श्रेयसे वहुपुण्याय मिथ्यात्वापोहहेतवे ॥६२॥

अर्थात् वि० सं० १६०८ ज्येष्ठशुक्ला दशमी शुक्रवारके दिन यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ है। प० जिनदासने यह ग्रन्थ भट्टारक धर्मचन्दके शिष्य भट्टारक ललित-कीर्त्तिके नामसे अंकित किया है। पुष्पिकावाक्यमे लिखा है

'इति श्रीपडितजिनदासविरचिते मुनिश्रीललितकीर्त्तिनामाङ्किते होली-रेणुकापर्वचरिते दर्शनप्रबोधनाम्नि धूलिपर्व-समयधर्म-प्रशस्तिवर्णनो नाम सप्तमोऽध्याय।'

रचना

पडित जिनदासकी एक ही रचना प्राप्त है 'होलिकारेणुचरित'। इस रचनामे पञ्चनमस्कारमत्रका महात्म्य प्रतिपादित है। रचना सात अध्यायोमे विभक्त है। श्लोकसख्या ८४३ है। कविने शेरपुरके शान्तिनाथचैत्यालयमे ५१ पद्योवाली होलीरेणुकाचरितकी प्रतिका अवलोकनकर ८४३ पद्योमे इसे समाप्त किया है। काव्यत्वकी दृष्टिसे यह रचना सामान्य है।

ब्रह्म कृष्णदास

ब्रह्म कृष्णदास लोहपत्तन नगरके निवासी थे। इनके पिताका नाम हर्ष

१. जैनग्रन्थप्रशस्तिसंग्रह, प्रस्तावना, पृ० ३२-३३।

और माताका नाम वीरिका देवी था। इनके ज्येष्ठ भ्राताका नाम मंगलदास था। ये दोनो भाई ब्रह्मचारी थे। ब्रह्म कृष्णदासने मुनिसुव्रतपुराणकी प्रशस्तिमे रामसेन भट्टारककी परम्परामे हुए अनेक भट्टारकोका स्मरण किया है। ब्रह्म कृष्णदास काष्ठासघके भट्टारक भुवनकीर्त्तिके पट्टधर भट्टारक रत्नकीर्त्तिके शिष्य थे। भट्टारक रत्नकीर्त्ति न्याय, नाटक और पुराणादिके विज्ञ थे। ब्रह्म कृष्णदासका व्यक्तित्व आत्म-साधना और ग्रन्थ-रचनाकी दृष्टिसे महत्वपूर्ण है।

स्थितिकाल

ब्रह्म कृष्णदासने अपनी रचना मुनिसुव्रतपुराणमे उसके रचनाकालका निर्देश किया है। बताया है कि कल्पवल्ली नगरमे वि० स० १६८१ कार्त्तिक शुक्ला त्रयोदशीके दिन अपराह्ण समयमे ग्रन्थ पूर्ण हुआ। लिखा है

'इन्द्वष्टषट्चन्द्रमितेऽथ वर्षे (१६८१) श्रीकार्त्तिकाख्ये धवले च पक्षे।
जीवे त्रयोदश्यपरान्हया मे कृष्णेन सौख्याय विनिर्मितोऽयं ॥९६॥
लोहपत्तननिवासमहेभ्यो हर्ष एव वाणिजामिन हर्ष·।
तत्सुत कविविधि कमनीयो भाति मगलसहोदरकृष्ण ॥९७॥
श्रीकल्पवल्लीनगरे गरिष्ठे श्रीब्रह्मचारीश्वर एष कृष्ण।
कंठावलव्यूर्जितपूरमल्ल: प्रवर्द्धमानो हितमा [त] तान ॥९८॥'

इन प्रशस्ति-पद्योमे कविने अपनेको ब्रह्मचारी भी कहा है तथा इनके आधार पर कविका समय वि० की १७वीं शती है।

रचना

मुनिसुव्रतपुराणमे कविने २०वें तीर्थंकर मुनिसुव्रतका जीवन अकित किया है। इसमे २३ सन्धि या सर्ग हैं। और ३०२५ पद्य हैं। यह रचना काव्य-गुणोकी दृष्टिसे भी अच्छी है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अर्थान्तरन्यास, विभावना आदि अलकारोका प्रयोग पाया जाता है। इसकी प्रति जयपुरमे सुरक्षित है।

अभिनव चारुकीर्ति पंडिताचार्य

अभिनव चारुकीर्त्ति पडिताचार्य द्वारा विरचित 'प्रमेयरत्नालकार' नामक प्रमेयरत्नमालाकी टीका प्राप्त होती है। इस ग्रन्थके प्रत्येक परिच्छेदके अन्तमे निम्नलिखित पुष्पिकावाक्य उपलब्ध होता है

"इति श्रीमत्स्याद्वादसिद्धान्तपारावारपारीणमानस्य देशीगणाग्रगण्यस्य श्रीमद्बेलुगुलपुरनिवासरसिकस्याभिनवचारुकीर्तिपण्डिताचार्यस्य कृतौ परीक्षा-मुखसूत्रव्याख्याया प्रमेयरत्नालङ्कारसमाख्याया प्रमाणस्वरूपपरिच्छेद प्रथम.।"

इससे स्पष्ट है कि अभिनव चारुकीर्ति पण्डिताचार्य देशीगणके आचार्य थे और बेलुगुलपुरके निवासी थे। स्याद्वादविद्यामे निष्णात थे। अतएव अच्छे नैयायिक और तार्किकके रूपमे उनकी ख्याति रही होगी। प्रशस्तिके अनुसार ग्रथकार देशीगण पुस्तकगच्छ कुन्दकुन्दान्वय इगुलेश्वरबलिके आचार्य थे। और पर-म्परानुसार श्रवणबेलगोल पट्टपर आसीन हुए थे। यह परम्परा ११वी शतीमे आरम हुई और इसमे चारुकीर्ति नामके अनेक पट्टाधीश हुए। कभी-कभी श्रुतकीर्त्ति, अजितकर्ति आदि कतिपय अन्य नामोके भी भट्टारक हुए हैं। पर अधिकतर चारुकीर्ति नामके भट्टारक हुए है। परस्पर भेद बतलानेके लिए अभिनव, पडितदेव, पडितार्य, पडिताचार्य आदि विशेषणोमेसे एक या दो विशेष प्रयुक्त होते रहे हैं।

अभिनव पडिताचार्य चारुकीर्त्तिकी एक अन्य रचना 'गीतवीतराग' भी उपलब्ध है। इस ग्रन्थमे कविने निम्न लिखित प्रशस्ति अंकित की है

"गाङ्गेयवशाबुधिपूर्णचन्द्र' यो देवराजोऽजनि राजपुत्र',
तस्यानुरोधेन च गीतवीतरागप्रबन्ध मुनिपश्चकार ॥१॥
द्राविडदेशविशिष्टे सिंहपुरे लब्धशस्तजन्मासौ,
बेलुगोलपण्डितवर्यश्चक्रे श्रीवृषभनाथविरचितम् ॥२॥
स्वस्ति श्रीबेलगोले दोर्बलिजलनिकटे कुन्दकुन्दान्वयेनोऽ
भूत स्तुत्य पुस्तकाङ्कश्रुतगुभर ख्यातदेशीगणार्य:,
विस्तीर्णाशेषरीतिप्रगुणरसभृतं गीतयुग्वीतरागम्
शस्ताधीशप्रबन्ध वृषनुतमतनोत् पण्डिताचार्यवर्य ।

इति श्रीमद्रायराजगुरुभूमण्डलाचार्यवर्णमहावादवादश्वरायवादिपितामह-सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिबल्लालरायजीवरक्षापालकृत्याद्यने कवि रुद्वालीविरा-जितश्रीमद्वेलुगुलसिद्धसिंहासनाधीश्वरश्रीमदभिनवचारुकीर्त्तिपण्डिताचार्यवर्यप्र-णीतवीतरागाभिधानाष्टपदी समाप्ता।"

इस प्रशस्तिसे स्पष्ट है कि अभिनव पडिताचार्यका जन्म दक्षिण भारतके सिंहपुरमे हुआ था। जब श्रवणबेलगोलमे भट्टारक पद प्राप्त किया, तो इनका उपाधिनाम चारुकीर्त्ति हो गया। कविने गगवशके राजपुत्र देवराजके अनुरोध से गीतवीतरागकी रचना समाप्त की है।

इन अभिनव पंडिताचार्यका उल्लेख श्रवणवेलगोलके निम्नलिखित अभिलेखमे पाया जाता है

'स्वस्ति श्रीमूलसङ्घदेशिय-गणपुस्तकगच्छकोण्डकुन्दान्वयद श्रीमदभिनव-चारुकीर्त्ति-पण्डिताचार्य्यर शिष्यलुसम्यक्त्वाद्यनेक-गुण-गणाभरण-भूषिते रायपात्रचूडामणिबेलुगुलद मङ्गायि माडिसिद त्रिभुवनचूडामणियेम्ब चैत्यालयक्के मङ्गलमहा श्री श्री श्री ।'[1]

इस अभिलेखसे अभिनव पण्डिताचार्यका समय शक् स० १२४७के पूर्व होना चाहिए । इन्होने अपने शिष्य मङ्गायसे त्रिभुवनचुडामणि चैत्यालयका निर्माण कराया था, जो कालान्तरमे मङ्गाय वसतिके नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

दूसरे अभिनव पण्डिताचार्यका निर्देश शक् स० १४६६, ई० सन् १५४४के अभिलेखमे पाया जाता है। विजयनगरनरेश देवरायकी रानी भीमादेवीसे इन अभिनवपडिताचार्यने शान्तिनाथबसतिका निर्माण कराया था। अतः इस आधार पर अभिनव पण्डिताचार्यका समय वि० की १६वी शती सिद्ध होता है । बताया है

"स्वस्ति श्रीमद् राय-राज-गुरु-मण्डलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादि-पितामह सकलविद्वज्जन-चक्रवर्त्तिगलु बल्लालराय-जीवरक्षपालकाद्यनेक बिरुदावलि विराजमानरुमप्प श्रीमच्चारुकीर्त्ति-पण्डित देवरुगल प्रशिष्ठरादतच्छिष्य श्रीमदभिनव-चारुकीर्ति-पण्डित-देवरुगल प्रियशिष्यरादतस्याग्रजशिष्य श्रीमा ''चारुकीर्तिपण्डितदेवरुगल सतीर्थ्यराद श्रीमच्छान्तिकीर्त्ति-देवरु (ग) लु शकवर्ष ॥"

हमारा अनुमान है कि ये द्वितीय अभिनव पण्डिताचार्य ही गीतवीतराग और प्रमेयरत्नमालालकारके रचयिता हैं। गीतवीतराग पर ई० सन् १८४२की बोम्मरसकी कन्नड-टीका भी प्राप्त है। गीतवीतरागकी पाण्डुलिपि ई० सन् १७५८की उपलब्ध है। अतएव अभिनव पण्डिताचार्यका समय ई० सन् की १६वी शती होना चाहिए। डा० ए० एन० उपाध्येने इनके समयकी पूर्व सीमा १४०० ई० और उत्तर सीमा १७५८ बतलायी है। हमारा अनुमान है कि मध्यमे इनका समय ई० सन्की १६वी शती होना चाहिए।

रचनाएँ

अभिनव पडिताचार्यकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं गीतवीतराग और प्रमेयरत्नालकार। गीतवीतरागमे प्रबन्धगीत लिखे गये है। कविने स्वाराध्य ऋषभ-

१. जैनशिलालेखसग्रह, प्रथम भाग, माणिकचन्दिगम्बरजैनग्रन्थमाला, ग्रथाङ्क, २८, अभिलेखसख्या १३२ ।

देवके दश जन्मोंकी कथा गीतोंमे निबद्ध की है। कथावस्तु २४ प्रबन्धोंमे विभक्त है। प्रथम प्रबन्धमे महाबलकी प्रशंसा, द्वितीयमे महाबलका वैराग्योत्पादन, तृतीयमे ललिताङ्गका वनविहार, चतुर्थमे श्रीमतीका जातिस्मरण, पञ्चममे वज्रजघका पट्टकार्थ विवरण, षष्ठमे वज्रजघ और श्रीमतीके सौन्दर्यका चित्रण, सप्तममे श्रीमतीका विरहवर्णन, अष्टममे भोगभूमिवर्णन, नवममे आर्यका-गुरुगुण स्मरण, दशममे श्रीधरका स्वर्गवैभववर्णन, एकादशमे सुविधि पुत्रसम्बोधन, द्वादशमे अच्युतेन्द्रके दिव्य शरीरका वर्णन, त्रयोदशमे वज्र-नाभिके शारीरिक सौन्दर्यका चित्रण, चतुर्दशमे सर्वार्थसिद्धि विमानका चित्रण, पन्द्रहवेंमे मरुदेवीका निरूपण, सोलहवेंमे मरुदेवीके स्वप्न, सप्तदशमे प्रभात वर्णन, अठारहवेंमे जिनजन्माभिषेक, उन्नीसवेमे परमौदारिक शरीर, बीसवेंमे ऋषभदेवका वैराग्य, इक्कीसवेमे ऋषभदेवका तप, बाइसवेमे समवशरणका वर्णन, तेइसवेमे समवशरणभूमिका चित्रण और चौबीसवेमे अष्टप्राति-हार्योका कथन आया है। प्रसगवश ललिताङ्गदेवकी कथाको पर्याप्त विस्तृत किया गया है। गीतिकाव्यकी दृष्टिसे यह काव्य अत्यन्त सरस और मधुर है। कवि श्रीमतीकी भावनाका चित्रण करता हुआ कहता है

'चन्दनलिप्तसुवर्णशरीरसुधौतवसनवरधीरम्,
मन्दरशिखरनिभामलमणियुतसन्नुतमुकुटमुदारम्।
कथमिह लप्स्ये दिविजवर मानिनिमन्मथकेलिपरम्॥
इन्दुरविद्वयनिभमणिकुण्डलमण्डितगण्डयगेशम्,
चन्दिरदलसमनिटिलविराजितसुन्दरतिलकसुकेशम्॥'

प्रमेयरत्नमालालंकार यह नव्यशैलीमे लिखी गई प्रमेयरत्नमालाकी टीका है। लेखकने प्रमेयरत्नमालामे आये हुए समस्त विषयोका स्पष्टीकरण नव्यशैलीमे किया है। प्रमाणके लक्षणकी व्याख्या करते हुए न्यायकुमुदचन्द्र, प्रमेयकमलमार्त्तण्ड आदि ग्रन्थोसे विषय-सामग्री ग्रहणकर आये हुए प्रमेयोका स्पष्टीकरण किया है। प्रमाण-लक्षणमे साख्य, प्राभाकर आदिके मतोकी भी समीक्षा की है। इस ग्रथकी चार विशेषताएँ हैं

१. मूल मुद्दोका स्पष्टीकरण।

२ व्याख्यानको विस्तृत और मौलिक बनानेके हेतु ग्रन्थान्तरोके उद्धरणो-का समावेश।

३ गूढ विषयोका पद-व्याख्यानके साथ स्पष्टीकरण।

४ विषयके गाभीर्यके साथ प्रौढ़भाषाका समावेश।

इस प्रकार ग्रन्थकारने अपने इस प्रमेयरत्नमालालंकारको एक स्वतंत्र ग्रंथका स्थान दिया। यहाँ उदाहरणार्थं कुछ सदर्भाश उपस्थित किया जाता है

ज्ञानको प्रमाण सिद्ध करते हुए बौद्धमतकी समीक्षा निम्न प्रकार की है

"अत्राहुर्बौद्धा, अद्वैतिनश्च ज्ञान द्विविध निर्विकल्पकं सविकल्पक चेति। तत्र नयनोन्मीलनान्तर निष्प्रकारक" वस्तुस्वरूपमात्रविषयक ज्ञान यज्जायते तन्निर्विकल्पकम्। उक्त च

कल्पनापोढमभ्रान्त प्रथम निर्विकल्पकम्।
वालमूकादिविज्ञानसदृश शुद्धवस्तुजम्॥ इति॥

कल्पना पदवाच्यत्व तदपोढ तदविषयकमित्यर्थ। क्षणिकपरमाणुरूप-स्वलक्षणात्मकशुद्धवस्तुविषयक सौगतमते निर्विकल्पकम्। अपोहस्य पदवाच्यत्वेऽपि स्वलक्षणे तदभावात्, स्वलक्षणविषयके निर्विकल्पके पदवाच्यत्वस्य भान न सम्भवति। न च स्वलक्षणस्य पदवाच्यत्व कुतो नास्तीति वाच्यम्। पदवाच्यत्व हि पदसङ्केत। स खलु व्यवहारार्थ. सकेतकालमारभ्य व्यवहारकाल-पर्यन्तस्थायिनि पदार्थे युज्यते।"

प्रमेयरत्नमालालकारमे अनेक नवीन तथ्योका समावेश लेखकने किया है।

अरुणमणि

अरुणमणि भट्टारकश्रुतकीर्त्तिके प्रशिष्य और बुधराघवके शिष्य थे। इन्होने ग्वालियरमे जैनमन्दिरका निर्माण कराया था। इनके ज्येष्ठ शिष्य बुधरत्नपाल थे, दूसरे वनमाली और तीसरे कानरसिंह। अरुणमणि इन्ही कानरसिंहके पुत्र थे। इन्होने अजितपुराणके अन्तमे अपनी प्रशस्ति अंकित की है। अरुणमणिका अपरनाम लालमणि भी है। प्रशस्तिमे बताया है कि काष्ठासघमे स्थित माथुर-गच्छ और पुष्करगणमे लोहाचार्यके अन्वयमे होनेवाले भट्टारक धर्मसेन, भावसेन, सहस्रकीर्त्ति, गुणकीर्ति, यश कीर्त्ति, जिनचन्द्र, श्रुतकीर्त्तिके शिष्य बुधराघव और उनके शिष्य बुधरत्नपाल, वनमाली और कानरसिंह हुए हैं। इनमे कानरसिंहके पुत्र अरुणमणि या लालमणि हैं।

स्थितिकाल

अजितपुराणमे ग्रन्थका रचनाकाल अंकित है, जिससे अरुणमणिका समय निर्विवाद सिद्ध होता है। प्रशस्तिमे लिखा है

रस-वृष-यति-चन्द्रे ख्यातसवत्सरे (१७१६) ऽस्मिन्
नियमितसितवारे वैजयती-दशाम्या।

अजितजिनचरित्रं बोधपात्रं बुधानां ।
रचितममलवाग्मि-रक्तरत्नेन तेन ॥४०॥
मुद्गले भूभुजा श्रेष्ठे राज्येऽवरंगसाहिके ।
जहानावाद-नगरे पार्श्वनाथजिनालये ॥४१॥

अर्थात् अरुणमणिने औरंगजेवके राज्यकालमे वि० स० १७१६ मे जहानावाद नगर वर्त्तमान नई दिल्लीके पार्श्वनाथ जिनालयमे अजितनाथपुराणकी समाप्ति की है। अत कविका समय १८वी शती है।

रचना

कविकी एक ही रचना अजितपुराण उपलब्ध है। इसकी पाण्डुलिपि श्री जैन सिद्धान्त भवन आरामे भी है। द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथका जीवनवृत्त वर्णित है।

जगन्नाथ

जगन्नाथ सस्कृत-भाषाके अच्छे कवि हैं। ये भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्तिके शिष्य थे। इनका वश खण्डेलवाल था और पोमराज श्रेष्ठिके सुपुत्र थे। इनका भाई वादिराज भी सस्कृत-भापाका प्रौढ़ कवि था। इन्होने वि० स० १७२९ मे वाग्भटालकारकी कविचन्द्रिका नामकी टीका लिखी थी। ये तक्षक वर्त्तमान टोडा नामक नगरके निवासी थे। वादिराजके रामचन्द्र, लालजी, नेमिदास और विमलदास ये चार पुत्र थे। विमलदासके समयमे टोडामे उपद्रव हुआ था, जिसमे वहुतसे ग्रन्थ भी नष्ट हो गये थे। वादिराज राजा जयसिंहके यहाँ किसी उच्चपदपर प्रतिष्ठित थे।

कविवर जगन्नाथने कई सुन्दर रचनाएँ लिखी हैं।

स्थितिकाल

जगन्नाथने वि० स० १६९९ मे चतुर्विशतिसन्धान स्वोपज्ञटीकासहित लिखा है। इनका समय १७ वी शतीका अन्त और अठारहवी शतीका प्रारभ होना चाहिए। श्री प० परमानन्दजी शास्त्रीने जैनग्रन्थप्रशतिसंग्रह प्रथम भागकी प्रस्तावनामे कविवर जगन्नाथकी कई रचनाओका निर्देश किया है। इनके अनुसार कविकी सात रचनाएँ हैं

१ चतुर्विशतिसन्धान स्वोपज्ञ
२. सुखनिधान

३. ज्ञानलोचनस्तोत्र

४. शृगारसमुद्रकाव्य

५ श्वेताम्बर-पराजय

६. नेमिनरेन्द्रस्तोत्र

७. सुषेणचरित्र ।

चतुर्विशतिसन्धानकाव्यमे एक ही पद्य है, जिसके २४ अर्थ कविने स्वय किये है । पद्य इस प्रकार है

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमाङ्कोऽथ धर्मो
हर्यङ्कपुष्पदन्तो मुनिसुव्रतजिनोऽनन्तवाक् श्रीसुपार्श्व' ।
शान्ति पद्मप्रभोरो विमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजाङ्को
मल्लिर्नेमिर्नमिर्या सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ॥"

इस पद्यमे २४ तीर्थंकरोको नमस्कार किया गया है । कविने पृथक्-पृथक् २४ अर्थ लिखे है ।

दूसरी कृति सुखनिधान है, जिसकी रचना कवि जगन्नाथने तमालपुरमे की है । इस ग्रन्थमे कविने अपनी एक अन्य कृतिका भी उल्लेख किया है । 'अन्यच्च अस्माभिरुक्तं 'शृंगारसमुद्रकाव्ये' वाक्यके साथ शृगारसमुद्रकाव्यकी सूचना दी है । अत कविकी यह रचना भी महत्त्वपूर्ण रही होगी ।

एक अन्य-कृति श्वेताम्बर-पराजय है । इसमे श्वेताम्बरसम्मत केवलिभुक्तिका सयुक्तिक निराकरण किया है । इस ग्रथमे भी एक अन्य कृतिका निर्देश मिलता है । वह कृति हैं 'स्वोपज्ञनेमिनरेन्द्रस्तोत्र' ।

इस कृतिकी रचना कविने वि० स० १७०३ मे की है । लिखा है

"वत्से गुणाभ्रवीतेन्दुयुते (१७०३) द्वीपोत्सवे दिने ।
भुक्तिवाद समाप्तोय सितम्बर-कुयुक्तिहा ॥ १ ॥

इति श्वेताम्बर-पराजये कविनामक-वादि-वाग्मित्वगुणालकृतेन खाडिल्ल वशोद्भवपोमराजश्रेष्ठिसुतेन जगन्नाथवादिना कृते केवलिभुक्तिनिराकरण समाप्तम् ।"

कविकी एक अन्य रचना 'सुषेणचरित'का भी निर्देश मिलता है । यह ग्रथ भट्टारक महेन्द्रकीर्त्तिके आमेर-शास्त्रभण्डारमे सुरक्षित है ।

सुखनिधानकाव्यमे श्रीपालकी कथा अकित है । यह पाँच परिच्छेदोमे लिखा गया है । इसका रचनाकाल वि० सं० १७०० है । कविने अन्तिम प्रशस्ति-मे रचनाकाल एव ग्रन्थके वर्ण्यविषयके सम्बन्धमे प्रकाश डाला है

"धीरा विशुद्धमतयो मम सच्चरित्रं कुर्वन्तु शुद्धमिह यम विपर्ययोक्तं ।
दीपो भवेत्किल करे न तु यस्य पुंसो दोषो न चास्ति पतने खलु तस्य लोके ।।
आचार्यपूर्णेन्दु-समस्तकीर्त्ति-सरोजकीर्त्यादिनिदेशतो मे ।
कृतं चरित्र सुपुरातमाले श्रीपालराज्ञ शधामनाम्ना ।।२०९।।

इस प्रकार कवि जगन्नाथ गद्य-पद्यरचनामे सिद्धहस्त दिखलाई पड़ते हैं। सुखनिधानमे विदेहक्षेत्रस्थ श्रीपालका चरित निबद्ध किया गया है।

द्वितीय परिच्छेद

अपभ्रंश-भाषाके कवि और लेखक

प्राकृत और संस्कृतके साथ अपभ्रंशने काव्यभाषाके सिंहासनको अलंकृत किया। गुर्जर, प्रातिहार, पालवंश, चालुक्य, चौहान, चेदि, गहड़वाल, चन्देल, परमार आदि राजाओंके राज्यकालमें अपभ्रंशका पर्याप्त विकास हुआ। छठवीं शतीसे चौदहवीं शती तक अपभ्रंशमें अनेक मान्य आचार्य हुए, जिन्होंने अपनी लेखनीसे अपभ्रंश-साहित्यको मौलिक कृतियाँ समर्पित की।

अपभ्रंशका सबसे पुराना उल्लेख पतञ्जलिके महाभाष्यमें मिलता है। भरतमुनिने अपने नाट्यशास्त्रमें भी अपभ्रंशका निर्देश किया है। हिमवत, सिन्धु, सौवीर तथा अन्य देशोंमें उकारबहुला भाषाको अपभ्रंश कहा है।[1] भामह, दण्डी, रुद्रट आदि आचार्योंने भी अपभ्रंशको काव्यभाषा होनेका संकेत किया है। छठी शतीके वल्लभीके राजा गुहसेनके एक ताम्रलेखमें संस्कृत,

१. नाट्यशास्त्र १८।८२।

प्राकृत और अपभ्रंश इन तीन भाषाओमे प्रबन्ध-रचना लिखनेके लिये नियमन किया है। ८वी शताब्दी तक आते-आते अपभ्रंश-काव्यका रूप इतना विश्रुत और लोकरंजक हो चुका था कि उद्योतनसूरिने अपनी कुवलयमाला (वि० स० ८३५) मे संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशकी तुलना करते हुए लिखा है- संस्कृत अपने बड़े-बडे समासो, निपातो, उपसर्गो, विभक्तियो और लिगोकी दुर्गमताके कारण दुर्जन-हृदयके समान विषम है। प्राकृत समस्त कला-कलापोके माला-रूपी जल-कल्लोलोंसे सकुल लोकवृत्तान्तरूपी महोदधि-महापुरुषोंके मुखसे निकली हुई अमृतधाराकी बिन्दु-सन्दोह एव एक-एक क्रमसे वर्ण और पदोके सघटनसे नानाप्रकारकी रचनाओके योग्य होते हुए सज्जन-वचनके समान सुख-सगम है और अपभ्रंश संस्कृत, प्राकृत दोनोंके शुद्ध-अशुद्ध पदोसे युक्त तरगो द्वारा रंगीली चालवाले नववर्षाकालके मेघोके प्रपातसे पूरद्वारा प्लावित नदीके समान सम और विषम होती हुई प्रणय-कुपिता प्रणयिनीके वार्तालापके समान मनोहर होती है।

राजशेखर, हेमचन्द्र आदिने भी अपभ्रंश-भाषाके काव्योचित रूपपर विचार किया है और सभीने मुक्तकण्ठसे अपभ्रंशको काव्यकी भाषा स्वीकार किया है। महाकवि कालिदासके 'विक्रमोर्वशीय' नाटकमे अपभ्रंशके अन्य प्रबन्ध-काव्योकी अपेक्षा भाषाका सर्वाधिक समृद्ध और परिष्कृत रूप प्राप्त होता है। ८वी शतीसे अपभ्रंशके प्रबन्ध-काव्योकी परम्परा प्राप्त होने लगी है। चउमुहु चतुर्मुखका अबतक कोई काव्य उपलब्ध नही है। पर 'पउमचरिउ' की उत्थानिका एव प्रशस्तिसे यह ध्वनित होता है कि चतुर्मुखदेवने महाभारत-की कथा लिखी थी। पञ्चमी-चरित भी उनकी कोई रचना रही है। अतएव सक्षेपमे यही कहा जा सकता है कि जैन लेखकोने संस्कृत और प्राकृतके समान ही अपभ्रंश-भाषामे भी सरस काव्य-रचनाएँ लिखी हैं। इन रचनाओमे काव्य-तत्त्वके साथ दर्शन और आचारके सिद्धान्त भी प्राप्त होते हैं। हम यहाँ अपभ्रंश-भाषाके कवियोका इतिवृत्त अकित करेंगे। वस्तुत मध्यकालीन साहित्यका इतिहास ही अपभ्रंशका इतिहास है। जैनाचार्यो ने इस भाषामे सहस्रो रचनाएँ लिखी हैं।

कवि चतुर्मुख

चतुर्मुख कवि अपभ्रंशके ख्यातिप्राप्त कवि हैं। स्वयभुने अपने 'पउमचरिउ' 'रिट्ठणेमि-चरिउ' और 'स्वयभु छन्द'मे चतुर्मुख कविका उल्लेख किया है। महाकवि

पुष्पदन्तने भी अपने महापुराणमे अपने पूर्वके ग्रन्थकर्त्ताओ और कवियोका उल्लेख करते हुए चउमुहु (चतुर्मुख) का निर्देश किया है। लिखा है

चउमुहु सयंभु सिरिहरिसु दोणु, णालोइउ कइईसाणु वाणु।[1]

अर्थात् न मैने चतुर्मुख, स्वयभु, श्रीहर्ष और द्रोणका अवलोकन किया न कवि ईषाण और वाणका ही।

कवि पुष्पदन्तने ६९वी सन्धिमे भी रामायणका प्रारम्भ करते हुए स्वयंभु और चउमुहुका पृथक्-पृथक् निर्देश किया है

कइराउ सयंभु महायरिउ, सो सयणसहासहि परियरिउ।
चउमुहहु चयारि मुहाइं जहि, सुकइत्तणु सीसउ काइं तहिं॥

अर्थात् स्वयभु महान आचार्य है। उनके सहस्रो स्वजन हैं और चतुर्मुखके तो चार मुख हैं, उनके आगे सुकवित्व क्या कहा जाये।

हरिषेणने अपनी धर्म-परीक्षामे चतुर्मुखका निर्देश किया, 'रिट्ठणेमिचरिउ' मे स्वयभुने लिखा है कि पिंगलने छन्द-प्रस्तार, भामह और दण्डीने अलकार, वाणने अक्षराडम्बर, श्रीहर्षने निपुणत्व और चतुर्मुखने छर्दनिका, द्विपदी और ध्रुवकोसे जटित पद्धड़ियाँ दी हैं। अतएव स्पष्ट है कि चतुर्मुख स्वयभुके पूर्ववर्ती हैं। 'पउमचरिउ'के प्रारम्भमे बताया है कि चतुर्मुखदेवके शब्दोको स्वयभुदेवकी मनोहर वाणीको और भद्रकविके 'गोग्रहण'को आज भी कवि नही पा सकते हैं। इस तरह जलक्रीडाके वर्णनमे स्वयभुकी, 'गोग्रह' कथामे चतुर्मुखदेवकी और 'मत्स्यभेद' मे भद्रकी तुलना आज भी कवि नही कर सकते।

डॉ० हीरालालजी जैन और प्रो० एच० डी० वेलणकरने भी चतुर्मुखको स्वयभुसे पृथक् और उनका पूर्ववर्ती माना है। पद्धडिया छन्दके क्षेत्रमे चतुर्मुख-का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। सम्भवत इनकी दो रचनाएँ रही हैं महाभारत और पञ्चमीचरिउ। आज ये रचनाएँ उपलब्ध नही हैं। अतः इनके काव्य-सौन्दर्यके सम्बन्धमे कुछ नही कहा जा सकता है।

महाकवि स्वयंभुदेव

महाकवि स्वयंभु अपभ्रंश-साहित्यके ऐसे कवि है, जिन्होने लोकरुचिका सर्वाधिक ध्यान रखा है। स्वयभुकी रचनाएँ अपभ्रशकी आख्यानात्मक रचनाएँ है, जिनका प्रभाव उत्तरवर्ती समस्त कवियोपर पडा है। काव्य-

१. पुष्पदन्तका महापुराण, माणिकचन्द्रग्रन्थमाला, १।५।

रचयिताके साथ स्वयभु छन्दशास्त्र और व्याकरणके भी प्रकाण्ड पण्डित थे। छन्दचूडामणि, विजयपरिशेष और कविराज धवल इनके विरुद थे।

कवि स्वयभूके पिताका नाम मारुतदेव और माताका नाम पद्मिनी था। मारुतदेव भी कवि थे। स्वयंभुने छन्दमे 'तहा य माउरदेवस्स' कहकर उनका निम्नलिखित दोहा उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया है

लद्धउ मित्त भमतेण रअणा अरचदेण।
सो सिज्जते सिज्जइ वि तह भरइ भरतेण[1] ॥ ४–९

स्वयभुदेव गृहस्थ थे, मुनि नही। 'पउमचरिउ' से अवगत होता है कि इनकी कई पत्नियाँ थी, जिनमेसे दोके नाम प्रसिद्ध है एक अइच्चंबा (आदित्यम्बा) और दूसरी सामिअंब्वा। ये दोनो ही पत्नियाँ सुशिक्षिता थी। प्रथम पत्नीने अयोध्याकाण्ड और दूसरीने विद्याधरकाण्डकी प्रतिलिपि की थी। कविने उक्त दोनो काण्ड अपनी पत्नियोसे लिखवाये थे।

स्वयभुदेवके अनेक पुत्र थे, जिनमे सबसे छोटे पुत्र त्रिभुवनस्वयभु थे। श्रीप्रेमीजीका अनुमान है कि त्रिभुवनस्वयभुकी माताका नाम सुअब्वा था, जो स्वयभुदेवकी तृतीया पत्नी थी। श्रीप्रेमीजीने अपने कथनकी पुष्टिके लिये निम्नलिखित पद्य उद्धृत किया है

सव्वे वि सुआ पंजरसुअव्व पढ़ि अक्खराइ सिक्खति।
कइराअस्स सुओ सुअव्व-सुइ-गब्भ संभूओ ॥[2]

अपभ्रशमे 'सुअ' शब्दसे सुत और शुक दोनोका बोध होता है। इस पद्यमे कहा है कि सारे ही सुत पिंजरेके सुओके समान पढ़े हुए ही अक्षर सीखते हैं. पर कविराजसुत त्रिभुवन 'श्रुत इव श्रुतिगर्भसम्भूत हैं'। यहाँ श्लेष द्वारा सुअव्वाके शुचि गर्भसे उत्पन्न त्रिभुवन अर्थ भी प्रकट होता है। अतएव यह अनुमान सहजमे ही किया जा सकता है कि त्रिभुवनस्वयभुकी माताका नाम सुअव्वा था।

स्वयंभु शरीरसे बहुत दुबले-पतले और ऊँचे कदके थे। उनकी नाक चपटी और दाँत विरल थे। स्वयभुका व्यक्तित्व प्रभावक था। वे शरीरसे क्षीण काय होने पर भी ज्ञानसे पुष्टकाय थे। स्वयभुने अपने वश, गोत्र आदिका निर्देश नही किया, पर पुष्पदन्तने अपने महापुराणमे इन्हे आपुलसघीय बताया है। इस प्रकार ये यापनीय सम्प्रदायके अनुयायी जान पड़ते है।

१ अनेकान्त, वर्ष ५, किरण ८–९, पृ० २९९।
२. जैन साहित्य और इतिहास, प्रथम सस्करण, पृ० ३७४।

स्वयंभुने अपने जन्मसे किस स्थानको पवित्र किया, यह कहना कठिन है, पर यह अनुमान सहजमे ही लगाया जा सकता है कि वे दाक्षिणात्य थे। उनके परिवार और सम्पर्की व्यक्तियोके नाम दाक्षिणात्य हैं। मारुतदेव, धवलइया, बन्दइया, नाग आइच्चबा, सामिअंब्बा आदि नाम कर्नाटकी हैं। अतएव इनका दाक्षिणात्य होना अबाधित है।

स्वयंभुदेव पहले धनञ्जयके आश्रित रहे और पश्चात् धवलइयाके। 'पउमचरिउ' की रचनामे कविने धनञ्जयका और 'रिट्ठणेमिचरिउ' की रचनामे धवलइयाका प्रत्येक सन्धिमें उल्लेख किया है।

स्थितिकाल

कवि स्वयभुदेवने अपने समयके सम्बन्धमे कुछ भी निर्देश नही किया है। पर इनके द्वारा स्मृत कवि और अन्य कवियो द्वारा इनका उल्लेख किये जानेसे इनके स्थितिकालका अनुमान किया जा सकता है। कवि स्वयंभुदेवने 'पउमचरिउ' और 'रिट्ठणेमिचरिउ'मे अपने पूर्ववर्ती कवियो और उनके कुछ ग्रन्थोंका उल्लेख किया है। इससे उनके समयकी पूर्वसीमा निश्चित की जा सकती है। पाँच महाकाव्य, पिंगलका छन्दशास्त्र, भरतका नाट्यशास्त्र, भामह और दण्डीके अलकारशास्त्र, इन्द्रके व्याकरण, व्यास-बाणका अक्षराडम्बर, श्रीहर्षका निपुणत्व और रविषेणाचार्यकी रामकथा उल्लिखित है। इन समस्त उल्लेखोमे रविषेण और उनका पद्मचरित ही अर्वाचीन है। पद्मचरितकी रचना वि० स० ७३४ मे हुई है। अतएव स्वयंभुके समयकी पूर्वावधि वि० स० ७३४ के बाद है।

स्वयभुका उल्लेख महाकवि पुष्पदन्तने अपने पुराणमे किया है और महापुराणकी रचना वि० स० १०१६ मे सम्पन्न हुई है। अतएव स्वयभुके समयकी उत्तरसीमा वि० सं० १०१६ है। इस प्रकार स्वयभुदेव वि० स० ७३४–१०१६ वि० सं० के मध्यवर्ती हैं। श्री प्रेमीजीने निष्कर्ष निकालते हुए लिखा है 'स्वयभुदेव हरिवशपुराण कर्त्ता जिनसेनसे कुछ पहले ही हुए होगे, क्योकि जिस तरह उन्होने 'पउमचरिउ' मे रविषेणका उल्लेख किया है, उसी तरह 'रिट्ठणेमिचरिउ'मे हरिवशके कर्त्ता जिनसेनका भी उल्लेख अवश्य किया होता यदि वे उनसे पहले हो गये होते तो। इसी तरह आदिपुराण, उत्तरपुराणके कर्त्ता जिनसेन, गुणभद्र भी स्वयभुदेव द्वारा स्मरण किये जाने चाहिये थे। यह बात नही जँचती कि बाण, श्रीहर्ष, आदि अजैन कवियोकी तो चर्चा करते और जिनसेन आदिको छोड देते। इससे यही अनुमान होता है कि स्वयभुदेव दोनो जिनसेनोसे कुछ पहले हो चुके होगे। हरिवशकी रचना वि० स० ८४० मे

समाप्त हुई थी। इसलिये ७३४ से ८४० के बीच स्वयभुका समय माना जा सकता[1] है।' डा० देवेन्द्र जैनने इनका समय ई० सन् ७८३ अनुमानित किया है। यह अनुमान ठीक सिद्ध होता है।

रचनाएँ

कविकी अभी तक कुल तीन रचनाएँ उपलब्ध है और तीन रचनाएँ उनके नाम पर और मानी जाती हैं

१ पउमचरिउ
२ रिट्ठणेमिचरिउ
३. स्वयमुछन्द
४ सोद्धयचरिउ
५ पचमिचरिउ
६ स्वयभुव्याकरण

१ पउमचरिउ

'पउमचरिउ' एक श्रेष्ठ महाकाव्य है। रामकथाको नदीका रूप देकर कविने उक्त ग्रन्थकी विशेषता प्रदर्शित की है

वद्धमाण-मुहकुहर-विणिग्गय रामकहा-णइ एह कमागय
अक्खर-वास-जलोह-मणोहर सु-अलकार छन्द-मच्छोहर
दीह-समास-पवाहावकिय सक्कय-पायय पुलिणालकिय
देसीभाषा-उभय-तडुज्जल कवि-दुक्कर-घण-सद्द-सिलायल[2]

'पउमचरिउ' का ग्रन्थप्रमाण बारह हजार श्लोक है। और इसमे सब मिलाकर ९० सन्धियाँ हैं।

विद्याधरकाण्ड २० सन्धियाँ, अयोध्याकाण्ड २२ सन्धियाँ, सुन्दरकाण्ड, १४ सन्धियाँ, युद्धकाण्ड २१ सन्धियाँ, उत्तरकाण्ड १३ सन्धियाँ।

इन नव्वे सन्धियोमे ८३ सन्धियोकी रचना स्वयम्भुदेवने की है। विद्याधर-काण्डमे कुलकरोके उल्लेखके अनन्तर राक्षस और वानरवशका विकास बतलाया गया है। अयोध्यामे सगरचक्रवर्ती उत्पन्न हुआ। उसके साठ हजार पुत्र थे। एक बार वे कैलासपर्वतपर ऋषभदेवकी वन्दनाके लिये गये। वहाँ पर जिनमन्दिरोकी सुरक्षाके लिये उन्होने उसके चारो ओर खाई खोदना आरम्भ

१ जैन साहित्य और इतिहास, प्रथम संस्करण, पृ० ३८७।
२ पउमचरिउ, प्रथम सन्धि, कडवक २११-४।

किया। धरणेन्द्र कुपित हुआ और उसने सबको भस्म कर दिया, केवल भगीरथ और भीम ही शेष बचे। चक्रवर्तीको वैराग्य उत्पन्न हुआ और वह भगीरथको राज्य देकर दीक्षित हो गया। सगर राजाका समधी सहस्राक्ष था। उसने अपने पिताकी हत्या करनेवाले पुण्यमेघ पर चढाई की और उसे मार डाला। उसका पुत्र तोयदवाहन किसी प्रकार भाग कर द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथके समवशरणमे पहुँचा। सहस्राक्ष भी वहाँ आया। पर समवशरणमे प्रवेश करते ही उसका क्रोध नष्ट हो गया। इसी तोयदवाहनने लकानगरीकी नीव डाली और यहीसे राक्षसवश आरभ हुआ।

सगरके बाद ६४वी पीढीमे कीर्तिधवल अयोध्याके राज्यपर आसीन हुआ। उसका साला श्रीकण्ठ सपत्नीक वहाँ आया। कीर्तिधवलने प्रसन्न होकर उसे वानरद्वीप दे दिया। श्रीकण्ठने पहाडोपर किष्कपुर बसाया। तदनन्तर अमरप्रभु राजा हुआ। उसने लकाकी राजकुमारीसे विवाह किया। नववधू जब ससुरालमे आयी, तो आँगनमे वन्दरोके सजीव चित्र देखकर भयभीत हो गयी। इसपर अमरप्रभु चित्रकारपर अप्रसन्न हो उठे। मन्त्रियोने उसे बताया कि वानरोसे उसके परिवारका पुराना सम्बन्ध चला आ रहा है। उसे तोड़ना ठीक नही। उसने बानरको अपना राजचिह्न मान लिया। लकामे राक्षसवशकी समृद्धि हुई और क्रमश मालीके भाई सुमालीका पुत्र रत्नश्रव-राजा हुआ। उसके तीन पुत्र थे रावण, विभीषण और कुम्भकरण। एक लडकी भी थी चन्द्रनखा। रावण अत्यन्त शूरवीर और पराक्रमी था। मन्दोदरीके सिवा उसकी छह हजार रानियां थी। रावण किष्कपुरके राजा बालिको हराना चाहता था। पर उसे उल्टी हार खानी पडी। बालि अपने अनुज सुग्रीवको राज्य देकर तप करने चला गया। रावण बडा जिनभक्त था। उसने अपने पराक्रमसे यम, इन्द्र, वरुण आदि राजाओको परास्त किया था।

अयोध्याकाण्डमे अयोध्याके राजाओका वर्णन आया है। इस नगरीमे ऋषभदेवके वंशसे समयानुसार अनेक राजा हुए और सबने दिगम्बर दीक्षा लेकर तपस्या की और मोक्ष प्राप्त किया। इस वशके राजा रघुके अरण्य नामक पुत्र हुआ। इसकी रानीका नाम पृथ्वीमति था। इस दम्पतिके दो पुत्र हुए अनन्तरथ और दशरथ। राजा अरण्य अपने बडे पुत्र सहित ससारसे विरक्त हो तपस्या करने चला गया। तथा अयोध्याका शासनभार दशरथको मिला। एक दिन दशरथकी सभामे नारद मुनि आये। उन्होने कहा कि रावणने किसी निमित्तज्ञानीसे यह जान लिया है कि दशरथपुत्र और जनकपुत्रीके निमित्तसे उसकी मृत्यु होगी। अत: उसने विभीषणको आप दोनोको मारनेके लिये नियुक्त

किया है। आप सावधान होकर कहीं छुप जायें। राजा दशरथ अपनी रक्षाके लिये देश-देशान्तरमे गये और मार्गमे कैकेयीसे विवाह किया। कुछ समय पश्चात् महाराज दशरथके चार पुत्र हुए और एक युद्धमे प्रसन्न होकर उन्होने कैकेयी-को वरदान भी दिया। रामके राज्यभिषेकके समय कैकेयीने वरदान मांगा, जिससे राम, लक्ष्मण और सीता वन गये तथा महाराज दशरथने जिनदीक्षा ग्रहण की। सीताहरण हो जानेपर रामने वानरवंशी विद्याधर पवनञ्जय और अञ्जनाके पुत्र हनुमान एवं सुग्रीवसे मित्रता की। रामने सुग्रीवके शत्रु साहस-गतिका वध कर सदाके लिये सुग्रीवको अपने वश कर लिया और इन्हींके साहाय्यसे रावणका वध कर सीताको प्राप्त किया।

अयोध्या लौटकर लोकापवादके भयसे सीताका निर्वासन किया। सौभाग्य-से जिस स्थानपर जंगलमे सीताको छोड़ा गया था, वज्रजंघ राजा वहाँ आया और अपने घर ले जाकर सीताका सरक्षण करने लगा। सीताके पुत्र लवणा-कुशने अपके पराक्रमसे अनेक देशोको जीतकर वज्रजघके राज्यकी वृद्धि की। जव यह वीर दिग्विजय करता हुआ अयोध्या आया, तो रामसे युद्ध हुआ तथा इसी युद्धमे पिता-पुत्र परस्परमे परिचित भी हुए। सीता अग्निपरीक्षामे उत्तीर्ण हुई। वह विरक्त हो तपस्या करने चली गयी और स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्ग प्राप्त किया। लक्ष्मणकी मृत्यु हो जानेपर राम शोकाभिभूत हो गये। कुछ काल पश्चात् वोध प्राप्त कर दिगम्बर मुनि वन दुर्द्धर तपश्चरण कर मोक्ष प्राप्त किया।

यह सफल महाकाव्य है। इसकी आदिकालिक कथा रामकथा है। अवान्तर या प्रासगिक कथाएँ वानरवश और विद्याधरवंशके आख्यानके रूपमे आयी हैं। प्रासगिक कथावस्तुमे प्रकरी और पताका दोनो ही प्रकारकी कथाएँ हैं। पताकारूपमें सुग्रीव और मारुतनन्दनकी कथाएँ आधिकारिक कथाके साथ-साथ चली हैं और प्रकरीरूपमे वालि, भामण्डल, वज्रजघ आदि राजाओके आख्यान हैं। कथागठनकी दृष्टिसे कार्य-अवस्थाएँ, अर्थ-प्रकृतियाँ और सन्धियाँ सभी विद्यमान हैं। नायक, रस, अलकार, सवाद, वस्तुव्यापारवर्णन आदि सभी दृष्टियोसे यह काव्य उत्तम कोटिका काव्य है। यहाँ कविके प्रकृतिवर्णनको उपस्थित किया जाता है। कविने इसमे उपमा और उत्प्रेक्षाओका सुन्दर जाल वांधा है

हसइ व रिउ-धिरु मुहन्वय वंधरु।
विद्दुममाहरु मोत्तियन्दतरु ॥१॥
छिवइ व मत्थए मेरु-महीहरु।
तुज्झु वि मज्झु वि कवणु पईहरु ॥२॥

जं चन्द्रकन्त-सलिलाहिसित्तु । अहिसेय-पणालुवफुसिय-चित्तु ॥ ३ ॥
जं विद्दुम-मरगय-कन्तिकाहि । थिउ गयणुव सुरवणु-पन्तियाहिँ ॥ ४ ॥
ज इन्दणील-माला-मसीएँ । आलिहइ वदिस-भित्तीएँ तीएँ ॥ ५ ॥
जहिं पोमराय-मणि-गणु विहाइ । थिउ अहिणव-सञ्झा-राउ-णाइँ ॥ ६ ॥

इसप्रकार यह ग्रन्थ अपभ्रंश-काव्यका मुकुटमणि है ।

रिट्ठणेमिचरिउ

यह हरिवंशपुराणके नामसे प्रसिद्ध है। अठारह हजार श्लोकप्रमाण है और ११२ सन्धियाँ हैं। इसमे तीन काण्ड हैं यादव, कुरु और युद्ध। यादवमे १३, कुरुमे १९, और युद्धमे ६० सन्धियाँ है। सन्धियोकी यह गणना युद्धकाण्डके अन्तमे अकित है। यहाँ यह भी बताया गया गया कि प्रत्येक काण्ड कब लिखा गया और उसकी रचनामे कितना समय लगा। इन सन्धियोमे ९९ सन्धि स्वभुदेवके द्वारा लिखी गयी हैं। ९९वी सन्धिके अन्तमे एक पद आया है, जिसमे बताया है कि पउमचरिउ या सुव्वयचरिउ बनाकर अब मैं हरिवशको रचनामे प्रवृत्त होता हूँ।

'रिट्ठणेमिचरिउ' अपभ्रंश-भाषाका प्रबन्धकाव्य है। रिट्ठणेमिचरिउकी रचना धवलइयाके आश्रयमे की गयी है। इस ग्रन्थमे २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ, श्रीकृष्ण और यादवोकी कथा अकित है।

पंचमीचरिउ

यह ग्रन्थ पद्धड़ियाबद्ध शैलीमे लिखा गया है। अभी तक यह अप्राप्त है। इसमे नागकुमारकी कथा वर्णित है।

स्वयंभुछन्द

स्वयभुदेवने एक छन्दग्रन्थकी रचना की है, जिसका प्रकाशन प्रो० एच० डी० वेलणकरने किया है। इस ग्रन्थके प्रारम्भके तीन अध्यायोमे प्राकृतके वर्णवृत्तोका और पाँच शेष अध्यायोमे अपभ्रशके छन्दोका विवेचन किया है। साथ ही छन्दोके उदाहरण भी पूर्वकवियोके ग्रन्थोसे चुनकर दिये गये हैं।

इस ग्रन्थके अन्तिम अध्यायमे दोहा, अडिल्ला, पद्धड़िया आदि छन्दोके स्वोपज्ञ उदाहरण दिये गये हैं। इस ग्रन्थमे पउमचरिउ, बम्महतिलय, रअणावली आदि ग्रन्थोके भी उदाहरण दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त प्राकृतके

१. पउमचरिउ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, ७।२।३।

ब्रह्मदत्त, दिवाकर, अंगारगण, मारुतदेव, हरदास, हरदत्त, वणदत्त, गुणधर, जीवदेव, विमलदेव, मूलदेव, कुमारदत्त, त्रिलोचन आदि कवियोंके नाम भी आये हैं। अपभ्रंश-कवियोंमें चतुर्मुख, धुत्त, धनदेव, धइल्ल, अज्जदेव, गोइन्द, सुद्धसील, जिणआस, विअड्ढके नाम भी आये हैं।

स्वयंभुव्याकरण

पउमचरिउके एक पद्यसे कविके अपभ्रंश-व्याकरणका भी संकेत प्राप्त होता है। बताया है कि अपभ्रंशरूप मतवाला हाथी तभी तक स्वच्छन्दतासे भ्रमण करता है, जब तक कि स्वयंभुव्याकरणरूप अंकुश नहीं पडता। परन्तु यह व्याकरणग्रन्थ अभी तक अनुपलब्ध है। श्रीप्रेमीजीका मत है कि सुद्धयचरिय कोई पृथक् ग्रन्थ नहीं है, यह सुव्वयचरिउ होना चाहिए, जो पउमचरिउका अपर नाम है। निश्चयतः अपभ्रंशकाव्य-रचयिताओंमें स्वयंभुका महनीय स्थान है। ये काव्य और शास्त्र दोनोंके पारंगत विद्वान हैं। इनकी रचनाओंमें भक्तिकी तन्मयता और काव्यकी सरसता प्राप्त है। प्रकृतिचित्रण और निरीक्षणकी क्षमता उनमें अद्भुत थी।

त्रिभुवनस्वयंभु

स्वयंभुदेवके छोटे पुत्रका नाम त्रिभुवनस्वयंभु था। ये अपने पिताके सुयोग्य पुत्र थे और उन्हीके समान मेधावी कवि थे। कविराजचक्रवर्ती उनका विरुद था। प्रशस्तिके पद्योंसे उनकी विद्वत्ताका पूरा परिचय प्राप्त होता है। लिखा है

तिहुअण-सयम्भु-धवलस्स को गुणे वण्णिउं जए तरइ।
बालेण वि जेण सयम्भु-कव्व-भारो समुव्वूढो ॥५॥
वायरण-दढ-क्खन्धो आगम-अंगोपमाण-वियड-पओ।
तिहुअण-सयम्भु-धवलो जिण-तित्थे वहउ कव्वभरं[1] ॥६॥

अर्थात् त्रिभुवनस्वयंभुने अपने पिताके सुकवित्वका उत्तराधिकार प्राप्त किया। उसे छोडकर स्वयंभुके समस्त शिष्योंमें ऐसा कौन था, जो कविके काव्य भारको ग्रहण करता। त्रिभुवनस्वयंभुको धवल-वृषभकी उपमा दी गयी है। व्याकरणके अध्ययनसे मजबूत स्कन्ध, आगमोंके अध्ययनसे सुदृढ अंग और व्याकरणके अध्ययनसे विकटपदविज्ञ त्रिभुवनस्वयंभुके अतिरिक्त

१ पउमचरिउ, प्रशस्तिगाथा, पद्य ५,६।

अन्य व्यक्ति काव्यभारको वहन नही कर सकता है। निश्चयत. त्रिभुवनस्वयंभु आगम, व्याकरण, काव्य आदि विषयोके ज्ञाता थे।

इस कथनसे स्पष्ट है कि त्रिभुवनस्वयभु शास्त्रज्ञ पण्डित थे। जिसप्रकार स्वयभुदेव धनञ्जय और धवलइयाके आश्रित थे, उसी तरह त्रिभुवन वन्दइयाके। ऐसा अवगत होता है कि ये तीनो ही आश्रयदाता किसी एक ही राजमान्य या धनी कुलके थे। धनञ्जयके उत्तराधिकारी धवलइया और धवलइयाके उत्तराधिकारी वन्दइया थे। एकके स्वर्गवासके पश्चात् दूसरेके और दूसरेके वाद तीसरेके आश्रयमे आये होगे। वन्दइयाके प्रथमपुत्र गोविन्दका भी त्रिभुवनस्वयभुने उल्लेख किया है, जिसके वात्सल्यभावसे पउमचरिउके शेष सात सर्ग रचे गये हैं।

वन्दइयाके साथ पउमचरिउके अन्तमे त्रिभुवनस्वयभुने नाग, श्रीपाल आदि भव्यजनोको आरोग्य, समृद्धि, शान्ति और सुखका आशीर्वाद दिया है।[1]

त्रिभुवनस्वयभुका समय स्वयभुके समान ही ई० सन् की नवम शताब्दी है।

त्रिभुवनस्वयभुने पउमचरिउ, रिट्ठणेमिचरिउ और पञ्चमीचरिउको पूर्ण किया है। श्री डॉ० हीरालाल जैनका अभिमत है त्रिभुवनस्वयभुने रिट्ठणेमिचरिउके अपूर्ण अशको पूर्ण किया है। पउमचरिउ इनका पूर्ण ग्रन्थ है। डॉ० भायाणी पउमचरिउ, रिट्ठणेमिचरिउ और पञ्चमीचरिउ इन तीनोको अपूर्ण मानते हैं और तीनोकी पूर्ति त्रिभुवनस्वयभु द्वारा की गयी बतलाते हैं। पर एक लेखककी सभी कृतियाँ अधूरी नही मानी जा सकती हैं, क्योकि लेखक एक कृतिको पूर्ण कर ही दूसरी कृतिका आरम्भ करता है। अप्रत्याशितरूपसे मृत्युके आ जाने पर कोई एक ही कृति अधूरी रह सकती है। अत प्रेमीजीके इस अनुमानसे हम सहमत हैं कि त्रिभुवनस्वयभुने अपने पिताकी कृतियोका परिमार्जन किया है। त्रिभुवनने रामकथाकन्याको सप्त महासर्गांगी या सात सर्गोंवाली कहा है

सत्त-महासग्गंगी ति-रयण-भूसा-सु-रामकहकण्णा।
तिहुअण-सयम्भु-जणिया परिणउ वन्दइय-मण-तणय[2] ॥

स्पष्ट है कि ८४वी सन्धिसे ९०वी सन्धि तक सात सन्धियाँ 'पउमचरिउ'की त्रिभुवनस्वयभु द्वारा विरचित हैं। ८४वी सन्धिसे ठीक सन्दर्भ घटित करनेके

१. पउमचरिउ, अन्तिम प्रशस्ति, पद्य १७,१८।
२ पउमचरिउ, अन्तिम प्रशस्ति, पद्य १९।

लिये उसमे भी उन्हें कुछ कड़वक जोड़ने पड़े और पुष्पिकामे अपना नामांकन किया।

हम प्रेमीजीके इस अनुमानसे पूर्णतया सहमत हैं कि स्वयम्भुदेवने अपनी समझसे यह ग्रन्थ पूरा ही रचा था, पर उनके पुत्र त्रिभुवनस्वयम्भुको कुछ कमी प्रतीत हुई और उस कमीको उन्होंने नयी-नयी सन्धियाँ जोड़कर पूरा किया।

'रिट्ठणेमिचरिउ' की ९९ सन्धियाँ तो स्वयम्भुदेवकी हैं। ९९वी सन्धिके अन्तमे एक पद्य आया है, जिसमे कहा है कि 'पउमचरिउ' या 'सुव्वयचरिउ' बनाकर अब मै हरिवंशकी रचनामे प्रवृत्त होता हूँ। सरस्वतीदेवी मुझे स्थिरता प्रदान करें। इस पद्यसे यह ध्वनित होता है कि त्रिभुवनस्वयम्भुने 'पउमचरिउ' के संवर्द्धनके पश्चात् हरिवंशके संवर्द्धनकी ओर ध्यान दिया और उन्होने १०० से ११२ तककी सन्धियाँ रची। अन्तिम सन्धि तक पुष्पिकाओमे त्रिभुवनस्वयम्भुका नाम प्राप्त होता है। १०६, १०८, ११०, और १११वी सन्धिकेपद्योमे मुनि यशःकीर्तिका नाम आता है। प्रेमीजीका अभिमत है कि यशःकीर्तिने जीर्ण-शीर्ण प्रतिको ठीक-ठाक किया होगा और उसमे उन्होने अपना नाम जोड दिया होगा। इस प्रकार त्रिभुवनस्वयम्भुने 'सुद्धयचरिउ', 'पउमचरिउ' और 'हरिवंशचरिउ' इन तीनो ग्रन्थोमे कुछ अंश जोडकर इन्हे पूर्ण किया है। प्रेमीजीने सुद्धयचरिउको सुव्वयचरिउ माना है, पर यह मान्यता स्वस्थ प्रतीत नही होती।

निश्चयतः त्रिभुवनस्वयम्भु अपने पिताके समान प्रतिभाशाली थे। काव्य-रचनामे इनकी अप्रतिहत गति थी।

महाकवि पुष्पदन्त

महाकवि स्वयम्भूकी रामकथा यदि नदी है, तो पुष्पदन्तका महापुराण समुद्र। पुष्पदन्तका काव्य अलंकृत वाणीका चरम निदर्शन है। दर्शन, शास्त्रीय ज्ञान और काव्यत्व इन तीनोका समावेश महापुराणमे हुआ है।

पुष्पदन्तका घरेलू नाम खण्ड या खण्डू था। इनका स्वभाव उग्र और स्पष्ट-वादी था। भरत और बाहुबलिके कथासन्दर्भमे उन्होने राजाको लुटेरा और चोर तक कह दिया है। कविके उपाधिनाम अभिमानमेरु कविकुल तिलक, सरस्वतीनिलय और काव्यपिसल्ल थे। महापुराणके अन्तमे कविने

जो अपना परिचय अंकित किया है उससे कविके व्यक्तित्वपर पूरा प्रकाश पड़ता है। लिखा है

"सूने घरों और देवकुलिकाओंमें रहनेवाले कलिमे प्रबल पापपटलों से रहित, बेघरवार, पुत्र-कलत्रहीन, नदी-वापिका और सरोवरोमे स्नान करने वाले, पुराने वल्कल और वस्त्र धारण करनेवाले, धूलधूसरित अंग, दुर्जनके संगसे रहित, पृथ्वीपर शयन करनेवाले, अपने हाथोंका तकिया लगाने वाले, पण्डितमरणकी इच्छा रखनेवाले, मान्यखेटवासी, अर्हन्तके उपासक, भरत द्वारा सम्मानित्त, काव्यप्रबन्धसे लोगोंको पुलकित करनेवाले, पापरूपी कीचड़-को धोनेवाले, अभिमानमेरु पुष्पदन्तने यह काव्य जिनपदकमलोमे हाथ जोड़े हुए भक्तिपूर्वक क्रोधनसंवत्सरमे आषाढशुक्ला दशमीको लिखा।"

इन पक्तियोंसे कविके व्यक्तित्वपर पूरा प्रकाश पड़ता है। कवि प्रकृतिसे अक्खड और निःसंग था। उसे संसारमे किसी वस्तुकी आकांक्षा नही थी। वह केवल निःस्वार्थ प्रेम चाहता था। भरतने कविको प्रेम और सम्मान प्रदान किया। पुष्पदन्त मौजी और फक्कड स्वभावके थे। यही कारण है कि जीवन-पर्यन्त काव्यसाधना करनेपर भी वे अपनेको 'काव्य-पिसल्ल' (काव्य-पिशाच) कहना नही चूके।

महाकवि पुष्पदन्त कश्यपगोत्रीय ब्राह्मण थे। उनके पिताका नाम केशव भट्ट और माताका नाम मुग्धादेवी था। आरंभमे कवि शैव था और उसने भैरव नामक किसी शैव राजाकी प्रशसामे काव्य-रचना भी की थी; पर बादमे वह किसी जैन मुनिके उपदेशसे जैन हो गया और मान्यखेट आनेपर मत्री भरतके अनुरोधसे जिनभक्तिसे प्रेरित होकर काव्य-रचना करने लगा था। पुष्पदन्तने सन्यासविधिसे मरण किया।

कविका जन्मस्थान कौन-सा प्रदेश है, यह निश्चित रूपसे नही कहा जा सकता। मान्यखेटमे कविने अपनी अधिकांश रचनाएँ लिखी हैं। श्री नाथूराम प्रेमीने उन्हे दक्षिणमे बाहरसे आया हुआ बतलाया है। उनका कथन है कि एक तो अपभ्रंश-साहित्य उत्तरमे लिखा गया। दूसरे, पुष्पदन्तकी भाषामे द्रविडशब्द नही हैं। मराठीशब्दोंका समावेश रहनेसे उन्हे विदर्भका होना चाहिए। डॉ० पी० एल० वैद्य डोड्डु, गोड्डु आदि शब्दोंको द्रविड़ समझते हैं। कविने यह तो लिखा है कि वे मान्यखेट पहुँचे; पर कहाँसे मान्यखेट पहुँचे यह नही बताया है। इस कालमे विदर्भ साधनाका केन्द्र था। सभव है कि वे वही से आये हो।

स्थितिकाल

कवि पुष्पदन्तने अपनी कृतियोमे समयका निर्देश नही किया है, पर उन्होने जिन ग्रथो और ग्रथकारोका उल्लेख किया है उनसे कविके समयका निर्णय किया जा सकता है। कवि पुष्पदन्तने धवल और जयधवल ग्रथोका उल्लेख किया है। जयधवलाटीका वीरसेनके शिष्य जिनसेनने अमोघवर्ष प्रथम सन् ८३७के लगभग पूर्ण की है। अतएव यह निश्चित है कि पुष्पदन्त उक्त सन्के पश्चात् ही हुए होगे, पहले नही।

हरिषेण कविकी 'धम्मपरिक्खा'मे पुष्पदन्तका निर्देश आता है। धम्मपरिक्खाके रचयिता हरिषेण धक्कड वशीय गोवर्द्धनके पुत्र और सिद्धसेनके शिष्य थे। वे मेवाडदेशके चित्तौड़के रहनेवाले थे और उसे छोडकर कार्यवश अचलपुर गये थे।[1] वहाँ पर उन्होने वि० स० १०४४मे अपना यह ग्रथ समाप्त किया।[2]

अतएव इस आधारपर वि० स० १०४४के पूर्व ही पुष्पदन्तका समय होना चाहिए। जयधवलाटीकाका निर्देश करनेके कारण ई० सन् ८३७के पूर्व भी पुष्पदन्त नही हो सकते हैं। अतएव पुष्पदन्तका समय वि० स० ८९४-१०४४के मध्य होना चाहिए।

कविने अपने ग्रथोमे गेडिगु, शुभतु ग, वल्लभनरेन्द्र और कण्हरायका उल्लेख किया है। और इन सब नामोपर ग्रन्थकी प्रतियो और टिप्पणग्रथोमे कृष्णराज टिप्पणी लिखी है। इसका अर्थ यह हुआ कि ये सभी नाम एक ही राजाके हैं। वल्लभराय या वल्लभनरेन्द्र, राष्ट्रकूटराजाओकी सामान्यपदवी थी। अतएव यह स्पष्ट है कि कृष्ण राष्ट्रकूटवशके राजा थे।

'णायकुमारचरिउ'की प्रस्तावनामे मान्यखेट नगरीके वर्णन-प्रसगमे कवि कहता है कि वह राजा कण्हराय कृष्णराजकी कृपाण-जलवाहिनीसे दुर्गम है। राष्ट्रकूटवशमे कृष्णनामके तीन राजा हुए। उनमे पहला शुभतुग उपाधिधारी कृष्णराजा नही हो सकता क्योकि उसके बाद ही अमोघवर्षने मान्यखेटको बसाया था। दूसरा कृष्णराज भी नही हो सकता है क्योकि उसके समयमे गुणभद्रने उत्तरपुराणकी रचना की थी। और यह पुष्पदन्तके पूर्ववर्ती कवि हैं। अत कृष्ण तृतीय हो इनका समकालीन हो सकता है। कविके द्वारा वर्णित घटनाओके साथ इसका ठीक-ठीक मेल बैठता है। इतिहाससे यह भली-

१ सिरिचित्तउडु चएवि अचलउरहो, गउ णियकज्जें जिणहरपउरहो।
तहि छदालकारपसाहिइ, धम्मपरिक्खएहते साहिय॥
२ विक्कमणिवपरियत्तइ कालए, ववगए वरिस सहसचउतालए।

भाँति प्रकट है कि कृष्ण तृतीयने चोलदेश पर विजय प्राप्त की थी। कविने धारा-नरेश द्वारा मान्यखेटकी लूटका उल्लेख किया है।[1] यह घटना कृष्ण तृतीयके बादकी और खोट्टिगदेवके समयकी है। धनपालकी पाइयलच्छी कृतिसे भी सिद्ध है कि वि० सं० १०२९मे मालवनरेशने मान्यखेटको लूटा था।[2] यह यह धारा नरेश हर्षदेव था जिसने खोट्टिगदेवसे मान्यखेट छीना था। अत: कवि पुष्पदन्तको कृष्ण तृतीयका समकालीन होना चाहिए। यहाँ एक शंका यह है कि महापुराण शक सं० ८८८मे पूरा हो चुका था और यह लूट शक् स० ८९४मे हुई। तब इसका उल्लेख कैसे कर दिया गया? अतएव यह सभव है कि पुष्पदन्त द्वारा उल्लिखित संस्कृत-श्लोक प्रक्षिप्त हो। यशस्तिलकचपूके लेखकने जिस समय अपना ग्रथ समाप्त किया था उस समय कृष्ण तृतीय मेल-पाटीमे पडाव डाले हुए था। सोमदेवने भी उसे चोलविजेता कहा है। अत पुष्पदन्त और सोमदेव समकालीन सिद्ध होते है। श्रीनाथूराम प्रेमीने निष्कर्ष निकालते हुए लिखा है "शक् स० ८८१मे पुष्पदन्त मेलपाटीमे भरतमहा-मात्यसे मिले और उनके अतिथि हुए। इसी साल उन्होने महापुराण शुरू करके उसे शक स० ८८७मे समाप्त किया। इसके बाद उन्होने नागकुमार-चरित और यशोधरचरित लिखे। यशोधरचरितकी समाप्ति उस समय हुई, जब मान्यखेट लूटा जा चुका था। यह शक स० ८९४के लगभगकी घटना है। इस तरह वे शक स० ८८१से लेकर कम-से-कम ८९४ तक, लगभग १३ वर्ष मान्यखेटमे महामात्य भरत और नन्नके सम्मानित अतिथि होकर रहे, यह निश्चित है।"[3]

एक अन्य विचारणीय तथ्य यह है कि 'जसहरचरिउ'मे तीन प्रकरण ऐसे हैं, जो पुष्पदन्त कृत नही है। ये प्रकरण गन्धर्वनामक कवि द्वारा प्रक्षिप्त किये गये हैं। गन्धर्वने लिखा है योगिनीपुर (दिल्ली)के वीसलसाहुने उनसे अनुरोध किया कि पुष्पदन्तकृत 'जसहरचरिउ'मे 'राजा और कौलाचार्यका मिलन', 'यशोधर-विवाह' एव 'पात्रोके जन्म-जन्मान्तरोका विस्तृत निरूपण' जोड़-कर इस ग्रन्थको उपादेय बना दीजिए। तदनुसार कृष्णके पुत्र गन्धर्वने वि०

१. धारानाथ-नरेन्द्र-कोप-शिखिना दग्धं विदग्ध प्रिय,
क्वेदानी वसति करिष्यति पुन श्रीपुष्पदन्त कवि।
२. विक्कमकालस्स गए अउणत्तिसुत्तीरे सहस्सम्मि
मालवनरिंद धाडीए लूडिए मण्णखेडम्मि"
३ जैन साहित्य और इतिहास, प्रथम सस्करण, पृ० ३२८-३२९।

सं० १३६५ व्यतीत होने पर वैशाखमासमें यह रचना पूर्ण की।[1]

गन्धर्वके उक्त उल्लेखसे स्पष्ट है कि पुष्पदन्त ई० सन् १३०८से पूर्ववर्त्ती हैं। पुष्पदन्तके महापुराणपर एक टिप्पण प्रभाचन्द्र पण्डितने धाराके परमार नरेश जयसिंहदेवके राज्यकालमें लिखा है। जयसिंहदेवका ताम्रपत्र सं० ११११२ (सन् १०५५)का प्राप्त हुआ है।

महापुराणटिप्पणकी एक अन्य प्रतिमें बताया गया है कि श्रीचन्द्र मुनिने भोजदेवके राज्यकालमें वि० सं० १०८० (सन् १०२३)में 'समुच्चयटिप्पण' लिखा[2]। सम्भवतः ये श्रीचन्द्र 'दसण-कह-रयण-करण्ड' और 'कहाकोसु'के रचयिता हैं।[3] अतः पुष्पदन्तका समय सं० १०८०से पूर्व है। महापुराणकी कुछ प्रतियोंमें सन्धि-शीर्षक पद्य आया है, जिसमें लिखा है "जो मान्यखेट दीन और अनाथोंका धन था एवं विद्वानोंका प्यारा था, वह धारानाथ नरेन्द्रकी कोपाग्निसे भस्म हो गया; अब पुष्पदन्त कवि कहाँ निवास करेंगे।"[4]

उक्त घटना वही है, जो 'पाइयलच्छीनाममाला' तथा परमारनरेश हर्षदेव सम्बन्धी एक शिलालेखमें उल्लिखित है धनपालने अपने कोशकी रचना सन् ९७२में की है। अतएव उक्त उल्लेखोंके प्रकाशमें यह माना जा सकता है कि मान्यखेटकी लूटके समय पुष्पदन्त जीवित थे। 'णायकुमारचरिउ' (१।१।११-१२) और महापुराणमें मान्यखेटके राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराजका निर्देश आया है।[5]

खोट्टिगदेवका शक ८९३ (सन् ९७१)के अभिलेखमें उल्लेख आया है। कवि पुष्पदन्तने महापुराणकी रचना सिद्धार्थ-संवत्सरमें आरम्भ की और क्रोधन-संवत्सरमें आषाढशुक्ला दशमीको (महा० १०२।१४।१३) समाप्त। कृष्णराज और खोट्टिगदेवके समयकी दृष्टिसे ज्योतिषगणनानुसार क्रोधन-संवत्सर ई० सन् ९६५, ११ जूनको आता है। अतः यही समय महापुराणकी समाप्तिका है। महापुराणके पश्चात् क्रमशः 'णायकुमारचरिउ' और 'जसहरचरिउ'की रचना की गयी है। संक्षेपमें कविका समय ई० सन्‌की दशम शती है।

आश्रयदाता और समकालीन राजा

महाकवि पुष्पदन्त भरत और नन्नके आश्रयमें रहे थे। ये दोनों ही महा-

१ जसहरचरिउ, ४।३० ।

२. महापुराण, प्रस्तावना, पृ० १४ ।

३ 'कहाकोसु' प्राकृत-ग्रन्थपरिषद्, ग्रन्थांक १३, प्रस्तावना, पृ० ४ ।

४ महापुराण, प्रस्तावना, पृ० २५ ।

५ णायकुमारचरिउ, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रस्तावना, पृ० १७ ।

मात्यवंशके प्रतापशाली और प्रभावशाली मंत्री थे। कविने तुडिग राजाका उल्लेख किया है। यह कृष्णका घरेलू नाम है। इसके अतिरिक्त उसने वल्लभ-राय, वल्लभनरेन्द्र, शुभतुंगदेवका भी निर्देश किया है। वल्लभराय राष्ट्रकूट-नरेशोकी उपाधि थी, जो उन्होने चालुक्यनरेशोको जीतनेके उपलक्ष्यमे ग्रहण की थी।

अमोघवर्ष तृतीय या वद्दिगके तीन पुत्र थे, तुडिग या कृष्ण तृतीय, जगतुंग और खोट्टिगदेव। कृष्ण सबसे बड़े थे, जो अपने पिताके बाद राज्यसिंहासन पर आसीन हुए। जगत्तुंग छोटे थे और उनके राज्यकालमे ही स्वर्गवासी हो गये थे। अतएव तृतीय पुत्र खोट्टिगदेव गद्दी पर बैठे। कृष्ण तृतीय राष्ट्रकूट वंशके सबसे प्रतापी और सार्वभौम राजा थे। इनके पूर्वजोका साम्राज्य नर्मदा-से लेकर दक्षिणमे मैसूर तक व्याप्त था। मालवा और बुन्देलखण्ड भी इनके प्रभावक्षेत्रमे थे। इस विस्तृत साम्राज्यको कृष्ण तृतीयने और भी वृद्धिगत किया था। ताम्रपत्रोके अनुसार उसने पाण्डय और केरलको हराया, सिंहलसे कर वसूल किया और रामेश्वरम्मे अपनी कीर्तिवल्लरीको विस्तृत किया। ये ताम्रपत्र शक स० ८८१ के है।

देवलीके अभिलेखसे[1] अवगत होता है कि उसने काचीके राजा दंतिगको और वप्पुकको मारा, पल्लवनरेश अंतिगको हराया, गुर्जरोके आक्रमणसे मध्यभारतके कलचुरियोको रक्षा की और अन्य शत्रुओ पर विजय प्राप्त की। हिमालयसे लेकर लंका और पूर्वसे लेकर पश्चिम समुद्र तकके राजा उसकी आज्ञा मानते थे। उसका साम्राज्य गंगाकी सीमाको भी पार कर गया था। संक्षेपमे इतना ही कहा जा सकता है कि भरत और नन्न अमात्य पुष्पदन्तके आश्रयदाता थे। नन्न कौडिण्यगोत्रीय भरतके पुत्र थे और इनकी माताका नाम कुन्दव्वा था। इन्होने अनेक जैनमन्दिर बनवाये और जैनशासनके उद्धारका महनीय कार्य किया। इस प्रकार मन्त्री भरत और नन्नमे पिता-पुत्र सम्बन्ध घटित होता है।

रचनाएँ

पुष्पदन्त असाधारण प्रतिभाशाली महाकवि थे। इतना ही नही, वे विदग्ध दार्शनिक और जैन सिद्धान्तके प्रकाण्ड पण्डित भी थे। क्षीणकाय होने पर भी उनकी आत्मा अत्यन्त तेजस्वी थी। वे सरस्वती-निलय और काव्यरत्नाकर कहे जाते थे। इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं

१ जरनल बाम्बे ब्राच रायल एशियाटिक सोसाइटी, जिल्द १८, पृ० २३९।

१ तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकार या महापुराण यह एक विशालकाय ग्रन्थ है और दो खण्डोमे विभक्त है--आदिपुराण एवं उत्तरपुराण। इन दोनों खण्डोमे ६३ शलाकापुरुषोंके चरित गुम्फित हैं। प्रथम खण्डमें आदि तीर्थंकर ऋषभनाथ और भरतके चरित निबद्ध किये गये हैं और दूसरे खण्डमे अजित, संभव आदि शेष २३ तीर्थंकरोंको एवं उनके समकालीन नारायण, प्रतिनारायण एवं बलभद्र आदिकी जीवन-गाथाएँ निबद्ध हैं। उत्तरपुराणमे पद्मपुराण (रामायण) तथा हरिवंशपुराण (महाभारत) भी सम्मिलित हैं। आदिपुराणमे ८० और उत्तरपुराणमे ४२ सन्धियाँ हैं। दोनोका श्लोकप्रमाण २०,००० है। इसकी रचनामें कविको लगभग छ वर्ष लगे थे।

इस महान् रचनाके सम्बन्धमे कविने स्वय स्वीकार किया है कि इसमे सब कुछ है, जो इसमें नही है वह कही भी नही है। महापुराणकी रचना महामात्य भरतकी प्रेरणा और प्रार्थनासे सम्पन्न हुई है। इसीलिए कविने इसकी प्रत्येक सन्धिके अन्तमें 'महाभव्वभरताणुमण्णिए' 'महामव्यभरतानुमानिते' विशेषण दिया है एवं इसकी अधिकांश सन्धियोंके प्रारम्भमे भरतका विविधमुख गुण-संकीर्त्तन किया गया है।

णायकुमारचरिउ यह एक सुन्दर महाकाव्य है। इसमे ९ सन्धियाँ हैं। और यह नन्ननामाङ्कित है। इसमे पञ्चमीके उपवासका फल प्राप्त करनेवाले नागकुमारका चरित वर्णित है। यह रचना बहुत ही प्रौढ एव मनोहारिणी है। मान्यखेटमें नन्नके मन्दिरमे रहते हुए पुष्पदन्तने 'णायकुमारचरिउ'की रचना की। प्रारम्भमें कहा गया है कि महोदधिके गुणवर्म एव शोभन नामक दो शिष्योंने प्रार्थना की कि आप पञ्चमीके फल प्रतिपादन करनेवाले काव्यकी रचना कीजिये। महामात्य नन्नने भी उसे सुननेकी इच्छा प्रकट की तथा नाइल्ल और शीलभट्टने भी आग्रह किया। कविने इस ग्रथके प्रारम्भमे काव्यके तत्त्वोका भी उल्लेख किया है। कवि कहता है

"दुविहालंकारें विप्फुरंति लीलाकोमलइँ पयाइँ दिति।
महकव्वणिहेलणि संचरंति बहुहावभावविब्भम धरति।
सुपसत्थें अत्थें दिहि करंति सव्वइँ विण्णाणइँ संभरति।
णीसेससदेसभासउ चवंति लक्खणइँ विसिट्ठइँ दक्खवंति।
अइरुंदछंदमग्गेण जंति पाणेहिँ मि दह पाणाइँ होति।
णवहिँ मि रसेहिँ संचिज्जमाण विग्गहतएण णिरु सोहमाण।
चउदहपुव्विल्ल दुवालसंगि जिनवयणविणिग्गयसत्तभंगि।
वायरणवित्तिपायडियणाम पसियउ महु देविमणोहिराम।"

जिस वाणीमे शब्दालंकार, अर्थालंकार, व्याकरणसम्मत कोमल पद, विविध प्रकारके हावभाव, छन्द, श्लेष, प्रसादादि रस-गुण, शृंगारादि नवरस, आचारांगादि द्वादश अग, चौदह पूर्व, स्याद्वाद आदि सिद्धान्त समाहित रहते हैं, वही वाणी सुन्दर और सुशील विलासयुक्त नायिकके समान जनसामान्यका चित्तआकृष्ट करती है। इस प्रकार कवि पुष्पदन्तने काव्यतत्त्वोका विवेचन बहुत सुन्दररूपमे किया है। कवि इतिवृत्त, वस्तुव्यापार-वर्णन और भावाभिव्यन्जनमे भी सफल हुआ है। राजगृह नगरका चित्रण करते हुए उत्प्रेक्षाकी श्रेणी ही प्रस्तुत कर दी है। कवि कहता है कि वह नगर मानो कमलसरोवर-रूपी नेत्रोसे देखता था, पवनद्वारा हिलाये हुए वनोके रूपमे नृत्य कर रहा था तथा ललित लतागृहोके द्वारा मानो लुकाछिपी खेलता था। अनेक जिनमन्दिरो द्वारा उल्लसित हो रहा था। कामदेवके विषम बाणोसे घायल होकर मानो अनुरक्त परेवोके स्वरसे चीख रहा था। परिखामे भरे हुए जलके द्वारा वह नगर परिधान धारण किये हुए था तथा अपने श्वेत प्रकाररूपी चीरको ओढे था। वह अपने ग्रहशिखरोकी चोटियो द्वारा स्वर्गको छू रहा था। और मानो चन्द्रकी अमृतधाराको पी रहा था। कुंकुमकी छटाओसे जान पड़ता था, जैसे वह रतिकी रंगभूमि हो और वहांके सुखप्रसगोको दिखला रहा हो। वहाँ जो मोतियोकी रगावलियाँ रची गई थी, उनसे प्रतीत होता था, जैसे मानो वह हार-पक्तियोसे विभूषित हो। वह अपनी उठी हुई ध्वजाओसे पचरंगा और और चारो वर्णोके लोगोसे अत्यन्त रमणीक हो रहा था।

जोयइ व कमलसरलोयणेहिं णच्चइ व पवणहल्लियवणेहिं।
ल्हिक्कइ व ललियवल्लीहरेहिं उल्लसइ व बहुजिणवरहरेहिं।
वणियउ व विसमवम्महसरेहिं कणइ व रयपारावयसरेहिं।
परिहइ व सपरिहाधरियणीरु पगुरइ व सियपायारचीरु।
ण परसिहरग्गहिं सग्गु छिवइ ण चद-अमिय-धाराउ पियइ।
कुकुमछडए ण रइहि रग णावइ दक्खालिय-सुहपसगु।
विरइयमोत्तियरगावलहिं ज भूसिउ ण हारावलीहिं।
चिंधेहिं धरिय ण पचवण्णु चउवण्णजणेण वि अइखण्णु।

इसप्रकार यह महाकाव्य रस, अलकार, प्रकृतिचित्रण आदि सभी दृष्टियो-से महत्त्वपूर्ण है।

जसहरचरिउ यह भी एक सुन्दर खण्डकाव्य है। इसमे पुण्यपुरुष यशो-धरका चरित वर्णित है। इसमे ४ सन्धियाँ है। यह ग्रन्थ भरतके पुत्र और वल्लभ नरेन्द्रके गृहमंत्रीके लिए उन्हीके भवनमे निवास करते हुए लिखा गया

है। इसकी दूसरी, तीसरी और चौथी सन्धिके प्रारभमे नन्नके गुणकीर्त्तन करने वाले तीन संस्कृत-पद्य हैं। जसहरचरिउकी प्राचीन प्रतियोमें गन्धर्वकविके बनाये हुए कतिपय क्षेपक भी उपलब्ध हैं।

कवि पुष्पदन्त अपभ्रशके श्रेष्ठ कवियोमे परिगणित हैं। कोमलपद, गूढ कल्पना, प्रसन्न भाषा, छन्द-अलकारयुक्तता, अर्थगभीरता आदि सभी काव्य-तत्व इनके ग्रन्थोमे प्राप्त हैं। हमारे विचारमे पुष्पदन्त नैषधकार श्रीहर्षके समान ही मेधावी कवि हैं। उन जैसा राजनीतिका आलोचक बाणके अतिरिक्त दूसरा लेखक नही हुआ। मेलापाटीके उस उद्यानमे हुई भरत और पुष्पदन्त-की भेंट भारतीय साहित्यकी बहुत बड़ी घटना है। यह अनुभूति और कल्पना-की वह अक्षयधारा है, जिससे अपभ्रश-साहित्यका उपवन हरा-भरा हो उठा।

धनपाल

धनपालकी प्रतिभा आख्यान-साहित्यके सृजनमे अनुपम है। धनपालके पिताका नाम 'माएसर' मायेश्वर और माताका नाम धनश्री था। इनका जन्म धक्कड वशमे हुआ था। यह धक्कड वश पश्चिमी भारतकी वैश्य जाति है। देलवाडामे तेजपालका वि० स० १२८७ का एक अभिलेख है, जिसके धर-कट या धक्कड़ जातिका उल्लेख है। आबूके शिलालेखोमे भी इसका निर्देश मिलता है। प्रारभमे यह जाति राजस्थानकी मूल जाति थी; बादमे यह देशके अन्य भागोमे व्याप्त हुई।

धनपाल दिगम्बर सम्प्रदायका अनुयायी था। 'भविसयत्तकहा'के 'जेण-भजिवि दियम्वरि लायउ'के अतिरिक्त ग्रथके भीतर आया हुआ सैद्धान्तिक विवेचन उनका दिगम्बर मतानुयायी होना सिद्ध करता है। धनपालने अष्टमूल गुणोका वर्णन करते हुए बताया है कि मधु, मद्य, मास और पाँच उदम्बर फलोको किसी भी जन्ममे नही खाना चाहिए।[1] कविका यह कथन भावसग्रहके कर्त्ता देवसेनके अनुसार है। सोमदेव और आशाधरकी भी यही मान्यता है।[2]

कवि धनपालने १६ स्वर्गोंका कथन भी दिगम्बर आम्नायके अनुसार ही किया है। कविने लिखा है

१. महु मज्जु मंसु पचुवराइ खज्जति ण जम्मंतर समाइ। १६,८।

२ महुमज्जुमंसविरई चाओ पुण उंवराण पंचण्हं।
अट्ठेदे मूलगुणा हवंति फुडु देशविरयम्मि भावसग्रह, गाथा ३५६।

अप्पुणु पुणु तवचरण चरेप्पिणु अणसणि पडियमरणि मरेप्पिणु।
दिवि सोलहमह पुण्णायामि हुउ सुखहविज्जुप्पहु णामि॥
भविसयत्तचरिउ २०,९।

अतएव कवि धनपाल दिगम्बर सम्प्रदायका अनुयायी है, कविने अपने जीवनके सम्बन्धमे कुछ भी निर्देश नही किया है। केवल वश और माता-पिताका नाम ही उपलब्ध होता है। यह निश्चित है कि कवि सरस्वतीका वरद पुत्र है। उसे कवित्व करनेकी अपूर्व शक्ति प्राप्त है।

स्थितिकाल

कवि धनपालका स्थितिकाल विद्वानोने वि० की दशवी शती माना है। 'भविसयत्तकहा'की भाषा हरिभद्र सूरिके 'नेमिनाहचरिउ'से मिलती-जुलती है। अत धनपालका समय हरिभद्रके पश्चात् होना चाहिए। श्री पी० वी० गुणेने निम्नलिखित कारणोके आधार पर इनका समय दशवी शती माना है

१ भाषाके रूप और व्याकरणकी दृष्टिसे इसमे शिथिलता और अनेकरूपता है। अतएव यह कथाकृति उस समयकी रचना है, जब अपभ्रश भाषा बोलचालकी थी।

२. हेमचन्द्रके समय तक अपभ्रंश-भाषा रूढ हो चुकी थी। उन्होने अपने व्याकरणमे अपभ्रशके जिन दोहोका संकलन किया है, उनकी भाषाकी अपेक्षा 'भविसयत्तकहा'की भाषा प्राचीन है। अत धनपालका समय हेमचन्द्रके पूर्व होना चाहिए।

३. भविसयत्तकहा और पउमचरिउके शब्दोमे समानता दिखाते हुए प्रो० भायाणीने निर्देश किया है कि भविसयत्तकहाके आदिम कडवकोके निर्माणके समय धनपालके ध्यानमे 'पउमचरिउ' था। इसलिए धनपालका समय स्वयभूके बाद और हेमचन्द्रसे पूर्व ही किसी कालमे अनुमित किया जा सकता है।[1]

४ दलाल और गुणेने भविसयत्तकहाकी भाषाके आधारपर धनपालको हेमचन्द्रका पूर्ववर्त्ती माना है। अत धनपालका समय दशवी शतीके लगभग होना चाहिए।

भविसयत्तकहाकी स० १३९३ की लिपि प्रशस्तिके आधारपर श्री डा०

१. दि पउमचरिउ एण्ड दि भविसयत्तकहा प्रो० भायाणी, भारतीय विद्या (अग्रेजी) भाग ८, अक १-२, सन १९४७, पृ० ४८-५०।

देवेन्द्रकुमार शास्त्रीने धनपालका समय वि० की १४वी शती बतलाया है। पर यह उनका भ्रम है। श्री प० परमानन्दजी शास्त्रीने 'अनेकान्त' वर्ष २२, किरण १ मे श्रीदेवेन्द्रकुमारजीके मतकी समीक्षा की है। और उन्होने प्राप्त प्रशस्तिको मूलग्रथकर्त्ताकी न मानकर लिपिकर्त्ताकी बताया है। अत प्रशस्तिके आधारपर धनपालका समय १४वी शती सिद्ध नही किया जा सकता है। जब तक पुष्ट प्रमाण प्राप्त नही होता है तब तक धनपालका समय १०वी शती ही माना जाना चाहिए।

धनपालका व्यक्तित्व कई दृष्टियोसे महत्त्वपूर्ण है। उन्हे जीवनमे विभिन्न प्रकारके अनुभव प्राप्त थे। अत उन्होने समुद्रयात्राका सफल वर्णन किया है। विमाताके कारण पारिवारिक कलहका चित्रण भी सुन्दर रूपमे हुआ है। कवि धनपालका मस्तिष्क उर्वर था। वे श्रृंगार-प्रसाधनको भी आवश्यक समझते थे। विवाह एव मागलिक अवसरो पर धन व्यय करना उनकी दृष्टिमे उचित था।

रचना

कविकी एक ही रचना 'भविसयत्तकहा' प्राप्त है। यह कथाकृति नगर-वर्णन, समुद्र-वर्णन, द्वीप-वर्णन, विवाह-वर्णन, युद्धयात्रा, राजद्वार, ऋतु-चित्रण, शकुनवर्णन, रूपवर्णन आदि वस्तु-वर्णनोंकी दृष्टिसे अत्यन्त समृद्ध है। कविने प्रबन्धमे परिस्थितियो और घटनाओके अनुकूल मार्मिक स्थलोकी योजना की है। इन स्थलोपर उसकी प्रतिभा और भावुकताका सच्चा परिचय मिलता है। भावोके उतार-चढावमे घटनाओका बहुत कुछ योग रहता है। भविसत्तकहामे बन्धुदत्तका भविष्यदत्तको मैनाद्वीपमे अकेला छोडना और साथके लोगोका सतप्त होना, माता कमलश्रीको भविष्यदत्तके न लौटनेका समाचार मिलना, बन्धुदत्तका लौटकर आगमन, कमलश्रीका विलाप और भविष्यदत्तका मिलन आदि घटनाएँ मर्मस्पर्शी हैं।

कथावस्तु हस्तिनापुरनगरमे धनपति नामका एक व्यपारी था, जिसकी पत्नीका नाम कमलश्री था। इनके भविष्यदत्त नामका एक पुत्र हुआ। धनपति सरूपानामक एक सुन्दरीसे अपना विवाह कर लेता है और परिणामस्वरूप अपनी पहली पत्नी और पुत्रकी उपेक्षा करने लगता है। धनपति और सरूपाके पुत्रका नाम बन्धुदत्त रखा जाता है। युवावस्थामे पदार्पण करने पर बन्धुदत्त व्यापारके हेतु कचनद्वीपके लिये प्रस्थान करता है। उसके साथ ५०० व्यापारियोको जाते हुए देखकर भविष्यदत्त भी अपनी माताकी अनुमतिसे उनके

साथ हो लेता है। समुद्रमे यात्रा करते हुए दुर्भाग्यसे उसकी नौका आंधीसे पथभ्रष्ट हो मदनाग या मैनाक द्वीप पर जा लगती है। बन्धुदत्त धोखेसे भविष्यदत्तको वही एक जगलमे छोडकर स्वय अपने साथियोके साथ आगे निकल जाता है। भविष्यदत्त अकेला इधर-उधर भटकता हुआ एक उजडे हुए, किन्तु समृद्ध नगरमे पहुँचता है। वही एक जैनमन्दिरमे जाकर वह चन्द्रप्रभ जिनकी पूजा करता है। उसी उजडे नगरमे वह एक दिव्य सुन्दरीको देखता है। उसीसे भविष्यदत्तको पता चलता है कि वह नगर कभी अत्यन्त समृद्ध था। एक असुरने इसे नष्ट कर दिया है। कालान्तरमे वही असुर वहाँ प्रकट होता है और भविष्यदत्तका उसी सुन्दरीसे विवाह करा देता है।

चिरकाल तक पुत्रके न लौटनेसे कमलश्री उसके कल्याणार्थ श्रुतपचमी व्रतका अनुष्ठान करती है। उधर भविष्यदत्त सपत्नीक प्रभूत सम्पत्तिके साथ घर लौटता है। लौटते हुए उसकी बन्धुदत्तसे भेंट होती है, जो अपने साथियोके साथ यात्रामे असफल होनेसे विपन्नावस्थाको प्राप्त था। भविष्यदत्त उसका सहर्ष स्वागत करता है। वहाँसे प्रस्थानके समय पूजाके लिये गये हुए भविष्यदत्तको फिर धोखेसे वही छोडकर बन्धुदत्त उसकी पत्नी और प्रचुर धनसम्पत्तिको लेकर साथियोके साथ नौकामे सवार हो वहाँसे चल पडता है। मार्गमे फिर आँधीसे उसकी नौका पथभ्रष्ट हो जाती है और वे सब जैसे-तैसे हस्तिनापुर पहुँचते हैं। घर पहुँचकर बन्धुदत्त भविष्यदत्तकी पत्नीको अपनी भावी पत्नी घोषित कर देता है। उनका विवाह निश्चित हो जाता है। कालान्तरमे दु.खी भविष्यदत्त भी एक यक्षकी सहायतासे हस्तिनापुर पहुँचता है। वहाँ पहुँचकर वह सब वृत्तान्त अपनी मातासे कहता है। इधर बन्धुदत्तके विवाहकी तैयारियाँ होने लगती हैं और जब विवाह-सम्पन्न होने वाला होता है तो राजसभामे जाकर बन्धुदत्तके विरुद्ध भविष्यदत्त शिकायत करता है और राजाको विश्वास दिला देता है कि वह सच्चा है। फलत बन्धुदत्त दण्डित होता है और भविष्यदत्त अपने माता-पिता और पत्नीके साथ राजसम्मानपूर्वक सुखसे जीवन व्यतीत करता है। राजा भविष्यदत्तको राज्यका उत्तराधिकारी बना अपनी पुत्री सुमित्रासे उसके विवाहका वचन देता है।

इसी बीच पोदनपुरका राजा हस्तिनापुरके राजाके पास दूत भेजता है और कहलवाता है कि अपनी पुत्री और भविष्यदत्तकी पत्नीको दे दो या युद्ध करो। राजा पोदनपुरनरेशकी शर्तको अस्वीकार करता है और परिणामत युद्ध होता है। भविष्यदत्तकी सहायता और वीरतासे राजा विजयी होता है। भविष्यदत्तकी वीरतासे प्रभावित हो राजा भविष्यदत्तको युवराज घोषित कर

देता है। अपनी पुत्री सुमित्राके साथ उसका विवाह भी कर देता है। भविष्यदत्त सुखपूर्वक जीवन-यापन करने लगता है।

भविष्यदत्तकी प्रथम पत्नीके हृदयमे अपनी जन्मभूमि मदनाग या मैनाक द्वीपको देखनेकी इच्छा जाग्रत होती है। भविष्यदत्त, उसके माता, पिता और सुमित्रा सब उस द्वीपमे जाते हैं। वहाँ उन्हे एक जैन मुनि मिलते हैं, जो उन्हे सदाचारके नियमोंका उपदेश देते हैं। कालान्तरमे वे सब लौट आते हैं।

एक दिन विमलबुद्धि नामक मुनि आते हैं। भविष्यदत्त उनके मुखसे अपने पूर्व जन्मोंकी कथा सुनकर विरक्त हो जाता है और अपने पुत्रको राजभार सौंपकर श्रमण-दीक्षा ग्रहण कर लेता है। भविष्यदत्त तपश्चरण करता हुआ कर्मोको नष्टकर निर्वाण प्राप्त करता है। श्रुतपचमीके महात्म्यके स्मरणके साथ कथा समाप्त हो जाती है।

घटना-बाहुल्य इस कथाकाव्यमे पाया जाता है। पर घटनाओका वैचित्र्य बहुत कम है।

कविने लौकिक आख्यानके द्वारा श्रुतपंचमीव्रतका माहात्म्य प्रदर्शित किया है। अन्तमे भी इसी व्रतके माहात्म्यका स्मरण किया गया है। धार्मिक विश्वासके साथ लौकिक घटनाओंका सम्बन्ध काव्यचमत्कारार्थ किया गया है। इस कृतिमे प्रबन्धकी सघटना सुन्दर रूपमे हुई है। कथाके विकासके साथ ही कार्य-कारणघटनाओंको कार्य-कारणशृंखला प्रतिपादित है। वस्तुत. यह एक रोमाचक काव्य है। इसमे लोक-जीवनके अनेक रूप दिखलाई पडते हैं। करुण, शृंगार, वीर, रौद्र आदि रसोका परिपाक भी सुन्दर रूपमे हुआ है। अलकारो मे उपमा, परिणाम, सन्देह, रूपक भ्रान्तिमान, उल्लेख, स्मरण, अपह्नुव उत्प्रेक्षा, तुल्ययोगिता, दीपक, दृष्टान्त, प्रतिवस्तूपमा, व्यतिरेक, निदर्शना और सहोक्ति आदि अलकार प्रयुक्त हुए हैं। छन्दोमे पद्धडी, अडिल्ला, घत्ता, दुवइ, चामर, भुजगप्रयात, शखनारी, मरहट्ठा, प्लवगम, कलहस आदि छन्द प्रधान हैं। वास्तवमे धनपाल कविकी यह कृति कथानक-रूढियों और काव्य-रूढियों-की भी दृष्टिसे समृद्ध है।

धवल कवि

अपभ्रश-साहित्यके प्रबन्धकाव्य-रचयिताओमे कवि धवलका नाम भी आदरके साथ लिया जाता है। कवि धवलके पिताका नाम सूर और माताका नाम केसुल्ल था। इनके गुरुका नाम अम्बसेन था। धवल ब्राह्मणकुलमे उत्पन्न

हुआ था, पर अन्तमे वह जैन धर्मावलम्बी हो गया था। कवि द्वारा निर्दिष्ट उल्लेखोंके आधारपर उसकी प्रतिभा और कवित्वशक्तिका परिज्ञान होता है। धवलने हरिवंशपुराणकी रचना की है। डॉ० प्रो० हीरालाल जैनने 'इलाहाबाद युनिवर्सिटी स्टडीज,' भाग १, सन् १९२५ मे धवल कवि द्वारा रचित हरिवंशपुराणका निर्देश किया था।

स्थितिकाल

कवि धवलके निर्देशोंके आधारपर कविका समय १०वी-११वी शती सिद्ध होता है। कविने ग्रन्थके प्रारम्भमे अनेक कवियोंका स्मरण करते हुए लिखा है

कवि चक्कवइ पुव्वि गुणवंतउ धीरसेणु हुंतउ णयवंतउ।
पुणु सम्मत्तइ धम्म सुरेगउ, जेण पमाण गथु किउ चगउ।
देवणदि बहु गुण जस भूसिउ, जे वायरणु जिणिदु पयासिउ।
वज्जसूउ सुपसिद्धउ मुणिवरु, जे णयमाणुगथु किउ सुदरु।
मुणि महसेणु सुलोयण जेणवि, पउमचरिउ मुणि रविसेणेणवि।
जिणसेणे हरिवसु पवित्तुवि, जडिल मुणीण वरगचरित्तु वि।
दिणयरसेणे चरिउ अणगहु, पउमसेण आयरियइ पसगहु।
अधसेणु जें अमियागहणु विरइय दोस-विवज्जिय सोहणु।
जिणचदप्पह-चरिउ मणोहरु, पावरहिउ धणमत समुन्दरु।
अण्णमि किय इंमाइ तुह पुत्तइ विण्हसेण रिसहेण चरित्तइ।
सीहणदि गुरवें अणुपेहा णरदेवेणवकातु सुणेहा।
सिद्धसेणु जें गेए आगउ, भविय विणीय पयासिउ चंगउ।
रामणदि जे विविह पहाण जिणसासणि बहुरइय कहाणा।
असगुमहाकइ जें सु मणोहरु वीरजिणिंदु-चरिउ किउ सुदरु।
कित्तिय कहमि सुकइ गुण आयर गेय कव्व जहि विरइय सुदर।
सणकुमार जे विरमउ मणहरु, कय गोविद पवरु सेयवरु।
तह वक्खइ जिणरक्खिय सावउ जें जय धवल भुवणि विक्खाइउ।
सालिहद्दु कि कइ जीय उदेंदउ लोयइ चहुमुहु दोणु पसिद्धउ।
इक्कहि जिणसासणि उच्चलियउ सेढु महाकइ जसु णिम्मलियउ।
पउमचरिउ जें भुवणि पयासिउ, साहुणरहि णरवरहि पसंसिउ।
हउ जडु तो वि किंपि अब्भासमि महियलि जे णियबुद्धि पयासमि।[1]

१ हरिवंशपुराण १, ३।

अर्थात् कविचक्रवर्ती धीरसेन सम्यक्त्वयुक्त प्रमाणविशेष ग्रन्थके कर्ता, देवनन्दि, वज्रसूरि प्रमाणग्रन्थके कर्ता, महासेनका सुलोचनाग्रन्थ, रविषेणका पद्मचरित, जिनसेनका हरिवंशपुराण, जटिल मुनिका वरांगचरित, दिनकरसेनका अनंगचरित, पद्मसेनका पार्श्वनाथचरित, अम्भसेनकी अमृताराधना, धनदत्तका चन्द्रप्रभचरित, अनेक चरितग्रन्थोंके रचयिता विष्णुसेन, सिंहनन्दीकी अनुप्रेक्षा, नरदेवका णवकारमन्त्र, सिद्धसेनका भविकविनोद, रामनन्दिके अनेक कथानक, जिनरक्षित धवलादि ग्रन्थप्रख्यापक, असगका वीरचरित, गोविन्द कवि (श्वेत०) का सनत्कुमारचरित, शालिभद्रका जीव-उद्योत, चतुर्मुख, द्रोण, सेढु महाकविका पउमचरिउ आदि विद्वानों और उनकी कृतियोंका निर्देश किया है।

इनमें पद्मसेन और असग कवि दोनों ही ग्रन्थकर्त्ताओंके समयपर प्रकाश डालते हैं।

स्थितिकाल

असग कविका समय शक संवत् ९१० (ई० सन् ९८८) एवं पद्मसेनका शक सं० ९९९ समय है, जिससे स्पष्ट है कि धवल कवि शक सं० ९९९ के पश्चात् कभी भी हुआ है। पद्मकीर्त्तिकी एकमात्र रचना पार्श्वपुराण उपलब्ध है। इन दोनों रचनाओंका उल्लेख होनेसे धवलकविका समय शक सं० की ११ वीं शताब्दीका मध्यकाल आता है। वर्द्धमानचरितकी प्रशस्तिमें बताया गया है कि श्रीनाथके राज्यकालमें चोल राज्यकी विभिन्न नगरियोंमें कविने आठ ग्रन्थोंकी रचना की है

विद्यामया प्रपठितेत्यसगाह्वयेन श्रीनाथराज्यमखिलं जनतोपकारि।
प्राप्यैव चोडविषये विरलानगर्यां ग्रन्थाष्टकं च समकारि जिनोपदिष्टम्॥
महावीरचरित, प्रशस्तिश्लोक १०५

'पासणाहचरिउ'में पद्मसेन या पद्मकीर्तिने रचनाकालका निर्देश निम्न-प्रकार किया है

णव-सय-णउआणउये कत्तियमासे अमावसी दिवसे।
रइय पासपुराणं कइणा इह पउमणामेण॥[1]

अर्थात् सं० ९९९में कार्त्तिक मासकी अमावस्याको इस ग्रन्थकी समाप्ति हुई। यहाँ संवत्से शक या विक्रम कौन-सा संवत् ग्रहण करना चाहिए, इसपर विद्वानोंमें मतभेद है। प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदीने इसे शक-संवत् माना है और

१ पासणाहचरिउ प्राकृत-ग्रन्थ-परिषद, ग्रन्थांक ८, कवि-प्रशस्ति, पद्य ४।

हरिवंश कोछडने विक्रम संवत्। हमारा अनुमान है कि ये दोनो ही सवत् शक संवत् हैं और धवल कविका समय शक-संवत्की १०वी शतीका अन्तिम पाद या ११वी शतीका प्रथम पाद सभव है।

रचना

कविका एक ही ग्र थ हरिवशपुराण उपलब्ध है। इस ग्र थमे २२वें तीर्थंकर यदुवशी नेमिनाथका जीवनवृत्त अकित है। साथ ही महाभारतके पात्र कौरव और पाण्डव तथा श्रीकृष्ण आदि महापुरुषोके जीवनवृत्त भी गुम्फित हैं। इस ग्रन्थमे १२२ सन्धियाँ हैं। ग्र थकी रचना पज्झटिका और अल्लिलह छन्दमे हुई है। पद्धडिया, सोरठा, घत्ता, विलासिनी, सोमराजि प्रभृति अनेक छन्दोका प्रयोग इस ग्र थमे किया गया है। शृंगार, वीर, करुण और शान्त रसोका परिपाक भी सुन्दररूपमे हुआ है। कविने, नगर, वन, पर्वत आदिका महत्व-पूर्ण चित्रण किया है। यहाँ उदाहरणार्थ मधुमासका वर्णन प्रस्तुत किया जाता है

फग्गुणु गउ महुमासु परायउ, मयणछलिउ लोउ अणुरायउ।
वण सय कुसुमिय चारुमणोहर, वहु मयरद मत्त बहु महुयर।
गुमुगुमत खणमणइ सुहावहिं, अइपपाट्ठ पेम्मुउक्कोवहिं।
केसु व वर्णहिं धणारुण फुल्लिय, ण विरहग्गे जाल णमिल्लिया।
घरिघरि णारिउ णिय तणु मडहिं, हिंदोलहिं हिंउहि उग्गायहिं।
वणि परपुट्ठ महुर उल्लावहिं, सिहिउलु सिहि सिहरेहिं घहावइ।

हरिवशपुराण १७-३

अर्थात् फाल्गुनमास समाप्त हुआ और मधुमास (चैत्र) आया। मदन उद्दीप्त होने लगा। लोक अनुरक्त हो गया। वन नाना पुष्पोसे युक्त, सुन्दर और मनोहर हो गया। मकरन्द-पानसे मत्त मधुकर गुनगुनाते हुए सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं घरोमे नारियाँ अपने शरीरको अलकृत करती हैं, झूला झूल रही हैं, विहार करती है, वनमे गाती कोयल मधुर आलाप करती हैं। सुन्दर मयूर नृत्य कर रहे हैं।

इस काव्यमे करुण रसकी अभिव्यजना भी वहुत सुन्दर मिलती है। कस-वधपर परिजनोके करुण विलापका दृश्य दर्शनीय है–

हा रहय दहय पाविट्ठ खला, पह अम्ह मणोहर किय विहला।
हा विहि णिहीण पह काइकिउ, णिहि दरिसिवि तक्खणि चक्खु हिउ।
हा देव या वुल्लहिं काइ तुहु, हा सुन्दरि दरसहि किण्णु मुहु।

हा घरणिहि सगुणणिलयट्ठहि, वर सेज्जहि भरमवणेहिं जाहि।
५० विणु मुणणउ राउल असेसु, अण्णाहिउ हुवउ दिव्व देसु।
हा गुणसायर, हा रूवधरा, हा वहरि महण सोहग्ग घरा।
घत्ता हा महुरालावण, सोहियसदण, अम्हह सामिय करहि।
दुक्खहि सतत्तउ, करुण रुवतउ, उट्ठिवि परियणु सधवहि ॥५६,१

कविने ससारके यथार्थरूपका भी चित्रण किया है। सवल राज्य तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं। धनसे भी कुछ नही होता। सुख वन्धु-वान्धव, पुत्र, कलत्र, मित्र, किसके रहते हैं? वर्षाके जलवुलवुलोके समान ससारका वैभव क्षण-भरमे नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार वृक्षपर वहुतसे पक्षी आकर एकत्र हो जाते है और फिर प्रात काल होते ही अपने-अपने कार्योंसे विभिन्न स्थानोपर चले जाते हैं, अथवा जिस प्रकार वहुतसे पथिक नदी पार करते समय नौका पर एकत्र हो जाते हैं, और फिर अपने-अपने घरोको चले जाते हैं, उसी प्रकार क्षणिक प्रियजनोका समागम होता है। कभी धन आता है, कभी नष्ट होता है, कभी दारिद्रय प्राप्त होता है, भोग्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं और विलीन होती हैं, फिर भी अज्ञ मानव गर्व करता है। जिस यौवनके पीछे जरा लगी रहती है उससे कौन-सा सन्तोष हो सकता है?[1] इस प्रकार ग्रन्थकर्त्ताने संसारकी वास्तविक स्थितिका उद्घाटन किया है।

रस और अलकारके समान ही छन्द-योजनाकी दृष्टिसे भी ग्रन्थ समृद्ध है। सामान्य छन्दोके अतिरिक्त नागिनी, ८९।१२, सोमराजी ९०।४, जाति ९०।५, विलासिनी ९०।८ आदि छन्दोका प्रयोग मिलता है। कडवकोके अन्तमे प्रयुक्त घत्ता छन्दके अनेक रूप हैं।

हरिषेण

हरिषेण मेवाडमे स्थित चित्रकूट (चित्तौड) के निवासी थे। इनका वंश धक्कड़ या घरकट था, जो उस समय प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित था। इस वशमे अनेक कवि हुए हैं। इनके पिताका नाम गोवर्द्धन और माताका नाम गुणवती था। ये किसी कारणवश चित्रकूट छोडकर अचलपुरमे रहने लगे थे। प्रशस्ति-मे वताया है

इह मेवाड़-देसि-जण-सकुलि, सिरिउजहर णिग्गय-धक्कड-कुलि।
पाव-करिंद-कुम्भ-दारण हरि, जाउ कलाहि कुसलु णामे हरि।

१. हरिवशपुराण ९१.७।

तासु पुत्त पर-णारिसहोयरु, गुणगण-णिहि-कुल-णयण-दिवायरु ।
गोवड्ढणु णामे उप्पणउ, जो सम्मत्तरयण-संपुण्णउ ।
तहो गोवड्ढणासु पिय गुणवइ, जो जिणवरपय णिच्च वि पणवइ ।
ताए जणिउ हरिसेणे णाम सुउ, जो सजाउ विबुह-कइ विस्सुउ ।
सिरि चित्त उडु चइवि अचलउरहो, गयउ-णिय-कज्जें जिणहरपउरहो ।[1]

हरिषेणने अन्य अपभ्रंश-कवियोके समान कडवकोके आदि और अन्तमे अपने सम्बन्धमे बहुत-सी बातोका समावेश किया है। उन्होने लिखा है कि मेवाड़देशमे विविध कलाओमे पारगत एक हरि नामके महानुभाव थे। ये श्रीओजपुरके धक्कड कुलके वशज थे। इनके एक गोवर्द्धन नामका धर्मात्मा पुत्र था। उसकी पत्नीका नाम गुणवती था, जो जैनधर्ममे प्रगाढ श्रद्धा रखती थी। उनके हरिषेण नामका एक पुत्र हुआ, जो विद्वान् कविके रूपमे विख्यात हुआ। उसने अपने किसी कार्यवश चित्रकूट छोड दिया और अचलपुर चला आया। यहाँ उसने छन्द और अलकार शास्त्रका अध्ययन किया और धर्म-परीक्षा नामक ग्रन्थकी रचना की।

हरिषेणने अपने पूर्ववर्ती चतुर्मुख, स्वयभू और पुष्पदन्तका स्मरण किया है। उन्होने लिखा है कि चतुर्मुखका मुख सरस्वतीका आवास-मन्दिर था। स्वयभू लोक और अलोकके जाननेवाले महान् देवता थे और पुष्पदन्त वह अलौकिक पुरुष थे, जिनका साथ सरस्वती कभी छोडती ही नही थी। कविने इन कवियोकी तुलनामे अपनेको अत्यन्त मन्दवुद्धि कहा है।

हरिषेणने अन्तिम सन्धिमे सिद्धसेनका स्मरण किया है, जिससे यह ध्वनित होता है कि हरिषेणके गुरु सिद्धसेन थे। सन्दर्भकी पक्तियाँ निम्न प्रकार हैं

सिद्धि-पुरंधिहि कतु सुद्धें तणु-मण-वयणें ।
भत्तिए जिणु पणवेवि चिंतिउ वुह-हरिसंणे ॥
मणुय-जम्मिवुद्धिए किं किज्जइ, मणहरु जाइ कव्वु ण रइज्जइ ।
त करत अवियाणिय आरिस, हासु लहहि भडरणि गय पोरिस ।
चउमुह कव्वु विरयणि सयभुवि, पुप्फयतु अण्णाणु णिसुभिवि ।
तिण्णि वि जोग्ग जेण त सीसइ, चउमुह मुह थिय ताव सरासइ ।
जो सयभ सो देउ पहाणउं, अह कह लोयालोय वियाणउ ।
पुप्फयतु णउ माणुसु वुच्चइ, जो सरसइए कया विण मुच्चइ ।
ते एवविह हउ जउ माणउ, तह छदालकार विहीणउ ।
कव्वु करतुके मण विलज्जमि, तह विसेस णिय जण कि हरजमि ।

१ धम्मपरिक्खा ११-२६ ।

तो वि जिणिद धम्म अणुरायइ, वुह सिरि सिद्धसेण सुपसाइं।
करमि सय जिह णलिणि दलयिउ जलु, अणहरेइ णित्तुलु मुत्ताहलु।
घत्ता। जा जयरामे आसि विरइय णह पबंधि।
सा हम्मि धम्मपरिक्ख सा पद्धडिय बंधि।

हरिषेणके व्यक्तित्वमे नम्रता, गुणग्राहकता, धर्मके प्रति श्रद्धा एव आत्म-सम्मानकी भावना समाविष्ट है। उनके काव्य-वर्णनसे ऐसा ध्वनित होता है कि वे पुराणशास्त्रके ज्ञाता थे और उनका अध्ययन सभी प्रकारके शास्त्रोका था।

स्थितिकाल

कवि हरिषेणने 'धम्मपरिक्खा' के अन्तमे इस ग्रन्थका रचनाकाल अकित किया है। लिखा है-

विक्कम-णिव-परिवत्तिय कालए, ववगए वरिस-सहसेहि चउतालए।
इय उप्पणु भविय-जण-सुहयरु, डभ-रहिय-धम्मासव-सरयरु। ११।२७

अर्थात् वि० स० १०४४ मे इस ग्रन्थकी रचना हुई है। अत कविका समय वि० स० की ११वी शती है।

कविने अपनेसे पूर्व जयरामकी गाथा-छन्दोमे विरचित प्राकृत-भाषाकी धर्म-परीक्षाका अवलोकन कर इसके आधार पर ही अपनी यह कृति अपभ्रशमे लिखी है।

रचना

कवि हरिषेणकी एक ही रचना धर्म-परीक्षा नामकी उपलब्ध है। डा० ए० एन उपाध्ये ने दश-धर्म परीक्षाओका निर्देश किया है। अमितगतिकी धर्म-परीक्षा वि० स० १०७०मे लिखी गई है। अर्थात् हरिषेणकी धर्म-परीक्षा अमितगतिसे २६ वर्ष पूर्व लिखी गई है। दोनोमे पर्याप्त समानता है। अनेक कथाएँ पद्य एव वाक्य दोनोमे समान रूपसे मिलते हैं, पर जब तक हरिषेण द्वारा निर्दिष्ट जयरामकी धर्म-परीक्षा प्राप्त न हो तब तक इस परिणाम पर नही पहुँच सकते कि किसने किसको प्रभावित किया है? सभवत दोनोका स्रोत जयरामकी धर्म-परीक्षा ही हो।[1]

धर्म-परीक्षामे कविने ब्राह्मण-धर्म पर व्यग्य किया है। उसके अनेक पौराणिक आख्यानो और घटनाओको असगत बतलाते हुए जैनधर्मके प्रति

१ डॉ० ए० एन० उपाध्ये, हरिषेणकी धम्मपरिक्खा ऐनल्स ऑफ भण्डारकर ओरि-यण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट भाग २३ पृ० ५९२–६०८।

आस्था और श्रद्धा उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया। ग्रंथकी विषय-वस्तु निम्न प्रकार है

मंगलाचरणके पश्चात् प्राचीन कवियोका उल्लेख करते हुए आत्म-विनय प्रदर्शित की है। तदनन्तर जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र, मध्य-प्रदेश वैताढ्य पर्वत और वैजयन्ती नगरीका चित्रण किया है। वैजयन्ती नगरीके राजाकी रानीका नाम वायुवेगा था। उनके मनवेग नामक एक अत्यन्त धार्मिक पुत्र हुआ। उसका मित्र पवनवेग भी धर्मात्मा और ब्राह्मणानुमोदित पौराणिक धममे आस्था रखने वाला था। पवनवेगके साथ मनवेग विद्वानोकी सभामे कुसुमपुर गया।

तीसरी सन्धिमे अगदेशके राजा शेखरका कथानक देकर कवि अनेक पौराणिक उपाख्यानोका वर्णन करता है। चौथी सन्धिमे अवतारवाद पर व्यंग्य किया है। विष्णु दश जन्म लेते हैं और फिर भी कहा जाता है कि वे अजन्मा हैं, यह कैसे संभव है? स्थान स्थानपर कविने 'तथा चोक्त तैरेव' इत्यादि शब्दो द्वारा सस्कृतके अनेक पद्य भी उद्धृत किये हैं। इसी प्रसगमे शिवके जाह्नवी और पार्वती प्रेम एव गोपी-कृष्ण लीलापर भी व्यग्य किया है।

पाँचवी सधि मे ब्राह्मण-धर्म की अनेक अविश्वसनीय और असत्य बातो की ओर निर्देश कर मनोवेग ब्राह्मणो को निरुत्तर करता है। इसी प्रसगमे वह सीताहरण आदिके सम्बन्धमे भी प्रश्न करता है।

सातवी सन्धिमे गान्धारीके १०० पुत्रोकी उत्पत्ति और पाराशरका धीवरकन्यासे विवाह वर्णित है। आठवी सन्धिमे कुन्तीसे कर्णकी उत्पत्ति और रामायणकी कथापर व्यग्य किया है।

नवी सधिमे मनवेग अपने मित्र पवनवेगके सामने ब्राह्मणोसे कहता है कि एकबार मेरे सिरने धडसे अलग होकर वृक्षपर चढकर फल खाये। अपनी बातकी पुष्टिके लिए वह रावण और जरासन्धका उदाहरण देता है। इसी प्रसगमे मनवेग श्राद्ध पर भी व्यग्य करता है।

दशवी सन्धिमे गोमेघ, अश्वमेधादि यज्ञो और नियोगादिपर व्यंग किया है। इस प्रकार मनवेग अनेक पौराणिक कथाओका निर्देशकर और उन्हे मिथ्या प्रतिपादित कर राज्यसभाकोपरास्त करता है। पवनवेग भी मनवेगकी युक्तियोसे प्रभावित होता है और वह जैनधर्ममे दीक्षित हो जाता है। जैनधर्मानुकूल उपदेशो और आचरणोके निर्देशके साथ ग्रथ समाप्त होता है।

कविने इस ग्रन्थमे कवित्वशक्तिकाभी पूरा परिचय दिया है। प्रथम सधिके चतुर्थ कडवकमे वैजयन्ती नगरीको सुन्दर नारीके समान मनोहारिणी बताया

है। कविने विभिन्न उपमानोका प्रयोग करते हुए इस नगरीको सुराधिपकी नगरीमे भी श्रेष्ठ बताया है। वायुवेगारानीके चित्रणमे कविने परम्परागत उपमानोका उपयोगकर उसके नखशिखका सौन्दर्य अभिव्यक्त किया है।

११ वी सन्धिके प्रथम कडवकमे मेवाड़ देशका रमणीय चित्रण किया है। यहाँके उद्यान, सरोवर, भवन आदि सभी दृष्टियोसे सुन्दर एवं मनमोहक हैं।

इस ग्रथमे पद्धडिया छन्दकी बहुलता है। इसके अतिरिक्त मदनावतार ११४, विलासिनी ११५, स्रग्विणी ११७, पादाकुलक ११९, भुजगप्रयात ३१६, प्रमाणिका ३१२, रणक या रजक ३११, मत्ता ३१२१, विद्युन्माला ९१९, दोवक १०१३ आदि छन्दोका प्रयोग किया है। छन्दोमे वर्णवृत्त और मात्रिक वृत्त दोनो मिलते है।

संक्षेपमे कविने सरल और सरस भाषामे भावोकी अभिव्यञ्जना की है।

वीर कवि

महाकवि वीरने 'जबुसामिचरिउ'[1]मे अपना परिचय दिया है। उनका जन्म मालवा देशके गुलखेड नामक ग्राममे हुआ था। उनके पिता 'लाडबागड' गोत्रके महाकवि देवदत्त थे। देवदत्तने १ वरागचरित २. शान्तिनाथराय ३ सद्धयवीरकथा और ४ अम्बादेवीरासकी रचना की थी। महाकवि वीरने अपने पिताको स्वय तथा पुष्पदन्तके पश्चात् तीसरा स्थान दिया है। कविने लिखा है कि स्वयभूके हाने से अपभ्र शका प्रथम कवि, पुष्पदन्तके होनेसे अपभ्रंशका द्वितीय कवि और देवदत्तके होनेसे अपभ्र शके तृतीय कविकी ख्याति हुई है। वीर कविने अपने समय तक तीन ही कवि अपभ्र शके माने हैं। स्वयभु, पुष्पदन्त और देवदत्त। इससे यह ध्वनित होता है कि कवि वीरके पिता देवदत्त भी अपभ्र शके ख्यातिनामा कवि थे।

कविकी माँका नाम श्री सनुवा था और इनके सीहल्ल, लक्षणांक तथा जसई ये तीन भाई थे। कविकी चार पत्नियाँ थी १ जिनमति २. पद्मवती ३ लीलावती ४. जयादेवी। इनकी प्रथम पत्निसे नेमिचन्द्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। वीर सस्कृत काव्य रचनामे भी निपुण थे, किन्तु पिताके मित्रोकी प्रेरणा और आग्रहसे सस्कृत-काव्यरचनाको छोड़कर अपभ्रशप्रबन्धशैलीमे जबुसामिचरिउ की रचना की है।

कविका लाडबागड वश इतिहास प्रसिद्ध बहुत पुराना है। इस वशका प्रारभ, पुन्नाट सघसे हुआ है। इस सघके आचार्य पुन्नाट-कर्नाटक प्रदेशमे विहार-

१. जबुसामिचरिउ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन सन् १९६८, १।४-५।

करते थे। इसलिए इसका नाम पुन्नाट पड़ा। तदनन्तर इसका प्रमुख कार्यक्षेत्र लाडबागड-गुजरात और सागवाडाके आसपासका प्रदेश हुआ। इसीलिए इसका नाम लाडवागडगच्छ पडा। पुन्नाट सघके प्राचीनतम ज्ञात आचार्य जिनसेन प्रथम हैं जिन्होने शक सवत् ७०५ (वि० सं० ८४०) मे वर्धमानपुरके पार्श्वनाथ तथा दोस्तटिकाके शान्तिनाथ जिनालयमे रहकर हरिवशपुराणकी रचना की है।

धर्मरत्नाकर नामक ग्रथके रचयिता आचार्य जयसेन लाडबागड सघके प्रथम व्यक्ति है जिन्होने वि० स० १०५५ मे कर्नाटक-कराड (बम्बई)मे निवास कर उक्त ग्रथकी रचनाको पूर्ण किया था। इसी गणमे प्रद्युम्नचरित्त रचयिता महासेन, हरिषेण, विजयकीर्त्ति आदि अनेक आचार्य हुए हैं।

व्यक्तित्व

महाकवि वीर काव्य, व्याकरण, तर्क, कोष, छन्दशास्त्र, द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग आदि विषयोके ज्ञाता थे। 'जबुसामिचरिउ'मे' समाविष्ट पौराणिक घटनाओके अध्ययनसे अवगत होता है कि महाकवि वीरके वल जैन पौराणिक परम्पराके ही ज्ञाता नही थे अपितु वाल्मीकिरामायण, महाभारत, शिवपुराण, विष्णुपुराण, भरतनाट्यशास्त्र, सेतुवन्धकाव्य आदि ग्रथोके भी पडित थे। इनके व्यक्तित्वमे नम्रता और राजनीति-दक्षताका विशेष रूपसे समावेश हुआ है। कविको अपने पूर्वजोपर गर्व है। वह महाकाव्य रचयिताके रूपमे अपने पिताका आदरपूर्वक उल्लेख करता है।

संस्कृत भाषाका प्रौढ कवि और काव्य अध्येता होनेके कारण वीर कविकी रचनामे पर्याप्त प्रौढता दृष्टिगोचर होती है। वीरके 'जबुसामिचरिउ'से यह भी स्पष्ट है कि वह धर्मका परम श्रद्धालु, भक्तव्रती और कर्मसस्कारोपर आस्था रखनेवाला था। उसकी प्रकृति अत्यन्त उदार और मिलनसार थी। यही कारण है कि उसने मित्रो की प्रेरणाको स्वीकारकर अपभ्रशमे काव्यकी रचना की।

वीर कविको समाजके विभिन्न वर्गों एव जीवन यापनके विविध साधनोका साक्षात् अनुभव था। वह श्रद्धावान् सद्गृहस्थ था। उसने मेघवनपत्तनमे तीर्थंकर महावीरकी प्रतिमा स्थापित करवाई थी।

कविके व्यक्तित्वको हम उनके निम्नकथनसे परख सकते हैं

देंत दरिद्द परवसणदुम्मण सरसकव्वसव्वस्स।
कइवीरसरिसपुरिस वरणिधरती कयत्थासि।

हत्थे चाओ चरणपणमणं साहुसीताण सीसे।
सच्चावाणी वयणकमलए वच्छे सच्चापवित्ती ॥

दरिद्रोको दान, दूसरेके दुखमे दुखी, सरसकाव्यको ही सर्वस्व माननेवाले पुरुषोको धारण करनेसे ही पृथ्वी कृतार्थ होती है। हाथमे धनुष, साधुचरित, महापुरुषोके चरणोमे प्रणाम, मुखमे सच्ची वाणी, हृदयमे स्वच्छप्रवृत्ति, कानोसे सुने हुए श्रुतका ग्रहण एव भुजलताओमे विक्रम, वीर पुरुषका सहज परिकर होता है।

इस कथनसे स्पष्ट है कि कविके व्यक्तित्वमें उदारता थी, वह दरिद्रोको दान देता था और दूसरोके दुखमे पूर्ण सहानुभूतिका व्यवहार करता था। कवि वीरताको भी जीवनके लिए आवश्यक मानता है। यही कारण है कि उसने युद्धोका ऐसा सजीव चित्रण किया है जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह युद्धभूमिमे सम्मिलित हुआ होगा।

कवियोके चरणोमे नतमस्तक होना भी उसका कवित्वके प्रति सद्भाव व्यक्त करता है। सत्यवचन, पवित्र हृदय, अनवरत स्वाध्याय, भुजपराक्रम और दयाभाव उसके व्यक्तित्वके प्रमुख गुण हैं।

स्थितिकाल

'जंबुसामिचरिउ'की प्रशस्तिमे कविने इस ग्रन्थका रचनाकाल वि० स० १०७६ माघ शुक्ला दशमी बताया है। लिखा है

"विक्कमनिवकालाओ छाहत्तरदससएसु वरिसाण।
माहम्मि सुद्धपक्खे दसम्मि दिवसम्मि सतम्मि ॥ २ ॥"

प्रस्तुत काव्यके अन्त साक्ष्य तथा अन्य बाह्यसाक्ष्योसे भी प्रशस्तिमे उल्लिखित समय ठीक सिद्ध होता है। कवि वीरने महाकवि स्वयभू, पुष्पदन्त एव अपने पिता देवदत्तका उल्लेख किया है। पुष्पदन्तके उल्लेखसे ऐसा ज्ञात होता है कि जब यह महाकवि अपने जीवनका उत्तरार्द्धकाल यापन कर रहा था और जिस समय राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीयकी मृत्युके पाँच ही वर्ष हुए थे उस समय धारा नरेश परमारवशीय राजा सीयक या श्री हर्षने कृष्ण तृतीयके उत्तराधिकारी और अनुज खोट्टिगदेवको आक्रमण करके मार डाला था एव मान्यखेटपुरीको बुरी तरह लूटा तथा ध्वस्त किया था (वि० स० १०२९)। इस समय पुष्पदन्तके महापुराणकी रचना पूर्ण हो चुकी थी और अभिमानमेरु महाकवि पुष्पदन्तकी ख्याति मालवा प्रान्तमे भी हो चुकी थी। इसी समय वीर कविने अपने बाल्यकालमे ही सरस्वतीके इस वरद् पुत्रकी ख्याति सुनी होगी

और इसकी रचनाओका अध्ययन किया होगा। यत जंवुसामिचरिउपर पुष्प-दन्तकी रचनाओका गम्भीर और व्यापक प्रभाव दिखलायी पडता है। अत कविके समयकी पूर्व सीमा वि० स० १०२५ के लगभग आती है।

इतना ही नही जवुसामिचरिउपर नयनन्दिके सुदसणचरिउ (वि० स० ११००) का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। एक बात और विचारणीय यह है कि जवुसामिचरिउकी पचम, षष्ठ और सप्तम सन्धियोमे हसद्वीपके राजा रत्न-शेखर द्वारा केरलके घेर लिये जाने और मगधराज श्रेणिककी सहायतासे राजा रत्नशेखरको परास्त किये जानेके बहानेसे वीर कविने जिस ऐतिहासिक युद्ध घटनाकी ओर सकेत किया है उसमे कविने स्वय भी एक पक्षकी ओरसे भाग लिया हो तो कोई आश्चर्यकी वात नही। यह घटना परिवर्तितरूपमे मुजके द्वारा केरल, चोल तथा दक्षिणके अन्य प्रदेशोपर वि० स० १०३०-१०५० के बीच आक्रमण करके उन्हे विजित करनेकी मालूम पडती है।

वीर कविके पश्चात् ब्रह्मजिनदासका सस्कृत 'जम्वुस्वामिचरित' मिलता है जिसे उन्होने वि० स० १५२० मे पूर्ण किया। यह रचना अपभ्रंश काव्यका सस्कृत रूपान्तर है। महाकवि 'रइवू'ने भी 'जवुसामिचरिउ'का निर्देश किया है। हरिषेणकी 'धम्मपरिक्खा' वि० स० १०४४ मे लिखी गई है। अत हरिषेण और पुष्पदन्त इन दोनोके साथ कविका सम्बन्ध रहा प्रतीत होता है। जैन ग्रन्थावलीमे 'जवुचरिउ'का उल्लेख आया है। इस ग्रन्थकी रचना भी अपभ्रंशमे वि० स० १०७६ मे हुई है। जवुचरिउके रचयिता सागरदत्त हैं, जो 'जंबुसामि-चरिउ'के समान ही विषयवस्तुका वर्णन करते है। अतएव प्रशस्तिमे निर्दिष्ट जवुसामिचरिउका रचनाकाल यथार्थ है।

रचना

महाकवि वीरकी एक ही रचना जवुसामिचरिउ उपलब्ध है। यह अपभ्रंश-का महाकाव्य है और यह रचना ११ सन्धियोमे पूर्ण हुई है।

मगलाचरणके अनन्तर कवि सज्जन-दुर्जन स्मरण करता है। पूर्ववर्त्ती कवियो-के स्मरणके अनन्तर कवि अपनी अल्पज्ञता प्रदर्शित करता है। मगधदेश और राजगृहका सुन्दर काव्यशैलीमे वर्णन किया गया है। तीर्थंकर महावीरका विपुलाचलपर समवशरण पहुँचता है। और श्रेणिक प्रश्न करते हैं और गौतम गणधर उन प्रश्नोका उत्तर देते हैं।

मगध-मण्डलमे वर्धमान नामक ग्राममे सोमशर्मनामक गुणवान ब्राह्मण रहता था और जिसकी पत्नी सोमशर्मा नामक थी। उनके भवदत्त और भवदेव नामक दो पुत्र थे। जव वे क्रमश १८ और १२ वर्षके थे तब उनके पिताका

स्वर्गवास हो गया और उनकी माता भी सती हो गई। माता-पिताके स्वर्गवास-के अनन्तर भाई भवदत्त न्यायपूर्वक गृहस्थधर्मका पालन करने लगा। कुछ समय पश्चात् सुधर्म मुनिका उपदेश सुनकर भवदत्तको वैराग्य हो गया और छोटे भाई भवदेवको गृहस्थीका भार सौंपकर वह सघमे दीक्षित हो गया। बारह वर्ष पश्चात् मुनि सघ विहार करता हुआ पुन उसी गाँवमे आया। छोटे भाई भवदेवको भी दीक्षित करनेकी इच्छासे गुरुकी अनुज्ञा लेकर भवदत्त मुनि भवदेवके घर आया। बड़े भाईका आगमन सुनकर वह बाहर आया उस समय भवदेवके विवाहकी तैयारियाँ हो रही थी। अतएव वह नववधूको अर्द्ध-मडित ही छोड़कर भवदत्तके पास आया। भवदेवके आग्रहसे वही आहार लेकर जहाँ सघ ठहरा हुआ था वहाँ भवदत्त मुनि लौट आया। भवदेव भी भाईके साथ श्रद्धा और सकोचवश मुनि सघमे चला आया। वहाँ मुनिजनोकी प्रेरणा तथा भाईकी अन्तरग इच्छाके सम्मानार्थ बेमनसे भवदेवने मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली। तदनन्तर सघ वहाँसे विहार कर गया। भवदेव दिनरात नागवसुके ध्यानमे लीन रहता हुआ घर लौटकर पुन उसके साथ काम भोग भोगनेके अवसरकी प्रतीक्षामे समय व्यतीत करने लगा। १२ वर्ष पश्चात् मुनि सघ पुन उसी वधमान गाँवके निकट आकर ठहरा। भवदेव इससे बहुत उल्लसित हुआ और बहाना करके अपने घरकी ओर चल पड़ा।

गाँवके बाहर ही एक जिन चैत्यालयमे उसकी नागवसुसे भेट हो गई। व्रतोके पालनेसे अति कृशगात्र अस्थिपजर मात्र शेष रहनेसे भवदेव उसे पहचान नही सका। अपने कुल और पत्नीके सम्बन्धमे पूछने पर नागवसुने उसे पहचान लिया। नागवसुने उसे अपना परिचय दिया और तप शुष्क शरीर दिखलाकर नाना प्रकारसे धर्मोपदेश दे भवदेवको प्रतिबुद्ध किया। इस प्रकार बोध प्राप्त कर भवदेवने आचार्यके पास जाकर प्रायश्चित्त लिया और पुन दीक्षा ग्रहण कर कठोर तपश्चरण किया। और मृत्युके अनन्तर तृतीय स्वर्ग प्राप्त किया।

स्वर्गसे च्युत हो भवदत्त पूर्व विदेहमे राजा वज्रदन्त और उसकी रानी यशोधनाके गर्भसे सागरचन्द्र नामक पुत्र हुआ। और भवदेवका जीव वहाँके राजा महापद्म और वनमाला नामक पटरानीका शिवकुमार नामक पुत्र हुआ। कालान्तरमे सागरचन्द्र दीक्षित हो गया। उसने भवदेवके जीव युवराज शिवकुमारको प्रतिबोधित करनेका प्रयास किया; पर माता-पिताकी अनुज्ञा न मिलनेसे वह घरमे ही धर्म-साधन करने लगा। इस तपके प्रभावसे भवदेवने

पुनः स्वर्गमें जन्म ग्रहण किया और भवदत्तके जीव सागरचन्द्रने आयुष्य पूर्ण कर स्वर्गमे जन्म प्राप्त किया।

चौथी सन्धिसे जम्बूस्वामीकी कथा आरम्भ होती है। इनके पिताका नाम अर्हद्दास था। सन्धिमे जन्म, वसन्तोत्सव, जलक्रीडा आदिका वर्णन आया है। अनन्तर उनके द्वारा मत्त गजको परास्त करनेका कथन आया है।

पाँचवीसे सातवी सन्धितक जम्बूस्वामीके अनेक वीरतापूर्ण कार्योंका वर्णन किया है। महर्षि सुधर्मास्वामी अपने पाँच शिष्योके साथ उपवनमे आते हैं। जम्बूस्वामी उनके दर्शन कर नमस्कार करते हैं। वे अपने पूर्वभवोका वृत्तान्त जान कर विरक्त हो घर छोडना चाहते हैं। माता समझाती है। सागरदत्त श्रेष्ठिका भेजा हुआ मनुष्य आकर जम्बूका विवाह निश्चित करता है। श्रेष्ठियोकी कमलश्री, कनकश्री, विनयश्री और रूपश्री नामक चार कन्याओंसे जम्बूका विवाह होता है।

जम्बूके हृदयमें पुनः वैराग्य जाग्रत होता है। उनकी पत्नियाँ वैराग्य-विरोधी-कथाएँ कहती हैं। जम्बू महिलाओंकी निन्दा करता हुआ वैराग्य निरूपक कथानक कहता है। इस प्रकार अर्द्धरात्रि व्यतीत हो जाती है। इतनेमे ही विद्युच्चर चोर, चोरी करता हुआ वहाँ आता है। जम्बूस्वामीकी माता भी जागती थी। उसने कहा 'चोर, जो चाहता है, ले ले'। चोरको जम्बूकी मातासे जम्बूके वैराग्य-भावकी सूचना मिलती है। विद्युच्चरने प्रतिज्ञा की कि वह या तो जम्बूको रागी बना देगा, अन्यथा स्वय वह वैरागी बन जायगा। जम्बूकी माता उस चोरको उस समय अपना छोटा भाई कहकर जम्बूके पास ले जाती जाती है, ताकि विद्युच्चर अपने कार्यमे सफल हो।

दशवी सन्धिमे जम्बू और विद्युच्चर एक दूसरेको प्रभावित करनेके लिए अनेक आख्यान सुनाते हैं। जम्बू वैराग्यप्रधान एव विषय-भोगकी निस्सारता-प्रतिपादक आख्यान कहते हैं और विद्युच्चर इसके विपरीत वैराग्यकी निस्सारता दिखलानेवाले विषयभोग-प्रतिपादक आख्यान। जम्बूस्वामीकी अन्तमे विजय होती है। वे सुधर्मास्वामीसे दीक्षा लेते हैं और उनकी सभी पत्नियाँ भी आर्यिका हो जाती हैं। जम्बूस्वामी केवलज्ञान प्राप्तकर अन्तमे निर्वाण-पद लाभ करते हैं।

विद्युच्चर भी दशविध धर्मका पालन करता हुआ तपस्या द्वारा सर्वार्थसिद्धि लाभ करता है। जम्बूचरिउके पढनेसे मगल-लाभका सकेत करते हुए कृति समाप्त होती है।

इस ग्रन्थमे जम्बूस्वामीके पूर्वजन्मोंका भी वर्णन आया है। पूर्वजन्मोमें वह शिवकुमार और भवदेव था और उसका बड़ा भाई सागरचन्द और भवदत्त। भवदेवके जीवनमे स्वाभाविकता है। भवदत्तके कारण ही भवदेवके जीवनमे उतार-चढ़ाव और अन्तर्द्वन्द्व उपस्थित होते है। जम्बूस्वामीकी पत्नियोके पूर्व जन्म-प्रसग कथा-प्रवाहमे योग नही देते। अत. वे अनावश्यक जैसे प्रतीत होते हैं।

जम्बूस्वामीके चरित्रको कवि जिस दिशाकी ओर मोड़ना चाहता है उसी ओर वह मुडता गया। कविने नायकके जीवनमे किसी भी प्रकारकी अस्वाभाविकता चित्रित नही की है। राग और वैराग्यके मध्य जम्बूस्वामीका जीवन विकसित होता है।

'जम्बूसामिचरिउ'मे शास्त्रीय महाकाव्यके सभी लक्षण घटित होते हैं। सुगठित इतिवृत्तके साथ देश, नगर, ग्राम, शैल, अटवी, उपवन, उद्यान, सरिता, ऋतु, सूर्योदय, चन्द्रोदय आदिका सुन्दर चित्रण आया है। रसभाव-योजनाकी दृष्टिसे यह एक प्रेमाख्यानक महाकाव्य है। इस महाकाव्यका आरंभ अश्वघोष कृत 'सौन्दरनन्द' महाकाव्यके समान वडे भाईके द्वारा छोटे भाई भवदेवके अनिच्छापूर्वक दीक्षित कर लिये जानेसे प्रियावियोगजन्य विप्रलम्भ शृगारसे होता है। भवदेवके प्रेमकी प्रकर्षता और महत्ता इसमे है कि वह जैनसघके कठोर अनुशासनमे दिगम्बर मुनिके वेशमे वड़े भाईकी देखरेखमे रहते हुए भी तथा जैन मुनिके अतिकठोर आचारका पालन करते हुए भी १२ वर्षोका दीर्घ काल अपनी पत्नी नागवसुके रूप-चिन्तनमे व्यतीत कर देता है। और अपनी प्रियाका निशिदिन ध्यान करता रहता है। १२ वर्ष पश्चात् वह अपने गाँव लौटता है और प्रिया द्वारा ही उद्‌बोधन प्राप्त करता है। इस प्रकार काव्यकी कथावस्तु विप्रलभ शृगारसे आरभ होकर शान्त रसमे समाविष्ट होती है। वीर (४।२१), रौद्र (५।३,५।१३), भयानक (१०।९), वीभत्स (१०।२६), करुण (२।५, ११।१७), अद्‌भुत (२।३, ५।२) एवं वात्सल्य (७।१३, ६।७) मे रसका परिणाम आया है।

अलकारोमे उपमा १।६, मालोपमा ५।८, मालोत्प्रेक्षा ८।१०, फलोत्प्रेक्षा ४।१४, रूपकमाला ३।७, निदर्शना १।३, दृष्टान्त १।२, वक्रोक्ति ४।१८, विभावना ४।८, विरोधाभास ९।१२, व्यतिरेक ४।१७, सन्देह ४।१९, भ्रान्तिमान् ५।२, और अतिशयोक्ति १।१७ अलकार पाये जाते हैं।

छन्दोमे करिमकरभुजा (७।१०), दीपक (४।२२), पारणक (१।२), पद्धडिया (१।८), अलिल्लह (१।६), सिंहावलोक (६।६), त्रोटनक (४।७), पादाकुलक (१।१), उर्वशी (३।४), सारीय (५।१४), स्रग्विणी (१।९, ४।१६), मदनावतार (६।१०), त्रिपदी शखनारी (४।५), सामानिका (९।१७), भुजगप्रयात (४।२१), दिनमणि (७।५), गाथा (९।१), उद्गाथा (७।१), दोहा (४।१४), रत्नमालिका (२।१५) मणिशेखर (५।८) मालागाहो (७।४), दण्डक (४।८) का प्रयोग कविने किया है। इस प्रकार महाकाव्यके सभी तत्त्व जबुसामिचरिउमे पाये जाते हैं।

श्रीचन्द

श्रीचन्दका नाम 'दसणकहरयणकरडु'मे पंडित श्रीचन्द्र भी आया है। कविने अपना परिचय 'दंसणकहरयणकरडु'के अन्तकी प्रशस्तिमे अकित किया है। कविने लिखा है

देसीगणपहाणु गुणगणहरु, अवइण्णउं णावइ सइं गणहरु।

×	×	×	×

भव्वमणो-णलिणाण-दिणेसरु, सिरिकित्ति त्ति सुवित्ति मुणीसरु॥
तासु सीसु पडियचूडामणि, सिरिगगेयपमुह पउरावणि।

×	×	×	×

धम्मुव रिसिरूवें जसरूवउ, सिरिसुयकित्तिणामु सभूयउ।

×	×	×	×

सिरि चदुज्जलजसु सजायउ, णामे सहसकित्ति विक्खायउ।

×	×	×	×

सिरिचदु णामु सोहण मुणीसु, सजायउ पडिउ पढम सीसु।
तेणेउ अणेयच्छरियधामु, दंसणकहरयणकरडुणामु।

×	×	×	×

कण्णणरिदहो रज्जेसहो सिरिसिरिमालपुरम्मि।
बुहसिरिचंदें एउ कउ णंदउ कव्वु जयम्मि॥

इस प्रशस्तिसे तथा कथाकोशकी प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि श्रीचन्द्रके पूर्व तीन विशेषण प्राप्त होते हैं—कवि, मुनि और पडित। श्रीचन्द मुनि थे और ग्रन्थ-रचना करनेसे वे कवि और पंडितकी उपाधिसे अलकृत थे। श्रीचन्द-ने प्रशस्तियोमे अपनी गुरुपरम्परा निम्न प्रकार अकित की है

देशीगण, कुन्दकुन्दान्वय
|
श्रीकीर्ति
|
श्रुतकीर्ति
|
सहस्रकीर्ति
|
वीरचन्द्र
|
श्रीचन्द्र

सहस्रकीर्तिके पाँच शिष्य थे देवचन्द्र, वासवमुनि, उदयकीर्ति, शुभचन्द्र और वीरचन्द्र। इन पाँचो शिष्योमेसे वीरचन्द्र अन्तिम शिष्य थे। इन्ही वीरचन्द्रके शिष्य श्रीचन्द्र हैं।

श्रीचन्द्रने कथाकोशकी रचनाके प्रेरकोका वशपरिचय विस्तारपूर्वक दिया है। बताया है कि सौराष्ट्र देशके अणहिल्लपुर (पाटण) नामक नगरमे प्राग्वाट-वशीय सज्जन नामके एक व्यक्ति हुए, जो मूलराज नरेशके धर्मस्थानके गोष्ठी-कार अर्थात् धार्मिक कथावार्ता सुनानेवाले थे। इनके पुत्र कृष्ण हुए, जिनकी भगिनीका नाम जयन्ती और पत्नीका नाम राणू था। उनके तीन पुत्र हुए बीजा, साहनपाल और साढदेव तथा चार कन्याएँ श्री, शृगारदेवी, सुन्दू और सोखू। इनमे सुन्दू या सुन्दुका विशेषरूपसे जैनधर्मके उद्धार और प्रचारमे रुचि रखती थी। कृष्णकी इस सन्ताननने अपने कर्मक्षयसे हेतु कथाकोशकी व्याख्या कराई। आगे इसी प्रशस्तिमे बताया गया है कि कर्त्ताने भव्योकी प्रार्थनासे पूर्व आचार्यकी कृतिको अवगत कर इस सुन्दर कथाकोशकी रचना की।

इस कथनसे यह अनुमान होता है कि इस विषयपर पूर्वाचार्यकी कोई रचना श्रीचन्द्रमुनिके सम्मुख थी। प्रथम उन्होने उसी रचनाका व्याख्यान श्रावकोको सुनाया होगा, जो उन्हे बहुत रोचक प्रतीत हुआ। इसीसे उन्होंने उनसे प्रार्थना की कि आप स्वतन्त्ररूपसे कथाकोशकी रचना कीजिये। फल-स्वरूप प्रस्तुत ग्रन्थका प्रणयन किया गया है। प्रशस्तिमे ग्रथकारके व्याख्यातृत्व और कवित्व आदि गुणोका विशेषरूपसे निर्देश किया गया है। अतएव यह स्पष्ट है कि सौराष्ट्र देशके अणहिल्लपुरमे कृष्ण श्रावक और उनके परिवारकी प्रेरणासे कथाकोश ग्रन्थकी रचना हुई है।

'दसणकहरयणकरंडु' ग्रंथकी सन्धियोके पुष्पिकावाक्योमे 'प० श्रीचन्द्र कृत' निर्देश मिलता है। यह निर्देश सोलहवी सन्धि तक ही पाया जाता है।

१७वीं से २१वीं सन्धि तककी पुष्पिकाओमे 'इय सिरिचन्दमुणीन्दकए' (इति श्रीचन्द्रमुनिकृत) उल्लेख मिलता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि 'दंसणकहरयणकरंडु' की १६वीं सन्धिकी रचना तक श्रीचन्द्र श्रावक थे, पर इसके पश्चात् उन्होने मुनि-दीक्षा ग्रहण की होगी। अतएव उन्होने 'दसणकहरयणकरंडु' की अवशिष्ट सन्धियाँ और कथाकोशकी रचना मुनि अवस्थामे की है।

श्रीचन्द्रका व्यक्तित्व श्रावक और श्रमण दोनोका समन्वित रूप है। कवित्वके साथ उनकी व्याख्यानशैली भी मनोहर थी। श्रीचन्द्र राजाश्रयमे भी थे। श्रीमालपुर और अणहिल्लपुरके साथ उनका निकटका सम्बन्ध था। रचनासे यह भी ज्ञात होता है कि श्रीचन्द्र मनुष्यजन्मको दुर्लभ समझ दिगम्बर दीक्षामे प्रवृत्त हुए थे। मनुष्यजन्मकी दुर्लभताके लिए उन्होने पाशक, धान्य द्यूत, रत्नकथा, स्वप्न, चन्द्रकवेध, कूर्मकथा, युग्म और परमाणुकी दृष्टान्त-कथाएँ उपस्थित की हैं, जिससे उनका अध्यात्मप्रेमप्रकट होता है। कविके आख्यानकी इस शैलीसे यह भी ध्वनित होता है कि वे ससारमे धर्म पुरुषार्थको महत्त्व देते थे।

स्थितिकाल

कवि श्रीचन्द्रने 'दंसणकहरयणकरंडु'की प्रशस्तिमे उसके रचनाकालका निर्देश किया है। बताया है

एयारह-तेवीसा वाससया विक्कमस्स णरवइणो।
जइया गया हु तइया समाणियं सुदर कव्व ॥१॥
कण्ण-णरिंदहो रज्जेसहो सिरिसिरिमालपुरम्मि।
वुह-सिरिचदें एउ किउ णंदउ कव्वु जयम्मि ॥२॥

अर्थात् वि० स० ११२३ व्यतीत होनेपर कर्णनरेन्द्रके राज्यमे श्रीमालपुरमे विद्वान् श्रीचन्द्रने इस 'दसणकहरयणकरंडु' काव्यकी रचना की। यह कर्ण सोलंकीनरेश भीमदेव प्रथमके उत्तराधिकारी थे और इन्होने सन् १०१४से ई० सन् १०९४ तक राज्य किया है। अतएव कविने ई० सन् १०६६मे उक्त ग्रथकी रचना की है, जो कर्णके राज्यकालमे सम्पन्न हुई है।

श्रीमाल अपरनाम भीनमाल दक्षिण मारवाडकी राजधानी थी। सोलकी-नरेश भीमदेवने सन् १०६० ई० मे वहाँके परमारवंशी राजा कृष्णराजको पराजितकर वदीगृहमे डाल दिया और भीनमालपर अधिकार कर लिया। उनका यह अधिकार उनके उत्तराधिकारी कर्णतक स्थिर रहा प्रतीत होता है।

'दंसणकहरयणकरंडु'की १६वीं सन्धि तक 'पंडित' विशेषण उपलब्ध होता है और इसके पश्चात् 'मुनि' विशेषण प्राप्त होने लगता है। कथाकोशकी रचना 'दर्शनकथारत्नकरण्ड'के पश्चात् हुई होगी। श्री डॉ० हीरालालजीने इस ग्रन्थका रचनाकाल ई० सन् १०७०के लगभग माना है।[1]

कथाकोषकी प्रशस्तिसे यह स्पष्ट है कि महाश्रावक कृष्णके परिवारकी प्रेरणासे यह ग्रन्थ लिखा है। इनके पिता सज्जन मूलराजनरेशके धर्मस्थानके गोष्ठीकार थे। ये मूलराज वही हैं, जिन्होंने गुजरातमें वनराज द्वारा स्थापित चावडावंशको च्युतकर ई० सन् ९४१में सोलंकी (चालुक्य) वंशकी स्थापना की थी। प्रशस्तिमें यह भी बताया गया है कि ग्रन्थकारके परदादागुरु श्रुतकीर्तिके चरणोंकी पूजा गांगेय, भोजदेव आदि बड़े-बड़े राजाओंने की थी। डॉ० हीरालालजीका अनुमान है कि गांगेय निश्चयतः डाहल (जबलपुरके आस-पासका प्रदेश) के वे ही कलचुरी नरेश गांगेयदेव होना चाहिए, जो कोक्कलके पश्चात् सन् १०१९के लगभग सिंहासनारूढ़ होकर सन् १०३८ तक राज्य करते रहे। भोजदेव धाराके वे ही परमारवंशी राजा हैं, जिन्होंने ई० सन् १००० से १०५५ तक मालवापर राज्य किया तथा जिनका गुजरातके सोलंकी राजाओंसे अनेकबार संघर्ष हुआ। अतएव श्रीचन्द्रका समय ई० सन्‌की ११वीं शती होना चाहिए।

रचनाएँ

श्रीचन्द्र मुनिकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं 'दंसणकहरयणकरंडु' और 'कहाकोसु'।

दंसणकहरयणकरंडु

प्रथम ग्रन्थमें २१ सन्धियाँ हैं। प्रथम सन्धिमें देव, गुरु और धर्म तथा गुण-दोषोंका वर्णन है। इसमें ३९ कड़वक हैं। उत्तमक्षमादि दश धर्म, २२ परीषह, पंचाचार, १२ तप आदिका कथन किया है। पंचास्तिकाय और षड्द्रव्यका वर्णन भी इसी सन्धिमें आया है। समस्त कर्मोंके भेद-प्रभेदका कथन भी प्राप्त होता है। कविने नामकर्मकी ४२ प्रकृतियोंका निर्देश करते हुए लिखा है

णारय-तिरिय-णराण, तह देवाउ चउत्थउ।
णामहो णामहं भेउ, सुणु एवहिं बायालीसउ॥३६॥
गइ जाइ णामु तणु अंगुवंगु, णिम्माणय बंधण णाम अंगु।
संघायणामु संठाणणामु, संहणणणामु भासइ अकामु॥
रस फास गंधु अणुपुव्विणामु, वण्णागुरुलहु उवघायणामु।
परघायातप उज्जोवणामु, उस्सास विहायगई सणामु॥

1. 'कहाकोसु' प्राकृत-ग्रन्थ-परिषद, अहमदाबाद, सन् १९६९, प्रस्तावना, पृ० ५।

साहारण पत्तेयंगणामु, तस थावर सुहुमासुहुमणामु ॥
सोहग्गणामु दोहग्गणामु, सुस्सर-दुस्सर सुह-असुहणामु ॥
पज्जत्त इयर थिर अथिर णामु, आदेउ तहाउणादेउणामु ॥
जसकित्ति अजसकित्तीण णामु, तित्थयरणामु सिवसोक्खधामु ।
इय पिंडापिंडा पयडि जणिय, चालीसदु जाहिय मेय भणिय ।
णामक्ख होंति तेणवइ मेय, विवरिज्जहि जइ जाणहि विणेय ।

द्वितीय सन्धिमे सुभौम चक्रवर्तीकी उत्पत्ति और परशुरामके मरणका वर्णन किया गया है । तृतीय सन्धिमे पद्मरथ राजाका उपसर्ग-सहन, आकाश-गमन, विद्यासाधन और अजनचोरका निर्वाण-गमन वर्णित है । चतुर्थ सन्धि-मे अनन्तमतीकी कथा आयी है । पचम सन्धिमे निर्विचिकित्सागुणका वर्णन आया है । षष्ठ सन्धिमे अमूढदृष्टिगुणका वर्णन है । सप्तम सन्धिमे उपगूहन और स्थितिकरणके कथानक आये हैं । अष्टम सन्धिमे वात्सल्य-गुणकी कथा वर्णित है । नवम सन्धिमे प्रभावना अगकी कथा आयी है । दशम सन्धिमे कौमुदी-यात्राका वर्णन है । ग्यारहवी सन्धिमे उदितोदय सहित उपदेशदान वर्णित है । बारहवी सन्धिमे परिवारसहित उदितोदयका तपश्चरण-ग्रहण आया है । १३वी सन्धिमे वेतालकथानक वर्णित है । १४वी सन्धिमे माला-कथानक आया है । १५वी सन्धिमे सोमश्रीकी कथा वर्णित है । १६वी सन्धिमे काशीदेश, वाराणसी नगरीके वर्णनके पश्चात् भक्ति और नियमोका वर्णन है । १७वी सन्धिमे अनस्तमित अर्थात् रात्रिभोजनत्यागव्रतकी कथा वर्णित है । १८वी सन्धिमे दया-धर्मके फलको प्राप्त करने वालोकी कथा वर्णित है । १९वी सन्धिमे नरकगतिके दु खोका वर्णन किया गया है । २०वी सन्धिमे बिना जाने हुए फल-भक्षणके त्यागकी कथा वर्णित है । २१वी सन्धिमे उदितोदय राजाओ-की परिव्रज्या और उनका स्वर्गगमन आया है । इस प्रकार इस ग्रन्थमे सम्य-ग्दर्शनके आठ अग, व्रतनियम, रात्रिभोजनत्याग आदिके कथानक वर्णित हैं । कथाओंके द्वारा कविने धर्म-तत्त्वको हृदयगम करानेका प्रयास किया है ।

कथाकोश इस ग्रन्थमे ५३ सन्धियाँ हैं और प्रत्येक सन्धिमे कम-से-कम एक कथा अवश्य आयी है। ये सभी कथाएँ धार्मिक और उपदेशप्रद है । कथाओका उद्देश्य मनुष्यके हृदयमे निर्वेद-भाव जागृत कर वैराग्यकी ओर अग्रसर करना है । कथाकोषमे आई हुई कथाएँ तीर्थंकर महावीरके कालसे गुरुपरम्परा द्वारा निरन्तर चलती आ रही है । प्रथम सन्धिमें पात्रदान द्वारा धनकी सार्थकता प्रतिपादित कर स्वाध्यायसे लाभ और उसकी आवश्यकतापर जोर दिया है । इस सन्धिके अन्तमे सोमशर्मा ज्ञानसम्पादनसे निराश हो

समाधिमरण ग्रहण करता है तथा पाँच दिनोंके समाधिमरण द्वारा स्वर्गमें अवधिज्ञानी देव होता है। द्वितीय सन्धिमे सम्यक्त्वके अतिचार और शकादि दोषोके उदाहरण आये हैं। इन उदाहरणोको स्पष्ट करनेके लिए आख्यानोकी योजना की गई है। तृतीय सन्धिमे उपगूहन आदि सम्यक्त्वके चार गुण बतलाये हैं और उपगूहनका दृष्टान्त स्पष्ट करनेके लिए पुष्पपुरके राजकुमार विशाखकी कथा आई है। प्रसगवश इस कथामे विष्णुकुमारमुनि और राजा बलिका आख्यान भी वर्णित है। चतुर्थ सन्धिमे प्रभावनाविषयक वज्रकुमारकी कथा अकित है। पचम सन्धिमे श्रद्धानका फल प्रतिपादित करनेके लिए हस्तिनापुरके राजा धनपाल और सेठ जिनदासकी कथा आयी है। छठी सन्धिमे श्रुतविनयका आख्यान, गुरुनिन्हवकथा, व्यजनहीनकथा, अर्थहीनकथा, सप्तम सन्धिमे नागदत्तमुनिकथा, शूरमित्रकथा, वासुदेवकथा, कल्हासमित्रकथा और हसकथा, अष्टम सन्धिमे हरिषेणचक्रीकथा, नवम सन्धिमे विष्णुप्रद्युम्नकथा और मनुष्यजन्मकी दुर्लभता सिद्ध करनेवाले दृष्टान्त, दशम सन्धिमे सघश्रीकथा, एकादश सन्धिमे द्रव्यदत्तका आख्यान, जिनदत्त-वसुदत्तका आख्यान, लकुचकुमारका आख्यान, पद्मरथका आख्यान, ब्रह्मदत्तचक्रवर्त्ती-आख्यान, जिनदास-आख्यान, रुद्रदत्त-आख्यान, द्वादश सन्धिमे श्रेणिकचरित, त्रयोदश सन्धिमे श्रेणिकका महावीरके समवशरणमे जाना और वहाँ धर्मोपदेशका श्रवण करना, पन्द्रहवी और सोलहवी सन्धियोमे विविध प्रश्न और आख्यानोका वर्णन है। सत्रहवी और अठारहवी सन्धिमे करकडुका चरित वर्णित है। १९ वी और २० वी सन्धिमे रोहिणीचरित वर्णित है। २१ वी सन्धिमे भक्ति और पूजाफल सम्बन्धी आख्यान निबद्ध हैं। २२वी सन्धिमे नमोकारमन्त्रकी अराधनाके फलको बतलानेवाले सुदर्शन आदिके आख्यान अकित हैं। २३ वी, २४ वी और २५ वी सन्धियोमे ज्ञानोपयोगके फलसम्बन्धी कथानक अकित हैं। २६ वी और २७ वी सन्धिमे दान और धर्मसम्बन्धी कथानक आये हैं। २८ वीसे लेकर ३४ वी सन्धि तक पंच पाप और विकारसम्बन्धी तथ्योके विश्लेषणके लिए कथानक अकित किये गये हैं। ३५ वी सन्धिमे प्रशंसनीय महिलाओके आख्यान, ३६ वी सन्धिमे श्रावकधर्म और पचाक्षरमन्त्रके उपदेशसम्बन्धी आख्यान गुम्फित हैं। ३७ वी सन्धिमे शकटमुनि और पाराशरकी कथा, ३८ वी सन्धिमे सात्यकीरुद्रकथा, ३९ वी सन्धिमे राजमुनि कथा, ४० वी सन्धिमे अर्थकी अनर्थमूलता सूचक आख्यान वर्णित हैं। ४१ वी सन्धिमे धनके निमित्तसे दुःख प्राप्त करनेवाले व्यक्तियोके आख्यान वर्णित हैं। ४२वी सन्धिमे निदानसे सम्बन्धित कथाएँ आयी हैं। ४३वी सन्धिमे तीनो शल्योसे सम्बन्धित कथानक, ४४ वी सन्धिमे स्पर्शन-इन्द्रियके अधीन रहनेवाले

तथा चारों कषायोंका सेवन करनेवाले व्यक्तियोके कथानक आये हैं, ४५ वीं, ४६ वी, ४७ वी, ४८ वी, ४९ वी और ५० वी सन्धियोमे परीषहोपर विजय करने वाले शीलसेन्द्र, सुकुमाल, सुकोशल, राजकुमार, सनत्कुमारचक्रवर्ती, भद्रवाहु, धर्मघोषमुनि, वृषभसेनमुनि अग्निपुत्र, अभयघोष, विद्युच्चरमुनि, चिलात्पुत्र, धन्यकुमार, चाणक्यमुनि और ऋषभसेनमुनिकी कथाएँ वर्णित हैं। ५१ वी सन्धिमे प्रत्याख्यानके अखण्ड पालनपर श्रीपालकथा, प्रायश्चित्तपर राजपुत्रकथा, आहारगृद्धिपर शालिसिक्थकथा, भोजनकी लोलुपतापर सुभौम चक्रवर्तीकथा और ससारकी अनिष्टतापर धनदेवकथा आई है। ५२ वी सन्धि मे कर्मफलकी प्रबलतापर सुभोगनृपकथा, व्रतभगपर धर्मसिहमुनिकथा, ऋषभसेनमुनिकथा और आत्मघात द्वारा सघरक्षापर जयसेननृपकथा आई है। ५३ वी सन्धिमे समाधिमरणपर शकटालमुनिकी कथा अकित है। इस कथाग्रथमे नगर, देश, ग्राम आदिके वर्णनके साथ यथास्थान अलकारोका भी प्रयोग किया गया है।

श्रीधर प्रथम

अपभ्र श-साहित्यमे श्रीधर और विबुध श्रीधर नामके कई विद्वानोंका परिचय प्राप्त होता है। श्री प० परमानन्दजी शास्त्रीने संस्कृत और अपभ्रंशके सात कवियोका परिचय दिया है।[1] श्रीधरके पूर्व 'विबुध' विशेषण भी प्राप्त होता है। श्री हरिवश कोछडने 'पासणाहचरिउ', 'सुकुमालचरिउ' और 'भविसयत्तचरिउ' ग्रन्थोका रचयिता इन्ही श्रीधरको माना है। पर[2] प० परमानन्दजी 'पासणाहचरिउ'के रचयिता श्रीधरको 'भविसयत्तचरिउ' और सुकुमालचरिउके रचयिताओसे भिन्न मानते हैं। श्री डॉ० देवेन्द्रकुमारशास्त्रीने भी भविसयत्तचरिउके रचयिता श्रीधर या विबुध श्रीधरको उक्त ग्रन्थोके रचयिताओंसे भिन्न बतलाया है। वस्तुत 'पासणाहचरिउ'का रचयिता श्रीधर, भविसयत्तचरिउके रचयितासे तो भिन्न है ही, पर वह सुकुमालचरिउके रचयितासे भी भिन्न है। इन तीनो ग्रन्थोंके रचयिता तीन श्रीधर हैं, एक श्रीधर नही'।

'पासणाहचरिउ'के अन्तमे जो प्रशस्ति अकित है उससे कविके जीवनवृत्तपर निम्न लिखित प्रकाश पड़ता है

१ अनेकान्त वर्ष ८, किरण १२, पृष्ठ ४६२।

२ अपभ्रश-साहित्य, भारती-साहित्य-मन्दिर, दिल्ली, पृ० २१०।

"सिरिअयरवालकुल-संभवेण, जणणी-विल्हा-गब्भु(ब्भ) वेण
अणवरय-विणय-पणयारुहेण, कइणा बुहगोल्हतणुरुहेण।
पयडियतिहुअणवइगुणभरेण, मणिणयमुहिसुअणेसिरिहरेण"।
पासणाहचरिउ, प्रशस्ति

कवि अग्रवाल कुलमें उत्पन्न हुआ था। इसकी माताका नाम वील्हादेवी और पिताका नाम बुधगोल्ह था। कविने इससे अधिक अपना परिचय नहीं दिया है। कविका एक 'पासणाहचरिउ' ही उपलब्ध है। पर ग्रन्थके प्रारंभिक भागसे उनके द्वारा चन्द्रप्रभचरितके रचे जानेका भी उल्लेख प्राप्त होता है। पंक्तियाँ निम्न प्रकार हैं

"विरएवि चंदप्पहचरिउ चारु, चिर-चरिय-कम्मदुक्खावहारु।
विहरंतें कोऊहलवसेण, परिहच्छिय वाससरिसरेण।"

'पासणाहचरिउ'में कविने इस ग्रंथके रचे जानेका कारण भी बतलाया है। कवि दिल्लीके पास हरियाणामें निवास करता था। उसे इस ग्रंथके रचनेकी प्रेरणा साहू नट्टलके परिवारसे प्राप्त हुई। साहू नट्टल दिल्ली (योगिनीपुर)के निवासी थे। उस समय दिल्लीमें तोमरवंशीय अनंगपाल तृतीयका शासन विद्यमान था। यह अनंगपाल अपने पूर्वज दो अनंगपालोंसे भिन्न था और यह बड़ा प्रतापी एवं वीर था। इसने हम्मीर वीरकी सहायता की थी। प्रशस्तिमें लिखा है

जहिं असिवर तोडिय रिउ कवालु, णरणाहु पसिद्धु अणंगवालु
णिरुदल वड्ढियहम्मीर वीरु, वंदियण विंद पवियण्ण चीरु।
दुज्जण-हिय-यावणिदलणसीरु, दुण्णयणीरय-णिरसण-समीरु।
वालभर-कंपाविय-णायराउ, माणिणि-यण-मण-संजणिय-राउ।

दिल्लीकी शासन-व्यवस्था बहुत ही सुव्यवस्थित थी और सभी जातियोंके लोग वहाँ सुखपूर्वक निवास करते थे। नट्टल साहू धर्मात्मा और साहित्य-प्रेमी ही नहीं थे; अपितु उच्चकोटिके कुशल-व्यापारी भी थे। उस समय उनका व्यापार अंग, बंग, कलिंग, कर्णाटक, नेपाल, भोट्ट, पांचाल, चेदि, गौड, ठक्क, केरल, मरहट्ट, भादानक, मगध, गुर्जर, सोरठ आदि देशोंमें चल रहा था। कविको इन्हीं नट्टल साहूने 'पासणाहचरिउ'के लिखनेकी प्रेरणा दी थी।

नट्टल साहूके पिताका नाम अल्हण साहू था और इनका वंश अग्रवाल था। नट्टल साहूकी माता बड़ी ही धर्मात्मा और शीलगुण सम्पन्न थी। नट्टल साहूके दो ज्येष्ठ भाई थे राघव और सोढल। सोढल विद्वानोंको

आनन्ददायक, गुरुभक्त और अर्हन्तके चरणोका भ्रमर था। नट्टल साहू भी बड़ा ही धर्मात्मा और लोकप्रिय था। उसे कुलरूपी कमलोका आकर, पाप-रूपी पांशुका नाशक, वन्दीजनोको दान देनेवाला, तीर्थंकर मूर्त्तियोका प्रति-ष्ठापक, परदोषोके प्रकाशनसे विरक्त और रत्नत्रयधारी था। साहित्यिक अभिरुचिके साथ सास्कृतिक अभिरुचि भी उसमे विद्यमान थी। उसने दिल्लीमे एक विशाल जैन-मन्दिर निर्माण कराकर उसकी प्रतिष्ठा भी की थी। पाचवी सन्धिके पश्चात् पासणाहचरिउमे एक सस्कृत-पद्य आया है, जिससे उपर्युक्त तथ्य निरसृत होता है

"येनाराध्य विशुद्धधीरमतिना देवाधिदेव जिनं।
सत्पुण्य समुपार्जित निजगुणै· सतोषिता बाधवा ॥
जैन चैत्यमकारि सुन्दरतर जैनी प्रतिष्ठा तथा।
स श्रीमान्विदित· सदैव जयतात्पृथ्वीतले नट्टल: ॥"

अतएव स्पष्ट है कि कवि श्रीधर प्रथमको पासणाहचरिउके रचनेकी प्रेरणा नट्टल साहूसे प्राप्त हुई थी।

कविके दिल्ली-वर्णन, यमुना-वर्णन, युद्ध-वर्णन, मन्दिर-वर्णन आदिसे स्पष्ट होता है कि कवि स्वाभिमानी था। वह नाना-शास्त्रोका ज्ञाता होनेपर भी चरित्रको महत्त्व देता था। अलंकारोके प्रति कविकी विशेष ममता है। वह साधारण वर्णनको भी अलकृत बनाता है। भाग्य और पुरुषार्थ इन दोनो पर कविको अपूर्व आस्था है। उसकी दृष्टिमे कर्मठ जीवन ही महत्त्व-पूर्ण है।

स्थितिकाल

पासणाहचरिउमे उसका रचनाकाल अकित है। अतएव कविके स्थिति-कालके सम्बन्धमे विवाद नही है।

विक्कमणरिंद-सुपसिद्धकालि, ढिल्ली-पट्टण-धणकण-विसालि।
सणवासी-एयारह-सएहिं, परिवाडिए वरिस-परिगएहिं।
कसणट्ठमीहि आगहणमासि, रविवारि समाणिउ सिसिरभासि।
सिरिपासणाह णिम्मलचरित्तु, सयलामलरयणोह-दित्तु।

अर्थात् वि० स० ११८९ मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमी रविवारके दिन यह ग्रथ पूर्ण हुआ।

कविकी एक अन्य रचना 'वड्ढमाणचरिउ' भी प्राप्त है। इस रचनामे भी कविने रचनाकालका निर्देश किया है। 'वड्ढमाणचरिउ'मे अकित की गई

वंशावली पासणाहचरिउकी वंशावलीके समान है। कविने अपनेको वील्हाके गर्भसे उत्पन्न लिखा है। बताया है

वील्हा-गब्भ-समुब्भव दोहे। सव्वयणहिं सहुँ पयडिय णेहे ॥
एउ चिरज्जिय पाव-खयकरु। वड्ढमाणचरिउ सुहंकरु ॥

वड्ढमाणचरिउका रचनाकाल कविने वि० सं० ११९० ज्येष्ठ कृष्णा पंचमी रविवार बताया है। लिखा है

एयारहसएहिं परिविगयहि। सवच्छर सएणवहिं समेयहि।
जेट्ठ-पढम-पक्खइं पचमिदिणे। सूरुवारे गयणगणिठिइइणे ॥

अतएव श्रीधर प्रथम या विबुध श्रीधरका समय विक्रमकी १२वी शती निश्चित है।

रचनाएँ

विबुध श्रीधरकी दो रचनाएँ निश्चित रूपसे मानी जा सकती है 'पासणाहचरिउ' और 'वड्ढमाणचरिउ'। ये दोनो ही रचनाएँ पौराणिक महाकाव्य हैं। इनमे पौराणिक काव्यके सभी तत्प पाये जाते हैं।

पासणाहचरिउ

तीर्थंकर पार्श्वनाथका चरित्त अपभ्रंशके कवियोको विशेप प्रिय रहा है। अहिंसा और ब्रह्मचर्यके सन्देशको जनसामान्य तक पहुँचानेके लिए यह चरित्त बहुत ही उपादेय है। कवि श्रीधर प्रथमने अपने इस चरितकाव्यमे २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथका जीवनवृत्त गुम्फित किया है। कथावस्तु १२ सन्धियोमे विभक्त है और इस ग्रंथका प्रमाण २५०० पद्य है। कविने यमुनानदीका चित्रण प्रियतमके पास जाती हुई विलासिनीके रूपमे किया है।

जउणासरि सुरणय-हियय-हार, ण वार विलासिणिए उरहार।
डिंडीर पिंड उप्परिय णिल्ल, कोलिर रहग घोव्वड थणिण्ण।
सेवाल-जाल-रोमावलिल्ल, वुहयण-मण-परिरजणच्छइल्ल।
भमरावलिवेणीवलयलच्छि, पप्फुल्ल-पोमदलदीहअच्छि।
पवणाहयसलिलावत्त-णाहि, विणिहयजणवयतणुतावावाहि।
वणगयगलमयजलघसिणलित्त, दरफुडियसिप्पिउडदसणदित्त।
वियसत-सरोरुह-पवर-वत्त, रयणायर-पवरपियाणुरत्त।
विउला मलपुलिणणियंव जाम, उत्तिण्णी णयणहिं दिट्ठु ताम।
हरियाणए देसे असंख गामे, गमियिणजणियअणवरयकामे।

अर्थात् सुर-नर-हृदयहार यमुना मानो वारविलासिनीका हृदयहार है। मानो उसकी फेनालि उस नारीका उपरितन वस्त्र हो। क्रीड़ारत चक्रवाक मानों उसके स्तन हो। शैवालजाल प्रवुद्ध मनको रजन करनेवाली रोमालि, भ्रमरावलि वलय-वेणी, प्रफुल्ल पद्मदल दीर्घ नयन, पवनावलम्बित सलिल आवर्त्त, तनुतापनाशक नाभि, वन्यगजमद युक्त सलिलचन्दनलेप, ईषत् व्यक्त होते हुए शुक्तिपुट सुन्दर रद एव विकसित कमल, सुन्दर मुख हो। रत्नाकरप्रियके प्रति अनुरक्त सरिता थी और वारविलासिनी रत्नालकृत अपने प्रियके प्रति। उसके विपुल एव निर्मल पुलिन मानो उसके नितम्ब थे। इस प्रकारकी सरिता कविने देखी और पार की। नदी पार कर वह हरियाणा प्रदेशके ढिल्ली नामक नगरमे पहुँचा।

कवि दिल्ली पहुँचनेके साथ-साथ उसका रम्य वर्णन उपस्थित करता है। अलकृत दिल्ली कविकी अलकृत शैली पाकर और भी आकर्षणयुक्त बन गई है। गगनचुम्बी शालाएँ, विशाल रणशिविर (मडप), सुरम्य मदिर, समद गज, गतिशील तुरग, नारीपद-नूपुरध्वनि सुन नृत्यत मयूर एव प्रशस्त हट्टमार्ग आदिका निर्देश कविने किया है

जहिं गयणामडललग्गु सालु, रण-मडवपरिमडिउ विसालु।
गोउरसिरिकलसाहयपयगु, जलपूरियपरिहालिगियगु।
जहिं जण-मण-णयणाणदिराइ, मणियरगणमंडियमदिराइ।
जहिं चउदिसु सोहहिं घणवणाइ, णायर-णर-खयर-सुहावणाइ।
जहिं समय-करडि घड घड हडति, पडिसद्दें दिसि-विदिसि विप्फुडति।
जहिं पवण-गयण धाविर तुरग, ण वारि रासि भगुर तरग।

× × ×

दप्पुब्भउ भउ तोणु व कणिल्लु, सविणय सीसु व बहु गोर सिल्लु।
पारावारु व वित्थरिय सखु, तिहुअणवइ-गुणणियरु व असखु।

इस प्रकार कविने श्लिष्ट शैलीमे दिल्ली नगरकी वस्तुओका चित्रण किया है। यह नगर नयनके समान तारक युक्त था, सरोवरके समान हारयुक्त और हार नामक जीवोसे युक्त था, कामिनीजनके समान प्रचुर मान वाला, युद्धभूमिके समान नागसहित और न्याययुक्त, नभके समान चन्द्रसहित एव राजसहित था।

युद्धवर्णनमे कविने भावानुकूल शब्दो और छन्दोकी योजना की है। इस प्रकार 'पासणाहचरिउ' काव्यगुणोसे परिपूर्ण है।

वड्ढमाणचरिउ

वड्ढमाणचरिउके प्रेरक साहू नेमिचन्द्र हैं। इनके अनुरोधसे कविने इस ग्रंथकी रचना की है। नेमिचन्द्रका परिचय ग्रंथके प्रारम्भ और अन्तमें दिया गया है। कविने लिखा है

इक्कहि दिणि णरवरणंदणेण। 'सोमा-जणणी'-आणंदणेण॥
जिणचरणकमलइंदिंदिरेण। णिम्मलयर-गुण-मणि-मंदिरेण॥
जायस-कुल-कमल-दिवायरेण। जिणभणियागम-विहिणायरेण॥
णामेण णेमिचन्देण वुत्तु। भो 'कइ-सिरिहर' सद्दत्थजुत्तु।
जिह(ण) विरइउ चरिउ दुहोहवारि। संसारुब्भव-संताव-हारि॥१।१॥

× × × ×

जायसवंस-सरोय-दिणेसहो। अणुदिणु चित्तणिहित्त जिणेसहो॥
णरवर-सोमइं-तणुसंभूवहो। साहु णेमिचंदहो गुणभूवहो॥
वयणे विरइउ सिरिहर णामे। तियरणरक्खिय असुहर गामें॥

अन्तिम प्रशस्ति पद्य

अर्थात् नेमिचन्द्र वोदाउ नामक नगरके निवासी थे और जायस या जयसवालकुल-कमलदिवाकर थे। इनके पिताका नाम साहू नरवर और माताका नाम सोमादेवी था। माता-पिता बड़े ही धर्मात्मा और साधुस्वभावके थे। साहूनेमिचन्द्रकी धर्मपत्नीका नाम 'वीवा' देवी था। इनके तीन पुत्र थे रामचन्द्र, श्रीचन्द्र और विमलचन्द्र। एक दिन साहू नेमिचन्द्रने कवि श्रीधरसे निवेदन किया कि जिस प्रकार चन्द्रप्रभचरित और शान्तिनाथचरित रचे गये हैं उसी तरह मेरे लिए अन्तिम तीर्थंकरका चरित लिखिये। कविने प्रत्येक सन्धिके पुष्पिकावाक्यमे 'नेमिचन्द्रनामांकित' लिखा है। इतना ही नहीं, प्रत्येक सन्धिके प्रारम्भमे जो संस्कृत श्लोक दिया गया है उससे भी नेमिचन्द्रके गुणोपर प्रकाश पड़ता है। द्वितीय सन्धिके प्रारम्भमे

नंदत्वत्र पवित्रनिर्मलसच्चारित्रभूषाधरो।
धर्म्मध्यान-विधौ सदा-कृत-रतिर्विद्वज्जनानां प्रियः॥
प्राप्तान्तःकरणेप्सिताऽखिलजगद्वस्तु-व्रजो दुर्ज्जय-
स्तत्वार्थ-प्रविचारणोद्यतमना. श्रीनेमिचन्द्रश्चिरम्॥

स्पष्ट है कि नेमिचन्द्र धर्मध्यानमे निपुण, सम्यग्दृष्टि, धीर, बुद्धिमान, लक्ष्मीपति, न्यायवान, भवभोगोसे विरक्त और जनकल्याणकारक थे। इस प्रकार कविने रचनाप्रेरकका विस्तृत परिचय प्रस्तुत किया है। ग्रंथ १० सन्धियोमे विभक्त है

और इसमे अन्तिम तीर्थंकर महावीरका जीवनवृत्त गुम्फित किया है। प्रथम सन्धि या परिच्छेदमे नन्दिवर्धन राजाके वैराग्यका वर्णन किया है। द्वितीय सन्धिमे 'मयवइ' मृगपतिकी भवावलीका वर्णन किया गया है। तृतीय सन्धिमे बल-वासुकी उत्पत्तिका वर्णन किया गया है। चतुर्थ सन्धिमे सेनानिवेशका वर्णन है। इसी सन्धिमे कविने युद्धका भी चित्रण किया है। पचम सन्धिमे त्रिविष्ट-विजयका वर्णन है। षष्ठ सन्धिमे सिंह-समाधिका चित्रण है। सप्तम सन्धिमे हरिषेणराय मुनिका स्वर्ग-गमन वर्णित है। अष्टम सन्धिमे नन्दनमुनिका प्राणत कल्पमे गमन वर्णित है। नवम सन्धिमे वीरनाथके चार कल्याणकोका वर्णन है और दशम सन्धिमे तीर्थंकर महावीरका धर्मोपदेश, निर्वाणगमन, गुणस्थानारोहण एव गुणस्थानक्रमानुसार प्रकृतियोके क्षयका कथन आया है। इस प्रकार इस चरित-ग्रंथमे तीर्थंकर महावीरके पूर्वभव और वर्त्तमान जीवनका कथन किया है।

नगर, ग्राम, सरोवर, देश आदिका सफल चित्रण किया गया है। कविने श्वेतछत्र नगरीका चित्रण बहुत ही सुन्दररूपमे किया है। यहाँ उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं

जहि जल-खाइयहि तरग-पंति। सोहइ पवणाहय गयणपंति।
णव-णलिणि-समुब्भव-पत्तणील। ण जगम-महिहर माल लील॥
जहि गयणंगण-गय-गोपुराइ। रयणमय-कवाडहि सुन्दराइ।
पेखेवि नहि जंतु सुहा वि सग्गु। सिरु धुणइ मउडमडिय णहग्गु॥
जहि निवसहि वणियण गय-पमाय। परदार-विरय परिमुक्क-माय।
सद्दत्थ-वियक्खण दाण-सील। जिणधम्मासत्त विसुद्ध-सील॥
जहि मदिरभित्ति-विलबमाण। णीलमणिकरो हइ धावमाण।
माऊर इत्ति गिह्लण-कएण। कसणो ल्याल भक्खण-रएण॥
जहि फलिह-बद्ध-महियले मुहेसु। णारी-यणाइ पडि-बिंबिएसु।
अलि पडइ कमल-लाले सनेउ। अहवा महुवह ण हवइ विवेउ॥
जहि फलिह-भित्ति-पडिबिंबियाइ। णियरूवइ णयणहि भावियाइ।
ससवत्ति-सक गय-रय-खमाह। जुज्झंति तियउ णिय-पिययमाह॥१।३

अर्थात् श्वेतछत्र नगरीकी जल-परिखाओमे पवनाहत होकर तरग-पंक्ति ऐसी शोभित होती थी, मानो गगन-पंक्ति ही हो। नवनलिनी अपने पत्तो सहित महीधरके समान शोभित होती थी, आकाशको छूने वाले गोपुर रत्नमय मडित किवाड़ोसे युक्त शोभित थे। उन गोपुरोको देखनेपर स्वर्ग भी अच्छा नही लगता

था। अतएव ऐसा प्रतीत होता था, मानो मुकुटमंडित आकाश अपना सिर धुन रहा है। वहाँके व्यापारी प्रमादरहित होकर निवास करते थे। और वे पर-स्त्रीसे विरक्त और छल-कपटसे रहित थे। वे शब्दार्थमें विचक्षण, दानशील और जिनधर्ममें आसक्त थे। वहाँके मन्दिरोंपर नीलमणिकी झालरें लटक रही थी। इन झालरोंको मयूर कृष्ण सर्प समझकर भक्षण करनेके लिये दौड़ते थे। जहाँ स्फटिकमणिसे घटित फर्शके ऊपर स्त्रियोंके प्रतिबिम्ब पड़ते थे, जिससे भौंरे कमल समझकर उन प्रतिबिम्बोंके ऊपर उमड़ पड़ते थे। वहाँकी नारियाँ स्फटिक जटित दीवालोंमें अपने प्रतिबिम्बोंको देखकर सपत्नीकी आशंकासे ग्रसित हो झगड़ा करती थी। इस नगरीमें नन्दिवर्धन नामका राजा मनुष्य, देव, दानवादिको प्रसन्न करता हुआ निवास करता था।

इसी प्रकार कविने युद्ध आदिका भी सुन्दर चित्रण किया है रसयोजनाकी दृष्टिसे भी यह काव्य ग्राह्य है। इसमें शान्त, शृंगार, वीर और भयानक रसोंकी सम्यक् योजना हुई है।

तीर्थंकर महावीरका जन्म होनेपर कल्पवासी देवगण उनका जन्माभिषेक सम्पन्न करनेके लिये हर्षसे विभोर हो जाते हैं और वे नानाप्रकारसे क्रीड़ा करने लगते हैं। देवोंके इस उत्साहका वर्णन निम्न प्रकार सम्पन्न किया गया है

कप्पवासम्मि णेऊण णाणामरा। चल्लिया चारु घोलंत सव्वामरा ॥
भत्ति-पब्भार-भावेण पुलयंगणा। भूरिकोला-विणोएहिं सोक्खाणणा ॥
णच्चमाणा समाणा समाणा परे। गायमाणा अमाणा-अमाणा परे ॥
वायमाणा विमाणाय माणा परे। वाहणं वाहमाणा सईयं परे ॥
कोवि संकोडिऊणं नन्द कीलए। कोवि गच्छेइ हंसट्ठिओ लीलए ॥
देक्खिऊणं हरी कोवि आसंकए। वाहणं वावमाणं थिरो वंकए ॥
कोवि देवो कराफोडि दावंतओ। कोवि वोमंगणे भत्ति धावंतओ ॥
कोवि केणावि तं पण आवाहिओ। कोवि देवोवि देक्खेवि आवाहिओ ॥९।१०

यह रचना भाषा, भाव और शैली इन तीनों ही दृष्टियोंसे उच्चकोटिकी है। वस्तुवर्णनमें कविने महाकाव्य-रचयिताओंकी शैलीको अपनाया है।

कविकी तीसरी रचना 'चंदप्पहचरिउ' है। यह रचना अभी तक किसी भी ग्रंथागारमें उपलब्ध नहीं है। इसमें अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभका जीवनवृत्त अंकित है। 'पासणाहचरिउ' में इस रचनाका उल्लेख है। अतएव इसका रचनाकाल उक्त ग्रंथके रचनाकालसे कम-से-कम दो वर्ष पूर्व अवश्य है। इस प्रकार वि० संवत् ११८७ 'चंदप्पहचरिउ' का रचनाकाल सिद्ध होगा।

श्रीधर द्वितीय

श्रीधर द्वितीयको भी विबुध श्रीधर कहा गया है। इन्होंने अपभ्रंशमे 'भविसयत्तचरिउ' की रचना चन्द्रवाड़नगरमे स्थित माथुरवंशीय नारायणके पुत्र सुपट्ट साहू[1] की प्रेरणासे की है। यह काव्य नारायण साहूकी भार्या रूपिणीके निमित्त लिखा गया है।[2]

सुपट्ट साहू नारायणके पुत्र थे। उनके ज्येष्ठ भ्राताका नाम वासुदेव था। कविने ग्रंथके अन्तमे सुपट्ट साहू और रूपिणीकी प्रशसा करते हुए पूरा विवरण दिया है। साहूके पूर्वज अपने समयमे प्रसिद्ध थे। उसकी सीता नामक गृहिणी थी, जो विनय आदि निर्मल गुणोसे भूषित थी। उनके हालनामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उन दोनोके जगद्विख्यात देवचन्द नामका पुत्र हुआ। वह माथुरकुलका भूषण और गुणरत्नोकी खान था। जैनधर्ममे उसकी प्रगाढ श्रद्धा थी। लक्ष्मीके समान उसकी माढो नामकी धर्मपत्नी थी। उसके गर्भसे काञ्चनवर्ण साधारणनामके पुत्रने जन्म लिया। उसके दो पुत्र हुए। दूसरेका नाम नारायण था। इसी नारायणकी भार्या 'रूपिणी' थी, जिसने इस ग्रन्थको लिखवाया। नारायणके पाँच पुत्र हुए। सभी गुणवान और श्रद्धालु थे।

ग्रन्थके रचयिता श्रीधर द्वितीय मुनि थे। उनका व्यक्तित्व रत्नत्रयस्वरूप था। अपने प्रेरक सुपट्ट साहूकी अनन्य भक्ति, दान, पूजा, व्रत, आदि धार्मिक अनुष्ठानोकी कविने प्रशसा की है।

स्थितिकाल

कविने 'भविसयत्तचरिउ' के रचनाकालका निर्देश किया है

णरणाहविक्कमाइच्चकाले, पवहंतए सुहयारए विसाले।
बारहसय-वरिसहिं परिगएहिं फागुण-मासम्मि बलक्खपक्खे,
दसमिहि-दिणे तिमिरुक्कर विवक्खे।
रविवार समाणिउ एउ सत्थु, जिह मइं परियाणिउ सुप्पसत्थु।
भासिउ भविसयत्तहो चरित्तु, पंचमि उववासहो फलु पवित्तु।

१ सिरिचन्दवारणयरट्ठिएण, जिणधम्मकरणउक्कंठिएण।
माहुरकुलगयणतमोहरेण, विबुह-यण-सुखयामणघणहरेण।
मइवरसुपट्टणामालएण विणएण भणिउ जोडेवि पाणि। भविष्यदत्तचरित, १,२।

२. 'इय सिरिभविसयत्तचरिए विबुहसिरिसुकइसिरिहर-विरइए साहुणरायण-भज्जा-रुप्पिणिणामाकिए'। वही।

अर्थात् वि० सं० १२०० फाल्गुण शुक्ला दशमी, रविवारके दिन यह ग्रंथ पूर्ण हुआ। इस रचनाकालके निर्देशसे यह स्पष्ट है कि इन विबुध श्रीधरका समय वि० की १३वी शती है। आमेर-शास्त्रभण्डारकी प्रतिमे उक्त रचनाकालका उल्लेख हुआ है। पुष्पिकावाक्यमे कविने स्वनामके साथ अपने प्रेरकका नाम भी अकित किया है

"इय सिरि-भविसयत्त-चरिए विवुह-सिरिसुकडसिरिहर-विरइए साहु-णारायण-भज्जा-रुप्पिणि-णामाकिए भविसयत्त-उप्पत्ति-वण्णणो णाम पढमो परिच्छेओ समत्तो॥ सन्धि १"

कवि विबुध श्रीधरने 'भविसयत्तचरिउ'की रचना कर कथा-साहित्यके विकासको एक नई मोड़ दी है। इस ग्रंथका प्रमाण १५३० श्लोक है।

कथावस्तु तीर्थंकरोकी वन्दनाके पश्चात् कविने कथाका आरम्भ किया है। कुरुजांगल देशमे हस्तिनापुर नामका नगर है। इस नगरमे भूपालनामका राजा राज्य करता था। राजाने नानागुण-अलकृत धनपतिको नगरसेठके पट्टपर आसीन किया। धनपतिका विवाह धनेश्वरकी रूपवती कन्या कमलश्रीके साथ सम्पन्न हुआ। कई वर्ष व्यतीत हो जानेपर भी इस दम्पतिको सन्तानलाभ न हुआ।

एक दिन उस नगरमे सुगुप्ति नामके मुनिराज पधारे। कमलश्रीने पादवदन कर प्रश्न किया स्वामिन्! मुझ मन्दभागिनीके पुत्र उत्पन्न होगा या नही? मुनिराजने उत्तरमे पुत्रलाभ होनेका आश्वासन दिया।

कुछ समय पश्चात् धनपतिको सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। बालकका वार्द्धापन-सस्कार सम्पन्न किया गया और उसका नाम भविष्यदत्त रखा गया। पाँच वर्षकी अवस्थामे भविष्यदत्तका विद्यारभ-सस्कार सम्पन्न हुआ और आठ वर्षकी अवस्थामे उसे उपाध्यायके यहाँ विभिन्न शास्त्रोके अध्ययनार्थ भेज दिया।

द्वितीय परिच्छेदमे बताया है कि पूर्व जन्ममे की गई मुनिनिन्दाके फलस्वरूप धनपतिने कमलश्रीका त्याग कर दिया। कमलश्री रोती हुई अपने पिताके घर गई। धनपतिका भेजा हुआ गुणवान् पुरुष धनेश्वरके यहाँ आया और कहने लगा कि कमलश्रीमे कोई दोष नही है, पर पूर्वकर्मोदयके विपाकसे धनपति इससे घृणा करता है। अतएव आप इसे अपने यहाँ स्थान दीजिए।

कमलश्रीके चले जानेके पश्चात् धनपतिने अपना द्वितीय विवाह धनदत्त सेठकी पुत्री सरूपाके साथ कर लिया। इससे बन्धुदत्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो साक्षात् कामदेवके समान था। युवा होनेपर बन्धुदत्त अपने ५०० साथियो-

के साथ व्यापारके लिए स्वर्णद्वीप जानेकी तैयारी करने लगा। जब भविष्यदत्त-को स्वर्णद्वीप जानेवाले व्यापारियोका समाचार मिला, तो वह अपनी माताको आज्ञा लेकर अपने सौतेले भाई बन्धुदत्तसे मिला और साथ चलनेकी इच्छा व्यक्त की। सरूपाने बन्धुदत्तको सिखलाया कि अवसर हाथ आते ही तुम भविष्य-दत्तको मार डालना।

शुभ मुहूर्त्तमे जलपोतो द्वारा प्रस्थान किया गया और वे मदनद्वीप पहुँचे। वहाँसे आवश्यक सामग्री लेकर और भविष्यदत्तको वही छोडकर बन्धुदत्तने अपने जलपोतको आगे बढा दिया। भविष्यदत्त उस जनशून्य वनमे विलाप करता हुआ भ्रमण करने लगा।

तृतीय परिच्छेदमे भविष्यदत्त जिनदेवका स्मरण करता हुआ प्रभातकाल-मे उठता है और चलकर तिलकपुर पहुँचता है। यहाँ भविष्यदत्तका मित्र विद्युत्प्रभ यशोधर मुनिराजसे अपनी पूर्वभवावलि जान कर अपने मित्रसे मिलने-के हेतु चल पडता है। विद्युत्प्रभके सकेतसे भविष्यदत्तका विवाह वहाँ रहने वाली सुन्दरी भविष्यानुरूपाके साथ हो जाता है।

इधर कमलश्री अपने पुत्रके वियोगमे क्षीण होने लगी। उसने सुव्रता नामक आर्यिकासे श्रुतपचमीव्रत ग्रहण किया और विधिवत् उसका पालन करने लगी।

चतुर्थ परिच्छेदमे भविष्यानुरूपाका मधुर आख्यान आता है। भविष्यानुरूपा और भविष्यदत्त विपुल धन-रत्नोके साथ समुद्रके तटपर पहुँचते हैं। सयोगसे इसी समय बधुदत्त अपने जलपोतको लौटाता हुआ उधर आता है। वह उत्सुकता-वश अपने जलपोतको तटपर खडा करता है। भविष्यदत्त अपने समस्त समान सहित भविष्यानुरूपाको जलपोत पर बैठा देता है। इतनेमे भविष्यानुरूपाको स्मरण आता है कि उसकी नागमुद्रा तिलकपुरकी सेजपर छूट गई है। वह अपने पतिदेवको मुद्रिका लानेके लिए भेज देती है और उधर वधुदत्त अपने जहाजको खोल देता है। बन्धुदत्त भविष्यानुरूपाको प्रलोभन देता है और अपने अधीन करना चाहता है। भविष्यानुरूपा समुद्रमे कूद कर प्राण देना चाहती है, पर वनदेवी स्वप्नमे आकर उसे धैर्य देती है और कहती है कि तुम्हारा पति एक महीनेमे तुमसे मिलेगा, तुम चिन्ता मत करो।

वन्धुदत्तका जलपोत हस्तिनापुर लौट आता है और वह घोषित कर देता है कि भविष्यानुरूपा उसकी वाग्दत्ता पत्नी है और वह शीघ्र ही उसके साथ विवाह करेगा।

इधर भविष्यदत्त तिलकपुरके सुनसान वनमे उदास मन होकर निवास करता

है। वह चन्द्रप्रभके जिनालयमे जाकर विधिवत् भक्तिभाव करता है। इतनेमे वहाँ एक विद्याधर उपस्थित होता है और उससे कहता है कि मैं तुम्हे विमानमे बैठाकर हस्तिनापुर पहुँचानेके लिए आया हूँ। भविष्यदत्त नानाप्रकारके रत्नोको लेकर हस्तिनापुर आता है और मांके चरणवन्दन कर आशीर्वाद लेता है। दूसरे दिन प्रात.काल भविष्यदत्त विविध प्रकारके मणि-माणिक्योको लेकर राजाके समक्ष उपस्थित हुआ। भविष्यदत्तके मामाने राजासे कहा कि हमारे भांजेके साथ बधुदत्तका झगडा है। राजाने धनपति सेठको बुलाया; पर सेठने धरमे विवाह होनेसे इस प्रसगको टालना चाहा। तब राजाने उसे बलात् बुलाया। कमलश्रीने जाकर राजाके समक्ष भविष्यानुरूपाकी नागमुद्रा तथा अन्य वस्त्राभूषण उपस्थित किये। राजा बन्धुदत्तकी करतूतको समझ गया और वह बन्धुदत्तको मारनेके लिये तैयार हुआ। पर भविष्यदत्तने उसके प्राणोंकी रक्षा की। राजाने भविष्यदत्तको आधा सिंहासन दिया और अपनी पुत्रीको देनेका वचन दिया। धनपतिने कमलश्रीसे अपने व्यवहारके लिए क्षमा याचना की। भविष्यदत्तका भविष्यानुरूपाके साथ पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ। राजाने भी आधा राज्य देकर अपनी पुत्री सुमित्राका भविष्यदत्तके साथ विवाह कर दिया।

पंचम परिच्छेद भविष्यदत्तके राज्य करनेसे आरंभ होता है। भविष्यानुरूपाको दोहला उत्पन्न हुआ और उसने तिलकद्वीप जानेकी इच्छा प्रकट की। इतनेमे मनोवेग नामका एक विद्याधर भविष्यदत्तके पास आया और कहा कि मेरी माता तुम्हारे घरमे प्रियाके गर्भमे आई है। ऐसा मुझसे मुनिराजने कहा है। अतएव आप भविष्यानुरूपाके साथ मेरे विमानमे बैठकर तिलकद्वीपकी यात्रा कीजिये। भविष्यदत्तने भविष्यानुरूपाको तिलकद्वीपका दर्शन कराया। भविष्यानुरूपाके गर्भसे सोमप्रभ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। कुछ वर्षोंके पश्चात् कचनप्रभ नामक द्वितीय पुत्र उत्पन्न हुआ। तदनन्तर तारा और सुतारा नामकी पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। सुमित्राके गर्भसे धरणीपति नामक पुत्र और धारिणी नामकी कन्या हुई। इस प्रकार भविष्यदत्त परिवार सहित राज्य करता रहा। उसने मणिभद्रकी सहायतासे सिंहलद्वीप तक अपनी कीर्त्ति व्याप्त कर ली और अनेक राजाओको अपने अधीन किया। एक दिन वह सपरिवार चारणऋद्धिधारी मुनिके दर्शनके लिए गया। उसने मुनिराजसे श्रावकके व्रत ग्रहण किये।

षष्ठ परिच्छेदमे भविष्यदत्तके निर्वाण-लाभका वर्णन है। कमलश्री, सुव्रताके साथ आर्यिका हो जाती है और धनपति ऐलकव्रत ग्रहण कर लेते है। वह कठोर तप कर दसवें स्वर्गमें इन्द्र होते हैं और कमलश्री स्त्रीलिंगका छेद कर रत्नचूल नामका देव होती है। भविष्यानुरूपा भी स्वर्गमे जाकर देव हुई और वहाँसे पृथ्वीतल पर आकर पुत्र हुई।

विवुध श्रीधरने कथाके मर्मस्पर्शी स्थलोंको पर्याप्त रसमय बनानेका प्रयास किया है। कमलश्री रात-दिन रोती है। उसकी आंखसे अश्रुधारा प्रवाहित होती है। भूखी, प्यासी और क्षीण शरीर होनेपर भी अपने मैले शरीरपर ध्यान नही देती। कविने लिखा है

ता भणइं किसोयरि कमलसिरि ण करमि कमल मुहुल्लउ।
पर सुमरंति हे सुउ होइ महु फुट्ट ण मण हियउल्लउ। (३,१६)
रोवइ घुवइ णयण चुव असुव जलधारहिं वत्तओ।
भुक्खइ खीण देह तण्हाइय ण मुणइ मलिण गत्तओ। (४,५)

कविने प्रकृति-चित्रण भी वहुत ही मनोरम शैलीमें उपस्थित किया है। भविष्यदत्त भयानक वनमें मदजलसे भरे हुए हाथियोको देखता है। इस वनमें कही पर शाखामृग निर्भय होकर डालियोसे चिपके हुए थे, कही पर छोटी और कहीपर आकाशको छूने वाली वडी वृक्ष-शाखाओंपर लोटते हुए हरे फलोको तोड़ते हुए वानर दिखलाई दे रहे थे। कही पर पुष्ट शरीर वाले सूअर, कही पर विकराल कालके समान वन्य-पशु दिखलाई पड़ रहे थे। उसीके पासमे झरना प्रवाहित हो रहा, था जो पहाड़की गुफाओको अपने कल-कल शब्दसे भर रहा था।

तें वाहुडडेण कमलसिरिपुत्तेण
दिट्ठाइं तिरियाइ वहुदुखभरियाइ
रायवरहो जतासु मयजलविलित्तासु
कित्थुवि भयाहीसु अणुलग्गु णिरभीसु
कित्थुवि महीयाह गयणयलविगयाह
सहासु लोडतु हरिफलइ तोडतु
केत्थुवि वराहाह वलवतरेहाहं
महवग्घु आलग्गु रोसेण परिभग्गु
केत्थुवि विरालाइं दिट्ठइ करालाइ
केत्थुवि सियालाइ जुज्झति थूलाइ
तहे पासे णिज्झरइ सरतइ गिरिकन्दर-विवराइ भरतइ।

इस ग्रन्थके सवाद भी वडे रोचक हैं। प्रवन्ध-रचनामे कविने स्वाभाविकताके साथ काव्य-रूढियोका पालन किया है। यह ग्रन्थ कडवक-पद्धतिमे पद्धडिया-छन्दमे लिखा गया है।

श्रीधर तृतीय

अवन्तीके मुनि सुकुमालका जीवनवृत्त अकित कर 'सुकुमालचरिउ'की

रचना इन्होने की है। यह ग्रन्थ पद्धडियाछन्दमे लिखा गया है। कथा छः सन्धियोमे समाप्त हुई है। और ग्रन्थका प्रमाण १२०० श्लोक है।

इस ग्रन्थकी रचना कविने वलड (अहमदावाद, गुजरात) नगरमे राजा गोविन्दचन्द्रके सययमे की है। कविने यह ग्रन्थ साहू पीथाके पुत्र पुरवाड-वंशोत्पन्न कुमारको प्रेरणासे लिखा है। सन्धि-पुष्पिकाओमे आया है
"इय सिरिसुकुमालसामि-मणोहरचरिउ, सुंदरयर-गुणरयण-नियर-भरिए विवुहसिरिसुकइसिरिहर-विरइए, साहुपीथे-पुत्त-कुमारनामाकिए " इत्यादि

ग्रन्थकी आद्यन्त प्रशस्तिमे साहू पीथाका विस्तृत परिचय दिया गया है। वताया है कि साहू पीथाके पिताका नाम साहू रजग्ग था और माताका नाम गल्हा देवी था। इनके सात भाई थे। महेन्द्र, मनहर, जाल्हण, सलक्खण, सम्पुण्ण, समुद्रपाल और नेयपाल। पीथाको धर्मपत्नीका नाम सुलक्षणा या। इसीसे कुमारनामक पुत्रका जन्म हुआ। इस कुमारको प्रेरणासे ही कविने सुकुमालचरिउकी रचना की है।

यह चरित-काव्य वि० स० १२०८ मार्गशीर्ष कृष्णा तृतीया सोमवारके दिन लिखा गया है। प्रशस्तिमे बताया है

वारह-सयइ गयइ कय हरिसइ, अट्ठोत्तरइ महीयलि वरिसइ।
कसण-पक्खि आगहणे जायए, तिज्ज-दिवसि ससि-वासरि मायइ।

सुकुमालचरिउमे कुल २२४ कडवक है। सुकुमालके पूर्वभवके साय वर्तमान जीवनका भी चित्रण किया गया हैं। पूर्वजन्ममे वह कौशाम्वीमे राज-मत्रीका पुत्र था। जिनधर्ममे अनुरक्ति होनेके कारण वह ससार विरक्त हो श्रमणधर्ममे दीक्षित हो गया। तपस्याके प्रभावसे अगले जन्ममे उज्जयिनीमे वह सुकुमाल नामका पुत्र हुआ। कवि नख-शिखवर्णनमे भी प्रवीण है। यहाँ परम्परागत उपमानो द्वारा नारी-चित्रणकी कुछ पक्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं

"तहो णरवइहे घरिणि मयणावलि, पहय-कामियण-मण-गाहियावलि।
दत-पति-णिजिय-मुत्तावलि, ण मयहो करी वाणावलि।
सयलतेउरमज्झे पहाणी, उछ सरासण मणि सम्माणी।
जहि वयणकमलहो नउ पुज्जइ, चदु वि अज्जु विवट्टइ खिज्जइ।
ककेल्ली-पल्लव-सम पाणिहिं, कलकल हठि वीणणिह वाणिहिं।
णियसोहग्गपरज्जिय गोरिहि, विज्जाहर-सुर-मण-घणचोरिहे।"

कुछ विद्वान् इन तीनो श्रीधरोको एक मानते है। पर मेरे विचारसे ये तीनो भिन्न हैं।

देवसेन

देवसेन अपभ्रंश-भाषाके प्रसिद्ध कवि हैं। इन्होंने वाल्मीकि, व्यास, श्रीहर्ष, कालिदास, वाण, मयूर, हलिय, गोविन्द, चतुर्मुख, स्वयम्भू, पुष्पदन्त, भूपाल नामक कवियोंका उल्लेख किया है। कवि देवसेन मुनि हैं। ये देवसेन गणी या गणधर कहलाते थे। ये निवडिदेवके प्रशिष्य और विमलसेन गणधरके शिष्य थे। विमलसेन शील, रत्नत्रय, उत्तमक्षमादि दशधर्म, सयम आदिसे युक्त थे। ये महान तपस्वी, पचाचारके धारक, पच समिति और तीन गुप्तियोसे युक्त मुनिगणोके द्वारा वन्दनीय और लोकप्रसिद्ध थे। दुर्द्धर पचमहाव्रतोको धारण करनेके कारण मलधारीदेवके नामसे प्रसिद्ध थे। यही विमलसेन 'सुलोयणाचरिउ'के रचयिता देवसेनके गुरु थे।

देवसेनका व्यक्तित्व आत्माराधक, तपस्वी और जितेन्द्रिय साधकका व्यक्तित्व है। उन्होंने पूर्वाचार्योसे आये हुए सुलोचनाके चरितको 'मम्मल' राजाकी नगरीमे निवास करते हुए लिखा है।

स्थितिकाल

कविने यह कृति राक्षस-सवत्सरमे श्रावण शुक्ला चतुर्दशी बुधवारके दिन पूर्ण की है। साठ संवत्सरोमे राक्षस-सवत्सर उनचासवाँ है। ज्योतिषकी गणनाके अनुसार इस तिथि और इस दिन दो वार राक्षस-सवत्सर आता है। प्रथम बार २९ जुलाई सन् १०७५ ई० (वि० स० ११३२ श्रावण-शुक्ला चतुर्दशी) और दूसरी बार १६ जुलाई सन् १३१५ ई० (वि० स० १३७२ श्रावण शुक्ला चतुर्दशी) मे राक्षस-सवत्सर आता है। इन दोनो समयोमे २४० वर्षोका अन्तर है। शेष सवतोमे श्रावण शुक्ला चतुर्दशी बुधवारका दिन नही पडता। कविने अपने पूर्ववर्त्ती जिन कवियोका उल्लेख किया है उनमे सबसे उत्तरकालीन कवि पुष्पदन्त हैं। अत: देवसेन भी पुष्पदन्तके बाद और वि० स० १३७२ के पूर्व उत्पन्न हुए माने जा सकते हैं।

'कुवलयमाला'के कर्त्ता 'उद्योतनसूरि'ने सुलोचनाकथाका निर्देश किया है। जिनसेन, धवल और पुष्पदन्त कवियोने भी सुलोचनाकथा लिखी है। कवि देवसेनने अपना यह सुलोचनाचरित कुन्दकुन्दके सुलोचनाचरितके आधार पर लिखा है। कुन्दकुन्दने गाथाबद्ध शैलीमे यह चरित लिखा था और देवसेनने इसे पद्धडियाछन्दमे अनूदित किया है। लिखा है

> ज गाहावधें आसि उत्तु, सिरिकुन्दकुदगणिणा णिरुत्तु।
> त एत्थहिं पद्धडियहिं करेमि, परि किंपि न गूढउ अत्थु देमि।
> तेण वि कवि णउ ससा लहति, जे अत्थु देखि वसणहिं खिवत्ति।

समय-निर्णयके लिये जैन-साहित्यमे हुए समस्त देवसेनोंपर विचार कर लेना आवश्यक है। जैन-साहित्यमे कई देवसेन हुए हैं। एक देवसेन वह हैं, जिनका उल्लेख श्रवणबेलगोलके चन्द्रगिरिपर्वतपर अंकित शक संवत् ६२२ के शिलालेखमे आता है। दूसरे देवसेन धवलाटीकाके कर्त्ता आचार्य वीरसेनके शिष्य थे, जिनका उल्लेख आचार्य जिनसेनने जयधवलाटीकाकी प्रशस्तिके ४४वें पद्यमे किया है। तीसरे देवसेन 'दर्शनसार'के रचयिता हैं। चतुर्थ देवसेन वह हैं, जिनका उल्लेख सुभाषितरत्नसंदोह और धर्मपरीक्षादिके कर्त्ता आचार्य-अमितगतिने अपनी गुरुपरम्परामे किया है। दूबकुण्डके वि० सं० ११४५ के अभिलेखमे उल्लिखित देवसेन पंचम हैं। ये लाडवागडसंघके आचार्य थे। छठे देवसेनका उल्लेख माथुरसंघके भट्टारक गुणकीर्तिके शिष्य यशःकीर्त्तिने वि० सं० १४९७ मे अपने पाण्डवपुराणमे किया है।

इन सभी देवसेनोंमे ऐसा एक भी देवसेन नही दिखलाई पड़ता है, जिसे विमलसेनका शिष्य माना जाय। भावसंग्रहके कर्त्ता देवसेनने अपनेको विमल-सेनका शिष्य लिखा है। अतः भावसंग्रह और सुलोचनाचरितके कर्त्ता दोनों एक ही व्यक्ति जान पड़ते हैं। इस प्रकार कविका समय वि० की १२वी शती मालूम पड़ता है।

प्रथम बार राक्षस संवत्सर श्रावण शुक्ला चतुर्दशी और बुधवारका योग २९ जुलाई, सन् १०७५ मे घटित होता है। अतएव सुलोचनाचरितके रचयिता कवि देवसेनका समय वि० सं० ११३२ ठीक प्रतीत होता है।

रचना

कविने 'सुलोयणाचरिउ'की रचना २८ सन्धियोमे की है। काव्यकी दृष्टिसे यह रचना उपादेय है। कथामे बताया गया है कि भरत चक्रवर्तीके प्रधान सेनापति जयकुमारकी पत्नीका नाम सुलोचना था। वह राजा अकम्पन और सुप्रभाकी पुत्री थी। सुलोचना अनुपम सुन्दरी थी। इसके स्वयंवरमे अनेक देशोंके बड़े-बड़े राजा सम्मिलित हुए। सुलोचनाको देखकर वे मुग्ध हो गये। उनका हृदय विक्षुब्ध हो उठा और उसकी प्राप्तिकी इच्छा करने लगे। स्वयं-वरमे सुलोचनाने जयको चुना। परिणामस्वरूप चक्रवर्ती भरतका पुत्र अर्क-कीर्त्ति क्रुद्ध हो उठा। और उसने इसमे अपना अपमान समझा। अपने अप-मानका बदला लेनेके लिये अर्ककीर्त्ति और जयमे युद्ध हुआ और अन्तमे जय विजयी हुआ।

कवि देवसेन निरभिमानी है। वह हृदय खोलकर यह स्वीकार करता है

कि चतुर्मुख, स्वयंभू और पुष्पदन्तने जिस सरस्वतीकी रक्षा की थी उसी सरस्वतीरूपी गौके दुग्धका पान कर कविने अपनी इस कृतिको लिखा है

चउमुह-सयभु-पमुहेहिं रक्खिय दुहिय जा पुप्फयतेण ।
सरसइ-सुरहीए पय पिय सिरिदेवसेणण ॥१०।१॥

मगल-स्तवनके अनन्तर कविने गुरु विमलसेनका स्तवन किया है। पूर्वकालीन कवियोका उल्लेख करनेके पश्चात् सज्जन-दुर्जनका स्मरण किया गया है। काव्यमे मगध, राजगृह आदिके काव्यमय वर्णन उपलब्ध होते हैं। श्रृङ्गार, वीर और भयानक रसोका सागोपाग चित्रण हुआ है।

युद्ध-वर्णन तो कविका अत्यन्त सजीव है। युद्धकी अनेक क्रियाओको अभिव्यक्त करनेके लिए तदनुकूल शब्दोकी योजना की गई है। झर-झर रुधिरका वहना, चर-चर चर्मका फटना, कड-कड हड्डियोका टूटना या मुडना आदि वाक्य युद्धके दृश्यका सजीव चित्र उपस्थित करते हैं

असि णिहसण उट्ठिय सिहि जालइ, जोह मुक्क जालिय सर जालइं ।
पहरि-पहरि आमिल्लिय सद्दइ, अरि वर घड थक्कय सम्मद्दइ ।
झरझरत पवहिय वहुरत्तइ ण कुसम रय राएँ रत्तइं ।
चरचरत फाडिय चल चम्मइ, कसमसत चरिय तणु वम्मइ ।
कडयडत मोडिय घण हड्डइ, मस खण्ड पोसिय भेरुडइ ।
दडदडत धाविय वहुरुडइं, हुकरत धरणि वडिय मुडइ ।६।११

कविने जय और अर्ककीर्त्तिके युद्धवर्णन प्रसगमे भुजगप्रयातछन्द द्वारा योद्धाओकी गतिविधिका बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है

भडो को वि खग्गेण खग्ग खलतो, रणे सम्मुहे सम्मुहो आहणतो ।
भडो को वि वाणेण वाणो दलतो, समद्धाइउ दुद्धरो ण कयतो ।
भडो को वि कोतेण कोत सरतो, करे गीढ चक्को अरी सपहुतो ।
भडो को वि खडेहिं खडी कयगो, भडत णमुक्को सगालो अभगो ।
भडो को वि सगामभूमी धुलतो, विवण्णोहु गिद्धावली णीअ अतो ।
भडो को वि घाएण णिव्वट्ट सीसो, असी वावरेई अरी साण भीसो ।
भडो को वि रत्तप्पवाहे तरतो, फुरतप्पएण तडि सिग्घपत्तो ।
भडो को वि हत्थी विसाणेहिं भिण्णो, भडो को वि कठद्धछिण्णो णिसण्णो । ६।१२

कविने तीर्थंकर आदिनाथके साथ देखादेखी दीक्षा ग्रहण करनेवाले राजाओके भ्रष्ट होनेपर उनके चरित्रका बहुत ही सुन्दर अकन किया है। जो तपस्या

कर्मोंको नष्ट कर मोक्ष देनेवाली है उस तपस्याका पाखण्डी लोग दुरुपयोग करते हैं और वे मनमाने ढंगसे पन्थ और सम्प्रदायोंका प्रवर्तन करते हैं।

कविने अपनी भाषा-शैलीको सशक्त बनानेके लिए अनुरणात्मक शब्दोंका प्रयोग किया है। इन बन्धोंके पढ़ते ही शब्दोंका रूपचित्र प्रस्तुत हो जाता है।

अठारहवीं सन्धिमें 'दोहयम' छन्दका प्रयोग किया है। तुकप्रेमके कारण दोहेके प्रथम और तृतीय चरणमें भी तुक मिलाई गयी है। यहाँ अनुरणात्मक बन्धोंके कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

उम उमिय उमरु बसयागहिर सद्दाइ, दो दो तिकय दिविलु उट्टियणिणद्दाइं।
भं भंत उप्प सर भेरी घहीराइ, धण धायरुण रुणिय जय घंट साराइ।
कडरडिय करडेहिं भुवणेक्कपूराइं, घुम घुमिय मद्दलहिं वज्जियइ तूराइ।६।१०

यह 'सुलोयणाचरिउ' अपभ्रंशका शास्त्रीय महाकाव्य है। इसमें माधुर्य, प्रसाद और ओज इन तीनों गुणोंके साथ सभी प्रमुख अलङ्कारोंकी योजना की गयी है। छन्दोंमें, खंडय, जमेंट्टिया, दुवई, उवखडय, आरणाल, गलिलय, दोहय, वस्तु, मंजरी आदि छन्द सन्धियोंके प्रारम्भमें प्रयुक्त हैं। इनके अतिरिक्त पद्धडिया, पादाकुलक, समानिका, मदनावतार, भुजंगप्रयात, स्रग्विणी, कामिनी, विज्जुमाला, सोमराजी, सरासणी, णिसेणी, वसंतचच्चर, द्रुतमध्या, मन्दरावली, मदनशेखर आदि छन्द प्रयुक्त हुए हैं।

भावोंकी अभिव्यंजना भी सशक्त रूपमें की गयी है। युद्धके समयकी सुलोचनाकी विचारधाराका कवि वर्णन करता हुआ कहता है

इम जंपिऊण पउत्त जयेण, तुमं एह कण्णा मनोहारवण्णा।
सुरक्खेह णूणं पुरेणह ऊण, तउ जोह लक्खा अणेय असखा॥

× × × ×

पिय तत्थ रणोवरे चित्तकम्मे, अरमीय चिंता सुउ हुरुळवत्ता।
णिय सोययंती इण चिंतवंती, अहं पावयम्मा अलज्जा अधम्मा॥

इस प्रकार चिन्ता, रोष, सहानुभूति, ममता, राग, प्रेम, दया आदिकी सहज अभिव्यंजना की गयी है।

अमरकीर्त्ति गणि

अपभ्रंश-काव्यके रचयिताओंमें अमरकीर्त्ति गणिका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। कविकी मुनि, गणि और सूरि उपाधियाँ थी, जिनसे ज्ञात होता है कि वे गृह-

स्थाश्रम त्यागकर दीक्षित हो गये थे। उनकी गुरुपरम्परासे अवगत होता है कि वे माथुरसंघी चन्द्रकीर्त्तिके मुनीन्द्र के शिष्य थे। गुरुपरम्परा निम्न प्रकार है

अमितगति
|
शान्तिसेन
|
अमरसेन
|
श्रीषेण
|
चन्द्रकीर्त्ति
|
अमरकीर्त्ति

इस गुरु-परम्परासे ज्ञात होता है कि महामुनि आचार्य अमितगति इनके पूर्व पुरुष थे, जो अनेक शास्त्रोके रचयिता, विद्वान् और कवि थे। अमरकीर्त्तिने इन्हे 'मह मुनि', 'मुनिचूडामणि', 'शमशीलधन' और 'कीर्त्तिसमर्थ, आदि विशेषणोंसे विभूषित किया है। अमितगति अपने गुणो द्वारा नृपतिके मनको आनन्दित करनेवाले थे। ये अमितगति प्रसिद्ध आचार्य अमितगति ही हैं, जिनके द्वारा धर्मपरीक्षा, सुभाषितरत्नसन्दोह और भावनाद्वात्रिंशिका जैसे ग्रथ लिखे गये हैं।

अमितगतिने अपने सुभाषितरत्नसन्दोहमे अपनेको 'शम-दम-यम-मूर्त्ति', 'चन्द्रशुभ्रोरुकीर्त्ति' कहा है तथा धर्मपरीक्षामे 'प्रथितविशदकीर्त्ति' विशेषण लगाया है।

अमितगतिके समयमे उज्जयिनीका राजा मुज वडा गुणग्राही और साहित्य-प्रेमी था। वह अमितगतिके काव्योको सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हे मान्यता प्रदान की। यद्यपि अमितगति दिगम्बर मुनि थे, उन्हे राजा-महाराजाओ-की कृपाकी आवश्यकता नही थी, पर अमितगतिकी काव्य-प्रतिभाके वैशिष्ट्यके कारण मुज अमितगतिका सम्मान करता था। इन्ही अमितगतिकी पाँचवी पीढीमे लगभग १५०–१७५ वर्षोके पश्चात् अमरकीर्त्ति हुए। अमरकीर्त्तिने शान्तिसेन गणिकी प्रशसामे बताया है कि नरेश भी उनके चरणकमलोमे प्रणमन करते थे। श्रीषेणसूरि वादिरूपी वनके लिए अग्नि थे। और इसी तरह चन्द्रकीर्त्ति वादिरूपी हस्तियोके लिए सिंह थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि अमरकीर्त्तिकी परम्परामे वड़े-बडे विद्वान् मुनि हुए हैं।

अमरकीर्त्तिका व्यक्तित्व दिगम्बर-मुनिका व्यक्तित्व है। वे संयमी, जितेन्द्रिय, शीलशिरोमणि, यशस्वी और राजमान्य थे। उनके त्याग और वैदुष्यके समक्ष बड़े-बडे राजागण नतमस्तक होते थे। वस्तुत अमरकीर्त्ति भी अपनी गुरु-परम्पराके अनुसार प्रसिद्ध कवि थे।

अमरकीर्त्तिने अपनी गुरु-परम्परामे हुए चन्द्रकीर्त्ति मुनिको अनुज, सहोदर और शिष्य कहा है। इससे यह ध्वनित होता है कि चन्द्रकीर्त्ति इनके सगे भाई थे।

स्थितिकाल

कविने 'षट्कर्मोपदेश' ग्रथकी प्रशस्तिमे इस ग्रथका रचनाकाल वि० स० १२४७ भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी गुरुवार वताया है

बारह-सयह ससत्त-चयालिहि विक्कम-सवच्छरहु विसालहिं।
गयहिमि भद्दवयहु पक्खतरि गुरुवारम्मि चउद्दिसि-वासरि।
इक्कें मासें इहु सम्मत्तिउ सह लिहियउ आलसु अवहत्थिउ। १४।१८

कविके समयमे गोध्रामे चालुक्यवशीय नृप वदिग्गदेवके पुत्र कृष्णनरेन्द्रका राज्य था। इतिहाससे सिद्ध है कि इस समय गुजरातमे सोलकीवशका राज्य था जिसकी राजधानी अनहिलवाड़ा थी। पर इस वंशके वदिग्गदेव और उनके पुत्र कृष्णका कोई उल्लेख नही मिलता। भीम द्वितीयने अनहिलवाड़ाके सिहासन पर वि० स० १२३६ से १२९९ तक राज्य किया। उनसे पूर्व वहाँ कुमारपालने स० १२०० से १२३१, अजयपालने १२३१ से १२३४ और मूलराज द्वितीयने १२३४ से १२३६ तक राज्य किया था।[1]

भीम द्वितीयके पश्चात् वहाँ सोलंकीवशकी एक शाखा वाघेरवशकी प्रतिष्ठित हुई, जिसके प्रथम नरेश विशालदेवने वि० स० १३०० से १३१८ तक राज्य किया। अनहिलवाडामे वि० स० १२२७ से ही इस वशका वल वढना आरभ हुआ था। इस वर्षमे कुमारपालकी माताकी वहिनके पुत्र अर्णराजने अनहिलवाड़ाके निकट वाघेला ग्रामका अधिकार प्राप्त किया था। ज्ञात होता है कि चालुक्यवशकी एक शाखा महीकाठा प्रदेशमे प्रतिष्ठित थी और गोदहरा या गोध्रा नगरमे अपनी राजधानी स्थापित की थी। कविने वहाँके कृष्ण नरेन्द्रका पर्याप्त वर्णन किया है। वे नीतिज्ञ, वाहरी और भीतरी शत्रुओके विनाशक और

१ डॉ० प्रो० हीरालालजी 'अमरकीर्त्ति गणि और उनका षट्कर्मोपदेश, जैनसिद्धान्त भास्कर, भाग २, किरण ३, पृ० ८३।

षड्दर्शनके सम्मानकर्त्ता थे। क्षात्रधर्मके साथ धर्म, परोपकार और दानमें उनकी प्रवृत्ति थी। उनके राज्यमे दुःख दुर्भिक्ष और रोग कोई जानता ही न था। इस प्रकार ऐतिहासिक निर्देशोसे भी कविका समय षट्कर्मोपदेशमे उल्लिखित समयके साथ मिल जाता है।

गुरुपरम्पराके अनुसार भी यह समय घटित हो जाता है। अमितगति आचार्यका समय वि० सं० १०५० से १०७३ तक है। इनकी पाँचवी पीढीमे अमरकीर्त्ति हुए हैं। यदि प्रत्येक पीढ़ीका समय ३० वर्ष भी माना जाय, तो अमरकीर्तिका समय वि० स० १२२३ के लगभग जन्मकाल आता है। षट्कर्मोपदेशकी रचनाके समय कविकी उम्र २५-३० वर्ष भी मान ली जाय, तो षट्कर्मोपदेशके रचनाकालके साथ गुरुपरम्पराका समय सिद्ध हो जाता है। अतएव कवि अमरकीर्त्तिका समय वि० को १३वी शती सुनिश्चित है।

'षट्कर्मोपदेश' मे कविकी आठ रचनाओका उल्लेख प्राप्त होता है। लिखा है

परमेसरपइ णवरस-भरिउ विरइयउ णेमिणाहहो चरिउ।
अण्णु वि चरित्तु सव्वत्थ सहिउ पयडत्थु महावीरहो विहिउ।
तीयउ चरित्तु जसहर णिवासु पद्धडिया-वधें किय पयासु।
टिप्पणउ धम्मचरियहो पयडु तिह विरइउ जिह बुज्झेइ जडु।
सक्कय-सिलोय-विहि-जणियविही गुफियउ सुहासिय-रयण-णिही।
धम्मोवएस-चूडामणिक्खु तह झाणपईउ जि झाणसिक्खु।
छक्कम्मुवएसें सहु पवध किय अट्ठ सख सइ सच्चसध। ६।१०

अर्थात् नवरसोसे युक्त 'णेमिणाहचरिउ', श्लेष अर्थ युक्त 'महावीरचरिउ', पद्धडिया छन्दमे लिखित 'जसहरचरिउ', जड बुद्धियोको भी वोध प्रदान करने वाला 'धर्मचरित' का टिप्पण, सस्कृत-श्लोकोकी विधि द्वारा आनन्द उत्पन्न करनेवाला 'सुभाषितरत्ननिधि', 'धर्मोपदेशचूड़ामणि', ध्यानकी शिक्षा देनेवाला 'ध्यानप्रदीप' और षट्कर्मोंका परिज्ञान करानेवाला 'षट्कर्मोपदेश' ग्रथ लिखे हैं। इस आधार पर कविकी निम्नलिखित रचनाएँ सिद्ध होती हैं

१ णेमिणाहचरिउ (नेमिनाथचरित)
२. महावीर-चरिउ (महावीर-चरित)
३ जसहर-चरिउ (यशोधरचरित)
४. धर्मचरित-टिप्पण
५ सुभाषितरत्न-निधि

६ धर्मोपदेश-चूडामणि (धम्मोवएसचूडामणि)
७ ध्यान-प्रदीप (झाणपईउ)
८ छक्कम्मुवएस (षट्कर्मोपदेश)

णेमिणाहचरिउ

इस ग्रंथमे २५ सन्धियाँ है, जिनकी श्लोकसंख्या लगभग ६,८९५ है। इसमे २२वें तीर्थंकर नेमिनाथका जीवन-चरित गुम्फित है। प्रसंगवश कृष्ण और उनके चचेरे भाइयोका भी जीवन-चरित पाया जाता है। इस ग्रथको कविने वि० स० १२४४ भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीको समाप्त किया है। वि० स० १५१२ की इसकी प्रति सोनागिरके भट्टारकीय शास्त्रभंडारमे सुरक्षित है।

षट्कर्मोपदेश इस ग्रथमे १४ सन्धियाँ और २१५ कडवक हैं। इसका कुल प्रमाण २०५० श्लोक है। कविने इस ग्रथमे गृहस्थोके षट्कर्मों १. देवपूजा, २ गुरुसेवा, ३ स्वाध्याय, ४ सयम, ५. षट्कायजीवरक्षा और ६. दानका कथन किया है। विविध कथाओके सरस विवेचन द्वारा सात तत्त्वोको स्पष्ट किया गया है। द्वितीय सन्धिसे ९वी सन्धि तक देवपूजाका विवेचन आया है और उसे नूतनकथारूप दृष्टान्तोके द्वारा सुगम तथा ग्राह्य बना दिया गया है। दशवी सन्धिमे जिनपूजाकी कथा दी गई है। और उसकी विधि बतलाकर उद्यापनविधिका भी अकन किया गया है। ११वी सन्धिसे १४वी सन्धि तक इन चार सन्धियोमे पूजा-विधिके अतिरिक्त शेष पाँच कर्मोका विवेचन किया गया है। षट्कर्मोपदेशकी रचनाके प्रेरक अम्बाप्रसाद बतलाये गये हैं। ये नागरकुलमे उत्पन्न हुए थे। इनके पिताका नाम गुणपाल और माताका नाम चर्चिणी था। यह ग्रथ उन्हीको समर्पित किया गया है। प्रत्येकसन्धिके समाप्तिसूचक पुष्पिकावाक्यमे इनका नाम स्मरण किया है। कही-कही अमरकीर्तिने अम्बाप्रसादको अपना लघु बन्धु और अनुजबन्धु भी कहा है। इससे अनुमान होता है कि कवि अमरकीर्ति भी इसी कुलमे उत्पन्न हुए थे और अम्बाप्रसादके बडे भाई थे।

कविने इस ग्रथकी समाप्ति गुर्जर विषयके मध्य महीयड (महीकाठा) देशके गोदहय (गोध्रा) नामक नगरके आदीश्वर चैत्यालयमे बैठकर की है। स्पष्टत: 'गुर्जर' गुजरात प्रान्तका बोधक है। अतएव 'महीयड' देश वर्त्तमान महीकाठा और 'गोदहय' नगर वर्त्तमान गोध्राका बोधक है। अम्बाप्रसाद संभवत इसी गोध्राके निवासी थे।

कविकी शेष रचनाएँ उपलब्ध नही हैं।

मुनि कनकामर

मुनि कनकामरने 'करकंडुचरिउ'के आदि और अन्तमे अपने गुरुका नाम पडित या बुधमगलदेव बताया है। अन्तिम प्रशस्तिमे कहा है कि वे ब्राह्मण वशके चन्द्रऋषिगोत्रीय थे। जब विरक्त होकर वे दिगम्बर मुनि हो गये, तो उनका नाम कनकामर प्रसिद्ध हुआ। श्री डॉ० हीरालालजी जैनने बताया है कि पट्टावलियोके अनुसार सुहस्तिके शिष्य सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध द्वारा स्थापित कोटिकगणकी वैरिशाखाका एक कुल चन्द्रनामक हुआ। चन्द्रकुलके भी अनेक अन्वय और गच्छ हुए। उत्तराध्ययनकी शिष्यहिता नामक वृत्तिके कर्त्ता शान्तिसूरि चन्द्रकुलके काठकरान्वयसे उत्पन्न थारापद्र-गच्छके थे और सुखबोधटीकाके कर्त्ता देवेन्द्र गणि भी चन्द्रकुलके थे। किन्तु ये सब श्वेताम्बर परम्पराके भेद-प्रभेद हैं, दिगम्बर परम्पराके नही। मुनि कनकामर दिगम्बर मुनि थे। अतएव कनकामरका चन्द्रऋषिगोत्र देशीगणके चन्द्रकराचार्याम्नायके अन्तर्गत है। इतिहाससे यह सिद्ध है कि चन्देल नरेशोने भी अपनेको चन्द्रात्रेयऋषिवशी कहा है। अत बहुत सभव है कि चन्द्रकराचार्याम्नाय चन्देलवशी राजकुलमेसे ही हुए किसी जैन मुनिने स्थापित किया हो। स्वय कनकामर भी इसी कुलके रहे हो।

कविकी गुरुपरम्पराके सम्बन्धमे विशेष जानकारी प्राप्त नही होती। अन्तिम प्रशस्तिमे उन्होने अपनेको बुधमगलदेवका शिष्य कहा है। श्री डॉ० हीरालालजी जैनने[1] रत्नाकर या धर्मरत्नाकर नामक सस्कृत-ग्रथके रचयिता प० मगलदेवको कहा है। इस ग्रथकी पाण्डुलिपियाँ जयपुर और कारजामे प्राप्त है। जयपुरकी प्रतिमे पुष्पिकावाक्य निम्न प्रकार है

"स० १६८० वर्षे काष्ठासघे नन्दतटग्रामे भट्टारकश्रीभूषणशिष्यपडितमगलकृतशास्त्ररत्नाकरनाम शास्त्र सम्पूर्ण।"

इससे डॉ० जैनने यह अनुमान लगाया है कि स० १६८० ग्रथ-रचनाका काल नही, लेखनका काल है। कारजाके शास्त्रभडारकी प्रतिमे उसका लेखनकाल १६६७ अकित किया है। काष्ठासघ और नन्दीतट ग्रामका प्राचीनतम उल्लेख देवसेनकृत दर्शनसार गाथा ३८ मे प्राप्त होता है, जहाँ वि० सं० ७५३ मे नन्दितटग्राममे काष्ठासघकी उत्पत्ति बताई गई है। यदि कनकामरके

१. डॉ० हीरालाल करकंडुचरिउ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, सन् १९६४, प्रस्तावना पृ० १३।

कालके समीप श्रीभूषण और उनके शिष्य मंगलदेवका अस्तित्व सिद्ध हो जाय, तो उनकी परम्परा काष्ठासंघ और नन्दितट ग्रामके साथ जोड़ी जा सकती है।

'करकंडुचरिउ'की रचना 'आसाइय'नगरीमें रहकर कविने की है। कारंजाकी प्रतिमें 'आसाइय' नगरी पर 'आशापुरी' टिप्पण मिलता है, जिससे जान पड़ता है कि उस नगरीको आशापुरी भी कहते थे।

इटावासे ९ मीलकी दूरी पर आसयखेड़ा नामक ग्राम है। यह ग्राम जैनियोंका प्राचीन स्थान है। आसइ गाँव एक ऊँचे खेड़ेपर बसा हुआ है, जिसके पश्चिमी ओर विशाल खण्डहर पड़े हुए हैं। उस पर बहुत दिगम्बर जैन प्रतिमाएँ बिखरी हुई मिलती हैं। यह आसाइय ग्राम अपने दुर्गके लिए प्रसिद्ध था। इसे चन्द्रपालने बनवाया था। मुनि कनकामरने आसाइय नगरीमें आकर अपने 'करकंडुचरिउ' की रचना की थी, जहाँके नरेश विजयपाल, भूपाल और कर्ण थे। अतः संभव है कि यह असाइयनगरी वर्त्तमान आसयखेड़ा ही हो।

ई० सन् १०१७में मुहम्मद तुगलकने मथुरासे कन्नौज तक आक्रमण किया था। इटावाके पास मुंजके किलेमें हिन्दुओंसे उसका जबरदस्त संघर्ष हुआ। वहाँसे सुल्तानने आसइके दुर्गपर आक्रमण किया। उस समय आसइका शासक चाण्डाल भोर था। मुसलमानलेखकोंने लिखा है कि मुहम्मद तुगलकने पाँचों किलोंको गिरवाकर मिट्टीमें मिला दिया। अत यह संभव नहीं कि ई० सन् १०१७के पश्चात् कनकामर उसका उल्लेख नगरीके रूपमें करे।

डॉ० जैनने भोपालके समीप आशापुरीनामक ग्रामका उल्लेख किया है। वहाँ आशापुरीदेवीकी असाधारण मूर्त्ति विद्यमान है। संभवत इसीपरसे इस ग्रामका नाम आशापुर पड़ा होगा। वहाँ एक जैन मन्दिरके भी भग्नावशेष प्राप्त हैं। उनमें एक १६ फुट ऊँची शान्तिनाथ तीर्थंकरकी प्रतिमा भी है। डॉ० जैन इसी आशापुरीको कनकामरके द्वारा उल्लिखित आसाइय मानते हैं।

स्थितिकाल

कवि कनकामरने ग्रंथके रचनाकालका उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने अपनेसे पूर्ववर्त्ती सिद्धसेन, समन्तभद्र, अकलंक, जयदेव, स्वयंभू और पुष्पदन्तका उल्लेख किया है। पुष्पदन्तने अपना महापुराण ई० सन् ९६५में समाप्त किया था। अतएव करकंडुचरिउकी रचना ई० सन् ९६५के पहले नहीं हो सकती है। इस ग्रंथकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति वि० सं० १५०२की उपलब्ध है। अतः कविका समय सं० १५०२के पश्चात् भी नहीं हो सकता है।

'करकण्डुचरिउ'की अन्तिम प्रशस्तिमे विजयपाल, भूपाल और कर्ण इन तीन राजाओका उल्लेख आता है। इतिहास बतलाता है कि विश्वामित्र-गोत्रके क्षत्रीयवंशमे विजयपाल नामके एक राजा हुए, जिनके पुत्र भुवनपाल थे। उन्होने कलचुरी, गुर्जर और दक्षिणको जीता था। एक अन्य अभिलेखसे बांदा जिलेके अन्तर्गत चन्देलोकी राजधानी कालिंजरका निर्देश मिलता है। इसमे विजयपालके पुत्र भूमिपालका तथा दक्षिण दिशा और कर्णराजाको जीतनेका उल्लेख है। एक अन्य अभिलेख जबलपुर जिलेके अन्तर्गत तोवरमे मिला है। उसमे भूमिपालके उत्पन्न होनेका उल्लेख आया है। तथा किसी सम्बन्धमे त्रिपुरी और सिंहपुरीका भी निर्देश है। यह अभिलेख ११वी-१२वी शताब्दीका अनुमान किया गया है। इन लेखोके विजयपाल और उनके पुत्र भुवनपाल या भूमिपाल तथा हमारे ग्रन्थके विजयपाल और भूमिपाल एक ही हैं। कर्ण नरेन्द्रका समावेश भी इन्ही अभिलेखोमे हो जाता है।

डॉ० जैनने इतिहासके आलोकमे विजयपाल, कीर्त्तिवर्मा (भुवनपाल) और कर्ण इन तीनो राजाओंका अस्तित्व ई० सन् १०४०–१०५१के आस-पास बतलाया है। अत. करकंडुचरिउका रचनाकाल ग्यारहवी शतीका मध्यभाग सिद्ध होता है। प्रशस्तिके अनुसार पुष्पदन्तके पश्चात् अर्थात् ९६५ ई० के अनन्तर और १०५१ ई० के पूर्व कनकामरका समय होना चाहिए। वि० स० १०९७ के लगभग कालिंजरमे विजयपाल नामक राजा हुआ। यह प्रतापी कलचुरीनरेश कर्णदेवका समकालीन था। इसके पुत्र कीर्त्तिवर्माने कर्णदेवको पराजित किया था। अतएव मुनि कनकामरका समय वि० की १२वी शताब्दी है।[1]

'करकडुचरिउ' १० सन्धियोमे विभक्त है। इसमे करकण्डु महाराजकी कथा वर्णित है। कथाका साराश निम्न प्रकार है-

अंगदेशकी चम्पापुरी नगरीमे धाड़ीवाहन राजा राज्य करता था। एक बार वह कुसुमपुरको गया और वहाँ पद्मावती नामकी एक युवतीको देखकर उसपर मोहित हो गया। युवतीका सरक्षक एक माली था, जिससे बातचीत करनेपर पता लगा कि यह युवती यथार्थमे कोशाम्बीके राजा वसुपालकी पुत्री है। जन्म समयके अपशकुनके कारण पिताने उसे यमुना नदीमे प्रवाहित कर दिया था। राजपुत्री जानकर धाड़ीवाहनने उसका पाणिग्रहण कर लिया। और उसे चम्पापुरीमे ले आया। कुछ काल पश्चात् वह गर्भवती हुई और उसे यह दोहला उत्पन्न हुआ कि मन्द-मन्द बरसातमे वह नररूप धारण करके अपने

१. करकडुचरिउ, प्रस्तावना पृ० ११-१२।

पतिके साथ एक हाथीपर सवार होकर नगरका परिभ्रमण करे। राजाने रानी-का दोहला पूर्ण करनेके लिए वैसा ही प्रबन्ध किया, पर दुष्ट हाथी राजा-रानीको लेकर जंगलकी ओर भाग निकला। रानीने समझा-बुझाकर राजाको एक वृक्ष-की डाली पकड़कर अपने प्राण बचानेके लिए राजी कर लिया। और स्वयं उस हाथीपर सवार रहकर जंगलमें पहुँची। वह हाथी एक जलाशयमें घुसा। रानीने कूदकर अपने प्राण बचाये। जब वह वनमें पहुँची, तो सूखा हुआ वह वन हरा-भरा हो गया। इस समाचारको प्राप्तकर वनमाली वहाँ आया और उसे बहन बनाकर अपने साथ ले गया। मालिनको पद्मावतीके रूपपर ईर्ष्या हुई और उसने किसी बहानेसे उसे अपने घरसे निकाल दिया। निराश होकर रानी श्मशानभूमिमें आई और वहीं उसे पुत्र उत्पन्न हुआ।

मुनिके अभिशापसे मातंग बने हुए विद्याधरने उस पुत्रको ग्रहण कर लिया और अभिशापकी बात बतलाकर रानीको उसने आश्वस्त किया। मातंगने उस बालकको शिक्षित किया। हाथमें कडु सूखी खुजली होनेके कारण उसका नाम 'करकंडु' पड़ गया। जब वह युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब दन्तीपुरके राजाका परलोकवास हो गया। मन्त्रियोंने दैवी विधिसे उत्तरा-धिकारीका चयन करना चाहा और इस विधिमें करकंडुको राजा बना दिया गया।

करकंडुका विवाह गिरिनगरकी राजकुमारी मदनावलीसे हुआ। एक बार उसके दरबारमें चम्पाके राजाका दूत आया, जिसने उससे चम्पानरेशका आधिपत्य स्वीकार करनेकी प्रेरणा की। करकंडु क्रोधित हुआ और उसने तत्काल चम्पापर आक्रमण कर दिया। दोनों ओरसे घमासान युद्ध होने लगा। अन्तमें पद्मावतीने रणभूमिमें उपस्थित होकर पिता-पुत्रका सम्मेलन करा दिया। धाड़ीवाहन पुत्ररत्नको प्राप्त कर बहुत हर्षित हुआ और वह चम्पाका राज्य करकंडुको सौंप दीक्षित हो गया। एक बार करकंडुने द्रविड देशके चोल, चेर और पाण्ड्य नरेशोंपर आक्रमण किया। मार्गमें वह तेरापुर नगरमें पहुँचा। वहाँके राजा शिवने भेंट की और आकर बताया कि वहाँसे पास ही एक पहाड़ीके चढ़ावपर एक गुफा है तथा उसी पहाड़ीके ऊपर एक भारी बामी है, जिसकी पूजा प्रतिदिन एक हाथी किया करता है। यह सुनकर करकंडु शिवराजाके साथ उस पहाड़ीपर गया। उसने गुफामें भगवान् पार्श्व-नाथका दर्शन किया और ऊपर चढ़कर बामीको भी देखा। उनके समक्ष ही हाथीने आकर कमल-पुष्पोंसे उस बामीको पूजा की। करकंडुने यह जानकर कि अवश्य ही यहाँ कोई देव-मूर्ति होगी, उस बामीको खुदवाया। उसका अनु-

मान सत्य निकला। वहाँ पार्श्वनाथ भगवान्‌की मूर्ति निकली, जिसे बड़ी भक्तिसे उसी गुफामें ले आये। इस बार करकडुने पुरानी प्रतिमाका अवलोकन किया। सिंहासनपर उन्हे एक गाँठ-सी दिखलाई पडी, जो शोभाको बिगाड़ रही थी। एक पुराने शिल्पकारसे पूछनेपर उसने कहा कि जब यह गुफा बनाई गई थी, तब वहाँ एक जलवाहिनी निकल पड़ी थी। उसे रोकनेके लिए ही वह गाँठ दी गई है। करकडुको जल वाहिनीके दर्शनका कौतुक उत्पन्न हुआ और शिल्पकारको बहुत रोकने पर भी उसने उस गाँठको तोडवा डाला। गाँठके टूटते ही वहाँ एक भयकर जलप्रवाह निकल पड़ा, जिसे रोकना असभव हो गया। गुफा जलसे भर गई। करकंडुको अपने किये पर पश्चात्ताप होने लगा। निदान एक विद्याधरने आकर उसका सम्बोधन किया, उस प्रवाहको रोकनेका वचन दिया तथा उस गुफाके बननेका इतिहास भी कह सुनाया।

इस इतिहासके सुननेके अनन्तर करकडुने वहाँ दो गुफाएँ और बनवाई। इसी बीच एक विद्याधर हाथीका रूप धरकर आया और करकडुको भुलाकर मदनावलीको हरकर ले गया।

करकडु सिंहलद्वीप पहुँचा और वहाँकी राजपुत्री रतिवेगाका पाणिग्रहण किया। जब वह जलमार्गसे लौट रहा था, तो एक मच्छने उसकी नौकापर आक्रमण किया। वह उसे मारने समुद्रमे कूद पड़ा। मच्छ मारा गया, पर वह नावपर न आ सका। उसे एक विद्याधरपुत्री हरकर ले गयी। रतिवेगाने किनारेपर आकर, शोकसे अधीर हो पूजा-पाठ प्रारभ किया जिससे पद्मावतीने प्रकट हो उसे आश्वासन दिया। उधर विद्याधरीने कररडुसे विवाह कर लिया और नववधु सहित रतिवेगासे आ मिला।

करकडुने चोल, चेर और पाड्य नरेशोकी सम्मिलित सेनाका सामना किया और उन्हे हराकर प्रण पूरा किया। जब वह लौटकर पुनः तेरापुर आया, तो कुटिल विद्याधरने मदनावलीको लाकर सौंप दिया। वह चम्पापुरी आकर सुख-पूर्वक राज्य करने लगा।

एक दिन वनमालीने आकर सूचना दी कि नगरके उपवनमे शीलगुप्त नामक मुनिराज पधारे हैं। राजा अत्यन्त भक्तिभावसे पुरजन-परिजन सहित उनके चरणोमे उपस्थित हुआ और अपने जीवनसम्बन्धी अनेक प्रश्न पूछे। राजा मुनिराजसे अपने पूर्व जन्मोकी कथाओको सुनकर विरक्त हो गया और अपने पुत्र वसुपालको राज्य दे मुनि बन गया। रानियाँ और माता पद्मावती भी आर्यिका हो गईं। करकडुने घोर तपश्चरणकर मोक्ष प्राप्त किया।

चरितनायककी कथाके अतिरिक्त अवान्तर ९ कथाएँ भी आयी हैं। प्रथम-

चार कथाएँ द्वितीय सन्धिमे वर्णित हैं। इनमे क्रमशः मन्त्रशक्तिका प्रभाव, अज्ञानसे आपत्ति, नीचसगतिका बुरा परिणाम और सत्सगतिका शुभ परिणाम दिखाया गया है। पाँचवी कथा एक विद्याधरने मदनावलीके विरहसे व्याकुल करकडुको यह समझानेके लिए सुनाई कि वियोगके बाद भी पति-पत्नीका सम्मिलन हो जाता है। छठी कथा पाँचवी कथाके अन्तर्गत ही आई है। सातवी कथा शुभ शकुनका फल बतलानेके लिये कही गई है। आठवी कथा पद्मावतीने समुद्रमे विद्याधरी द्वारा करकडुके हरण किये जानेपर शोकाकुला रतिवेगाको सुनाई है। नवी कथा आठवी कथाका प्रारभिक भाग है, जो एक तोतेकी कथा-के रूपमे स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है।

ये कथाएँ मूलकथाके विकासमे अधिक सहायक नही हो पाती। इनके आधारपर कविने कथावस्तुको रोचक बनानेका प्रयास किया है। वस्तुमे रसो-त्कर्ष, पात्रोकी चरित्रगत विशेषता और काव्योमे प्राप्य प्राकृतिक दृश्योके वर्णनके अभावको कविने भिन्न-भिन्न कथाओंके प्रयोग द्वारा पूरा करनेका प्रयत्न किया है।

करकंडुचरिउ धार्मिक कथा-काव्य है। इसमे अलौकिक और चमत्काकपूर्ण घटनाओके साथ काव्यतत्त्व भी प्रचुररूपमे पाये जाते हैं।

इस काव्यमे मानव-जगत और प्राकृतिक-जगत दोनोका वर्णन पाया जाता है। करकडुके दन्तिपुरमे प्रवेश करनेपर नगरकी नारियोके हृदयकी व्यग्रता विचित्र हो जाती है। यह वर्णन काव्यकी दृष्टिसे बहुत ही सरस और आक-र्षक है,

तहिँ पुरवरि खुहियउ रमणियाउ झाणट्ठिय-मुणि-मण-दमणियाउ।
क वि रहसइँ तरलिय चलिय णारि, विहडप्फड संठिय का वि दारि।
क वि धावइ णवणिव णेहलुद्ध परिहाणु ण गलियउ गणइ मुद्ध।
क वि कज्जलु बलहउ अहरे देइ णयणुल्लएँ लक्खारसु करेइ।
णिग्गथवित्ति क वि अणुसरेइ विवरीउ डिंभु क वि कडिहिँ लेइ।
क वि णेउरु करयलि करइ बाल, सिरु छंडिवि कडियले धरइ माल।
णिय-णदणु मण्णिवि क वि वराय मज्जारु ण मेल्लइ साणुराय।
क वि धावइ णवणिउ मणे धरंति विहलघल मोहइ घरे सरंति।
घत्ता क वि माणमहल्ली मयणभर करकडुहो समुहिय चलिय।
थिर-थोरपओहरि मयणयण उत्तत्त-कणयछवि उज्जलिय॥२॥

अर्थात् करकंडुके आगमनपर ध्यानावस्थित मुनियोंके मनको विचलित

करनेवाली सुन्दरियाँ भी विक्षुब्ध हो उठी। कोई स्त्री आवेगसे चचल हो चल पडी, कोई विह्वल हो द्वार पर खड़ी हो गई, कोई मुग्धा प्रेमलुब्ध हो दौड पडी, किसीने गिरते हुए वस्त्रको भी परवाह न की, कोई अधरो पर काजल भरने लगी, कोई आँखोमे लाक्षारस लगाने लगी, कोई दिगम्बरोके समान आचरण करने लगी, किसीने बच्चेको उल्टा ही गोदमे ले लिया, किसीने नूपुरको हाथमे पहना, किसीने सिरके स्थानपर कटिप्रदेशपर माला डाल ली और कोई बेचारी बिल्लीके बच्चेको अपना पुत्र समझ सप्रेम छोडना नही चाहती। • • कोई स्थिर और स्थूल पयोधर वाली, तप्त कनकच्छविके समान उज्ज्वल वर्ण वाली, मृगनयनी, मानिनी कामाकुल हो करकडुके सामने चल पडी।

शीलगुप्त मुनिराजके आगमनपर पुरनारियोके हृदयमे जैसा उत्साह दिखलाई पडता है वैसा अन्यत्र सभव नही। कविने लिखा है कि कोई सुन्दरी मानिनी मुनिके चरणकमलमे अनुरक्त हो चल दी, कोई नूपुर-शब्दोसे झनझन करती हुई मानो मुनिगुणगान करती हुई चल पड़ी। कोई मुनिदर्शनोका हृदयमे ध्यान धरती हुई जाते हुए पतिका भी विचार नही करती। कोई थालमे अक्षत और धूप भरकर बच्चेको ले वेगसे चल पडी। कोई सुगन्धयुक्त जाती हुई ऐसी प्रतीत होती थी, मानो विद्याधरी पृथ्वी पर शोभित हो रही हो।[1]

कवि देश, नगर, ग्राम, प्रासाद, द्वीप, श्मशान आदिके वर्णनमे भी अत्यन्त पटु है। अगदेशका चित्रण करते समय उसने उस देशको पृथ्वीरूपी नारीके रूपमे अनुभव किया है। इस प्रसगमे सरोवर, धान्यसे भरे खेत, कृषक बालाएँ, पथिक, विकसित कमल आदिका भी चित्रण किया गया है।[2]

कनकामरने शृंगार, वीर और भयानक रसका अद्भुत चित्रण किया है। नारीरूप-वर्णनमे कविने परम्पराका आश्रय लिया है और परम्परामुक्त उपमानोका प्रयोग कर नारीके नख-शिखका चित्रण किया है। पद्मावतीके रूप-चित्रणमे अधरोकी रक्तिमाका कारण आगे उठी हुई नासिकाकी उन्नतिपर अधरोका कोप कल्पित किया गया है।

रतिवेगाके विलापमे कविने ऊहात्मक प्रसगोका प्रयोग किया है। वर्णनमे सवेदनाका बाहुल्य है। इसी प्रकार मदनावलीके विलुप्त होनेपर करकडुका विलाप भी पाषाणको पिघला देने वाला है।

१ करकंडुचरिउ ९।२, ३–७।
२ वही १।३–४–१०।

संसारकी नश्वरता और अस्थिरताका चित्रण करते हुए कविने बताया है कि कालके प्रभावसे कोई नही बचता। युवा, वृद्ध, बालक, चक्रवर्त्ती, विद्याधर, किन्नर, खेचर, सुर, अमरपति सब कालके वशवर्त्ती है।[1] प्रत्येक प्राणी अपने कर्मोके लिए उत्तरदायी, वह अकेला ही संसारमें जन्म ग्रहण करता है, अकेला ही दु:ख भोगता है और अकेला ही मृत्यु प्राप्त करता है।[2]

करकडुको प्रयाण करते समय गंगा नदी मिलती है। कविने गंगाका वर्णन जीवन्त रूपमें प्रस्तुत किया है

गंगापएसु संपत्तएण गंगाणइ दिट्ठी जंतएण।
सा सोहइ सिय-जल कुडिलवंति, ण सेयभुवंगहो महिल जंति।
दूराउ वहंती अइविहाईं, हिमवंत-गिरिंदहो कित्ति णाइं।
बिहिं कूलहिं लोयहिं ण्हंतएहिं आइच्चहो जलु परिदितएहिं।
दब्भकियउड्ढहिं करयलेहिं णइ भणइ णाइं एयहिं छलेहिं।
हउं सुद्धिय णियमग्गेण जामि मा रूसहि अम्गहो उवरि सामि।

शुभ्र जलयुक्त, कुटिल प्रवाहवाली गंगा ऐसी शोभित हो रही थी, मानो शेषनागकी स्त्री जा रही हो। दूरसे बहती हुई गंगा ऐसी दिखलाई पड़ती थी, जैसे वह हिमवंत गिरीन्द्रकी कीर्त्ति हो। दोनो कूलो पर नहाते हुए और आदित्य-को जल चढाते हुए, दर्भसे युक्त ऊँचे उठाये हुए करतलो सहित लोगोके द्वारा मानो इसी बहानेसे नदी कह रही है "मै शुद्ध हूँ और अपने मार्गसे जाती हूँ। हे स्वामी ! मेरे ऊपर रुष्ट मत होइये।" कविके वर्णनमे स्वाभाविकता है।

कविने भाषाको प्रभावोत्पादक बनानेके लिए भावानुरूप शब्दोका प्रयोग किया है। पदन्योजनामे छन्दप्रवाह भी सहायता प्रदान करता है। ध्वन्यात्मक शब्दोका प्रयोग भी यथास्थान किया गया है। कविने विभिन्न प्रकारके छन्द और अलकारोकी योजना द्वारा इस काव्यको सरस बनाया है।

महाकवि सिंह

महाकवि सिंह संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और देशीभाषाके प्रकांड विद्वान थे। इनके पिताका नाम रल्हण पंडित था, जो संस्कृत और प्राकृत भाषाके

१. करकंडुचरिउ ९।५।१-१०।
२. वही ९।६।

प्रकाण्ड पण्डित थे। ये गुर्जर कुलमें उत्पन्न हुए थे। कविका परिचय-सूचक पद्य 'पज्जुण्णचरिउ'की १३वी सन्धिके प्रारभमे पाया जाता है

जात. श्रीजिनधर्मकर्म्मनिरत' शास्त्रार्थसर्वप्रियो,
भाषाभि' प्रवणश्चतुर्भिरभवच्छ्रीसिहनामा कवि ।
पुत्रो रल्हण-पण्डितस्य मतिमान् श्रीगूर्जरागोमिह,
दृष्टि-ज्ञान-चरित्रभूषिततनुर्वंशे विशालेऽवनौ ।।

इस सस्कृत-पद्यसे स्पष्ट है कि कवि सिह सस्कृत-भाषाका भी अच्छा कवि था। कविकी माताका नाम जिनमती बताया गया है। कविने इसीकी प्रेरणासे 'पज्जुण्णचरिउ'की रचना की है। कविने काव्यके आरभमे विनय प्रदर्शित करते हुए अपनेको छन्द-लक्षण, समास-सन्धि आदिके ज्ञानसे रहित बताया है, तो भी कवि स्वभावसे अभिमानी प्रतीत होता है। उसे अपनी काव्य-प्रतिमाका गर्व है। १४वी सन्धिके अन्तमे दिये गये एक सस्कृत-पद्यसे यह बात स्पष्ट होती है

साहाय्य समवाप्य नाम सुकवेः प्रद्युम्नकाव्यस्य य ।
कर्त्ताऽभूद् भवभेदनैकचतुर श्रीसिहनामा शमी ।।
साम्यं तस्य कवित्वगर्व्वसहित को नाम जातोऽवनौ ।
श्रीमज्जैनमतप्रणीतसुपथे सार्थ' प्रवृत्ते क्षम ।।

कविने अपने सम्प्रदायके सम्बन्धमे कोई उल्लेख नही किया। पर ग्रंथके अन्त परीक्षण और गुरुपरम्परापर विचार करनेसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि कवि दिगम्बर सम्प्रदायका था। ग्रथकी उत्थानिका और कथनशैली भी उक्त सम्प्रदायके काव्यो जैसी ही है। लिखा है-

विउलगिरिहि जिह हयभवकदहो, समवसरणु, सिरिवीरजिणिदहो।
णरवरखयरामरसमवाए, गणहरुपुच्छिउ सेणियराए।
मयरद्धयहो विणिज्जयमारहो, कहहि चरिउ पज्जुण्णकुमारहो।
त णिसुणेवि भणइ गणेसरु, णिसुणइ सेणिउ मगहणरेसरु।।

कविका वश गुर्जर था और अपनेको उसने उस गुर्जरकुलरूपी आकाशको प्रकाशित करनेवाला सूर्य लिखा है। कविने अपने पिताका नाम वुध रल्हण या रल्हण बताया है। बुध रल्हणकी शीलादि गुणोसे अलकृत जिनमती नामकी पत्नी थी, जिसके गर्भसे कवि सिंहका जन्म हुआ था। कविके तीन भाई थे, जिनमे प्रथमका नाम शुभकर, द्वितीयका गुणप्रवर और तृतीयका साधारण था। ये तीनो ही भाई धर्मात्मा और सुन्दर थे। ग्रन्थमे बताया है

तह पय-रउ णिरु उण्णय अमइयमाणु, गुज्जरकुल-णह-उज्जोय-भाणु।
जो उहयपवरवाणीविलासु, एयविह विउसहो रल्हणासु।
तहो पणइणि जिणमइ सुहय-सील, सम्मत्तवत्त ण धम्मलील।
कइ सीहु ताहि गब्भतरमि, सभविउ कमलु जह सुर-सरमि।
जणवच्छलु सज्जणु जणियहरिसु, सुइवंत तिविह वइरायसरिसु।
उप्पणु सहोयरु तासु अवरु, नामेण सुहकरु गुणहपवरु।
साहारण लघुवउ तासु जाउ, धम्माणुरत्तु अइदिव्वकाउ।

कवि सिंहके गुरु मुनिपुगव भट्टारक अमृतचन्द्र थे। ये तप-तेजरूपी दिवाकर और व्रत, नियम तथा शीलके समुद्र थे। अमृतचन्द्रके गुरु माधवचन्द्र थे। इनकी 'मलधारी' उपाधि थी। यह उपाधि उसी व्यक्तिको प्राप्त होती थी, जो दुर्द्धर परीषहों, विविध उपसर्गों और शीत-उष्णादिकी बाधाओंको सहन करता था। कवि देवसेनने भी अपने गुरु विमलदेवको 'मलधारी' सूचित किया है।

कवि सिंहका व्यक्तित्व स्वाभिमानी कविका व्यक्तित्व है। वह चार भाषाओंका विद्वान् और आशुकवि था। उसे सरस्वतीका पूर्ण प्रसाद प्राप्त था। वह सत्कवियोंमें अग्रणी, मान्य और मनस्वी था। उसे हिताहितका पूर्ण विवेक था और समस्त विषयोंका विज्ञ होनेके कारण काव्यरचनामें पटु था।

'पज्जुण्णचरिउ'में सन्धियोंकी पुष्पिकाओंमें सिद्ध और सिंह दोनों नाम मिलते हैं। प्रथम आठ सन्धियोंकी पुष्पिकाओंमें सिद्ध और अन्य सन्धियोंकी पुष्पिकाओंमें सिंह नाम मिलता है। अत यह कल्पना की गई कि सिंह और सिद्ध एक ही व्यक्तिके नाम थे। वह कहीं अपनेको सिंह और कहीं सिद्ध कहता है। दूसरी यह कल्पना भी सम्भव है कि सिंह और सिद्ध नामक दो कवियोंने इस काव्यकी रचना की हो, क्योंकि काव्यके प्रारम्भमें सिंहके माता-पिताका नाम और आगे सिद्धके पिताका नाम भिन्न मिलता है। पं० परमानन्दजी शास्त्रीका अनुमान है कि सिद्ध कविने प्रद्युम्नचरितका निर्माण किया था। कालवश यह ग्रन्थ नष्ट हो गया और सिंहने खण्डितरूपसे प्राप्त इस ग्रन्थका पुनरुद्धार किया।[1]

प्रो० डॉ० हीरालालजी जैनका भी यही विचार है।[2] ग्रन्थकी प्रशस्तिमें कुछ ऐसी पंक्तियाँ भी प्राप्त होती हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि कवि सिद्धकी रचनाके विनष्ट होने और कर्मवशात् प्राप्त होनेकी बात कही गई है

१ महाकवि सिंह और प्रद्युम्नचरित, अनेकान्त, वर्ष ८, किरण १०-११, पृ० ३९१।
२. नागपुर युनिवर्सिटी जर्नल, सन् १९४२, पृ० ८२-८३।

कइ सिद्धहो विरयंतहो विणासु,
संपत्तउ कम्मवसेण तासु,

साथ ही अन्तिम प्रशस्तिके 'परकज्ज परकव्व विहडत्त जेहि उद्धरिय'से भी उक्त आशयकी सिद्धि होती है। श्री हरिवश कोछडने भी इसी तथ्यको स्वीकार किया है।[1]

स्थितिकाल

कवि सिंहने 'पज्जुण्णचरिउ'के रचनाकालका निर्देश नही किया है। पर ग्रन्थ-प्रशस्तिमे बह्मणवाड नगरका वर्णन करते हुए लिखा है कि उस समय वहाँ रणधोरी या रणधीरका पुत्र वल्लाल था, जो अर्णोराजको क्षय करनेके लिये कालस्वरूप था और जिसका माण्डलिकभृत्य गुहिलवशीय क्षत्रिय भुल्लण बह्मणवाडका शासक था। प्रशस्तिमे लिखा है

सरि-सर-णदण-वण-सछण्णउ,
मठ-विहार-जिण-भवण-खण्णउ।
बम्हणवाडउणामे पट्टणु,
अरिणरणाह -सेणदलवट्टणु।
जो भुजइ अरिणखयकालहो,
रणधोरियहो सुअहो बल्लालहो।
जासु भि ‹चु दुज्जण-मणसल्लणु,
खत्तिउ गुहिल उत्तु जहिं भुल्लणु।

प्रद्युम्नचरित्त, प्रशस्ति।

पर इस उल्लेखपरसे राजाओके राज्यकालको ज्ञातकर कुछ निष्कर्ष निकाल सकना कठिन है।

मन्त्री तेजपाल द्वारा आबूके लूणवसतिचैत्यमे वि० स० १२८७ के लेखमे मालवाके राजा बल्लालको यशोधवलके द्वारा मारे जानेका उल्लेख आया है। यह यशोधवल विक्रमसिहका भतीजा था और उसके कैद हो जानेके पश्चात् राजगद्दीपर आसीन हुआ था। यह कुमारपालका माण्डलिक सामन्त अथवा भृत्य था। इस कथनकी पुष्टि अचलेश्वर मन्दिरके शिलालेखसे भी होती है।

जब कुमारपाल गुजरातकी गद्दीपर आसीन हुआ था, तब मालवाका राजा बल्लाल, चन्द्रावतीका परमार विक्रमसिह और सपादलक्षसामरका चौहान

१ अपभ्रंश-साहित्य, दिल्ली प्रकाशन, पृ० २२१।

अर्णोराज इन तीनोने मिलकर कुमारपालके विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त की। पर उनका प्रयत्न सफल नही हो सका। कुमारपालने विक्रमसिंहका राज्य उसके भतीजे यशोधवलको दे दिया, जिसने वल्लालको मारा था। इस प्रकार मालवा-को गुजरातमे मिलानेका यत्न किया गया।[1]

कुमारपालका राज्यकाल वि० स० ११९९ से १२२९ तक रहा है। अतः वल्लालकी मृत्यु ११५१ ई० (वि० स० १२०८) से पूर्व हुई है।

ऊपरके विवेचनसे यह स्पष्ट है कि कुमारपाल, यशोधवल, वल्लाल और अर्णोराज ये सब समकालीन हैं। अतः ग्रथ-प्रशस्तिगत कथनको दृष्टिमे रखते हुए यह प्रतीत होता है कि प्रद्युम्नचरितकी रचना वि० स० १२०८ से पूर्व हो चुकी थी। अतएव कवि सिंहका समय विक्रमकी १२ वी शतीका अन्तिम पाद या विक्रमकी १३ वी शतीका प्रारम्भिक भाग है। डॉ० हीरालालजी जैनने 'पज्जुण्णचरिउ'का रचनाकाल ई० सन्‌की १२ वी शतीका पूर्वार्द्ध माना है। प० परमानन्दजी और डा० जैनके तथ्योपर तुलनात्मक दृष्टिसे विचार करनेपर डॉ० जैन द्वारा दिये गये तथ्य अधिक प्रामाणिक प्रतीत होते हैं।

रचना

कविकी एकमात्र रचना प्रद्युम्नचरित है। इसमे २४ कामदेवोमेसे २१ वें कामदेव कृष्णपुत्र प्रद्युम्नका चरित निबद्ध किया है। यह १५ सन्धियोमे विभक्त है। रुक्मिणीसे उत्पन्न होते ही प्रद्युम्नको एक राक्षस उठाकर ले जाता है। प्रद्युम्न वही बडे होते है। और फिर १२ वर्ष पश्चात् कृष्णसे आकर मिलते हैं। कविने परम्परानुसार जिनवन्दन, सरस्वतीवन्दनके अनन्तर आत्मविनय प्रदर्शित की है। वह सज्जन-दुर्जनका स्मरण करना भी नही भूलता। कविने परिसख्यालकार द्वारा सौराष्ट्र देशका बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। लिखा है

> मय सगु करिणि जहिं वेए कडु, खरदडु सरोरुहु ससि सखडु।
> जहिं कव्वे बधु विग्गहु सरीरु, धम्माणुरत्तु जणु पावभीरु।
> थद्दत्तणु मलणु वि मणहराहं, वरतरुणी पीणघण थण हराह।
> हय हिंसणि रायणि हेलणेसु, खलि विगयणेहु तिल-पीलणेसु।
> मज्झणणयाले गुणगणहराहं, परयारगमणु जहिं मुणिवराह।
> पिय विरहु वि जहिं कडु वउकसाउ, कुडिल विज्जुव इहि कुतलकलाउ ॥१-९॥

वस्तु-वर्णनमे कवि पटु है। उसने ग्राम, नगर, ऋतु, सरोवर, उपवन, पर्वत

1. Epigraphica Indica V LVIII P. 200।

आदिके चित्रणके साथ पात्रोंकी भावनाओंका भी अकन किया है। प्रद्युम्नका अपहरण होनेपर रुक्मिणी विलाप करती है। कविने इस संदर्भमे करुण रसका अपूर्व चित्रण किया है। प्रद्युम्न लौट आनेपर सत्यभामा और रुक्मिणीसे मिलते हैं। रुक्मिणीके समक्ष वे अपनी बाल-क्रीड़ाओका प्रदर्शन करते हैं। इस सदर्भमे कविने भावाभिव्यजनपर पूरा ध्यान रखा है। काव्यके आरभमे कवि कृष्ण और सत्यभामाका वस्तुरूपात्मक चित्रण करता हुआ कहता है

घत्ता।

चाणउर विमद्दणु, देवइ-णदणु, सख-चक्क-सारगधरु।
रणि कंस-खयकरु, असुर-भयकरु, वसुह-तिखंडह गहियकरु ॥१-१२

रजो दाणव माणव दलइ दप्पु, जिणि गहिउ असुर-णर-खयर-कप्पु।
णव-णव-जोव्वण सुमणोहराइं, चक्कल-घण पीणपउउहराइं।
छण इदबिंवसम वयणियाह, कुवलय-दल-दीहर-णयणियाह।
केऊर-हार-कुडल-घराह, कण-कण-कणत ककण कराह।
कयर खोलिर पयणेउराहं, सोलह सहसइ अतेउराह।
तह मज्झि सरस ताम रस मुहिय, जा विज्जाहरहंसु केउ दुहिय।
सइ सव्वसुलक्खणसुराहाव, णामेण पसिद्धिय सच्चहाव।
दाडिमकुसुमाहरसुद्धसाम, अइवियउर मणणिरु मज्झ खाम।
ता अग्गमहिसि तहो सुंदरासु, इदाणि व सग्गि पुरदरासु। १-१३

इस काव्यमे रस-अलकार आदिका भी समुचित समावेश हुआ है।

लाखू

प० लाखू द्वारा विरचित 'जिनदत्तकया' अपभ्र शके कथा-काव्योमे उत्तम रचना है। कविने अपने लिए 'लक्खण' शब्दका प्रयोग किया है। पर लक्ष्मण रत्नदेवके पुत्र हैं और पुरवाडवशमे उत्पन्न हुए हैं। किन्तु लाखूका जन्म जायसवशमे हुआ है। अतएव लक्ष्मण और लाखू दोनो भिन्न कालके भिन्न कवि हैं।

कवि लाखू जायस या जयसवालवशमे हुए थे। इनके प्रपितामहका नाम कोशवाल था, जो जायसवशके प्रधान तथा अत्यन्त प्रसिद्ध नरनाय थे। कविने उनका निवास त्रिभुवनगिरि कहा है। यह त्रिभुवनगढ या तिहुनगढ़ भरतपुर जिलेमे बयानाके निकट १५ मील पश्चिम-दक्षिणमे करौली राज्यका प्रसिद्ध ताहनगढ है। इस दुर्गका निर्माण और नामकरण परमभट्टारक महाराजाधिराज त्रिभुवनपाल या तिहुणपालने[1] किया था। इसीलिए यह तिहुनगढ

१ डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, जैन सन्देश, शोधाक २, १८ दिसम्बर १९५८, पृ० ८१।

या त्रिभुवनगिरि कहलाया है। इसका निर्देश कवि बुलाकीचन्दके वचनकोश मे भी मिलता है।[1]

लाखू तिहुणगढसे आकर बिलरामपुरमे बस गये थे। कविने स्वय लिखा है

सो तिहुवणगिरिभग्गउजवेण, घित्तउ वलेण मिच्छाहिवेण।
लक्खणु सव्वाउ समाणु साउ विच्छोयउ विहिणा जणिण राउ।
सो इत्त तत्थ हिंडतु पत्तु पुरे बिल्लरामे लक्खणु सुपत्तु।

प्रशस्तिका अतिमभाग

इससे स्पष्ट है कि लाखू तिहुनगढसे चलकर बिलरामपुरमे बस गये थे।

ग्रन्थकी प्रशस्तिसे यह भी स्पष्ट होता है कि कोसवाल राजा थे और उनका यश चारो ओर व्याप्त था। कविके पिता भी कहीके राजा थे। कविके पिता-का नाम साहुल और माताका नाम जयता था। 'अणुव्रतरत्नप्रदीप'की प्रशस्तिसे भी यही सिद्ध होता है।

कविका जन्म कब और कहाँ हुआ, यह निश्चितरूपसे नही कहा जा सकता है। पर त्रिभुवनगिरिके बसाये जाने और विध्वस किये जाने वाली घटनाओ तथा दूबकुडके अभिलेख और मदनसागर (अहारक्षेत्र, टीकमगढ, मध्यप्रदेश) मे प्राप्त मूर्तिलेखोसे यह सिद्ध हो जाता है कि ११वी शताब्दीमे जयसवाल अपने मूलस्थानको छोड कर कई स्थानोमे बस गये थे। सभवत तभी कविके पूर्वज त्रिभुवनगिरिमे आकर बस गये होगे।

'अणुव्रतरत्नप्रदीप'मे लिखा है कि यमुना नदीके तट पर रायवद्दिय नामकी महानगरी थी। वहाँ आहवमल्लदेव नामके राजा राज्य करते थे। वे चौहान वंशके भूषण थे। उन्होने हम्मीरवीरके मनके शूलको नष्ट किया था। उनकी पट्टरानीका नाम ईसरदे था। इस नगरमें कविकुलमडल प्रसिद्ध कवि लक्खण रहते थे। एक दिन रात्रिके समय उनके मनमें विचार आया कि उत्तम कवित्व-शक्ति, विद्याविलास और पाण्डित्य ये सभी गुण व्यर्थ जा रहे हैं। इसी विचारमे मग्न कविको निद्रा आ गई और स्वप्नमे उसने शासन-देवताके दर्शन किये। शासन-देवताने स्वप्नमे बताया कि अब कवित्वशक्ति प्रकाशित होगी।

प्रात काल जागने पर कविने स्वप्नदर्शनके सम्बन्धमे विचार किया और उसने देवीकी प्रेरणा समझ कर काव्य-रचना करनेका सकल्प किया। और फलत कवि महामत्री कण्हसे मिला। कण्हने कविसे भक्तिभावसहित सागारधर्म-

१ अगरचद नाहटा, कवि बुलाकीचन्दरचित वचनकोश और जयसवालजाति, जैन सदेश, शोधाक २, १८ दि० १९५७, पृ० ७०।

के निरूपण करनेका अनुरोध किया।

इससे यह सिद्ध होता है कि कवि त्रिभुवनगिरिसे आकर रायबद्दिय नगरीमे रहने लगा था। यह रायबद्दिय आगरा और बाँदीकुईके बीचमे विद्यमान है।[1] इससे ज्ञात होता है कि कविका वश रायबद्दियमे भी रहा है। श्री डा० देवेन्द्रकुमार शास्त्रीने लिखा है कि "यदि जिनदत्तकथा बिल्लरामपुरवासी जिनधरके पुत्र श्रीधरके अनुरोध और सुख-सुविधा प्रदान करने पर लिखी गई, तो अणुव्रतरत्न प्रदीप आहवमल्लके मन्त्री कृष्णके आश्रयमे तथा उन्हीके अनुरोधसे चन्द्रवाडनगरमे रचा गया। आहवमल्लकी वश-परम्परा भी चन्द्रवाड नगरसे बतलायी गयी है। इससे स्पष्ट है कि स० १२७५ मे कवि सपरिवार बिल्लरामपुरमे था और स० १३१३ मे चन्द्रवाडनगर (फिरोजाबादके) पासमे। यदि हम कविका जन्म तिहनगढमे भी मान ले तो फिर रायवद्दियमे वह कब रहा होगा। हमारे विचारमें लाखूके बाबा रायवड्डियके रहने वाले होगे। किसी समय तिहनगढ अत्यन्त समृद्ध नगर रहा होगा। इसलिए उससे आकर्षित हो वहाँ जाकर बस गये होगे। किन्तु तिहनगढके भग्न हो जाने पर वे सपरिवार बिल्लरामपुरमे पहुँच कर रहने लगे होगे। संभवत वही लाखूका जन्म हुआ होगा। और श्रीधरसे गाढी मित्रता कर सुखसे समय बिताने लगे होगे। परन्तु श्रीधरके देहावसान पर तथा राज्याश्रयके आकर्षणसे चन्द्रवाडनगरीमे बस गये होगे।"[2]

उपर्युक्त उद्धरणसे यह निष्कर्ष निकलता है कि कवि लक्खणने अणुव्रतरत्नप्रदीपकी रचना रायवड्डिय नगरीमे की और 'जिनदत्तकथा'की रचना बिल्लरामपुरमे की होगी।

कवि अपने समयका प्रतिभाशाली और लोकप्रिय कवि रहा है। उसका व्यक्तित्व अत्यन्त स्निग्ध और मिलनसार था। यही कारण है कि श्रीधर जैसे व्यक्तियोंसे उसकी गाढी मित्रता थी। जिनदत्तकथाके वर्णनोंसे यह भी प्रतीत होता है कि कवि गृहस्थ रहा है। प्रभुचरणोका भक्त रहने पर भी वह कर्मसिद्धान्तके प्रति अटूट विश्वास रखता है। शील-सयम उसके जीवनके विशेष गुण हैं।

स्थिति-काल

कविने 'अणुव्रतरत्न-प्रदीप'मे उसके रचना-कालका उल्लेख किया है

१ अणुव्रतरत्नप्रदीप, जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ६, किरण ३, पृ० १५५-१६०।
२. भविसयत्तकहा तथा अपभ्रश-कथाकाव्य, डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, भारतीयज्ञानपीठ प्रकाशन, पृ० २१२।

तेरह-सय-तेरह-उत्तराले, परिगलिय-विक्कमाइच्चकाले ।
सवेयरइह सव्वह समक्ख, कत्तिय-मासम्मि असेय-पक्खे ।
सत्तमि-दिणे गुरुवारे समोए, अट्ठमि-रिक्खे साहिज्ज-जोए ।
नव-मास रयतें पायडत्थु, सम्मत्तउ कमे कमे एहु सत्थु ।
'अणुव्रतरत्नप्रदीप', अन्तिम प्रशस्ति ।

वि० स० १३१३ कार्तिक कृष्ण सप्तमी गुरुवार, पुष्य नक्षत्र, साध्य योग मे नौ महीनेमे यह ग्रन्थ लिखा गया ।

कविने 'जिणयत्तकहा' मे रचनाकालका उल्लेख करते हुए लिखा है

वारहसय सत्तरय पचुत्तरय विक्कमकाल-विइत्तउ ।
पढमपक्ख रविवारए छट्ठि सहारए, पूसमासि समत्तिउ ॥

अर्थात् वि० स० १२७५ पौष कृष्णा षष्ठी रविवारके दिन इस कथाग्रन्थकी रचना समाप्त हुई । इस प्रकार कविका साहित्यिक जीवन वि० स० १२७५ से आरम्भ होकर वि० स० १३१३ तक बना रहता है । कविने प्रथम रचना लिखने के पश्चात् द्वितीय रचना ३८ वर्षके पश्चात् लिखी है। यही कारण है कि कविको चिन्ता उत्पन्न हुई कि उसकी कवित्वशक्ति क्षीण हो चुकी है। अतएव रात्रिमे शासन-देवताका स्वप्नमे दर्शन कर पुन काव्य-रचनामें प्रवृत्त हुआ ।

कविके आश्रयदाता चौहानवशी राजा आहवमल्ल थे । आहवमल्लने मुसलमानोंसे टक्कर लेकर विजय प्राप्त की और हम्मीरवीरकी सहायता की । हम्मीर देव रणथम्भौरके राजा थे। अल्लाउद्दीन खिलजीने सन् १२९९मे रणथम्भौर पर आक्रमण किया और इस युद्धमे हम्मीरदेव काम आये । इस प्रकार आहवमल्लके साथ कविकी ऐतिहासिकता सिद्ध हो जाती है ।

तिहनगढ या त्रिभुवनगिरिमे यदुवशी राजाओका राज्य था । कवि लाखू इसी परिवारसे सम्बद्ध था । ऐतिहासिक दृष्टिसे मथुराके यदुवशी राजा जयेन्द्रपाल हुए और उनके पुत्र विजयपाल । इनके उत्तराधिकारी धर्मपाल और धर्मपालके उत्तराधिकारी अजयपाल हुए । ११५० ई० मे इनका राज्य था । उनके उत्तराधिकारी कुँवरपाल हुए । वस्तुत अजयपालके उत्तराधिकारी हरपाल हुए । ये हरपाल उनके पुत्र थे । महावनमे ई० सन् ११७० का हरपालका एक अभिलेख मिला है[1] । हरपालके पुत्र कोपपाल थे, जो लाखूके पितामहके

१ दी स्ट्रगल फॉर इम्पायर, भारतीय विद्याभवन, वम्बई, प्रथम संस्करण, पृ० ५५ ।

पिता थे। कोषपालके पुत्र यशपाल और यशपालके लाहड हुए। इनकी जिनमती भार्या थी। इससे अल्हण, गाहुल, साहुल, सोहण, रयण, मयण और सतण हुए। इनमेसे साहुल लाखूके पिता थे। इस प्रकार लक्खणका सम्बन्ध यदुवशी राजघरानेके साथ रहा है।

रचनाएँ

कविकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं (१)चदणछट्ठीकहा, (२) जिणयत्तकहा और (३) अणुवय-रयण-पईव।

'चंदनषष्ठीकथा' कविकी प्रारम्भिक रचना है और इसका रचना-काल वि० स० १२७० रहा होगा। यह रचना साधारण है और कविने इसके अन्तमे अपना नामाकन किया है

> "इय चदणछट्ठिहि जो पालइ वहु लक्खणु।
> सो दिवि भुजिवि सोक्खु मोक्खहु णाणे लक्खणु।"

'जिनदत्तकथा' इसकी प्रति आमेर शास्त्र-भंडारमे प्राप्त है। कविने जिनदत्तके चरितका गुम्फन ११ सन्धियोमे किया है। मगधराज्यके अन्तर्गत वसन्तपुर नगरके राजा शशिशेखर और उनकी रानी मैनासुन्दरीके वर्णनके पश्चात् उस नगरके श्रेष्ठि जीवदेव और उनकी पत्नी जीवनजसाके सौन्दर्यका वर्णन किया गया है। प्रभुभक्तिके प्रसादसे जीवनजसा एक सुन्दर पुत्रको जन्म देती है, जिसका नाम जिनदत्त रखा जाता है। जिनदत्तके वयस्क होनेपर उसका विवाह चम्पानगरीके सेठकी सुन्दरी कन्या विमलमतीके साथ सम्पन्न होता है।

जिनदत्त धनोपार्जनके लिए अनेक व्यापारियोके साथ समुद्र-यात्रा करता हुआ सिंहलद्वीप पहुँचता है और वहाँके राजाकी सुन्दरी राजकुमारी श्रीमती उससे प्रभावित होती है। दोनोका विवाह होता है। जिनदत्त श्रीमतीको जिनधर्मका उपदेश देता है। कालान्तरमे वह प्रचुर धन-सम्पत्ति अर्जित कर अपने साथियोके साथ स्वदेश लौटता है। ईर्ष्याके कारण उसका एक सम्बन्धी धोखेसे उसे एक समुद्रमे गिरा देता है और स्वयं श्रीमतीसे प्रेमका प्रस्ताव करता है। श्रीमती शीलव्रतमे दृढ रहती है। जहाज चम्पानगरी पहुँचता है और श्रीमती वहाँके एक चैत्यमे ध्यानस्थ हो जाती है। जिनदत्त भी भाग्यसे बचकर मणिद्वीप पहुँचता है और वहाँ शृगारमतीसे विवाह करता है। वह किसी प्रकार चम्पानगरीमे पहुँचता है और वहाँ श्रीमती और विमलवतीसे भेंट करता है और उनको लेकर अपने नगर वसन्तपुरमे चला आता है। माता-पिता पुत्र और पुत्रवधुओको प्राप्तकर प्रसन्न होते हैं।

'चंदप्पहचरिउ'के रचयिता कवि यशःकीर्ति हैं। यशःकीर्तिनामके कई आचार्य हुए हैं। उनमेसे कईने अपभ्रंश-काव्योकी रचना की है। 'चन्दप्पह-चरिउ'के रचयिता यशःकीर्तिने न तो ग्रंथका रचनाकाल ही अंकित किया है और न कोई विस्तृत प्रशस्ति ही लिखी है। पुष्पिकावाक्यमे कविने अपनेको महाकवि बताया है। लिखा है

"इय-सिरि-चंदप्पह-चरिए महाकइ-जसकित्ति-विरइए महाभव्व-सिद्धपाल-सवण-भूसणे सिरिचंदप्पह-समिणिव्वाणगमणो णाम एयारहमो संधी-परिच्छेओ सम्मत्तो।"

कविने आचार्य समन्तभद्रके मुनिजीवनके समय घटित होनेवाली और अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभके स्तोत्रके सामर्थ्यसे प्रकट होनेवाली चन्द्रप्रभकी मूर्त्ति-सम्बन्धी घटनाका उल्लेख करके अकलंक, पूज्यपाद, जिनसेन और सिद्धसेन नामके पूर्ववर्ती विद्वानोका उल्लेख किया है। आश्चर्य है कि कविने अपभ्रंशके किसी कविका नाम निर्देश नही किया है।

कविने इस ग्रंथको हुम्बडकुलभूषण कुँवरसिंहके सुपुत्र सिद्धपालके अनु-रोधसे रचा है। वे गुर्जरदेशके अन्तर्गत उन्मत्तदेशके वासी थे। आदि और अन्तमे कविने इस ग्रंथके प्रेरकका उल्लेख किया है

हुंवड-कुल-नहयलि पुप्फयंत, वहु देउ कुमरसिंहवि महंत।
तहो सुउ णिम्मलु गुण-गण-विसालु, सुपसिद्धउ पभणइ सिद्धपालु।
जसकित्तिविवुह-करि तुहु पसाउ, महु पूरहि पाइय कव्व-भाउ।
तं निसुणिवि सो भासेइ मंदु, पंगलु तोडेसइ केम चंदु।
इह हुइ वहु गणहरणाणवंत, जिणवयण-रसायण-वित्थरंत।

× × ×

गुज्जरदेसह उम्मत्त गामु, तहिं छड्डा-सुउ हुउ दोण णामु।
सिद्धउ तहो णंदणु भव्व-वंधु, जिण-धम्म-भारि जे दिण्णु खंधु।
तहु सुउ जिट्ठउ वहुदेव भव्वु, जे धम्मकज्जि विव कलिउ दव्वु।
तहु लहु जायउ सिरि कुमरसिंहु, कलिकाल-करिंदहो हणण सीहु।
तहो सुउ संजायउ सिद्धपालु, जिण-पुज्ज-दाण-गुणगण-रमालु।
तहो उवरोहिं इह कियउ गंथु, हउ णमु णमि किंपिवि सत्थु गंथु।

स्थितिकाल

ग्रंथके रचनाकालका उल्लेख न होनेसे महाकवि यशःकीर्त्तिके समयके सम्बन्ध-

में निश्चित रूपसे कुछ नही कहा जा सकता है। आमेर-शास्त्रभण्डारमे इनके द्वारा रचित ग्रन्थकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हैं। एक वि०स० १५८३ की और दूसरी १६०३की लिखी हुई है। श्री प० परमानन्दजी शास्त्रीने अपने 'प्रशस्ति-सग्रह' ग्रथमे वि० स० १५३० मे लिखित प्रतिका उपयोग किया है। अत इतना सुनिश्चित है कि वि० स० १५३० के पूर्व महाकवि यश कीर्त्ति हुए है। पूर्ववर्त्ती कवियोमे महाकवि यश कीर्त्तिने जिन कवियोका निर्देश किया हैं उनमे जिनसेन ही विक्रमकी नवम शताब्दीके कवि हैं। अत नवम शताब्दीके पश्चात् और १५ वी शताब्दीके पूर्व महाकवि यश कीर्त्ति हुए हैं। पर यह ६०० वर्षोंका अन्तराल खटकता है। कविकी रचनाका प्रेरक गुजरातका सिद्धपाल है। विक्रमकी ११ वी शताब्दीसे गुजरातकी समृद्धि विशेषरूपसे बढी है। सिद्धराज, जयसिह और कुमारपालने गुजरातके यशकी विशेषरूपसे वृद्धि की है। अतएव कविकी रचनाका प्रेरक सिद्धपाल विक्रमसवत् ११०० के उपरान्त होना चाहिए। अतएव कविने इस ग्रंथकी रचना ११ वी शतीके अन्तमे या १२ वी शतीके प्रारभमे की होगी।

रचना

चन्द्रप्रभचरित ११ सन्धियोमे लिखा गया है। इसमे कविने आठवे तीर्थंकर चन्द्रप्रभकी कथा गुम्फित की है। ग्रथका आरभ मगलाचरण, सज्जन-दुर्जन-स्मरणसे होता है। अनन्तर कवि मगलवती पुरीके राजा कनकप्रभका चित्रण करता है। ससारको असार और अनित्य जान राजा अपने पुत्र पद्मनामको राज्य देकर विरक्त हो जाता है। दूसरीसे पाँचवी सन्धि तक पद्मनामका चरित आया है और श्रीधर मुनिसे राजाका अपने पूर्व जन्मके वृत्तान्त सुननेका उल्लेख है। छठी सन्धिमे राजा पद्मनाम और राजा पृथ्वीपालके बीच युद्ध होनेकी घटना वर्णित है। राजा विजित होता है किन्तु पद्मनाम युद्धसे विरक्त हो जाता है और राज्यभार अपने पुत्रको देकर वह श्रीधर मुनिसे दीक्षा ग्रहण-कर लेता है। आगेवाली सन्धियोमे पद्मनामके चन्द्रपुरीके राजा महासेनके यहाँ चन्द्रप्रभ रूपमें जन्म लेने, ससारसे विरक्त हो केवलज्ञान प्राप्तकर अन्तमे निर्वाण प्राप्त करनेका वर्णन आया है।

इस ग्रथकी शैली सरल और इतिवृत्तात्मक है। शैलीकी आडम्बरहीनता भी इस ग्रथकी प्राचीनताका प्रमाण है। राजा, नगर, देश आदिका वर्णन सामान्यरूपमे ही आया है। कवि कहता है

तहि कणयप्पहु नामेण राउ जेपिच्छिवि सुरवइ हुउ विराउ।
जसु भमइ कित्ति भवणतरम्मि, थेक्कि अइसकडि निय घरम्मि।

कुछ दिनोंके पश्चात् जिनदत्तको समाधिगुप्त मुनिके दर्शन होते हैं। उनसे अपने पूर्वभव सुनकर वह विरक्त हो जाता है और मुनिदीक्षा ग्रहण कर लेता है तथा तपश्चरण द्वारा निर्वाण प्राप्त करता है।

कविने लोक-कथानकोंको धार्मिक रूप दिया है तथा घटनाओंका स्वाभाविक विकास दिखलाया है। इतना ही नहीं, कविने नगर-वर्णन, रूप-वर्णन, बाल-वर्णन, संयोग-वियोग-वर्णन, विवाह-वर्णन तथा नायकके साहसिक कार्यों-का वर्णन कर कथाको रोचक बनाया है।

इस कथा-काव्यमे कई मार्मिक स्थल हैं, जिनमें मनुष्य-जीवनके विविध मार्मिक प्रसंगोंकी सुन्दर योजना हुई है। बेटीकी भावभीनी विदाई, माताका नई बहूका स्वागत करना, बेटेकी आरती उतारना, जिनदत्तका समुद्रमे उतरना, समुद्र-सतरण, वनिताओंका करुण-विलाप ऐसे सरस प्रसंग हैं, जिनके अध्ययन-से मानवीय संवेदनाओंकी अनुभूति द्वारा पाठकका हृदय द्रवित एवं दीप्त हो जाता है। लज्जा, औत्सुक्य, मोह, विबोध, आवेग, अलसता, स्मृति, चिन्ता, वितर्क, धृति, चपलता, विषाद, उग्रता आदि अनेक संचारी भाव उद्बुद्ध होकर स्थायी भावोंको उद्दीप्त किया है। संयोग-वियोगवर्णनमे कविने रतिभावकी सुन्दर अभिव्यंजना की है। श्लेष, यमक, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, विशेषोक्ति, लोकोक्ति, विनोक्ति, सन्देह आदि अलंकारोंकी योजना की गयी है। छन्दोंमे विलासिनी, मौक्तिकदाम, मनोहरदाम, आरनाल, सोमराजी ललिता, अमरपुरसुन्दरी, मदनावतार, पद्मिनी, पंचचामर, पमाड़िया, नाराच, भ्रमरपद, तोड़या, त्रिभंगिका, जम्भेटिया, समानिका और आवली आदि प्रयुक्त हुए हैं।

कविने शृंगार और वीर-रसकी बहुत ही सुन्दर योजना की है। करुण रस भी कई सन्दर्भोंमें आया है।

अणुवयरयणपईव

इस ग्रंथमे कविने श्रावकोंके पालन करने योग्य अणुव्रतोंका कथन किया है। विषय-प्रतिपादनके लिये कथाओंका भी आश्रय लिया गया है। कविने लिखा है

मिच्छत्त-जरहिय-ससण-मित्त
णाणियणरिंद महणियणिमित्त ॥१॥
अवराह-बलाहय-विसम-वाय
वियसिय-जीवणरुह-वयण-छाय

भय-भरियागय-जण-रक्खवाल
छण ससि-परिसर-दल विउल-भाल।
ससार-सरणि-परिभमण-भीय
गुरु-चरण-कुसेसय-चचरीय।
पोरिय-धम्मासिय-विवुह-वग्ग
णाणिय-णिरुवम-णिव-णीइ-मग्ग।
जस-पसर-भरिय-ब्रभड-खड
मिच्छत्त-महीहर-कुलिस-दड।
तज्जिय-माया-मय-माण-डभ
महमड-करेणु-आलाण-थभ।
समयाणुवेइ गुरुयण-विणीय
दुत्थिय-णर-गिव्वाणावणीय।

शास्त्रोपदेशके वचनामृतके पानसे तृप्त भव्यजन मिथ्यात्वरूपी जीर्ण वृक्षको समाप्त कर डालते हैं। सम्यक्त्वरूपी सूर्यके उदय होते ही मिथ्यात्वरूपी अधकार क्षीण हो जाता है। अपरावरूपी मेघोको छिन्न-भिन्न करनेके लिए प्रचण्ड वायु, विकसित कमलके समान मुखकीर्तिके धारक, भयसे लदे हुए आने वाले जनोके रक्षपाल, पूर्ण चन्द्रमण्डलके अर्द्धभाग समान भालयुक्त, ससार-सरणिसे परिभ्रमणसे भीत, गुरुके चरणकमलोंके चचरीक, धर्मके आश्रित हुए समझदार लोगोका पोषण करने वाले, निरुपम राजनीतिमार्गके ज्ञाता, यशके प्रसारसे ब्रह्माण्डखण्डको भर देने वाले, मिथ्यात्वरूपी पर्वतके वज्रदण्ड, माया, मद, मान और दभके त्यागी, महामतिरूपी हस्तिको बाँधनेके स्तभ, समयवेदी, गुरुजन, विनीत और दुःखित नरोके कल्पवृक्ष, तुम कविजनोके मनोरजन, पाप-विभजन, गुणगणरूपी मणियोंके रत्नाकर और समस्त कलाओंके निर्मल सागर हो।

इस प्रकार कथाके माध्यमसे अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत, सप्तव्यसनत्याग, चार कषायोका त्याग, इन्द्रियोका निग्रह, अष्टाग सम्यक्दर्शन, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पुरुषार्थ, स्वाध्याय, आत्मसन्तोष, जिनपूजा, गुरुभक्ति आदि धार्मिक तत्त्वोका परिचय प्रस्तुत किया है।

लेखककी शैली उपदेशप्रद न होकर आख्यानात्मक है। और कविने अन्यापदेश द्वारा धार्मिक तत्त्वोकी अभिव्यञ्जना की है। यह ग्रथ लघुकाय होनेपर भी कथाके माध्यमसे धार्मिक तत्त्वोकी जानकारी प्रस्तुत करता है।

जसु तेय जलणि नक्खीवियगु, जलनिहि सलिलट्ठिउ सिरिचु वगु।
आइ५पु वि दिणि दिणि देइ झप, तत्तेअ तत्तु जय जणिय कप।
सवकुवि निप्पाइउ पढमु तासु, अब्भास करणि पडिमह पयासु।
रुवाहकारिउ काम वीरु, किउ तासु अगु मलिनहु सरीरु।

× × ×

घत्ता तिहुयणि बहुगुणजणि तसु पडिछदु न दीसइ।
होसइ गुण लेसइ जसु वाई सरिसो सइ॥ १९॥

नारी-चित्रणमे भी कविने अलकारोका प्रयोग नही किया है। कथाके प्रवाहमे वस्तुरुपात्मक ही चित्रण किया गया है। यद्यपि अग-प्रत्यगका चित्रण कविने किया है, पर भुक्त उपमानोंसे आगे नही बढ सका है

सिरिकताणामे तास कता, बहुरूव लच्छि सोहग्गा वता।
जीये मुहु इदहुलण वाणउ, ज पुण्णिमचदहु उवमाणउ।
तास तरलु णिम्मिलु जुउ णित्तह, ण अलि उरि ठिउ केइय पत्तह।
जइ सवणू जुवलु सोहाविलासु, ण मयण विहगम वरण पासु।
वच्छच्छलु न पोऊस कुभ, अह मयण-गव-नाय-पीण-कुभ।
अइ कखीणु मज्झु ण पिसुणजणू, थण रमण गुरुत्तणि कुवियमणू।
जह पिहुल णियवउ अप्पमाणु, ठिउ मयणराय पीढहु समाणु।

घत्ता हा इय मयणहु, जयजय जयणहु, उरु जुअल घर तोरणु।
अइ कोमलु स्तुप्पलु जिय पय कतिहि चोरणु॥ २।१०॥

इस ग्रथमे छन्दोका वैविध्य भी नही है और अलकारोका प्रयोग भी सामान्य रूपमे हुआ है। यह सत्य है कि रसमय स्थलोको कमी नही है।

देवचन्द

कवि देवचन्दने 'पासणाहचरिउ' की रचना गुदिज्ज नगरके पार्श्वनाथ मदिरमे की है। गुदिज्जनगार दक्षिण भारतमे कही अवस्थित है। कविने ग्रथके अन्तमे अपना परिचय दिया है, जिससे ज्ञात होता है कि कवि मूलसघ गच्छके विद्वान् वासवचन्दका शिष्य था। अन्तिम प्रशस्तिसे गुरुपरम्परा निम्न-प्रकार ज्ञात होती है

श्रीकीर्ति
|
देवकीर्ति
|

मौनीदेव
|
माधवचन्द्र
|
अभयनन्दी
|
वासवचन्द्र
|
देवचन्द्र

वासचन्द्रके सम्बन्धमे अन्वेषण करनेपर दो वासवचन्द्रोका पता चलता है। एक वे वासवचन्द्र हैं जिनका उल्लेख खजुराहोके वि०स० १०११ वैसाख शुक्ला सप्तमी सोमवारके दिन उत्कीर्ण किये गये जिननाथ मन्दिरके अभिलेखमे हुआ है, जो वहाँके राजा धगके राज्यकालमे उत्कीर्ण कराया गया था।[१] द्वितीय वासवचन्द्रका उल्लेख श्रवणबेलगोलके अभिलेखमे पाया जाता है। इस अभिलेखमे बताया है

'वासवचन्द्र-मुनीन्द्रो रुन्द्र-स्याद्वाद-तर्क्क-कर्क्कश-धिषण।
चालुक्य-कटक-मध्ये बाल-सरस्वतिरिति प्रसिद्धि प्राप्त ॥'[२]

× × ×

'श्रीमूलसङ्घद देशीयगणद वक्रगच्छद कोण्डकुन्दान्वयद परियलिय बड्डदेवर वलिय वासवचन्द्रपण्डित-देवरु।' इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि वासवचन्द्र मुनीन्द्र स्याद्वाद-विद्याके विद्वान् थे। कर्कश तर्क करनेम उनको बुद्धि पटु थी। उन्होने चालुक्य राजाकी राजधानीमे 'बालसरस्वती'की उपाधि प्राप्त की थी।

श्री प० परमानन्दजी शास्त्रीने अनुमान किया है कि श्रवणबेलगोलके अभिलेखमे उल्लिखित वासवचन्द्र ही देवचन्द्रके गुरु सभव है। पर यहाँ पर यह कठिनाई उपस्थित होती है कि मूलसघ देशीगण और वक्रगच्छमे कुन्दकुन्दके अन्वयमे देवेन्द्र सिद्धान्तदेव हुए। इनके शिष्य चतुर्मुखदेव या वृषभनन्दि थे। इन वृषभनन्दिके ८४ शिष्य थे। इनमे गोपनन्दि, प्रभाचन्द्र, दामनन्दि, गुणचन्द्र, माघनन्दि, जिनचन्द्र, देवेन्द्र, वासवचन्द्र, यशकीर्ति एव शुभकीर्ति प्रधान है। देवचन्द्रने प्रशस्तिमे अभयनन्दिको वासवचन्द्रका गुरु बताया है। अत इस गुरुपरम्पराका समन्वय श्रवणबेलगोलके शिलालेखमे उल्लिखित

१. Epigraphica India, Vol VIII, Page 136
२ स० डॉ० प्रो० हीरालाल जैन, जैन शिलालेख सग्रह, प्रथम भाग, माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रथमाला, अभिलेखसख्या ५५, पद्य २५।

गुरुपरम्परासे नही होता। अथवा यह भी संभव है कि वृषभनन्दिके ८४ शिष्योमें कोई शिष्य अभयनन्दि रहा हो और उसका सम्बन्ध वासवचन्द्रके साथ रहा हो।

कवि देवचन्द्रका व्यक्तित्व गृहत्यागीका है। कविने आरभमे पचपरमेष्ठि-की वन्दना की है। तदनन्तर आत्मलघुता प्रदर्शित करते हुए बताया है कि न मुझे व्याकरणका ज्ञान है, न छन्द-अलकारका ज्ञान है, न कोशका ज्ञान है और न सुकवित्व शक्ति ही प्राप्त है। इससे कविकी विनयशीलता प्रकट होती है।

पुष्पिकावाक्यमे कविको मुनि कहा गया है। अत: उन्हे गृहत्यागी विरक्त साधुके रूपमे जानना चाहिये। प्रशस्तिकी पक्तियोमें उन्हे रत्नत्रयभूषण, गुणनिधान और अज्ञानतिमिरनाशक कहा गया है।

रयणत्तय-भूसणसु गुण-णिहाणु,
अण्णाण-तिमिरप्पसरत-भाणु।

कविका पुष्पिकावाक्य निम्न प्रकार है -

'सिरिपासणाहचरिए चउवग्गफले भवियजणमणाणदे मुणिदेवयद-रइए महाकव्वे एयारसिया इमा सधी समत्ता।'

स्थितिकाल

कवि देवचन्द्रने कब अपने ग्रथकी रचना की, यह नही कहा जा सकता। 'पासणाहचरिउ'की प्रशस्तिमे रचनाकालका अकन नही किया गया है। और न ऐसी कोई सामग्री ही इस ग्रथमे उपलब्ध है जिसके आधार पर कविका काल निर्धारित किया जा सके। इस ग्रन्थकी जो पाण्डुलिपि उपलब्ध है वह वि०स० १४९८के दुर्मति नामक सवत्सरके पौष महीनेके कृष्णपक्षमे अल्लाउद्दीन के राज्यकालमे भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्तिके पदाधिकारी भट्टारक प्रतापकीर्त्तिके समयमे देवगिरि महादुर्गमे अग्रवाल श्रावक प० गागदेवके पुत्र पासराजके द्वारा लिखाई गई है। अतएव वि० सं० १४९८ के पूर्व इस ग्रथका रचनाकाल निश्चित है। यदि देवचन्द्रके गुरु वासवचन्द्रको देवेन्द्र सिद्धान्तदेवकी गुरु-परम्परामे मान लिया जाय, तो देवचन्द्रका समय शक स० १०२२ (वि० स० ११५७) के लगभग सिद्ध होता है। पासणाहचरिउकी भाषाशैली और वर्ण्य विषयसे भी यह ग्रथ १२वीं शताब्दीके लगभगका प्रतीत होता है। अतएव देवचन्द्रका समय १२वीं शताब्दीके लगभग है।

रचना

महाकवि देवचन्द्रकी एक ही रचना पासणाहचरिउ उपलब्ध है। इस

ग्रंथकी एक ही प्रति उपलब्ध है, जो प० परमानन्दजीके पास है। इस ग्रथमें ११ सन्धियाँ हैं और २०२ कडवक हैं। कविने पार्श्वनाथचरितको इस ग्रथमे निबद्ध किया है। पूर्वभवावलीके अनन्तर पार्श्वनाथके वर्त्तमान जीवनपर प्रकाश डाला गया है। उनकी ध्यानमुद्राका चित्रण करते हुए कविने लिखा है

तत्थ सिलायले थक्कु जिणिदो, सतु महतु तिलोयहो वदो।
पच-महव्वय-उद्दयकधो, निम्ममु चत्तचउव्विहबधो।
जीवदयावरु सगविमुक्को, ण दहलक्खणु धम्मु सुरुक्को।
जम्म-जरामरणुज्झियदप्पो, वारसमेयतवररामहप्पो।
मोहन्तमध-पयाव-पयगो, खतिलयारुहणे गिरितुगो।
सजम-सील-विहूसियदेहो, कम्म-कसाय-हुआसण-मेहो।
पुप्फवणुवरत्तोमरघसो, मोक्ख-महासरि-कीलणहसो।
इदिय-सप्पइ विसहरमतो, अप्पसरूव-समाहि-सरत्तो।
केवलणाण-पयासण-कखू, घाणपुरम्मि निवेसियचक्खू।
णिज्जियसासु पलबियन्वाहो, णि ऽपलदेह विसज्जिय-वाहो।
कचणसेलु जहा थिरचित्तो, दोधकछद इमो वुह वुत्तो।[१]

अर्थात् तीर्थंकर पार्श्वनाथ एक शिलापर ध्यानस्थ बैठे हुए हैं। वे त्रिलोकवर्त्ती जीवोके द्वारा वन्दनीय हैं, पचमहाव्रतोके धारक हैं। ममता-मोहसे रहित हैं और प्रकृति, प्रदेश, स्थिति तथा अनुभागरूप चार प्रकारके बन्धसे रहित हैं। दयालु और अपरिग्रही है। दशलक्षणधर्मके धारक हैं। जन्म, जरा और मरणके दर्पसे रहित और द्वादश तपोके अनुष्ठाता हैं। मोहरूपी अन्धकारको दूर करनेके लिये सूर्यतुल्य हैं। क्षमारूपी लताके आरोहणार्थ वे गिरिके तुल्य उन्नत हैं। सयम और शीलसे विभूषित हैं। और कर्मरूप कपाय-हुताशनके लिये मेघ हैं। कामदेवके उत्कृष्ट बाणको नष्ट करनेवाले तथा मोक्षरूप महासरोवरमे क्रीडा करनेवाले हस हैं। इन्द्रियरूपी विषधर सर्पोको रोकनेके लिये मत्र हैं। आत्मसमाधिमे लीन रहने वाले हैं। केवलज्ञानको प्रकाशित करने वाले सूर्य हैं। नासाग्रदृष्टि, प्रलब बाहु, योगनिरोधक, व्याधिरहित एव सुमेरुके समान स्थिर चित्त हैं।

इससे स्पष्ट है कि 'पासणाहचरिउ' एक सुन्दर काव्य है। इसमे महाकाव्यके सभी लक्षण पाये जाते हैं। बीच-बीचमे सिद्धान्त-विषयोका समावेश भी

१ जैन ग्रथप्रशस्तिसग्रह, द्वितीय भाग, वीर-सेवा-मदिर, २१ दरियागज, दिल्ली, प्रस्तावना, पृ० ७६ पर उद्धृत।

किया गया है। कविने इस ग्रथके बन्धगठनके सम्बन्धमे लिखा है

नाणाछद-बध-नीरधहिं, पासचरिउ एयारह-सधिहिं।
पउरच्छहि सुवण्णरस धडियहिं, दोन्निसयाइ दोन्नि पद्धडियहिं।
चउवग्ग-फलहो पावण-पयहो, सइ चउवीस होति फुडु गथहो।
जो णए देइ लिहाविड दाणइ, तहो सपज्जइ पचइ णाणइ।
जो पुणु वच्चइ सुललिय-भासइ, तहो पुण्णेण फलहि सव्वासइ।
जो पयउत्थु करे वि पउजइ, सो सग्गापवग्ग-सुहु भुजइ।
जो आयन्नइ चिए णियमिय मणु, सो इह लोइ लोइ सिरि भायणु।

नाना प्रकारके छन्दो द्वारा इस ग्रथको रचा गया है। नवरसोसे युक्त चतुवर्गके फलको देने वाले मृदुल और ललित अक्षरोसे युक्त नवीन अर्थको देने वाला यह ग्रथ है। कविने सकेत द्वारा काव्यके गुणोपर प्रकाश डाला है।

उदयचन्द्र

उदयचन्द्रने अपभ्रंश-भाषामे 'सुअवदहमीकहा' (सुगधदशमी कथा) ग्रथकी रचना की है। कविने इस ग्रथके अन्तमे अपना सक्षिप्त परिचय दिया है

इय सुअदिक्खहि कहिय सवित्थर, मइ गाविति सुणाइय मणहर।
णियकुलणह-उज्जोइय-चदइ। सज्जण-मण-कय-णयणाणदइ।
भवियण-कण्णग-मणहर भासइ। जसहर-णायकुमारहो वायइ।
वुहयण सुयणह विणउ करतइ। अइसुसील-देमइयहि कतइ।
एमहि पुणु वि सुपास-जिणेसर। कवि कागज्जउ महु परमेसर।

इन पक्तियोसे स्पष्ट है कि कविका नाम उदयचन्द्र था और उसकी पत्नीका देवमति।

श्री डॉ० हीरालालजी जैनने उदयचन्द्रके सम्बन्धमे प्रकाश डालते हुए लिखा है कि सुगन्ध-दशमी ग्रथके कर्त्ता वे ही उदयचन्द्र है, जिनका उल्लेख विनयचन्द्र मुनिने अपने गुरुके रूपमे किया है। 'णिज्झरपचमीकहा'मे विनयचन्द्रने अपनेको माथुरसघका मुनि बताया है। और इस ग्रन्थकी रचना त्रिभुवनगिरिकी तलहटीमे की गई बतलायी है। लिखा है

पणविवि पच महागुरु सारद धरिवि मणि।
उदयचदु गुरु सुमरिवि वदिय बालमुणि॥
विणयचदु फलु अक्खइ णिज्झरपचमिहि।
णिसुणहु धम्मकहाणउ कहिउ जिणागमहि।

× × ×

तिहुयणगिरि-तलहट्टी इहु रासउ रइउ ।
माथुरसंघह मुणिवरु-विणयचंदि कहिउ ॥

× × ×

उदयचंदु गुणगणहरु गरुवउ ।
सो मइ भावे मणि अणुसरियउ ॥
बालइंदु मुणि णविवि णिरंतरु ।
णरगउतारी कहमि कहंतरु ॥[1]

विनयचन्द्रमुनिकी एक अन्य रचना 'चूनडी' उपलब्ध है, जिसमें उन्होंने माथुरसंघके मुनि उदयचन्द्र तथा बालचन्द्रको नमस्कार किया है। और त्रिभुवनगिरिनगरके अजयनरेन्द्रकृत 'राजविहार'को अपनी रचनाका स्थान बताया है

माथुरसंघह उदयमुणीसरु ।
पणविवि बालइन्दु गुरु गणहरु ॥
जपइ विणयमयंकु मुणि ।
तिहुयणगिरिपुर जगि विक्खायउ ।
सग्गखंडु ण धरयलि आयउ ॥
तहिं णिवसंते मुणिवरे अजयणरिंदहो राजाविहारहिं ।
वेगें विरइय चूनडिय सोहहु मुणिवर जे सुयधारहिं ॥

इन उद्धरणोंसे यह अवगत होता है कि उदयचन्द्र माथुरसंघके थे। सुगन्ध-दशमीकथाकी रचनाके समय वे गृहस्थ थे। उन्होंने अपनी पत्नीका नाम देवमति बताया है। यही कारण है कि विनयचन्द्रने 'निज्झरपंचमीकहा' और बालचन्द्रने 'नरगउतारी कथा' में उन्हें गुरु विद्यागुरुके रूपमें स्मरण किया है, नमस्कार नहीं किया। उदयचन्द्रने दीक्षा लेकर जब मुनिचर्या ग्रहण कर ली, तो विनयचन्द्रने उन्हें 'चूनडी'में मुनीश्वर कहा है और अपने दीक्षागुरु बालचंद्रके साथ उन्हें भी नमस्कार किया है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि विनय-चन्द्रने विद्यागुरु होनेसे उदयचन्द्रका सर्वत्र पहले उल्लेख किया है और दीक्षागुरु बालचन्द्रका पश्चात्। बालचन्द्रने भी उदयचन्द्रको गुरुरूपमें स्मरण किया है।

उदयचन्द्र, बालचन्द्र और विनयचन्द्र माथुर संघके मुनि थे। इस संघका साहित्यिक उल्लेख सर्वप्रथम अमितगतिके ग्रन्थोंमें मिलता है। सुभाषितरत्न-

१ हीरालाल जैन, सुगन्धदशमी कथा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रस्तावना, पृ० २-३।

सन्दोहका रचनाकाल संवत् १०५० है और इस संघके दूसरे बड़े साहित्यकार अमरकीर्त्ति थे, जिन्होंने वि० सं० १२४७ में अपभ्रंशका 'छक्कम्मोवएस' लिखा है। अतएव उदयचन्द्र माथुर संघके आचार्य थे।

उदयचन्द्रने सुगन्धदशमी कथाके रचना-स्थानका उल्लेख नहीं किया, किन्तु उनके शिष्य बालचन्द्रने 'नरगउतारीकथा' का रचनास्थल यमुना नदीके तटपर बसा हुआ महावन बतलाया है। विनयचन्द्रने अपनी दो रचनाओं 'निर्झरपंचमीकथा' और 'चूनड़ी' को त्रिभुवनगिरिमें रचित कहा है। डॉ० हीरालालजीने महावनको मथुराके निकट यमुनानदीके तटपर बसा हुआ बताया है। और त्रिभुवनगिरि तिहनगढ़—थनगिर है, जो मथुरा या महावनसे दक्षिण पश्चिमकी ओर लगभग ६० मील दूर राजस्थानके पुराने करौली राज्य और भरतपुर राज्यमें पड़ता है। इस प्रकार इन ग्रन्थकारोंका निवास और विहार प्रदेश मथुरा जिला और भरतपुर राज्यका भूभाग माना जा सकता है।

स्थितिकाल

उदयचन्द्रने अपनी रचना सुगन्धदशमीकथामें रचनाकालका निर्देश नहीं किया है और न विनयचन्द्रने ही अपनी किसी रचनामें रचनाकालका उल्लेख किया है। चूनड़ीमें यह अवश्य लिखा है कि त्रिभुवनगिरिमें अजयनरेन्द्रके राजविहारमें रहते हुए इस ग्रंथकी रचना की। डॉ० हीरालाल जैनका[1] कथन है कि भरतपुर राज्य और मथुरा जिलाके भूमिप्रदेशपर यदुवंशी राजाओंका राज्य था, जिसकी राजधानी श्रीपथ बयाना थी। यहाँ ११वीं शतीके पूर्वार्द्धमें जगत्पाल नामक राजा हुए। उनके उत्तराधिकारी विजयपाल थे, जिनका उल्लेख विजय नामसे बयानाके सन् १०४४ ई० के उत्कीर्ण लेखमें किया गया है। इनसे उत्तराधिकार त्रिभुवनपालने बयानासे १४ मील दूरीपर तिहनगढ़ नामका किला बनवाया। इस वंशके अजयपाल नामक राजाकी एक प्रशस्ति खुदी मिली है, जिसके अनुसार सन् ११५० ई० में उनका राज्य वर्तमान था। इनका उत्तराधिकारी हरिपाल हुआ, जिसका ११७० ई० का अभिलेख मिला है।

तिहनगढ़ या थनगढ़पर ११९६ ई० मुइज़ुद्दीन मु० गोरीने आक्रमण कर वहाँके राजा कुँवरपालको परास्त किया। और वह दुर्ग बहाउद्दीन तुघरिलको सौंप दिया। इस प्रकार मथुरापर १२वीं शती तक यदुवंशकी राज्यपरम्परा बनी रही।

१. सुगन्धदशमी कथा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रस्तावना, पृ० ४।

इस ऐतिहासिक विवेचनसे यह स्पष्ट होता है। कि सुगन्धदशमीकथाके कर्त्ता उदयचन्द्रके शिष्य विनयचन्द्रने जिस त्रिभुवनगिरिमे अपनी दो रचनाएँ पूर्ण की थी उसका निर्माण यदुवशी त्रिभुवनपालने अपने नामसे सन् १०४४ ई० के कुछ काल पश्चात् कराया। चूनड़ीकी रचना अजयनरेन्द्रके जिस राजविहारमे रहकर की थी वह निस्सन्देह उन्ही अजयपाल नरेश द्वारा निर्मित हुआ होगा, जिनका ११५० ई० का उत्कीर्ण लेख महावनमे मिला है। सन् ११९६ ई० मे मुसलमानोके आक्रमणसे त्रिभुवनगिरि यदुवशी राजाओंके हाथसे निकल चुका था। अतएव त्रिभुवनगिरिमे लिखे गये उक्त दोनो ग्रथोका रचनाकाल ११५० ई०–११९६ ई० के बीच सभव है। चूनडीकी रचनाके समय उदयचन्द्र मुनि हो चुके थे, पर सुगन्धदशमीकथाकी रचनाके समय वे गृहस्थ थे। अतएव बालचन्द्रका समय ई० सन्की १२वी शताब्दी माना जा सकता है।

रचना

कवि उदयचन्द्रकी 'सुअधदहमीकहा' नामकी एक ही रचना उपलब्ध है। सुगन्धदशमी कथामे बताया गया है कि मुनिनिन्दाके प्रभावसे कुष्ठरोगकी उत्पत्ति, नीच योनियोमे जन्म तथा शरीरमे दुर्गन्धका होना एव धर्माचरणके प्रभावसे पापका निवारण होकर स्वर्ग एव उच्च कुलमे जन्म होता है। कथामे बताया है कि एक बार राजा-रानी दोनो वन-विहारके लिए जा रहे थे कि सुदर्शन नामक मुनि आहारके लिए आते दिखाई दिये। राजाने अपनी पत्नीको उन्हे आहार करानेके लिये वापस भेजा। रानीने क्रुद्ध हो मुनिराजको कडवी तुम्बीका आहार करवाया। उसकी वेदनासे मुनिका स्वर्गवास हो गया। राजाको जब यह समाचार मिला तो उन्होने उसे निरादरपूर्वक निकाल दिया। उसे कुष्ठ व्याधि हो गई और वह सात दिनके भीतर मर गई। कुत्ती, सूकरी, शृगाली, गदही आदि नीच योनियोमे जन्म लेकर अन्तत पूतगन्धाके रूपमे उत्पन्न हुई।

सुव्रता आर्यिकासे अपने पूर्वभवका वृत्तान्त सुनकर पूतगन्धाको बड़ी आत्मग्लानि हुई और उसने मुनिराजसे उस पापसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये सुगन्धदशमीव्रत ग्रहण किया और इस व्रतके प्रभावसे दुर्गन्धा अपने अगले जन्ममे रत्नपुरके सेठ जिनदत्तकी रूपवती पुत्री तिलकमति हुई। उसके जन्मके कुछ ही दिन बाद उसकी माताका देहान्त हो गया। तथा उसके पिताने दूसरा विवाह कर लिया। इस पत्नीसे उसे तेजमती कन्या उत्पन्न हुई। सौतेली माँ अपनी पुत्रीको जितना अधिक प्यार करती थी, तिलकमतीसे उतना ही द्वेष। इस कारण इस कन्याका जीवन बडे दु खसे व्यतीत होने लगा। कन्याओंके वयस्क होनेपर पिताको विवाहकी चिन्ता हुई। पर इसी समय उन्हे वहाँके

नरेश कनकप्रभका आदेश मिला कि वे रत्नोंको खरीदनेके लिए देशान्तर जायें। जाते समय सेठ अपनी पत्नीसे कह गया कि सुयोग्य वर देखकर दोनों कन्याओंका विवाह कर देना। जो भी वर वरने आते वे तिलकमतिके रूपपर मुग्ध हो जाते और उसीकी याचना करते। पर सेठानी उसकी बुराई कर अपनी पुत्रीको आगे करती और उसीकी प्रशंसा करती। तो भी वरके हठसे विवाह तिलकमतिका ही पक्का करना पड़ा। विवाहके दिन सेठानी तिलकमतिको यह कहकर श्मसानमें बैठा आई कि उनकी कुलप्रथानुसार उसका वर वहीं आकर उससे विवाह करेगा, किन्तु घर आकर उसने यह हल्ला मचा दिया कि तिलकमति कहीं भाग गई। लग्नकी वेला तक उसका पता न चल सकनेके कारण वरका विवाह तेजमतीके साथ करना पड़ा। इस प्रकार कपटजाल द्वारा सेठानीने अपनी इच्छा पूर्ण की।

इधर राजाने भवनपर चढ़ कर देखा कि एक सुन्दर कन्या श्मशानमें बैठी हुई है। वह उसके पास गया और सारी बातें जानकर उससे विवाह कर लिया। राजाने अपना नाम पिंडार बतलाया। कन्याने यह सारा समाचार अपनी सौतेली माँको कहा। सौतेली माँने एक पृथक् गृहमें उसके रहनेकी व्यवस्था कर दी। राजा रात्रिको उसके पास आता और सूर्योदयके पूर्व ही चला जाता। पतिने रत्नजटित वस्त्राभूषण भी उसे दिये, जिन्हें देख सेठानी घबरा गई। और उसने निश्चय किया कि उसके पतिने राजाके यहाँसे इन्हें चुराया है। इसी बीच सेठ भी विदेशसे लौट आया। सेठानीने सब वृत्तान्त सुनाकर राजाको खबर दी। राजाने चिन्ता व्यक्त की और सेठको अपनी पुत्रीसे चोरका पता प्राप्त करनेका आग्रह किया। पुत्रीने कहा कि मैं तो उन्हें केवल चरणके स्पर्शसे पहचान सकती हूँ। अन्य कोई परिचय नहीं। इस पर राजाने एक भोजका आयोजन कराया, जिसमें सुगन्धाको आँखें बाँधकर अभ्यागतोंके पैर धुलानेका काम सौंपा गया। इस उपायसे राजा ही पकड़ा गया। राजाने उस कन्यासे विवाह करनेका अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया, जिससे समस्त वातावरण आनन्दसे भर गया। इस प्रकार मुनिके प्रति दुर्भावके कारण जो रानी दुःखी, दरिद्री और दुर्गन्धा हुई थी वही सुगन्धदशमीव्रतके पुण्य प्रभावसे पुनः रानीके पदको प्राप्त हुई।

यह कथा वर्णनात्मक शैलीमें लिखी गई है, पर बीच-बीचमें आये हुए संवाद बहुत ही सरस और रोचक हैं। राजा-रानीसे कहता है

दिट्ठउ वि सुदसणु मुणिवरिंदु। मयलछणहीणु अउव्व-इंदु।
दो-दोसा-आसा चत्तकाउ। णाणत्तय-जुत्तउ वीयराउ।

सव्वंग-मलेण विलित्तगत्तु । चउ-विकहा-वण्णणे जो विरत्तु ।
परमेसरु सिरि मासोपवासि । गिरिकंदरे अहव मसाणवासि ।
सो पेक्खिवि परमाणंदएण । पभणिय पियपरमसणेहएण ।
इह पेसणजोग्गु ण अण्णु को वि । तो हउ मि अह व फुडु पत्तु होइ ।
जाएप्पिणु अणुराएण वुत्तु । पारणउ करावहि मुणि तुरत्त ।
लब्भइ पियमेलण भवसमुद्दे । वणकीलारोहणु गय वरिंदे ।
इउ सुलहउ जीवहो भवि जि भए । दुलहउ जिणधम्मु भवण्णवए ।
दुलहउ सुपत्तदाणु वि विमलु । मुत्ताहल-सिप्पिहि जेम जलु ।

अर्थात् मुनीश्वर सुदर्शनका दर्शन पाकर राजाको परमानन्द हुआ । उन्होंने अपनी रानी श्रीमतीसे कहा 'प्रिय ! इस समय हमे अपने कर्तव्यका निर्वाह करना चाहिए । मुनि आहारन्दानकी क्रिया सेवक-सेविकाओसे सम्पन्न होने की नही । इसे तो मुझे या तुम्हे सम्पन्न करना होगा । अतएव तुम स्वय जाकर धर्मानुराग सहित मासोपवासी मुनिराजको पारणा कराओ । इस भव-सागरमे प्रियमिलन, वनक्रीडा, राजारोहण आदि सुख तो इस जीवको जन्म-जन्मान्तरमे सुलभ हैं, किन्तु इस भव-समुद्रमे जिनधर्मकी प्राप्ति दुर्लभ है। और उसमे भी अतिदुर्लभ है शुद्ध सुपात्रदानका अवसर । जिस प्रकार मुक्ता-फलकी सीपके लिये स्वातिनक्षत्रका जलविन्दु दुर्लभ होता है । अतएव सद्भाव सहित वर जाकर अनुरागसहित इन मुनिराजको आहार कराओ, जो प्राशुक और गीला हो, मधुर और रसीला हो, जिससे इनका धर्मसाधन सुलभ हो ।

कटुकफलोका आहार-दान करनेसे रानीको अनेक कुगतियोमे भ्रमण करना पडा । प्रथम-सन्धिके १२ कडवकोमे कुगति-भ्रमणके अनन्तर मुनिराज द्वारा विधिपूर्वक सुगन्धदशमीव्रतका विवेचन किया गया है । और दुर्गन्धाने उस व्रतका विधिपूर्वक पालन किया है । कविने विमाता और तिलकमतीके सवादका भी अच्छा चित्रण किया है । परीक्षाके हेतु राजाने भोजका आयोजन किया और उसी भोजमे राजा पतिके रूपमे पहचाना गया । इस प्रकार कविने इस कथाको पूर्णतया सरस वनानेका प्रयास किया है ।

वालचन्द्र

कवि वालचन्द्रका सम्वन्ध उदयचन्द्र और विनयचन्द्रके साथ है । ये मायुर-सघके आचार्य थे । वालचन्द्रने अपने गुरुका नाम उदयचन्द्र वतलाया है । 'णिद्दुक्खसत्तमीकहा' के आदिमे लिखा है

'संतिजिणिंदहु-पय-कमलु भव-सय-कलुस-कलंक-निवारु ।
उदयचन्दगुरु घरेवि मणे वालइंदुमुणि णविवि णिरंतरु ॥'

स्पष्ट है कि कविके गुरुका नाम उदयचन्द्र मुनि था। बालचन्द्रके शिष्य विनयचन्द्र मुनि थे। कवि व्रतकथाओंका विज्ञ है और व्रताचरण द्वारा ही व्यक्ति अपना उत्थान कर सकता है, इस पर उन्हे विश्वास है।

श्री डॉ० हीरालालजी जैनने सुगन्धदशमी कथाकी प्रस्तावनामे उदयचन्द्र-का समय ई० सन्‌की १२वी शती सिद्ध किया है। उन्होने विनयचन्द्र द्वारा रचित 'चूनड़ी'के उल्लेखोके आधारपर अभिलेखीय और ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत कर निष्कर्ष निकाले हैं। डॉ० जैनने लिखा है "सुगन्धदशमीकथाके कर्ता उदयचन्द्रके शिष्य विनयचन्द्रने जिस त्रिभुवनगिरि (तिहनगढ) मे अपनी उक्त दो रचनाएँ पूरी की थीं, उसका निर्माण इस यदुवंशके राजा त्रिभुवनपाल (तिहनपाल)ने अपने नामसे सन् १०४४के कुछ काल पश्चात् कराया था तथा अजयनरेन्द्रके जिस राजविहारमे रहकर उन्होने चूनडीकी रचना की थी, वह निस्सदेह इन्ही अजयपालनरेश द्वारा बनवाया गया होगा, जिनका सन् ११५०का उत्कीर्ण लेख महावनसे मिला है। सन् ११९६ मे त्रिभुवनगिरि उक्त यदुवंशी राजाओके हाथसे निकलकर मुसलमानोके हाथमे चला गया। अतएव त्रिभुवनगिरिके लिखे गये उक्त दोनो ग्रन्थोका रचनाकाल लगभग सन् ११५० और ११९६ के बीच अनुमान किया जा सकता है।"[1]

अतः स्पष्ट है कि कवि बालचन्द्रका समय ई० सन्‌की १२वीं शती है।

रचनाएँ

कविकी दो कथा-कृतियाँ उपलब्ध हैं १. णिद्दुक्खसत्तमीकहा और २ नरक उतारीदुधारसीकथा। प्रथम कथाग्रन्थमे 'निर्दुःखसप्तमीव्रतके करनेकी विधि और व्रतपालन करने वालेकी कथा वर्णित है। यह व्रत भाद्रपद शुक्ला सप्तमीको किया जाता है। इस व्रतमे 'ॐ ह्रूं असिआउसा' इस मन्त्रका जाप किया जाता है। व्रतके पूर्व दिन संयम धारण किया जाता है और व्रतके अगले दिन भी संयमका पालन किया जाता है। इस व्रतमे प्रोषधोपवासकी विधि सम्पन्न की जाती है। सात वर्षो तक व्रतके पालन करनेके पश्चात् उद्यापन करनेकी विधि बतायी है। लिखा है

"किज्जइ धण सत्तिहिं उज्जवणउ, विविह-ण्हवणेंहि दुह-दमणउ।

१ डॉ० हीरालाल जैन, सुगन्धदशमी कथा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, सन् १९६६, प्रस्तावना पृ० ४।

आयण्णि वि मुणि भासियउ, राएँ गुण अणुराउ वहते।
लयउ धम्मु सावय जणहि, तिन्यरणेहि विहिउ उत्तम सत्ते।"

कविका दूसरा ग्रन्थ 'नरकउतारीदुवारसी कथा' है। इस कथामे नरकगतिसे उद्धार करनेके लिए वारक्रमानुसार रसका परित्यागकर व्रताचरण करने और इस व्रताचरणके द्वारा प्राप्त किये गये फलका कथन किया है। ग्रन्थके आरम्भमे लिखा है

समवसरण-सीहासण-सठिउ, सो जि देउ महु मणह पइट्ठउ।
अवर जी हरिहर बभु पडिल्लउ, ते पुण णमउ ण मोह-गहिल्लउ॥
छह दसण जा थिर करइ वियरइ वुद्धि-पगासा।
सा सारद जइ पुज्जियइ, लब्भइ वुद्धि सहासा।
उदयचन्द्र मुणि गणहि जुगइणउ सोमइ भावे मणि अणुसरिउ।
वालइदु सुणि णविवि णिरतरु णरगउतारी कहयि कहतरु।

इस प्रकार मुनि वालचन्द्रने अपभ्रशमे कथा-ग्रन्थोकी रचना कर साहित्यिक समृद्धिमे योगदान किया है।

विनयचन्द्र

विनयचन्द उदयचन्द्रके प्रशिष्य और वालचन्द्रके शिष्य थे। उदयचन्द्र और वालचन्द्रके समयपर पूर्वमे प्रकाश डाला जा चुका है। अतएव उनका समय ई० सन्‌की १२वी शताब्दी प्राय निर्णीत है। विनयचन्द्रने तीन रचनाएँ लिखी हैं १ चूनडीरास, २ निर्झरपचमीकहारास और ३ कल्याणकरास। चूनडीरासमे ३२ पद्य हैं। यह रूपक-काव्य है। कवि मुनिविनयचन्द्रने चूनडी नामक उत्तरीयवस्त्रको रूपक बनाकर गीतिकाव्यकी रचना की है। कोई मुग्धा युवती हँसती हुई अपने पतिसे कहती है कि हे प्रिय। जिनमदिरमे भक्तिभावपूर्वक दर्शन करने जाइये और कृपाकर मेरे लिये एक अनुपम चूनडी छपवाकर ले आइये, जिससे मैं जिनशासनमे प्रवीण हो सकूँ। वह यह भी अनुरोध करती है कि यदि आप उसप्रकारकी चूनडी छपवाकर नही दे सकेगे, तो वह छापने वाला छीपा तानाकशी करेगा। पति पत्नीकी बाते सुनकर कहता है हे मुग्धे, वह छीपा मुझे जैनसिद्धान्तके रहस्यसे परिपूर्ण एक सुन्दर चूनडी छापकर देनेको कहता है।

कविने इस चूनडीरासमे द्रव्य, अस्तिकाय, गुण-पर्याय, तत्त्व, दशधर्म, व्रत आदिका विश्लेषण किया है।

चूनड़ी उत्तरीयवस्त्र है, जिसे राजस्थानकी महिलाएँ ओढती हैं। कविने

इसी रूपकके माध्यमसे संकेतो द्वारा जैनसिद्धान्तके तत्त्वोकी अभिव्यंजना की है। यह गीतिकाव्य कण्ठको तो विभूषित करता ही है, साथ ही भेदविज्ञानकी भी शिक्षा देता है।

इस सरस, मनोरम और चित्ताकर्षक रचना पर कविकी एक स्वोपज्ञ टीका भी उपलब्ध है, जिसमे चूनडीरासमे दिये गये शब्दोंके रहस्यको उद्घाटित किया गया है।

निर्झरपंचमीकहामे निर्झरपंचमीके व्रतका फल बतलाया गया है। इस व्रतकी विधिका निरूपण करते हुए कविने स्वयं लिखा है

"धवल पक्खि आसाढहिं पंचमि जागरणू,
सुह उपवासइ किज्जइ कातिग उज्जवणू।
अह सावण आरंभिय पुज्जइ आगहणो,
इह मइ णिज्झर-पंचमि अक्खिय भय-हरणो ॥"

अर्थात् आषाढ शुक्ला पंचमीके दिन जागरणपूर्वक उपवास करे और कार्तिकके महीनेमे उसका उद्यापन करे। अथवा श्रावणमे आरंभ कर अगहनके महीनेमे उद्यापन करे। उद्यापनमे पाँच छत्र, पाँच चमर, पाँच वर्तन, पाँच शास्त्र और पाँच चन्दोवे या अन्य उपकरण मंदिरमे प्रदान करने चाहिए। यदि उद्यापनकी शक्ति न हो, तो दूने दिनो तक व्रत करना चाहिए।

निर्झरपंचमीव्रतके उद्यापनमे पंच परमेष्ठीकी पृथक्-पृथक् पाँच पूजा, चौबीसीपूजन, विद्यमानविंशतितीर्थंकरपूजन, आदिनाथपूजन और महावीरस्वामीका पूजन, इस प्रकार नौ पूजन किये जाते है। कवि विनयचन्द्रने इस कथामे निर्झरपंचमीव्रतके फलको प्राप्त करनेवाले व्यक्तिकी कथा भी लिखी है।

कल्याणकरासमे तीर्थंकरोके पंचकल्याणकोकी तिथियोका निर्देश किया गया है। कविने लिखा है

पढम पक्खि दुइज्जहिं आसाढहि, रिसह गब्भज्जहिं उत्तर साढहि।
अंधियारी छट्ठिहि तहिंमि (हउ) वंदमि वासुपुज्ज गब्भुत्थउ।
विमलु सुसिद्धउ अट्ठमिहि दसमिहि, णामि जिण जम्मणु, तह तउ।
सिद्ध सुहकर सिद्धि पहु ॥२॥

कविने अंतिम पद्यमे बताया है कि एक तिथिमे एक कल्याणक हो, तो एक भक्त करे, दो कल्याणक हो तो निर्विकृति यह एक स्थानक करे, तीन हो तो आचाम्ल करे, चार हो तो उपवास करे अथवा सभी कल्याणकदिवसमे एक उपवास ही करे।

कविने लिखा है

"एयमत्तु एक्कि्जि कल्लाणइ, पिहि णिव्वियडि अहव इग ठाणइ।
तिहि आयविलु जिणु भणइ, चउहि होइ उववासु गिहत्थहं।
अहवा सयलह खवणविहि, विणयचदमुणि कहिउ समत्थह।
सिद्धि सुहकर सिद्धिपहु०"

इस काव्यमे २५ पद्य हैं। एक-एक पद्यमे प्रत्येक तीर्थंकरके कल्याणककी तिथियाँ वतलायी गई है। किसी-किसी पद्यमे दो-दो तीर्थंकरोकी कल्याणक-तिथियाँ हैं और कही दो-दो पद्योमे एक ही तीर्थंकरके कल्याणककी तिथि है। भाषा शैली प्रौढ है। यहाँ उदाहरणार्थ एक पद्य प्रस्तुत किया जाता है

णिम्मल दुइजहि सुविहि सु केवलु
णेमिहि छट्ठिहि गब्भु सुमगलु।
अरजिण-णाणु दुवारसिहि सभव-सभउ पुण्णिम-वासरि
णव कल्लाणह अट्ठ दिण इय विहिं पक्खहि कत्तिय-अवसरि।

महाकवि दामोदर

महाकवि दामोदरका वश मेउत्तय था। इनके पिताका नाम मल्ह था, जिन्होने रल्हका चरित लिखा था। ये सलखनपुरके वासी थे। इनके ज्येष्ठ भ्राताका नाम जिनदेव था। कवि मालवाका रहनेवाला था। यह दामोदर 'उक्ति-व्यक्ति-विवृत्ति' के रचयितासे भिन्न है। पुष्पिकावाक्यमे कविने निम्न प्रकार नामाकन किया है

"इय णेमिणाहचरिए महामुणिकमलभद्दपच्चक्खे महाकइ-कणिट्ठ-दामोयरविरइए पडियरामयद-आएसिए महाकव्वे मल्ह-सुअ-णग्गएव-आयण्णिए णेमिणिव्वाणगमण पचमो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥१४५॥"

इससे स्पष्ट है कि कवि दामोदरने महामुनि कमलभद्रके प्रत्यक्षमे प० रामचन्द्रके आदेशसे इस ग्रन्थकी रचना की। कविके पिताका नाम मल्ह था। उसने अपने वशका परिचय भी निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है

मेउत्तयवश-उज्जोण-करणु, जे हीण-दीण-दुइ-रोय-हरणु।
मल्हइ-णदणु गुणगणपवित्तु, तेणि भणिउ दल्हविरयहि चरित्तु।
मइं सलखणपुरि-णिवसतएण, किउ भव्वु कव्वु गुरु-आयरेण।

इस वश-परिचयसे इतना ही ज्ञात होता है कि कवि सलखनपुरका निवासी था और उसके पिताका नाम मल्ह या मल्हण और वडे भाईका नाम जिनदेव था।

कविने 'णेमिणाहचरिउ' की रचना की है। और यह ग्रथ टोडाके शास्त्र-भण्डारमे विद्यमान है।

इस ग्रथकी रचनाकी प्रेरणा देनेवाले व्यक्ति मालवदेशमें स्थित सलखन-पुरके निवासी थे। ये खडेलवालकुलभूषण, विषयविरक्त और तीर्थंकर महावीरके भक्त थे। केशवके पुत्र इन्दुक या इन्द्र थे, जो गृहस्थके षट्कर्मोका पालन करते थे तथा मल्हके पुत्र नागदेव पुण्यात्मा और भव्यजनोके मित्र थे। इन्हीकी प्रेरणा एव अनुरोधसे इस ग्रंथकी रचना की गई है।

स्थितिकाल

इस ग्रंथमें रचनाकालका उल्लेख आया है। बताया है कि परमारवशी राजा देवपालके राज्यमे वि० स० १२८७ मे इस ग्रंथकी रचना सम्पन्न हुई है। लिखा है

"बारह-सयाइ सत्तासियाइ, विक्कमरायहो कालह।
पमारह पट्टु समुद्धरण णरव्वइ देवपालह॥"

इस पद्यमे कविने मालवाके परमारवशी राजा देवपालका उल्लेख किया है। यह महाकुमार हरिश्चन्द्र वर्माका द्वितीय पुत्र था। अर्जुनवर्माको कोई सन्तान नही थी। अत उसके राजसिंहासनका अधिकार इन्हीको प्राप्त हुआ था। इसका अपर नाम साहसमल्ल था। इनके समयके तीन अभिलेख और एक दानपत्र प्राप्त होते हैं। एक अभिलेख हरसोडा गाँवसे वि० स० १२७५ मे और दो अभिलेख ग्वालियर-राज्यसे वि० स० १२८६ और वि० स० १२८९ के प्राप्त हैं।[1] मानधातासे वि० स० १२९२ भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमाका दानपत्र भी मिला है।[2] दिल्लीके सुल्तान समसुद्दीन अल्तमशने मालवा पर ई० सन् १२३१-३२ मे आक्रमण किया था और एक वर्षके युद्धके पश्चात् ग्वालियरको विजित किया था। इसके पश्चात् भेलसा और उज्जयिनीको भी जीता था। उज्जयिनीके महाकाल मदिरको भी तोडा था। सुल्तान जब लूट-पाट कर रहा था, उस समय वहाँका राजा देवपाल ही था। इसीके राज्यकालमे पं० आशाधरने वि० स० १२८५ मे नलकच्छपुरमे 'जिनयज्ञकल्प' नामक ग्रन्थकी रचना की है। 'जिनयज्ञकल्प'की प्रशस्तिमे देवपालका उल्लेख आया है।

दामोदर कविने वि० स० १२८७ मे 'णेमिणाहचरिउ' लिखा था। उससमय देवपाल जीवित था। पर जब आशाधरने वि०स० १२९२मे त्रिषष्ठिस्मृतिशास्त्र

१ इडियन एण्टी क्वेरी, जिल्द २०, पृ० ८३ तथा पृ० ३११।

2 Epigrahica Indica, Vol 9, Page 108-113.

लिखा, उससमय देवपालकी मृत्यु हो चुकी थी और उसका पुत्र जयतुगदेव राजा था। इससे यह ध्वनित होता है कि देवपालकी मृत्यु वि० स० १२९२ के पूर्व हो चुकी थी।

इसप्रकार कविने अपने ग्रन्थका जो रचनाकाल वतलाया है उसकी पुष्टि हो जाती है। अत कवि दामोदरका समय वि० स० की १३ वी शती है।

रचना

दामोदरके नामसे कई रचनाएँ प्राप्त होती है। पर णेमिणाहचरिउकी प्रशस्तिमें जो अपना परिचय दिया है उसका मेल श्रीपालकथाकी प्रशस्तिसे नही वैठता है। अतएव णेमिणाहचरिउका रचयिता दामोदर श्रीपालकथाके रचयिता दामोदरसे भिन्न है।

इस चरित-ग्रथमे पाँच सन्वियाँ है और २२वे तीर्थंकर नेमिनाथकी कथा गुम्फित है। प्रसगवश कविने श्रीकृष्ण, पाण्डव और कौरवोका भी जीवनवृत्त अकित किया है। यह सुन्दर और अर्थपूर्ण खण्डकाव्य है। इसमे सूक्ति और नीतिके उपदेशोंके साथ श्रावकधर्मका भी कथन आया है। इसी कारण कविने इस णेमिणाहचरिउको दुर्गति-निवारक कहा है

"चउविह-सघह सुहसति करणु,
णेमिसर-चरिउ वहुदुक्ख-हरणु।
दुज्जीह जि किणि वयनुणइ लेहि,
भवि-भाव-सिद्धि सभवउ तेहि।"

यह चरित-काव्य आडम्वरहीन और गभीर अर्थपरिपूर्ण है। कविने अपने गुरुका नाम दामोदर वताया है, जो गुणभद्रके पट्टधर शिष्य थे। पृथ्वीधरके पुत्र प० ज्ञानचन्द्र और प० रामचन्द्रने उपदेश दिया तथा जसदेवके पुत्र जस-विधानने वात्सल्यका भाव प्रदर्शित किया था।

दामोदर द्वितीय अथवा ब्रह्म दामोदर

ब्रह्म दामोदरने सिरिपालचरिउ और चदप्पहचरिउकी रचना की है। इन्होने ग्रथारभमे अपनी गुरुपरम्परा अकित की है। वताया है

मतोवहि वड्ढण पुण्णिमिदु, पहचदु भडारउ जगि अणिदु।
तहो पट्टवर-मडल मियकु, भव्वाण-पवोहणु विहुय-सकु।
सिरिपोमणदि णदिय समोहु, सुहचदु तासु सीसुवि विमोहु
परवाइय-मयगय-पचमुहु, परिपालिय-सजम-णियम-विहु।

तह पट्टसरोवर-रायहंसु, जिणचंदभडोरउ भुवणहंसु।
वंदिवि गुरुयण-चरणाणवंत, भत्तीइ पसण्णायर सुसंत।

बताया है कि मूलसंघ सरस्वतीगच्छ और बलात्कारगणके भट्टारक प्रभाचन्द्र, पद्मनन्दि, शुभचन्द्र, जिनचन्द्र और कवि दामोदर हुए। सिरिपालचरिउके पुष्पिकावाक्यमें कविने अपना नाम ब्रह्म दामोदर बताया है और इस ग्रंथको देवराजपुत्र साहू नक्षत्र नामांकित कहा है।

"इय सिरिपालमहाराजचरिए जयपयडसिद्धचक्कपरमातिसयविसेस-गुणणियर-भरिए बहुरोर-घोर-दुदुयर-वाहि-पसर-णिण्णासणे धम्मइपुरि सत्थपयपयासणो भट्टारयसिरिजिणचन्दसामिसीसब्रह्मदामोयरविरइए सिरिदेवराज-णंदण-साहुणक्खत्त-णामंकिए सिरिपालराय-मुत्तिगमणविहि-वण्णणो णाम चउत्थो संधिपरिच्छेओ समत्तो।"

कविने इस ग्रन्थको इक्ष्वाकुवंशीय देवराजसाहूके पुत्र नक्षत्रसाहूके लिये रचा है। कविके गुरु जिनचन्द्र दिल्लीपट्टके भट्टारक थे। जिनचन्द्रकी उन दिनोंमें प्रभावशाली भट्टारकके रूपमें गणना थी। संस्कृत-प्राकृतके विद्वान् होनेके साथ ये प्रतिष्ठाचार्य भी थे। इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ प्रायः सभी प्रान्तोंमें पायी जाती हैं। शान्तिनाथमूर्तिके अभिलेखसे अवगत होता है कि पद्मनन्दीके पट्टपर शुभचन्द्र और शुभचन्द्रके पट्टपर जिनचन्द्र आसीन हुए थे। जिनचन्द्र वि० सं० १५०७ में भट्टारकपदपर प्रतिष्ठित हुए और ६४ वर्षों तक अवस्थित रहे। उनके अनेक विद्वान् शिष्य थे, जिनमें पं० मेधावी और दामोदर प्रधान हैं।

"सं० १५०९ वर्षे चैत्र सुदी १३ रविवासरे श्रीमूलसंघे भ० पद्मनन्दिदेवाः तत्पट्टे श्रीशुभचन्द्रदेवाः तत्पट्टे श्रीजिनचन्द्रदेवाः श्रीधौपे ग्रामस्थाने महाराजाधिराजश्रीप्रतापचन्द्रदेवराज्ये प्रवर्तमाने यदुवंशे लंवकंचुकान्वये साधुश्रीउद्धर्ण तत्पुत्र बसौ।"

× × ×

"संवत् १५०७ ज्येष्ठ वदि ५ भ० जिनचंद्रजी गृहस्थवर्ष १२, दिक्षावर्ष १५, पट्टवर्ष ६४ मास ८ दिवस १७, अन्तरदिवस १०, सर्ववर्ष ९१ मास ८ दिवस २७ बघेरवालजातिपट्ट दिल्ली।"

कविका स्थितिकाल पट्टावली, मूर्तिलेख एवं भट्टारक जिनचन्द्र द्वारा लिखित ग्रन्थ-प्रशस्तियों आदिके आधार पर वि० की १६वीं शती है। ब्रह्म दामोदर दिल्लीकी भट्टारकगद्दीसे सम्बद्ध हैं और जिनचन्द्रके शिष्य हैं। अतः इनके समय-निर्णयमें किसी भी प्रकारका विवाद नहीं है।

कविकी 'सिरिपालचरिउ' रचना काव्य और पुराण दोनों ही दृष्टियोंसे

महत्त्वपूर्ण है। इसमें ४ सन्धियाँ हैं। और सिद्धचक्रका महात्म्य वतलानेके लिए चम्पापुरके राजा श्रीपाल और नयनासुन्दरीका जीवनवृत्त अंकित है। नयनासुन्दरीने सिद्धचक्रव्रतके अनुष्ठानसे अपने कुष्ठी पति राजा श्रीपाल और उनके ७०० साथियोंको कुष्ठरोगसे मुक्त किया था।

कविकी दूसरी रचना 'चदप्पहचरिउ'मे अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभका जीवन गुम्फित है। इस ग्रन्थकी पाण्डुलिपि नागौरके भट्टारकीय शास्त्रभण्डारमे सुरक्षित है।

सुप्रभाचार्य

सुप्रभाचार्यने उपदेशात्मक ७७ दोहोंका एक 'वैराग्यसार' नामक लघुकाय ग्रन्थ लिखा है। कवि दिगम्बर सम्प्रदायका अनुयायी है। कविने स्वय दिगम्बर साधुका रूप उपस्थित किया है। लिखा है

रिसिदयवरवदिण सयण ज सुहु लहि विनजति।
झटित्त घए सुप्पउ भणइ घोरमसाणु नर्मात ॥४६॥

डॉ० हरिवश कोछडने कविका समय विचारधारा, शैली और भाषाके आधार पर ११वी और १३वी शताब्दीके मध्य माना है।

कविकी यह रचना सासारिक-विषयोकी अस्थिरता और दु खोकी वहुलताका प्रतिपादन कर धर्ममे स्थिर वने रहनेके लिये प्रेरित करती है। कविने लिखा है

सुप्पउ भणइ रे धम्मियहु, खसहु म धम्म णियाणि।
जे सूरग्गमि धवल घरि, ते अथवण मसाण ॥२॥
सुप्पउ भणइ मा परिहरहु पर-उवचार (यार) चरत्थु।
ससि सूर दुहु अथवणि अणहु कवण थिरत्थु ॥३॥

अर्थात् सुप्रभ कवि कहते हैं कि हे धार्मिको! निश्चित धर्मसे स्खलित न हो। जो सूर्योदयके समय शुभ्र गृह थे, वे ही सूर्यास्त पर श्मशान हो गये। अतएव परोपकार करना मत छोड़ो, ससार क्षणिक है। जव चन्द्र और सूर्य अस्त हो जाते है, तव कौन स्थिर रह सकता है।

यह ससार वस्तुत विडम्वना है, जिसमे जरा, यौवन, जीवन मरण, धन, दारिद्रय जैसे विरोधी तत्त्व हैं। वन्धु-वान्धव सभी नश्वर है, फिर उनके लिए पाप कर धन-सचय क्यो किया जाय। कवि इसी तथ्यकी व्यजना करता हुआ कहता है

जसु कारणि घणु संचइं, पाव करेवि, गहीर ।
त पिछहु सुप्पउ भणइं, दिणि दिणि गलइ सरीर ॥३३॥

कवि धन-यौवनसे विरक्त हो, घर छोड धर्ममे दीक्षा लेनेका उपदेश देता है। कविका यह विश्वास है कि धर्माचरण ही जीवनमे सबसे प्रमुख है। जो धर्मत्याग कर देता है वह व्यक्ति अनन्तकाल तक ससारका परिभ्रमण करता रहता है। कवि स्त्री, पुत्र और परिवारकी आसक्तिको पिशाचतुल्य मानता है। जबतक यह पिशाच पीछे लगा रहेगा, तक तक निरजनपद प्राप्त नही हो सकता। कविने लिखा है

जसु लग्गइ सुप्पउ भणइ पिय-घर-घरणि-पिसाउ ।
सो किं कहिउ समायरइ मित्त णिरजण भाउ ॥६१॥

'सुप्रभाचार्य कथयति यस्य पुरुषस्य गृह-पुत्र-कलत्र-धनादिप्रीतिमद् वस्तु एव पिशाचो लग्न तस्य पिशाचग्रस्तस्य पुरुषस्य न किमपि वस्तु सम्यग् स्वात्म-स्वरूप भासते यद्यदाचरते तत् सर्वमेव निरर्थकत्वेन भासते ।'

कविने दानका विशेष महत्त्व प्रतिपादित किया है और धनकी सार्थकता दानमे ही मानी है। जो दाता धन दान नही करता और निरन्तर उदर-पोषण मे सलग्न रहता है, वह पशुतुल्य है। मानव-जीवनकी सार्थकता दान, स्वाध्याय एव ध्यान-चिन्तनमे ही है। जो मूढ विषयोके अधीन हो अपना जीवन नष्ट करता है वह उसी प्रकारसे निर्बुद्धि माना जाता है जिस प्रकार कोई व्यक्ति चिन्तामणि रत्नको प्राप्त कर उसे यो ही फेंक दे। इन्द्रिय और मनका निग्रह करने वाला व्यक्ति ही जीवनको सफल बनाता है।

जसु मणु जीवइ विसयसुहु, सो णरु मुवो भणिज्ज ।
जसु पुण सुप्पय मणु मरइ, सो णरु जीव भणिज्ज ॥६०॥

'हे शिष्य ! य. पुरुष अथवा या स्त्री ऐन्द्रियेन विषयसुखेन कृत्वा जीवति हर्ष प्राप्नोति स नर. वा सा स्त्री मृतकवत् कथ्यते । तत सुप्रभाचार्य कथयति किं यो भव्य स्वमानस निग्रहयति स भव्य सर्वदा जीवति लोके रगर्यते ।'

इस प्रकार कवि सुप्रभने अध्यात्म और लोकनीति पर पूरा प्रकाश डाला है। इस दोहा-ग्रन्थके अध्ययनसे व्यक्ति अपने जीवनमे स्थिरता और बोध प्राप्त कर सकता है।

महाकवि रइधू

महाकवि रइधूके पिताका नाम हरिसिंह और पितामहका नाम सघपति देवराज था। इनकी माँका नाम विजयश्री और पत्नीका नाम सावित्री था। इन्हे

सावित्रीके गर्भसे उदयराज नामक पुत्र भी प्राप्त था। जिस समय उदयराजका जन्म हुआ, उस समय कवि अपने 'णेमिणाहचरिउ' की रचना कर रहा था। रइधू पद्मावतीपुरवालवंशमे उत्पन्न हुए थे। इनका अपरनाम सिंहसेन भी बताया जाता है। रइधू अपने माता-पिताके तृतीय पुत्र थे। इनके अन्य दो बडे भाई भी थे, जिनके नाम क्रमश बहोल और मानसिंह थे। रइधू काष्ठासघ मायुर-गच्छकी पुष्करगणीय शाखासे सम्बद्ध थे।

रइधूके ग्रन्थोकी प्रशस्तियोसे अवगत होता है कि हिसार, रोहतक, कुरुक्षेत्र, पानीपत, ग्वालियर, सोनीपत और योगिनीपुर आदि स्थानोके श्रावकोमे उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। वे ग्रन्थ-रचनाके साथ मूर्ति-प्रतिष्ठा एव अन्य क्रिया-काण्ड भी करते थे। रइधूके बालमित्र कमलसिंह सघवीने उन्हे बिम्ब-प्रतिष्ठाकारक कहा है। गृहस्थ होने पर भी कवि प्रतिष्ठाचार्यका कार्य सम्पन्न करता था।

कविके निवास-स्थानके सम्बन्धमे निश्चित रूपसे कुछ नही कहा जा सकता है। पर ग्वालियर, उज्जयिनीके उनके भौगोलिक वर्णनको देखनेसे यह अनुमान सहजमे लगाया जा सकता है कि कविकी जन्मभूमि ग्वालियरके आसपास कही होनी चाहिये, क्योकि उसने ग्वालियरकी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एव धार्मिक स्थितियोका जैसा विस्तृत वर्णन किया है उससे नगरीके प्रति कविका आकर्षण सिद्ध होता है। अतएव कविका जन्मस्थान ग्वालियरके आसपास होनी चाहिये।

रइधूने अपने गुरुके रूपमे भट्टारक गुणकीर्ति, यश कीर्ति, श्रीपाल ब्रह्म, कमलकीर्ति, शुभचन्द्र और भट्टारक कुमारसेनका स्मरण किया है। इन भट्टारकोके आशीर्वाद और प्रेरणासे कविने विभिन्न कृतियोकी रचना की है।

स्थितिकाल

महाकवि रइधूने अपनी रचनाओकी प्रशस्तियोमे उनके रचनाकालपर प्रकाश डाला है। अभिलेखो और परवर्ती साहित्यकारोके स्मरणसे भी कविके समय पर प्रकाश पड़ता है। कविने 'सम्मत्तगुणनिहाणकव्व'[1]की प्रशस्तिमे इस ग्रन्थ-का रचनाकाल वि० स० १४९९ भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा मगलवार दिया है। 'सुक्कोसलचरिउ'[2] का रचनाकाल वि० स० १४९६ अकित है। रइधू-साहित्यमे गणेगनृपसुत राजा डोगरसिंहका विस्तृत वर्णन आया है। रइधूके 'सम्मइ-जिणचरिउ'के एक उल्लेखके अनुसार वह उस समय ग्वालियर दुर्गमे ही निवास

१. सम्मतगुणनिहाणकव्व, ४।३४।८-१०।
२. सुक्कोसलचरिउ, ४।२३।१–३।

कर रहा था ।[1] इससे ज्ञात होता है कि डोगरसिंहका राज्यकाल वि० सं० १४-८२-१५११ है । अत 'सम्मइजिणचरिउ' की रचना भी इसी समय हुई होगी ।

वि० स० १४९७ का एक मूर्तिलेख उपलब्ध है, जिसमे कवि रइधूको प्रतिष्ठाचार्य कहा गया है । 'सुक्कोसलचरिउ' के पूर्व कवि 'रिट्ठणेमिचरिउ', 'पासणाहचरिउ', 'वलहद्दचरिउ', 'तेसट्ठिमहापुरिसचरिउ', 'मेहेसरचरिउ', 'जसहरचरिउ', 'वित्तसार', 'जीवधरचरिउ', 'सावयचरिउ' और 'महापुराण' की रचना कर चुका था ।

महाकवि रइधूने 'धण्णकुमारचरिउ' की रचना गुरु गुणकीर्ति भट्टारकके आदेशसे की है और गुणकीर्तिका समय अनुमानत वि० स० १४५७–१४८६ के मध्य है । कवि महिंदुने अपने 'सतिणाहचरिउ'मे अपने पूर्ववर्त्ती कवियोंके साथ रइधूका भी उल्लेख किया हे । इससे यह सिद्ध है कि रइधू वि० स० १५८७ के पूर्व ख्यात हो चुके थे ।

श्री डॉ० राजाराम जैनने रइधू-साहित्यके अध्ययनके आधारपर निम्न-लिखित निष्कर्ष उपस्थित किये हैं

१ महाकवि रइधूने भट्टारक गुणकीर्तिको अपना गुरु माना है । पद्मनाभ कायस्थने भी राजा वीरमदेव तोमरके मत्री कुशराजके लिये भट्टारक गुणकीर्ति-के आदेशोपदेशसे 'दयासुन्दरकाव्य' (यशोवरचरित) लिखा था । वीरमदेव तोमरका समय वि० स० १४५७–१४७६ है । अत गुणकीर्त्तिका भी प्रारम्भिक काल उसे माना जा सकता है । अत वि० स० १४५७ रइधूके रचनाकालकी पूर्वावधि सिद्ध होती है ।

२ रइधूने कमलकीर्त्तिके शिष्य भट्टारक शुभचन्द्र तथा डूगरसिंहके पुत्र राजा कीर्त्तिसिंहके कालकी घटनाओंके बाद अन्य किसी भी राजा या भट्टारक अथवा अन्य किसी भी घटनाका उल्लेख नही किया, जिससे विदित होता है कि उक्त भट्टारक एव राजा कीर्त्तिसिंहका समय ही रइधूका साहित्यिक अथवा जीवनका अन्तिम काल रहा होगा । राजा कीर्त्तिसिंह सम्बन्धी अन्तिम उल्लेख वि० सं० १५३६ का प्राप्त होता है । अत यही रइधूकालकी उत्तरावधि स्थिर होती है ।

इस प्रकार रइधूका रचनाकाल वि० स० १४५७–१५३६ सिद्ध होता है ।[2]

१ सम्मइ० १।३।९–१० ।

२ महाकवि रइधूके साहित्यका आलोचनात्मक परिशीलन, प्रकाशक प्राकृत जैन शास्त्र और अहिंसा शोध सस्थान, वैशाली, सन् १९७२, पृष्ठ १२० ।

रचनाएँ

महाकवि रइधूने अकेले ही विपुल परिमाणमे ग्रन्थोकी रचना की है। इसे महाकवि न कहकर एक पुस्तकालय-रचयिता कहा जा सकता है।

डॉ० राजाराम जैनने विभिन्न स्रोतोके आधारपर अभी तक कविकी ३७ रचनाओका अन्वेषण किया है।

१ मेहेसरचरिउ (अपरनाम आदिपुराण), २ णेमिणाहचरिउ (अपरनाम रिट्ठणेमिचरिउ), ३ पासणाहचरिउ, ४ सम्मइजिणचरिउ, ५ तिसट्ठिमहापुरिसचरिउ, ६ महापुराण, ७. बलहद्दचरिउ, ८ हरिवंशपुराण, ९ श्रीपालचरित, १० प्रद्युम्नचरित, ११ वृत्तसार, १२. कारणगुणषोडशी, १३ दशलक्षणजयमाला, १४ रत्नत्रयी, १५ षड्धर्मोपदेशमाला, १६ भविष्यदत्तचरित, १७. करकण्डुचरित, १८ आत्मसम्बोधकाव्य, १९ उपदेशरत्नमाला, २० जिमधरचरित, २१ पुण्याश्रवकथा, २२ सम्यक्त्वगुणनिधानकाव्य, २३. सम्यग्गुणारोहणकाव्य, २४ षोडशकारणजयमाला, २५ बारहभावना (हिन्दी), २६ सम्बोधपचाशिका, २७ धन्यकुमारचरित, २८ सिद्धान्तार्थसार, २९ वृहत्सिद्धचक्रपूजा (संस्कृत), ३० सम्यक्त्वभावना, ३१ जसहरचरिउ, ३२ जीणधरचरित, ३३ कोमुइकहापबधु, ३४ सुक्कोसलचरिउ, ३५ सुदसणचरिउ, ३६ सिद्धचक्कमाहप्प, ३७ अणथमिउकहा।[१]

कविको रचना करनेकी प्रेरणा सरस्वतीसे प्राप्त हुई थी। कहा जाता है कि एक दिन कवि चिन्तित अवस्थामे रात्रिमे सोया। स्वप्नमे सरस्वतीने दर्शन दिया और काव्य रचनेकी प्रेरणा दी। कविने लिखा है

सिविणतरे दिट्ठ सुयदेवि सुपसण्ण।
आहासए तुज्झ हउ जाए सुपसण्ण॥
परिहरहि मणचित करि भव्वु णिसु कव्वु।
खलयणहं मा डरहि भउ हरिउ मइ सव्व॥
तो देविवयणेण पडिउवि साणदु।
तक्खणेण सयणाउ उट्ठिउ जि गयत्तदु॥

सम्मइ० १।४।२–४।

अर्थात् प्रमुदितमना सरस्वतीदेवीने स्वप्नमे दर्शन दिया और कहा कि मै तुमपर प्रसन्न हूँ। मनकी समस्त चिन्ताएँ छोड हे भव्य। तुम निरतर काव्य-रचना करते रहो। दुर्जनोसे भय करनेकी आवश्यकता नही, क्यो कि भय सम्पूर्ण

१ रइधू साहित्यका आलोचनात्मक परिशीलन, पृष्ठ, ४९।

वृद्धिका आहरण कर लेता है। कवि कहता है कि मैं सरस्वतीके वचनोसे प्रतिबुद्ध होकर आनन्दित हो उठा और काव्य-रचनामे प्रवृत्त हो गया। कविकी रचनाओंके प्रेरक अनेक श्रावक रहे हैं, जिससे कवि इतने विशाल-साहित्यका निर्माण कर सका है।

'पासणाहचरिउ'मे कविने २३वे तीर्थंकर पार्श्वनाथकी कथा निबद्ध की है। यह ग्रन्थ डॉ० राजाराम जैन द्वारा सम्पादित होकर शोलापुर दोसी-ग्रन्थमालासे प्रकाशित है। यह कविका पौराणिक महाकाव्य है। कविने इसमे पार्श्वनाथकी साधनाके अतिरिक्त उनके शौर्य, वीर्य, पराक्रम आदि गुणोको भी उद्घाटित किया है। काव्यके संवाद रुचिकर हैं और उनसे पात्रोके चरित्र-पर पूरा प्रकाश पड़ता है। रइधूकी समस्त कृतियोमे यह रचना अधिक सरस और काव्यगुणोसे युक्त है। कथावस्तु सात सन्धियोमे विभक्त है।

'णेमिणाहचरिउ' मे २२वे तीर्थंकर नेमिनाथका जीवन वर्णित है। इसकी कथावस्तु १४ सन्धियोमे विभक्त है और ३०२ कड़वक है। इस पौराणिक महाकाव्यमे भी रस, अलंकार आदिकी योजना हुई है। इसमे ऋषभदेव, और वर्द्धमानका भी कथन आया है। प्रसंगवश भरत चक्रवर्ती, भोगभूमि, कर्मभूमि, स्वर्ग, नरक, द्वीप, समुद्र, भरत, ऐरावतादि क्षेत्र, षट्कुलाचल, गंगा, सिन्धु आदि नदियाँ, रत्नत्रय, पंचाणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत, अष्ट-मूलगुण, षड्द्रव्य एवं श्रावकाचार आदिका निरूपण किया गया है। मुनिधर्मके वर्णन-प्रसंगमे ५ समिति, ३ गुप्ति, १० धर्म द्वादश अनुप्रेक्षा, २२ परीषहजय और षडावश्यकका कथन आया है।[1] इसप्रकार यह काव्य दर्शन और पुराण तत्त्वकी दृष्टिसे भी समृद्ध है।

'सम्मइजिणचरिउ' इस काव्यमे अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरका जीवनचरित गुम्फित है। कविने दर्शन, ज्ञान और चारित्रकी चर्चाके अनन्तर वस्तुवर्णनोको भी सरस बनाया है। महावीर शैशव-कालमे प्रवेश करते हैं। माता-पिता स्नेहवश उन्हे विविध-प्रकारके वस्त्राभूषण धारण कराते हैं। कवि इस मार्मिक प्रसंगका वर्णन करता हुआ लिखता है

सिरि-सेहरु णिरुवमु रयणु-जडिउ। कुंडल-जुउ सरेणि सुरेण घडिउ।
भालयलि-तिलउ गलि-कुसुममाल। कंकणहिं हत्थु अलिगण खल॥
किंकिणिहि-सद्द-मोहिय-कुरंग। कडि-मेहलडिकदेसहिं अभंग॥
तह कट्ठाए वि मणि छुरियवंतु। उरु-हार अद्धहारहिं सहंतु।
णेवर-सज्जिय पायहिं पइट्ठ। अंगुलिय समुद्दादय गुणट्ठ।
सम्मइ० ५।२३।५-९।

१ णेमिणाहचरिउ १।३।५।

मेहेसरचरिउ

इस काव्यमे जयकुमार और सुलोचनाकी कथा अंकित है। इस ग्रन्थमे कुल १३ सन्धियाँ ३०४ कडवक और १२ संस्कृत पद्य है। यद्यपि इसमे मेघेश्वरकी कथा अंकित की गई है, पर कविने उसमे अपनी विशेषता भी प्रदर्शित की है। वह गंगा नदीमे निमग्न हाथीपरसे सुलोचनाको जलमे गिरा देता है। आचार्य जिनसेन अपने महापुराणमे सुलोचनासे केवल चीत्कार कराके ही गङ्गा-देवी द्वारा हाथीका उद्धार करा देते हैं। पर महाकवि रइधू इस प्रसगको अत्यन्त मार्मिक बनानेके लिए सती-साध्वी नायिका सुलोचनाको करुण चीत्कार करते हुए मूर्च्छित रूपमे अंकित करते हैं। पश्चात् उसके सतीत्वकी उद्दाम व्यंजनाके हेतु उसे हाथीपरसे गङ्गाके भयानक गर्तमे गिरा देते है। नायिकाकी प्रार्थना एवं उसके पुण्यप्रभावसे गङ्गादेवी प्रत्यक्ष होती हैं और सुलोचनाका जय-जय-कार करती हुई गङ्गातटपर निर्मित रत्नजटित प्रासादमे सिंहासनपर उसे आरूढ कर देती है। कथानकका चरमोत्कर्ष इसी स्थानपर संपादित हो जाता है।[1] कविने मेहेसरचरिउको पौराणिक काव्य बनानेका पूरा प्रयास किया है।

सिरिवालचरिउ

श्रीपालचरितकी दो धाराएँ उपलब्ध होती है। एक धारा दिगम्बर सम्प्र-दायमे प्रचलित है और दूसरी श्वेताम्बर सम्प्रदायमे। दोनो सम्प्रदायोकी कथा-वस्तुमे निम्नलिखित अन्तर है

१ माता-पिताके नाम सम्बन्धी अन्तर।

२ श्रीपालकी राजगद्दी और रोग सम्बन्धी अन्तर।

३ माँका साथ रहना तथा वैद्य सम्बन्धी अन्तर।

४ मदनसुन्दरी-विवाह सम्बन्धी अन्तर।

५ मदनादि कुमारियोकी माता तथा कुमारियोके नामोमें अन्तर।

६ विवाहके बाद श्रीपालके भ्रमणमे अन्तर।

७ श्रीपालका माता एव पत्नीसे सम्मेलनमे अन्तर।

श्रीपालचरित एक पौराणिक चरित-काव्य है। कविने श्रीपाल और नयना-सुन्दरीके आख्यानको लेकर सिद्धचक्रविधानके महत्त्वको अंकित किया है। यह विधान बडा ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है और उसके द्वारा कुष्ठ जैसे रोगोको दूर किया जा सकता है। नयनासुन्दरी अपने पिताको निर्भीकतापूर्वक उत्तर देती हुई कहती है

१. मेहेसर० ७।१६।१-१०-१०।

भो ताय-ताय पइँ णिरु अजुत्तु । जंपियउ ण मुणियउ जिणहु सुत्तु ।
वरकुलि उवण्ण जा कण्ण होइ । सा लज्ज ण मेल्लइ एच्छ लोय ।
वाद-विवाउ णउ जत्तु ताउ । तहँ पुणु तुव अक्खमि णिसुणि राय ।
विहुलोयविरुद्धउ एहु काजु । जं सु सइवरु गिण्हह सुज्झाजु ।
जइ मण इच्छइ किज्जइ विवाहु । तो लोयसुहिल्लउ इहु पवाहु ।
२।६।५।

अर्थात् हे पिताजी, आपने जिनागमके विरुद्ध ही मुझे अपने आप अपने पतिके चुनाव कर देनेका आदेश दिया है, किन्तु जो कन्याएँ कुलीन होती हैं वे कभी भी ऐसी निर्लज्जताका कार्य नहीं कर सकती । हे पिताजी, मैं इस सम्बन्ध में वाद-विवाद भी नहीं करना चाहती । अतएव हे राजन्, मेरी प्रार्थना ध्यान-पूर्वक सुनें । आपका यह कार्य लोक-विरुद्ध होगा कि आपकी कन्या स्वय अपने पतिका निर्वाचन करे । अत मुझसे कहे विना ही आपकी इच्छा जहाँ भी हो, वहीं पर मेरा विवाह कर दें ।

नयनासुन्दरीको भवितव्यता पर अपूर्व विश्वास है । वह स्वयकृत कर्मोंके फलभोगको अनिवार्य समझती है । कविने प्रसगवश सिद्धचक्रमहात्म्य, नवकार-महात्म्य, पुण्यमहात्म्य, सम्यक्त्वमहात्म्य, उपकारमहिमा एव धर्मानुष्ठानका महात्म्य वतलाया है । इस प्रकार यह रचना व्रतानुष्ठानकी दृष्टिसे भी महत्त्व-पूर्ण है ।

वलहद्दचरिउ

इस ग्रन्थमे रामकथा वर्णित है । वलभद्र रामका अपर नाम है । कविने परम्परागत रामकथाको ग्रहण किया है और काव्योचित वनानेके लिए जहाँ तहाँ कथामे सशोधन और परिवर्तन भी किये हैं ।

सुकोसलचरिउ

यह लोकप्रिय आख्यान है । कवि रइधूने चार सन्धियो और ७४ कड़वकोमे इस ग्रन्थको पूर्ण किया है । पुण्यपुरुष सुकोसलकी कथा वर्णित है ।

धण्णकुमारचरिउ

कविने धन्यकुमारके चरितको लेकर खण्डकाव्यकी रचना की है । इस काव्य-ग्रन्थमे वताया गया है कि पुण्यके उदयसे व्यक्तिको सभी प्रकारकी सामग्रियाँ प्राप्त होती हैं । कविने धर्म-महिमा, कर्म-महिमा, पुण्य-महिमा, उद्यम-महिमा, आदिका चित्रण किया है ।

सम्मत्तगुणणिहाणकव्व

यह अध्यात्म और आचारमूलक काव्य है। इसमे कविने सम्यग्दर्शन और उसके आठ अगोके नामोल्लेख कर उन अगोको धारण करनेके कारण प्रसिद्ध हुए महान् नर-नारियोके कथानक अंकित किये है। ग्रन्थमे चार सन्धियाँ और १०२ कड़वक हैं।

जसहरचरिउ

रइधूने भट्टारक कमलकीर्तिकी प्रेरणासे अग्रवालकुलोत्पन्न श्रीहेमराज सघपतिके आश्रयमे रहकर इस ग्रन्थकी रचना की है। इसमे ४ सन्धियाँ और १०४ कडवक हैं। पुण्यपुरुप यशोधरकी कथा वर्णित है।

वित्तसार

इस रचनामे कुल ८९३ गाथाएँ हैं और ७ अक है। कविने सिद्धोको नमस्कार कर व्रतसार नामक ग्रन्थके लिखनेकी प्रतिज्ञा की है। इसमे सम्यग्दर्शन, १४ गुणस्थान, द्वादशव्रत, ११ प्रतिमा, पचमहाव्रत, ५ समिति, षड्आवश्यक आदिके साथ कर्मोकी मूलप्रकृतियाँ उनके आस्रवके कारण स्थितिबंध, प्रदेशबन्ध, अनुभागबन्ध, द्वादश अनुप्रेक्षाएँ, दशधर्म, ध्यान, तीनो लोक आदिका वर्णन आया है। सिद्धान्त-विषयको समझनेके लिए यह ग्रन्थ उपयोगी है।

सिद्धंतत्थसारो (सिद्धान्तार्थसार)

इसमे १३ अक और १९३३ गाथाएँ है। गुणस्थान, एकादश प्रतिमा, द्वादशव्रत, सप्त व्यसन, चतुर्विध दान, द्वादश तप, महाव्रत, समितियाँ, पिण्डशुद्धि, उत्पाददोप, आहारदोप, सयोजनदोष, इगारधूमदोष, दातृदोष, चतुर्दश मलप्रकार, पचेन्द्रिय एव मन निरोध, षड्आवश्यक, कर्मबन्ध, कर्मप्रकृतियाँ, द्वादशागश्रुत, द्वादशागवाणीका वर्ण्यविषय, द्वादश अनुप्रेक्षा, दश धर्म, ध्यान आदिका वर्णन आया है।

अणथमिउकहा

इसमे रात्रि-भोजनत्यागका वर्णन है। तथा उससे सम्बन्धित कथा भी आई है।

इसप्रकार महाकवि रइधूने काव्य, पुराण, सिद्धान्त, आचार एव दर्शन विषयक रचनाएँ अपभ्रंशमे प्रस्तुत कर अपभ्रंश-साहित्यकी श्रीवृद्धि की है। श्री प० परमानन्दजी शास्त्रीके पश्चात् रइधू-साहित्यको सुव्यवस्थितरूपसे प्रकाशमे लानेका श्रेय डॉ० राजाराम जैनको है। महाकवि रइधूने षट्धर्मोपदेशमाला, उवएसरयणमाला, अप्पसव्वोहकव्व और सबोहपचासिका जैसे आचार सम्बन्धी ग्रन्थोकी भी रचना की है।

विमलकीर्ति

अपभ्रंशमे कथा-साहित्यकी रचना करनेवाले कवि विमलकीर्ति प्रसिद्ध हैं कवि माथुरगच्छ बागडसंघके मुनि रामकीर्तिका शिष्य था। सुगन्धदशमीकथाकी प्रशस्तिमे विमलकीर्तिको रामकीर्तिका शिष्य बताया गया है। लिखा है-

रामकित्ति गुरु विणउ करेविणु, विमलकित्ति महियलि पडेविणु।
पच्छइ पुणु तवयरण करेविणु, सइ अणुकमेण सो मोक्ख लहेसइ।[1]

जगत्सुन्दरीप्रयोगमालाकी प्रशस्तिमे भी विमलकीर्तिका उल्लेख आया है इस उल्लेखसे वह वायडसंघके आचार्य सिद्ध होते हैं।

आसि पुरा वित्थिण्णे वायडसंघे ससंघ-सकासो।
मुणि राम इत्ति धीरो गिरिव्व णइसुव्व गभीरो ॥१८॥
संजाउ तस्स सीसो विवुहो सिरि 'विमल इत्ति' विक्खाओ।
विमलयइकित्ति खडिया धवलिया धरणियल-गयणयलो ॥१९॥

जैन-साहित्यमे रामकीर्ति नामक दो विद्वान् हुए हैं। एक जयकीर्तिके शिष्य हैं, जिनकी लिखी प्रशस्ति चित्तौडमे वि० सं० १२०७ की प्राप्त हुई है। यही रामकीर्ति संभव है विमलकीर्तिके गुरु हो। जगत्सुन्दरीप्रयोगमालाके रचयिता यशःकीर्ति विमलकीर्तिके शिष्य थे। उस ग्रन्थके प्रारंभमे धनेश्वर सूरिका उल्लेख किया है। ये धनेश्वरसूरि अभयदेवसूरिके शिष्य थे और इनका समय वि० सं० ११७१ है। इससे भी प्रस्तुत रामकीर्ति १३ वी शतीके अन्तिम चरण और १३वीके प्रारंभिक विद्वान् ज्ञात होते हैं। प० परमानन्दजी शास्त्रीने भी विमलकीर्तिका समय १३वी शती माना है।

विमलकीर्तिकी एक ही रचना 'सोखवइविहाणकहा' उपलब्ध है। इसमे व्रत-विधि और उसके फलका निरूपण किया है। कविने इस कथाके अन्तमे आशीर्वाद देते हुए लिखा है कि जो व्यक्ति इस कथाको पढे-पढायेगा, सुने-सुनायेगा, वह संसारके समस्त दुःखोसे मुक्त होकर मुक्तिरमाको प्राप्त करेगा। बताया है

जो पढइ सुणइ मणि भावइ,
जिणु अरहंह सुह संपइ सो णरु लहइ।
णाणु वि पज्जइ भव-दुह-खिज्जइ
सिद्धि-विलासणि सो रमइ ॥

1 राजस्थान शास्त्रभंडारकी ग्रन्थसूची, चतुर्थ जिल्द, पृ० ६३२।

लक्ष्मणदेव

कवि लक्ष्मणदेवने 'णेमिणाहचरिउ' की रचना की है। इस ग्रन्थकी सन्धि-पुष्पिकाओमें कविने अपने आपको रत्नदेवका पुत्र कहा है। आरम्भकी प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि कवि मालवादेशके समृद्ध नगर गोणदमे रहता था। यह नगर उस समय जैनधर्म और जैनविद्याका केन्द्र था। कवि पुरवाडवशमे उत्पन्न हुआ था। यह अत्यन्त रूपवान, धार्मिक और धनधान्य-सम्पन्न था। कविकी रचनासे यह भी ज्ञात होता है कि उसने पहले व्याकरणग्रन्थकी रचना की थी, जो विद्वानोका कण्ठहार[1] थी। कविने प्रशस्तिमे लिखा है

मालवय-विसय अतरि पहाणु, सुरहरि-भूसिउ ण तिसय-ठाणु।
णिवसइ पट्टणु णामइँ महतु, गाणदु पसिद्ध वहु रिद्धिवतु।
आराम-गाम-परिमिउ घणेहि, ण भू-मडणु किउ णियय-देहि।
जहि सरि-सरवर चउदिसि रु वण्ण, आणदिय-पहियण तडि विसण्ण।
४।२१

× × ×

पउरवाल-कुल-कमल-दिवायरु, विणयवसु सँघहु मय सायरु।
घण-कण-पुत्त-अत्थ-सपुण्णउ, आइस रावउ रूव रवण्णउ।
तेण वि कयउ गयु अकसायउ, बवव अबएव सुसहायइ। ४।२२

इस प्रशस्तिके अवतरणसे यह स्पष्ट है कि कवि गोणन्दका निवासी था। यह स्थान सभवत उज्जैन और भेलसाके मध्य होना चाहिए। श्री डॉ० वासुदेव-शरण अग्रवालने 'पाणिनिकालीन भारत' मे लिखा है कि महाजनपथ, दक्षिण-मे प्रतिष्ठानसे उत्तरमे श्रावस्ती तक जाता था। यह लम्बा पथ भारतका दक्षिण-उत्तर महाजनपथ कहा जाता था। इसपर माहिष्मती, उज्जयिनी, गोनर्द, विदिशा और कौशाम्बी स्थित थे। हमारा अनुमान है कि यह गोनर्द ही कवि द्वारा उल्लिखत गोणन्द है। कविके अम्बदेव नामका भाई था, जो स्वय कवि था, जिसने कविको काव्य लिखनेकी प्रेरणा दी होगी।

स्थितिकाल

कविके स्थितिकालके सम्बन्धमे निश्चित रूपसे कुछ नही कहा जा सकता है, क्योकि कविने स्वय ग्रन्थरचना-कालका निर्देश नही किया है। और न अपनी गुर्वावली और पूर्व आचार्योका उल्लेख ही किया है। अतएव रचनाकाल-के निर्णयके लिए केवल अनुमान ही शेष रह जाता है।

१ जहि पढमु जाउ वायरण सारु, जो वुहियण-कठाहरणु चारु।

'णेमिणाहचरिउ' की दो पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध है। एक पाण्डुलिपि पचायतीमदिर, दिल्लीमे सुरक्षित है, जिसका लेखनकाल वि० सं० १५९२ है। इस ग्रन्थकी दूसरी पाण्डुलिपि वि० स० १५१० की लिखी हुई प्राप्त होती है। यह प्रति पाटोदी शास्त्र-भण्डार जयपुरमे है। अतएव यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ग्रन्थकी रचना वि० स० १५१० के पूर्व हुई है। भाषा-शैली और वर्णनक्रमकी दृष्टिसे यह ग्रन्थ १४वी शताब्दीका होना चाहिए। प्राय यह देखा जा सकता है कि प्राचीन अपभ्रंश-काव्योमे छन्दका वैविध्य नही है। इस प्रस्तुत ग्रन्थमे भी छन्द-वैविध्य नही पाया जाता है। हेला, दुवइ और वस्तुवन्ध आदि थोडे ही छन्द प्रयुक्त है।

रचना

कविकी एकमात्र 'णेमिणाहचरिउ' रचना ही उपलब्ध है। इस ग्रन्थमे चार सन्धियाँ या चार परिच्छेद और ८३ कडवक है। ग्रन्थ-प्रमाण १३५० श्लोकके लगभग है। प्रथम सन्धिमे मगल-स्तवनके अनन्तर, सज्जन-दुर्जन स्मरण किया गया है। तदनन्तर कविने अपनी अल्पज्ञता प्रदर्शित की है। मगधदेश और राज्यगृह नगरके वर्णनके पश्चात् कवि राजा श्रेणिक, द्वारा गौतम गणधरसे नेमिनाथका चरित वर्णन करनेके लिए अनुरोध कराता है। वराडक देशमे द्वारावती नगरीमे जनार्दन नामका राजा राज्य करता था। वही शौरीपुरनरेश समुद्रविजय अपनी शिवदेवीके साथ निवास करते थे। जरासन्धके भयसे यादवगण शौरीपुर छोड कर द्वारकामे रहने लगे। यही तीर्थंकर नेमिनाथका जन्म हुआ और इन्द्रने उनका जन्माभिषेक सम्पन्न किया।

दूसरी सधिमे नेमिनाथकी युवावस्था, वसन्तवर्णन, पुष्पावचय, जलक्रीडा आदिके प्रसग आये हैं। नेमिनाथके पराक्रमको देखकर कृष्णको ईर्ष्या हुई और वे उन्हे किसी प्रकार विरक्त करनेके लिए प्रयास करने लगे। जूनागढके राजाकी पुत्री राजीमतिके साथ नेमिनाथका विवाह निश्चित हुआ। बारात सजधज कर जूनागढके निकट पहुँचती है। और नेमिनाथकी दृष्टि पार्श्ववर्त्ती वाड़ोमे बन्द चीत्कार करते हुए पशुओपर पडती है। उनके दयालु हृदयको वेदना होती है और वे कहते हैं यदि मेरे विवाहके निमित्त इतने पशुओका जीवन सकटमे है तो ऐसा विवाह करना मैने छोडा।

पशुओको छुडवाकर रथसे उतर ककण और मुकुट फेंककर वे वनकी ओर चल देते हैं। इस समाचारसे बारातमे कोहराम मच जाता है। राजमती मूर्च्छा खाकर गिर पडती है। लोगोने नेमिनाथको लौटानेका प्रयत्न किया, किन्तु सब व्यर्थ हुआ। वे पासमे स्थित ऊर्जयन्तगिरिपर चले जाते है। और सहस्राम्र

वनमे वस्त्रालंकारका त्यागकर दिगम्बरमुद्रा धारण कर लेते हैं।

तीसरी सन्धिमे राजमतिकी वियोगावस्थाका चित्रण है। कविने बडी सहृदयता और सहानुभूतिके साथ राजमतिकी करुण भावनाओका चित्रण किया है। राजमति भी विरक्त हो जाती है और वह भी तपश्चरण द्वारा आत्म-साधनामे प्रवृत्त हो जाती है।

चतुर्थ सधिमे तपश्चर्याके द्वारा नेमिनाथको केवलज्ञानकी प्राप्ति होनेका कथन आया है। उनकी समवशरण-सभा आयोजित होती है। वे प्राणिकल्याणार्थ धर्मोपदेश देते हैं और अन्तमे निर्वाण प्राप्त करते है। कविने ससारकी विवशताका सुन्दर चित्रण किया है। कवि कहता है

जसु गेहि अण्णु तसु अरुइ होइ, जसु भोजसत्ति तसु ससु ण होइ।
जसु दाण छाहु तसु दविणु णत्थि, जसु दविणु तासु अइ-लोहु अत्थि।
जसु मयण राउ तसि णत्थि भाम, जसु भाम तसु छवण काम ॥३।२

अर्थात् जिस मनुष्यके घरमे अन्न भरा हुआ है उसे भोजनके प्रति अरुचि है। जिसमे भोजन पचानेकी शक्ति है उसे शस्य-अन्न नही। जिसमे दानका उत्साह है उसके पास धन नही। जिसके पास धन है उसमे अतिलोभ है। जिसमे कामका प्रभुत्व है उसके भार्या नही। जिसके पास भार्या है उसका काम शान्त है।

कविने सुभाषितोका भी प्रयोग यथास्थान किया है। इनके द्वारा उसने काव्यको सरस बनानेकी पूरी चेष्टा की है।

किं जीयइ धम्म-विवज्जिएण धर्मरहित जीनेसे क्या प्रयोजन ?
किं सुउइ समरि कायरेण युद्धमे कायर सुभटोसे क्या ?
किं वयण असच्चा भासणेण झूठ वचन बोलनेसे क्या प्रयोजन है ?
किं पुत्तइ गोत्त-विणासणेण कुलका नाश करनेवाले पुत्रसे क्या ?
किं फुल्लइ गंध-विवज्जिएण गन्धरहित फूलसे क्या ?

इस ग्रन्थमे श्रावकाचार और मुनि-आचारका भी वर्णन आया है।

तेजपाल

तेजपालके तीन काव्य-ग्रन्थ उपलब्ध है। कवि मूलसघके भट्टारक रत्नकीर्त्ति, भुवनकीर्त्ति, धर्मकीर्त्ति और विशालकीर्त्तिकी आम्नायका है। वासवपुर नामक गाँवमे वरसावडह वशमे जाल्हड नामके एक साहू थे। उनके पुत्रका नाम सुजउ साहू था। वे दयावन्त और जिनधर्ममे अनुरक्त थे। उनके चार पुत्र थे रणमल, वल्लाल, ईसरु और पोल्हणु। ये चारो ही भाई खण्डेलवाल

कुलके भूषण थे। रणमल साहूके पुत्र ताल्हडय सीहू हुए। इनका पुत्र कवि तेजपाल था।

कवि सुन्दर, सुभग और मेधावी होनेके साथ भक्त भी था। उसने ग्रंथ-निर्माणके साथ संस्कृतिके उत्थापक प्रतिष्ठा आदि कार्योंमे भी अनुराग प्रदर्शित किया था। कविसे ग्रन्थ-रचनाओंके लिये विभिन्न लोगोने प्रार्थना की और इसी प्रार्थनाके आधारपर कविने रचनाएँ लिखी हैं।

स्थितिकाल

कविकी रचनाओंमे स्थितिकालका उल्लेख है। अतएव समयके सम्बन्धमे विवाद नही है। कविने रत्नकीर्त्ति, भुवनकीर्त्ति, धर्मकीर्त्ति आदि भट्टारकोंका निर्देश किया है, जिससे कविका काल विक्रमकी १६वी शती सिद्ध होता है। कविने वि० सं० १५०७ वैशाख शुक्ला सप्तमीके दिन 'वरगचरिउ' को समाप्त किया है।

'संभवणाहचरिउ' की रचना थील्हाके अनुरोधसे वि० स० १५०० के लगभग सम्पन्न की गई है। 'पासपुराण' को मुनि पद्मनन्दिके शिष्य शिवनन्दि-भट्टारकके संकेतसे रचा है। कविने इस ग्रंथको वि० स० १५१५ मे कार्तिक-कृष्णा पंचमीके दिन समाप्त किया है। अतएव कविका स्थितिकाल विक्रमकी १६वी शती निश्चित है।

कविको 'संभवणाहचरिउ' के रचनेकी प्रेरणा भादानक देशके श्रीप्रभनगरमे दाऊदशाहके राज्यकालमे थील्हासे प्राप्त हुई है। श्रीप्रभनगरके अग्रवालवंशीय मित्तल गोत्रीय साहू लक्ष्मणदेवके चतुर्थ पुत्रका नाम थील्हा था, जिसकी माताका नाम महादेवी और प्रथम धर्मपत्नीका नाम कोल्हाही था। और दूसरी पत्नीका नाम आसाही था, जिससे त्रिभुवनपाल और रणमल नामके पुत्र उत्पन्न हुए। साहू थील्हाके पॉच भाई थे, जिनके नाम खिउसी, होलू, दिवसी, मल्लिदास और कुथदास हैं। ये सभी व्यक्ति धर्मनिष्ठ, नीतिवान और न्यायपालक थे। लक्ष्मणदेवके पितामह साहू होलूने जिनबिम्ब-प्रतिष्ठा करायी थी। उन्हीके वंशज थील्हाके अनुरोधसे कवि तेजपालने 'संभवणाहचरिउ'की रचना की है। इस चरित्र-ग्रंथमे ६ सन्धियाँ और १७० कडवक हैं। इसमे तृतीय तीर्थंकर संभवनाथका जीवन गुम्फित है। कथावस्तु पौराणिक है, पर कविने अवसर मिलने पर वर्णनोको अधिक जीवन्त बनाया है। सन्धिवाक्यमे बताया है

'इय संभवजिणचरिए सावयायारविहाणफलाणुसरिए कइतेजपालवण्णिदे सज्जणसदोहमणि-अणुमण्णिदे सिरिमहाभव्व-थील्हासवणभूसणो संभवजिण-

णिव्वाणगमणो णाम छट्ठो परिच्छेओ समत्तो ॥ संधि ६ ॥'

कविने नगरवर्णनमें भी पटुता दिखलाई है। वह देश, नगरका सजीव चित्रण करता है। लिखा है

इह इत्थु दीवि भारहिं पसिद्धु, णामेण सिरिपहु सिरि-समिद्धु।
दुग्गु वि सुरम्मु जण जणिय-राउ, परिहा परियरियउ दीहकाउ।
गोउर सिर कलसाइय पयंगु, णाणा लच्छिए आलिंगि पगु।
जहिं जणणयणाणदिराइं, मुणि-यण-गुण-मंडियमंदिराइं।
सोहंति गउरवरकइ-मणहराइं, मणि-जडियकिनाडइं सुदराइं।
जहिं वसहि महायण चुय-पमाय, पर-रमणि-परम्मुह मुक्क-माय।
जहिं समय करडि घड घड हडंति, पडिसद्दें दिसि विदिसा फुडंति।
जहिं पवण-गमण धाविय तुरंग, ण वारि-रासि भंगुरत्तरंग।
जो भूसिउ णेत्त-सुहावणेहिं, सरयब्व धवल-गोहणगणेहिं।
सुरयण वि समीहहिं जहिं सजम्मु, मेल्लेविणु सग्गालउ सुरम्मु।

कविकी दूसरी रचना 'वरंगचरिउ' है। इसमे चार सन्धियाँ हैं। २२वे तीर्थंकर यदुवंशी नेमिनाथके शासनकालमे उत्पन्न हुए पुण्यपुरुष वरांगका जीवनवृत्त प्रस्तुत किया गया है। कविने इस रचनाको विपुलकीर्तिके प्रसादसे सम्पन्न किया है। पंचपरमेष्ठी, जिनवाणी आदिको नमस्कार करनेके पश्चात् ग्रन्थकी रचना आरंभ की है। प्रथम, द्वितीय और तृतीय कडवकमे कविने अपना परिचय अंकित किया है। अन्तिम प्रशस्तिमें भी कविका परिचय पाया जाता है।

कविकी तीसरी रचना 'पासपुराण' है। यह भी खण्डकाव्य है, जो पद्धडिया छन्दमे लिखा गया है। यह रचना भट्टारक हर्षकीर्ति-भण्डार अजमेरमे सुरक्षित है। कविने यदुवंशी साहू शिवदासके पुत्र भूधलि साहुकी प्रेरणासे रचा है। ये मुनि पद्मनन्दिके शिष्य शिवनन्दि भट्टारककी आम्नायके थे तथा जिनधर्मरत श्रावकधर्मप्रतिपालक, दयावन्त और चतुर्विध संघके संपोषक थे। मुनि पद्मनन्दिने शिवनन्दिको दीक्षा दी थी। दीक्षासे पूर्व इनका नाम सुरजन साहु था। सुरजन साहु संसारसे विरक्त और निरन्तर द्वादश भावनाओके चिन्तनमे संलग्न रहते थे। प्रशस्तिमे साहु सुरजनके परिवारका भी परिचय आया है।

इस प्रकार कवि तेजपालने चरितकाव्योकी रचना द्वारा अपभ्रंश-साहित्य-की समृद्धि की है।

धनपाल द्वितीय

धनपाल कविने 'बाहुबलिचरिउ'की रचना की है। इस ग्रन्थकी प्रति आमेर-

शास्त्र-भाण्डार जयपुरमे सुरक्षित है। कविने ग्रन्थके आदिमे अपना परिचय दिया है।

गुज्जर देश मज्झि णयवट्टणु, वसइ विउलु पल्हणपुरु पट्टणु।
वीसलएउ राउ पयपालउ, कुवलय-मंडणु सउलु व मालउ।
तहिं पुरवाडवंस णायामल, अगणिय-पुव्वपुरिस-णिम्मल कुल।
पुणु हुउ राय सेट्ठि जिणभत्तउ, भोवइ णामें दयगुण जुत्तउ।
सुहडपउ तहो णंदणु जायउ, गुरु सज्जणहं भुअणि विक्खायउ।
तहो सुउ हुउ घणवाल धरायले, परमप्पय-पय-पंकय-रउ अलि।
एत्तहिं तहिं जिणतित्थण मत्तउ, महि भमतु पल्हणपुरे पत्तउ।

अर्थात् धनपाल गुर्जर देशके रहनेवाले थे। पल्हणपुर इनका वास-स्थान था। इनके पिताका नाम सुहडदेव और माताका नाम सुहडादेवी था। ये पुरवाड जातिमे उत्पन्न हुए थे। कविके समय राजा वीसलदेव राज्य कर रहा था। योगिनीपुर (दिल्ली) मे उस समय महम्मदशाहका शासन था। कविने यह ग्रन्थ-रचना चन्द्रवाडनगरके राजा सारगके मत्री जायसवशोत्पन्न साहू वासद्धर (वासवर) की प्रेरणासे की है। कृति समर्पित भी उन्हीको की गई है। वासावरके पिताका नाम सोमदेव था, जो सभरी नरेन्द्र कर्णदेवके मत्री थे। कविने साहू वासाधरको सम्यग्दृष्टि, जिनचरणोका भक्त, दयालु, लोकप्रिय, मिथ्यात्वरहित और विशुद्धचित्त कहा है। इनको गृहस्थके दैनिक षट्कर्मोमे प्रवीण राजनीतिमे चतुर और अष्टमूल गुणोके पालनमे तत्पर बताया है। इनकी पत्नीका नाम उभयश्री था, जो पतिव्रता और शीलव्रत पालन करनेवाली थी। यह चतुर्विध सघको दान देती थी। इसके आठ पुत्र हुए जसपाल, जयपाल, रतपाल, चन्द्रपाल, विहराज, पुण्यपाल, वाहड और रूपदेव। ये आठो पुत्र अपने पिताके समान ही धर्मात्मा थे।

कविने इस ग्रन्थके आदिमे प्राचीन कवियो, आचार्यो और ग्रन्थोका स्मरण किया है। उसने कविचक्रवर्त्ती धीरसेन, जैनेन्द्रव्याकरणरचयिता देवनन्दि, श्रीवज्रसूरि और उनके द्वारा रचित षट्दर्शनप्रमाणग्रन्थ, महासेन-सुलोचनाचरित, रविषेण-पद्मचरित, जिनसेन-हरिवशपुराण, जटिलमुनि-वरांगचरित, दिनकरसेन-कन्दर्पचरित, पद्मसेन-पार्श्वनाथचरित, अमृताराधना, गणि-अम्बसेन-चन्द्रप्रभचरित, धनदत्तचरित, कविविष्णुसेन, मुनिसिहनन्दि-अनुप्रेक्षा, णवकारमत्र, नरदेव, कविअसग-वीरचरित, सिद्धसेन, कविगोविन्द, जयधवल, शालिभद्र, चतुर्मुख, द्रोण, स्वयभू, पुष्पदन्त और सेढु कविका स्मरण किया है। इससे कविकी अध्ययनशीलता, पाडित्य और कवित्वशक्तिपर

प्रकाश पडता है। कवि सन्तोषी था और स्वाभिमानी भी। यही कारण है कि उसने बाहुबलि-चरितकी रचना कर अपनेको मनस्वी घोषित किया है।

कविके गुरु प्रभाचन्द्र थे, जो अनेक शिष्यो सहित विहार करते हुए पल्हणपुरमे पधारे। धनपालने उन्हे प्रणाम किया और मुनिने आशीर्वाद दिया कि तुम मेरे प्रसादसे विचक्षण होगे। कविके मस्तक पर हाथ रखकर प्रभाचन्द्र कहने लगे कि मैं तुम्हे मन्त्र देता हूँ। तुम मेरे मुखसे निकले हुए अक्षरोको याद करो। धनपालने प्रसन्नतापूर्वक गुरु द्वारा दिये गये मत्रको ग्रहण किया और शास्त्राभ्यासद्वारा सुकवित्व प्राप्त किया। इसके पश्चात् प्रभाचन्द्र खभात, धारानगर और देवगिरि होते हुए योगिनीपुर आये। दिल्ली-निवासियोने यहाँ एक महोत्सव सम्पन्न किया और भट्टारक रत्नकीर्तिके पद पर उन्हे प्रतिष्ठित किया।

कवि धनपाल गुरुकी आज्ञासे सौरिपुर तीर्थके प्रसिद्ध भगवान् नेमिनाथकी वन्दना करनेके लिये गये। मार्गमे वे चन्द्रवाडनगरको देखकर प्रभावित हुए और साहु वासाधर द्वारा निर्मित जिनालयको देखकर वही पर काव्य-रचना करनेमे प्रवृत्त हुए।

स्थितिकाल

कविके स्थितिकालका निर्णय पूर्ववर्त्ती कवियो और राजाओके निर्देशसे सभव है। इस ग्रन्थकी समाप्ति वि० स० १४५४ वैशाख शुक्ला त्रयोदशी, स्वाति नक्षत्र, सिद्धियोग और सोमवारके दिन हुई है। कविने अपनी प्रशस्तिमे मुहम्मदशाह तुगलकका निर्देश किया है। मुहम्मदशाहने वि० स० १३८१ से १४०८ तक राज्य किया है।

भट्टारक प्रभाचन्द्र भट्टारक रत्नकीर्त्तिके पदपर प्रतिष्ठित हुए थे, इस कथनका समर्थन भगवतीआराधनाकी पजिकाटीकाकी लेखक-प्रशस्तिसे भी होता है। इस प्रशस्तिमे बताया गया है कि वि०स० १४१६ मे इन्ही प्रभाचन्द्रके शिष्य ब्रह्म नाथूरामने अपने पढनेके लिए दिल्लीके बादशाह फिरोजशाह तुगलकके शासन-कालमे लिखवाया था।[1] फिरोजशाह तुगलकने वि० स० १४०८–

१ सवत् १४१६ वर्षे चैत्रसुदिपञ्चम्या सोमवासरे सकलराजशिरो-मुकुटमाणिक्यमरीचिपिंजरीकृत-चरण-कमलपादपीठस्य श्रीपेरोजसाहे: सकलसाम्राज्यधुरीविभ्राणस्य समये श्रीदिल्या श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये सरस्वतीगच्छे वलात्कारगणे भट्टारकश्रीरत्नकीर्त्तिदेवपट्टोदयाद्रिन्तरुणतरणित्वमुर्वीकुर्वाणरण (ण) भट्टारकश्रीप्रभाचन्द्रदेवशिष्याणा ब्रह्मनाथूराम। इत्याराधनापंजिकाग्रथआत्मपठनार्थ लिखापितम्।

आरा-जैनसिद्धान्तभवन प्रति

१४४५ तक राज्य किया है। अतएव स्पष्ट है कि भट्टारक प्रभाचन्द्र वि० स० १४१६ से कुछ समय पूर्व भट्टारकपदपर प्रतिष्ठित हुए होंगे। इस आलोकमें धनपालका समय विक्रमकी पन्द्रहवीं शती माना जा सकता है।

रचना

कवि धनपालद्वितीयने 'बाहुबलिचरिउ' की रचना की है, जिसका दूसरा नाम 'कामचरिउ' भी है। ग्रन्थ १८ सन्धियोंमें विभक्त है। इसमें प्रथम कामदेव बाहुबलिकी कथा गुम्फित है। बाहुबली ऋषभदेवके पुत्र थे और सम्राट् भरतके कनिष्ठ भ्राता। बाहुबली सुन्दर, उन्नत एवं बल-पौरुषसे सम्पन्न थे। वे इन्द्रियजयी और उग्र तपस्वी भी थे। उन्होंने चक्रवर्ती भरतको जल, मल्ल और दृष्टि युद्धमें पराजित किया था। भरत इस पराजयसे विक्षुब्ध हो गये और प्रतिशोध लेनेकी भावनासे उन्होंने अपने भाई पर सुदर्शनचक्र चलाया। किन्तु देवोपनीत अस्त्र वंशघातक नहीं होते, अतएव वह चक्र बहुबलिकी प्रदक्षिणा देकर लौट आया। इससे बाहुबलिके मनमें पश्चात्ताप उत्पन्न हुआ। वे परिग्रह, कषायभाव, अहंकार, राज्यसत्ता, न्याय-अन्याय, भाई-भाईका सम्बन्ध आदिके सम्बन्धमें विचार करने लगे। उन्होंने राज-त्यागका निश्चय कर लिया और वे दिगम्बरदीक्षा लेकर आत्म-साधनामें प्रवृत्त हुए। उन्होंने कठोर तपश्चरण किया और स्वात्मोपलब्धि प्राप्त की।

यह ग्रंथ काव्य और मानवीय भावनाओंसे ओतप्रोत है। कविने यथास्थान वस्तु-चित्र प्रस्तुतकर काव्यको सरस बनानेका प्रयास किया है। हम यहाँ विवाहके अनन्तर वर-वधूके मिलनका एक उदाहरण प्रस्तुतकर कविके काव्यत्व-पर प्रकाश डालेंगे।

सोहइ कोइल-झुणि महुरसमए, सोहइ मेइणि पहु लद्ध जए।
सोहइ मणिकणयालंकरिया, सोहइ सासय-सिरि सिद्धजुया।
सोहइ संपइ सम्माण जणे, सोहइ जयलच्छी सुहडु रणे।
सोहइ साहा जलइरस वणे, सोहइ वाया सुपुरिस वयणे।
जह सोहइ एयहि बहु कलिया, तह सोहइ कण्णा वर मिलिया।
किं बहुणा वाया उब्भसए, कीरइ विवाहु सोमजसए।७५।

बाहुबलिचरित वास्तवमें महाकाव्यके गुणोंसे युक्त है। कविने इसे सभी प्रकारसे सरस और कवित्वपूर्ण बनाया है।

कवि हरिचन्द या जयमित्रहल

कवि हरिचन्द्रने अपनी गुरु-परम्पराका उल्लेख किया है। बताया है कि

इनके गुरु पद्मनन्दि भट्टारक थे। ये मूलसघ वलात्कारगण और सरस्वतीगच्छ-के विद्वान थे। भट्टारक प्रभाचन्द्रके पट्टधर थे। पद्मनन्दि अपने समयके यशस्वी लेखक और सस्कृति-प्रचारक हैं। गुर्वावलीमे पद्मनन्दिकी प्रशसा करते हुए लिखा है

श्रीमत्प्रभाचन्द्रमुनीद्रपट्टे शश्वत्प्रतिष्ठ प्रतिभा-गरिष्ठ ।
विशुद्ध-सिद्धान्तरहस्य-रत्न-रत्नाकरो नदतु पद्मनदी ॥२८॥
जैन सिद्धान्तभास्कर भाग १, किरण ४, पृ० ५३

दिल्लीमे वि० स० १२९६ भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशीको रत्नकीर्त्ति पट्टारूढ हुए। ये १४ वर्षो तक पट्टपर रहे। रत्नकीर्तिके पट्टपर वि० स० १३१० पौष शुक्ला पूर्णिमाको भट्टारक प्रभाचन्द्रका अभिषेक हुआ। पश्चात् वि० स० १३८५ पौष शुक्ला सप्तमीको प्रभाचन्द्रके पट्ट पर पद्मनन्दि आसीन हुए। इन्ही पद्म-नन्दिके शिष्योमे जयमित्रहल भी सम्मिलित थे।

श्री प० परमानन्दजी शास्त्रीने अपने प्रशस्ति-सग्रहकी भूमिकामे एक घटना उद्धृत की है। बताया है कि पार्श्वनाथचरितके कर्त्ता कवि अग्रवाल (स० १४७९) ने अपने ग्रथकी अन्तिम प्रशस्तिमे स० १४७१की एक घटनाका उल्लेख करते हुए लिखा है कि करहलके चौहानवशी राजा भोजराज थे। इनकी पत्नीका नाम णाइक्कदेवी था। उससे ससारचन्द या पृथ्वीराज नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके राज्यमे स० १४७१ माघ कृष्णा चतुर्दशी शनिवारके दिन रत्नमयी जिन-बिम्बकी स्थापना की गयी। उस समय यदुवंशी अमरसिंह भोजराजके मत्री थे। उनके पिताका नाम ब्रह्मदेव और माताका नाम पद्मलक्षणा था। इनके चार भाई और भी थे, जिनके नाम करमसिंह, समरसिंह, नक्षत्रसिंह, और लक्ष्मणसिंह थे। अमरसिंहकी पत्नी कमलश्री पातिव्रत्य और शीलादि गुणोसे विभूषित थी। उसके तीन पुत्र हुए नन्दन, सोना साहु, लोणा साहु। इनमे लोणा साहु धार्मिक कार्योमे विपुल धन खर्च करते थे। इन्होने कवि जय-मित्रहलको प्रशसा की है।[1] अत जयमित्रहलका समय भट्टारक प्रभाचन्द्रका पट्टकाल है।

कवि हरिचन्द या जयमित्रहलका समय विक्रमकी १५वी शती है। यत जयमित्रहलने अपना मल्लिनाथकाव्य विक्रम स० १४७१ से कुछ समय पूर्व

१ जैन-ग्रंथ-प्रशस्तिसग्रह, द्वितीय भाग, वीरसेवामंदिर, २१ दरियागज, दिल्ली, प्रस्तावना, पृष्ठ ८६।

लिखा है। दूसरे ग्रंथ 'वड्ढमाणचरिउ' भी मल्लिनाथकाव्यसे एकाध वर्ष आगे-पीछे लिखा गया है।

रचनाएँ

जयमित्रहल्लकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं 'वड्ढमाणचरिउ' और 'मल्लिणाहकव्व'। 'वड्ढमाणचरिउ' का दूसरा नाम 'सेणियचरिउ' भी मिलता है। इस काव्यमे ११ सन्धि या परिच्छेद बताये गये है। पर प्रारंभकी ५ सन्धियाँ उपलब्ध सभी पाण्डुलिपियोमे नही मिलती हैं, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रंथकी छठी सन्धि ही प्रथम सन्धि है। इस ग्रंथमे अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीरका जीवनचरित अंकित है। साथ ही उनके समयमे होनेवाले मगधके शिशुनागवंशी सम्राट् बिम्बसार या श्रेणिककी जीवनगाथा भी अंकित है। यह राजा बडा प्रतापी और राजनीतिकुशल था। इसके सेनापति जम्बूकुमारने केरलके राजा मृगांकपर विजय प्राप्त कर उसकी पुत्री विलासवतीसे श्रेणिकका विवाह-सम्बन्ध करवाया था। इसकी पट्टमहिषी चेटककी पुत्री चेलना थी। चेलना अत्यन्त धर्मात्मा और पतिव्रता थी। श्रेणिकको जैनधर्मकी ओर लानेका श्रेय चेलनाको है। श्रेणिक तीर्थंकर महावीरके प्रमुख श्रोता थे। यह ग्रंथ देवरायके पुत्र सघाधिप होलिवम्मके अनुरोधसे रचा गया है।

दूसरी रचना 'मल्लिणाहकव्व' है। इसमे १९वे तीर्थंकर मल्लिनाथका जीवनचरित अंकित है। इसकी प्रति आमेर-शास्त्र-भण्डारमे भी अपूर्ण है। ग्रंथकी रचना कविने पृथ्वी नामक राजाके राज्यमे स्थित साहू आल्हाके अनुरोधसे की है। आल्हा साहूके चार पुत्र थे, जिनके नाम वाह्य साहु, तुम्बर, रतणक और गल्हण थे। इन्होने ही इस काव्य-ग्रंथको लिखवाया है।

गुणभद्र

काष्ठासघ-माथुरान्वयके भट्टारक गुणभद्र मलयकीर्तिके शिष्य थे। और भट्टारक यशःकीर्तिके प्रशिष्य थे। ये कथा-साहित्यके विशेषज्ञ माने गये हैं। गुणभद्रका स्मरण महाकवि रइधूने भी किया है। साथ ही तेजपाल[1] और महिन्दुने[2] भी किया है। रइधूने इन्हे चरित्रके आचरणमे धीर, संयमी, गुणि-जनोके गुरु, मधुरभाषी, प्रवचनसे सवको सन्तुष्ट करनेवाला, जितेन्द्रिय, मान-

१. गुणभद्दु-महामइमहमुणीसु। जिणसंगहोमडणु पचमीसु।

सम्भवणाहचरिउ, १।२।५-७

२. गुणभद्दसूरिगुणभद्दठाणु ' संतिणाहचरिउ १।५।

रूपी महागजकी तर्जनाको सहन करनेवाला एव भव्यजनोको उद्बोधित करने वाला कहा है।

तहो वरपट्टु वइरिउइ अज्जमु । धरिय चरित्तायरणु ससंजमु ॥
गुरु गुणयणमणि पाडयभूसणु । वयण-पउत्ति-जणिय-जणतूसणु ॥
कयकामाइय - दोस - विसज्जणु । दसिय-माण-महागय-तज्जणु ॥
भवियण-मण-उप्पाइय - बोहणु । सिरिगुणभद्दमहारिसि सोहणु ॥

सम्मइ०-१०।३०।२१-२४

गुणभद्र प्रतिष्ठाचार्य भी थे। मैनपुरी (उत्तरप्रदेश) के जैन मन्दिरोमे कुछ मूर्तियो एव यत्रो पर लेख उत्कीर्णित हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि वे प्रतिष्ठाचार्य थे।[1]

गुणभद्रका स्थितिकाल उनकी गुरुपरम्परा और समकालीन राजवशोके आधारपर निर्णीत किया जा सकता है। इन्होने ग्वालियरके तोमरवशी राजा डूगरसिहके पुत्र कीर्त्तिसिह या कर्णसिहके राज्यकालमे अपनी रचनाएँ लिखी हैं। महाकवि रइधूने गुणभद्रका उल्लेख किया है। अत गुणभद्रका समय रइधूके समकालीन या उनसे कुछ पूर्व होना चाहिए।

कारञ्जाके सेनगण-भण्डारकी लिपि-प्रशस्ति वि० स० १५१० वैशाख शुक्ला तृतीयाकी लिखी हुई है, जो गोपाचलमे डूगरसिहके राज्यकालमे भट्टारक गुणभद्रकी आम्नायके अग्रवालवशी गर्गगोत्रीय साहु जिनदासने लिखाई थी।[2]

अतएव कवि गुणभद्रका समय १५वी शतीका अंतिम पाद या १६वी शतीका प्रथम पाद होना चाहिए।

रचनाएँ

भट्टारक गुणभद्रने १५ कथा-ग्रथोकी रचना की है, जो निम्न प्रकार हैं

१ सवणबारसिविहाणकहा (श्रावणद्वादशी-विधान-कथा)
२ पक्खवइवयकहा (पाक्षिकव्रतकथा)
३ आयासपचमीकहा आकाशपचमीकथा
४ चंदायणवयकहा चन्द्रायणव्रतकथा
५. चदणछट्ठीकहा चन्दनषष्ठीकथा

१ स० १५२९ वैसाख सुदी ७ बुधे श्रीकाष्ठासघे भ० श्रीमलयकीर्त्ति भ० श्रीगुणभद्राम्नाये अग्रोत्कान्वये मित्तलगोत्र · प्रतिमालेखसग्रह (जैनसिद्धान्तभवन, आरा, वि० सं० १९९४) पृ० ८,१४।

२ अनेकान्त, वर्ष १४, किरण १०, पृ० २९६।

६ नरकउतारीदुग्धारसकथा
७. णिद्दुखसत्तमीकहा निदु खसप्तमीकथा
८ मउडसत्तमीकहा मुकुटसप्तमीकथा
९ पुप्फजलीकहा पुष्पाजलिकथा
१०. रयणत्तयवयकहा रत्नत्रयव्रतकथा
११ दहलक्खणवयकहा दशलक्षणव्रतकथा
१२. अणतवयकहा अनतव्रतकथा
१३ लद्धिविहाणकहा लब्धिविधानकथा
१४ सोलहकारणवयकहा षोडशकारणव्रतकथा
१५. सुगधदहमीकहा सुगधदशमीकथा

इन व्रत-कथाओमे व्रतका स्वरूप, आचरण-विधि और उनकी फल प्राप्ति प्रतिपादित की गयी है। आत्मशोधनके लिये व्रतोंकी नितान्त आवश्यकता है, क्योकि आत्मशुद्धिके विना कल्याण सभव नही है। पाक्षिकश्रावक-कथा और अनन्तव्रत-कथा ये दो कथा-ग्रन्थ तो ग्वालियरनिवासी सघपति साहू उद्धरणके जिनमदिरमे निवास करते हुए साहू सारगदेवके पुत्र देवदासकी प्रेरणासे रचे गये है। और अनन्तव्रतकथा, पुष्पाजलिव्रतकथा और दशलक्षणव्रतकथा ये तीन कथाकृतियाँ ग्वालियरनिवासी जयसवालवशी चौधरी लक्ष्मणसिहके पुत्र प० भीमसेनके अनुरोधसे लिखी गई हैं। निर्दुखसप्तमीकथा गोपाचलवासी साहू बीधाके पुत्र सहजपालके अनुरोधसे लिखी गई है। शेष कथा-ग्रन्थ धार्मिक भावनासे प्रेरित होकर लिखे हैं। नामानुसार कथाओमे व्रतोका स्वरूपादि वर्णित है।

हरिदेव

'मयणपराजयचरिउ'के रचयिता हरिदेवने ग्रन्थके आदिमे अपना परिचय दिया है जिससे यह ज्ञात होता है, कि इनके पिता का नाम चंगदेव और माताका नाम चित्रा था। इनके दो बड़े भाई थे किकर और कृष्ण। किकर महागुणवान् तथा कृष्ण स्वभावत. निपुण थे। इनके दो छोटे भाई थे, जिनके नाम द्विजवर और राघव थे। कविने लिखा है

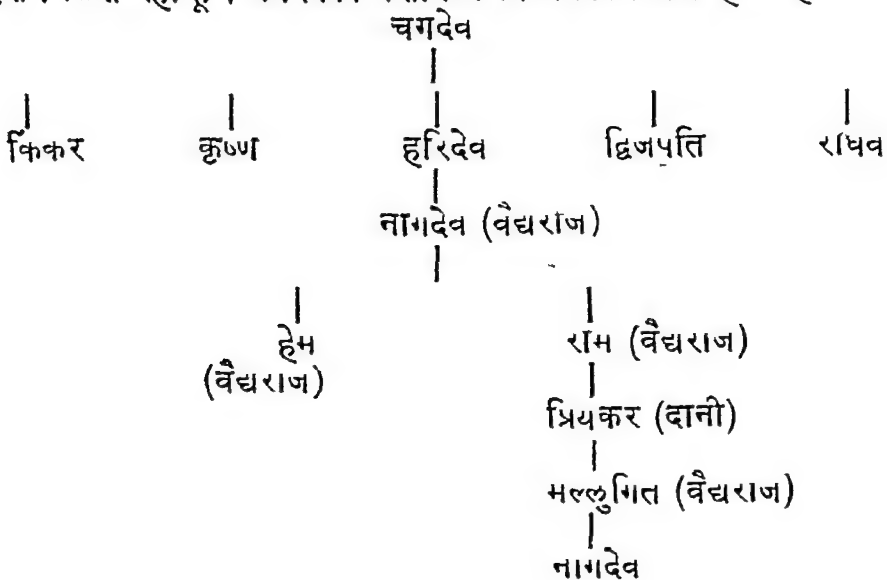
चगएवहु णवियजिणपयहु
तह चित्तमहासइहि पढमु पुत्तु किंकर महागुणु।
पुणु बीयउ कण्हु हुउ जेण लद्धु ससहाउ णियपुणु॥
हरि तिज्जउ कइ जाणि यइ दियवरु राघउ वेइ।
ते लहुया जिणपय थुणहि पावह माणु मलेइ॥२॥

इस कुटुम्ब का परिचय नागदेवके सस्कृत-मदनपराजयसे भी प्राप्त होता है। नागदेवने अपना मदनपराजय हरिदेवके इस अपभ्रंश-मदनपराजयके आधार पर ही लिखा है। वे चगदेवके वशमे सातवी पीढीमे हुए हैं। परिचय निम्न प्रकार है

य शुद्धसोमकुलपद्मविकासनार्को जातोऽर्थिना सुरतरुर्भुवि चंगदेव: ।
तन्नन्दनो हरिरसत्कवि-नागसिंह तस्माद्भिषग्जनपतिर्भुवि नागदेव: ॥२॥
तज्जावु भौ सुभिषजाविह हेमरामौ रामात्प्रियकर इति प्रियदोऽर्थिना य: ।
तज्जश्चिकित्सितमहाम्बुधिपारमाप्त श्रीमल्लुगिज्जिनपदाम्बुजमत्तभृङ्ग ॥३॥

तज्जोऽहं नागदेवाख्य: स्तोकज्ञानेन संयुत ।
छन्दोऽलंकारकाव्यानि नाभिधानानि वेद्म्यहम् ॥४॥
कथाप्राकृतबन्धेन हरिदेवेन या कृता।
वक्ष्ये सस्कृतबन्धेन भव्याना धर्मवृद्धये ॥५॥

अर्थात् पृथ्वीपर पवित्र सोमकुलरूपी कमलको विकसित करनेके लिये सूर्यरूप और याचकोके लिए कल्पवृक्षस्वरूप चगदेव हुए। इनके पुत्र हरि हुए, जो असत्कविरूपी हस्तियोके लिए सिंह थे। उनके पुत्र वैद्यराज नागदेव हुए। नागदेवके हेम और राम नामके दो पुत्र हुए और ये दोनो ही अच्छे वैद्य थे। रामके पुत्र प्रियकर हुए, जो याचकोके लिए प्रिय दानी थे। प्रियकरके पुत्र मल्लुगित हुए, जो चिकित्सामहोदधिके पारगामी विद्वान् तथा जिनेन्द्रके चरण-कमलोके मत्त भ्रमर थे। उनका पुत्र मैं नागदेव हुआ, जो अल्पज्ञानी हूँ और छन्द, अलंकार, काव्य तथा शब्दकोशका जानकार नही हूँ। हरिदेवने जिस कथाको प्राकृत-बन्धमे रचा था, उसे ही मैं भव्योकी धर्मवृद्धिके हेतु सस्कृतमे लिख रहा हूँ। चगदेवकी वशावली निम्नप्रकार प्राप्त होती है



इस वंशावलीसे कविके जीवन-परिचयका बोध हो जाता है। पर उसके स्थितिकालके सम्बन्धमे कुछ भी जानकारी प्राप्त नही होती।

स्थितिकाल

'मयणपराजयचरिउ'की कथावस्तुका आधार शुभचन्द्रकृत ज्ञानार्णव है और परम्परानुसार शुभचन्द्रका समय भोजदेवके समकालीन माना जाता है। ज्ञानार्णवकी एक प्राचीन प्रति पाटणके शास्त्रभण्डारमे वि० स० १२४८की लिखी हुई प्राप्त हुई है। अत ज्ञानार्णवका रचनाकाल ९वी शतीसे १२वी शतीके बीच सिद्ध होता है। अतएव 'मयणपराजयचरिउ'की रचनाकी पूर्वावधि यही माननी चाहिए। उत्तरावधिका निश्चय प्राचीन हस्तलिखित प्रतियोके आधारपर किया जा सकता है। 'सस्कृतमदनपराजय'की एक प्रतिका लेखनकाल वि० स० १५७३ है और अपभ्र श 'मयणपराजयचरिउ'की एक प्रति वि० स० १६०८ और दूसरी वि० स० १६५४ की है। अतएव कवि हरिदेवका समय नागदेवसे छठी पीढ़ी पूर्ण होनेके कारण कम-से-कम १५० वर्ष पहले होना चाहिए। इस प्रकार नागदेवका समय १३वी-१४वी शताब्दी सिद्ध होता है।

प० परमानन्दजीने जयपुरके तेरापथी बड़े मन्दिरके शास्त्रभण्डारमे वि० स० १५५१ मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमी गुरुवारकी लिखी हुई प्रतिका निर्देश किया है तथा आमेरभडारकी प्रति वि० स० १५७६ की लिखी हुई बताई है। और उन्होने भाषा-शैली आदिके आधारपर हरिदेवका समय १४वी शताब्दीका अन्तिम चरण बताया है।[1]

डॉ० हीरालालजी जैनने हरिदेवका समय १२वी शतीसे १५वी शतीके बीच माना है।[2]

रचना

कविकी एक ही रचना 'मयणपराजयचरिउ' उपलब्ध है। इस ग्रथमे दो परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेदमे ३७ और दूसरेमे ८१ इस प्रकार कुल ११८ कडवक हैं। यह छोटा-सा रूपक खण्डकाव्य है। कविने इसमे मदनको जीतनेका सरस वर्णन किया है। कामदेव राजा, मोह मत्री, अहकार, अज्ञान आदि सेनापतियोके साथ भावनगरमे निवास करता था। चारित्रपुरके राजा जिनराज उसके शत्रु थे, क्योकि वे मुक्तिरूपी लक्ष्मीसे अपना विवाह करना चाहते थे। कामदेवने

१ जैनग्रथप्रशस्तिसग्रह, द्वितीय भाग, दिल्ली, प्रस्तावना, पृ० ११४।
२ मयणपराजयचरिउ, भारतीयज्ञानपीठ काशी, प्रस्तावना, पृ० ६१।

राग-द्वेष नामके दूत द्वारा जिनराजके पास यह सन्देश भेजा कि आप या तो मुक्ति-कन्यासे विवाह करनेका अपना विचार छोड दें और अपने ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप सुभटोको मुझे सौंप दें; अन्यथा युद्धके लिये तैयार हो जाएँ। जिनराजने कामदेवसे युद्ध करना स्वीकार किया और अन्तमे उसे पराजित कर शिवरमणीको प्राप्त किया। इस प्रकार इस रूपक-काव्यमे कविने सरस रूपमे इन्द्रियनिग्रह और विकारोको जीतनेकी ओर सकेत किया है। यहाँ हम उदाहरणार्थ इस रूपक काव्यमे राग-द्वेषादिके युद्धका वर्णन प्रस्तुत करते है

राय-रोस खम-दमह महाभड। आसव-बध गुणह दह-लपड॥
चारित्तह तइ भिडिय असजम। णिज्जर-गुणह कम्म कय-घण-तम॥
गारव तिण्णि भिडिय सिवपयह। अणय पधाइय णयह पयत्थह॥
अण्णु वि जे जसु समुहु पइट्ठा। ते तसु सयलु वि रणि आभिट्ठा॥
तहि अवसरि पुच्छिउ आणदें। सिद्धिरूउ सरवदउ जिणिदे॥
अम्हह वलु कारणे कि णट्ठउ। मयरद्धय-सेण्णहो संतट्ठउ॥
उपसम-सेढिय-भूमिहि लग्गउ। ते कज्जेण जिणेसर भग्गउ॥
एवहि खाइय-भूमि चडावहि। परवलु उच्छरतु विहडावहि॥
तो परणइ-सहाव सगूढउ। खवग-सेढि जिणवलु आरूढउ॥

महाभट राग और द्वेप, क्षमा और दमनसे भिड गये। दस लपट आसव और वन्ध गुणोसे युद्ध करने लगे। असयम चारित्रसे भिडा। सघन अधकार उत्पन्न करनेवाले कर्म निर्जरागुणसे युद्ध करने लगे। तीन गारव शिवपथसे भिड गये और अनय प्रशस्त नयो पर दोड पडे। अन्य सुभट भी जिनके सम्मुख पड़े वे सव उनसे रणमे आकर युद्ध करने लगे। इस अवसर पर जिनेन्द्रने आनन्दपूर्वक सिद्धिरूप स्वरोदय ज्ञानीसे पूछा कि हमारा वल किस कारणसे नष्ट हुआ और मकरध्वजके शैन्यसे सत्रस्त हुआ? तव उस ज्ञानीने वतलाया कि हे जिनेश्वर तुम्हारा वल उपशम-श्रेणीकी भूमि पर जा लगा था। इस कारण वह भग्न हुआ। अव उसे क्षायिक भूमि पर चढाइये, जिससे वह आगे वढता हुआ शत्रुवलको नष्ट कर सके। तव स्वभाव परिणतिसे सगूढ वह जिनवल क्षपकश्रेणी पर आरूढ हुआ। फिर श्रेष्ठ रथोंके सघटनोने, उत्तम घोडोके समूहोने, गुलगुलाते हुए हाथियोके व्यूहोने एव महाभटोने ध्वजाएँ उडाते हुए सम्मुख वढकर अपने-अपने घात दिखलाये।

इस वर्णनसे स्पष्ट है कि कविने सैद्धान्तिक विषयोको काव्यके रूपमे प्रस्तुत किया है। पौराणिक तथ्योकी अभिव्यंजना भी यथास्थान की गई है। द्वितीय सधिके ६१, ६२, ६३ और ६४वें पद्योमे कामदेवने अपनी व्यापकताका परिचय

दिया है और बताया है कि मेरे प्रभावसे ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देव त्रस्त हैं, मैं त्रिलोकविजयी हूँ।

प्रसगवश गुणस्थान, व्रत, समिति, गुप्ति, षडावश्यक, ध्यान आदिका भी चित्रण होता गया है।

हरिचन्द द्वितीय

इन हरिचन्दका वश अग्रवाल था। इनके पिताका नाम जडू और माताका नाम वील्हा देवी था। कविने 'अणत्थमियकहा' की रचना की है। इस कृतिमे रचनाकाल निर्दिष्ट नही किया गया है, पर पाण्डुलिपिपरसे यह रचना १५वी शताब्दीकी प्रतीत होती है। कविने ग्रथकी अन्तिम प्रशस्तिमे अपने वशका परिचय दिया है

> पावि‍उ वील्हा जंडू तणएं जाएं, गुरुभत्तिए सरसइहिं पसाएं।
> अयरवालवसे उप्पणइ, मइ हरियदेण।
> भत्तिय जिणु पणवेवि पयडिउ पद्धडिया-छंदेण ॥१॥

यह प्रति लगभग ३०० वर्ष पुरानी है। अतएव शैली, भाषा, विषय आदिकी दृष्टिसे कविका समय १५वी शताब्दी प्राय निश्चित है। कविकी एक ही रचना 'अणत्यमियकहा' उपलब्ध है। ग्रथमे १६ कडवक हैं, जिनमे रात्रि-भोजनसे होनेवाली हानियोका वर्णन किया गया है। सूर्यास्तके पश्चात् रात्रिमे भोजन करनेवाले सूक्ष्म-जीवोके सचारसे रक्षा नही कर सकते। बहुत विषैले कीटाणु भोजनके साथ प्रविष्ट हो नानाप्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं।

कविने तीर्थंकर वर्धमानकी बहुत ही सुन्दर रूपमे स्तुति की है और अनन्तर रात्रि-भोजनके दोषोका निरूपण किया है। यहाँ स्तुति-सम्बन्धी कुछ पक्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं

> जय वड्ढमाण सिवउरि-पहाण, तइलोय-पयासण विमल-णाण।
> जय सयल-सुरासुर-णमिय-पाय, जय धम्म-पयासण वीयराय।
> जय सील-भार-धुर-धरण-धवल, जय काम-कलक-विमुक्क अमल।
> जय इदिय-मय-गल-वहण-वाह, जय सयल-जीव-असरण सणाह।
> जय मोह-लोह-मच्छर-विणास, जय दुट्ठ-धिट्ठ-कम्मट्ठ-णास।
> जय चउदह-मल-वज्जिय-सरीर, जय पचमहव्वय-धरण-धीर।
> जय जिणवर केवलणाण-किरण, जय दसण-णाण-चरित्त-चरण।

कवि हरिचन्दकी अन्य रचनाएँ भी होनी चाहिए।

नरसेन या नरदेव

कवि नरसेनका अन्य नाम नरदेव भी मिलता है। कविने अपने ग्रन्थोकी प्रशस्तियोमे नामके अतिरिक्त किसी प्रकारका परिचय नही दिया है। 'सिद्ध-चक्ककहा'के अन्तमे लिखा हुआ मिलता है

सिद्धचक्कविहि रइय मइ, णरसेणु भणइ णिय-सत्तिय ।
भवियण-जण-आणदयरे, करिवि जिणेसर-भत्तिए ॥२-३६॥

द्वितीय सन्धिके अन्तमे निम्नलिखित पुष्पिका-वाक्य प्राप्त होता है

"इय सिद्धचक्ककहाए पयडिण-धम्मत्थ-काम-मोक्खाए महाराय-चपाहिव-सिरिपालदेव-मयणासुन्दरिदेवि-चरिए पडिय-सिरिणरसेण-विरइए इहलोय-परलोय-सुह-फल-कराए रोर-दुह-घोर-कोट्ठ-वाहि-भवणासणाए सिरिपाल-णिव्वाण-गमणो णाम वीओ सधिपरिच्छेओ समत्तो ॥"

कवि नरसेन दिगम्बर सम्प्रदायका अनुयायी है। उसने श्रीपालकथा दिगम्बर-सम्प्रदायके अनुसार लिखी है। कविकी गुरुपरम्परा या वशावली के सम्बन्धमे कुछ भी ज्ञात नही होता है।

स्थितिकाल

कविने अपनी रचनाओमे रचनाकालका निर्देश नही किया है। 'सिद्ध-चक्ककहा'की सबसे प्राचीन प्रति जयपुरके आमेर-शास्त्र-भण्डारमे वि० स० १५१२की उपलब्ध होती है। यदि इस प्रतिलिपिकालसे सौ-सवासौ वर्ष पूर्व भी कविका समय माना जाय, तो वि० स०की १४वी शती सिद्ध हो जाता है। कवि धनपाल द्वितीयने 'बाहुबलीचरिउ'मे नरदेवका उल्लेख किया है

णवयारणेहु णरदेव वुत्तु, कइ असग विहिउ करहो चरित्तु ।

'बाहुबलीचरिउ'का रचनाकाल वि० स० १४५४ है। अतएव नरदेव या नरसेनका समय १४वी शती माना जा सकता है। दूसरी बात यह है कि रइधू और नरसेनकी श्रीपालकथाके तुलनात्मक अध्ययनसे यह ज्ञात हो जाता है कि नरसेनने अपने इस ग्रन्थको रइधूके पहले लिखा है। अत रइधूके पूर्ववर्ती होनेसे भी नरसेनका समय १४वी शती अनुमानित किया जा सकता है।

रचनाएँ

नरसेनकी 'सिद्धचक्ककहा' और 'वड्ढमाणकहा' अथवा 'जिणरत्तिविहाण-

कहा' ये दो रचनाएँ प्राप्त हैं। डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्रीने भ्रमवश 'वड्ढमाणकहा' और 'जिणरत्तिविहाणकहा'को पृथक्-पृथक् मान लिया है। वस्तुत. ये दोनो एक ही रचना है। आमेर-भण्डारकी प्रतिमे लिखा है

इय जिणरत्तिविहाणु पयासिउ, जइ जिणसासण गणहर भासिउ।

× × ×

घत्ता सिरिणरसेणहो सामिउ सिवपुर, गामिउ वड्ढमाणु-तित्थंकरु।
जा मग्गिउ देइ करुण करेइ, रेउ सुवोहिउ णरु॥

उपर्युक्त पक्तियोसे यह स्पष्ट है कि वर्धमानकथा और जिनरात्रिविधानकथा दोनो एक ही ग्रन्थ हैं। जिस रात्रिमे भगवान् महावीरने अविनाशी पद प्राप्त किया, उसी व्रतकी कथा शिवरात्रिके समान लिखी गई है। इसमे तीर्थंकर महावीरका वर्तमान जीवनवृत्त भी अकित है। कविकी दूसरी रचना 'सिद्धचक्ककहा' है। सिद्धचक्रकथामे उज्जयिनी नगरके प्रजापाल राजाकी छोटी कन्या मैनासुन्दरी और चम्पा नगरीके राजा श्रीपालको कथा अकित है। इस कथाको पूर्वमे भी लिखा जा चुका है। नरसेनने दो सन्धियोमे ही इस कथाको निवद्ध किया है। इस कथाग्रन्थमे पौराणिक तथ्योकी सम्यक् योजना की गई है। घटनाएँ सक्षिप्त है, पर उनमे स्वाभाविकता अधिक पाई जाती है। आधिकारिक कथामे पूर्ण प्रवाह और गतिशीलता है। प्रासगिक कथाओका प्राय अभाव है, किन्तु घटनाओ और वृत्तोकी योजनाने मुख्य कथाको गतिशील वनाया है। वस्तु-विषय और सघटनाकी दृष्टिसे अल्पकाय होनेपर भी यह सफल कथाकाव्य है।

वर्णनोकी सरसताने इस कथाकाव्यको अधिक रोचक वनाया है। विवाह-वर्णन (१।१४), यात्रावर्णन (१।२४), समुद्रयात्रावर्णन (१।२५), युद्धवर्णन (१।२६) और युद्धयात्रावर्णन (२।२२) आदिके द्वारा कविने भावोको सशक्त बनाया है। सवाद और भावोकी रमणीयता आद्यन्त व्याप्त है।

माताका उपदेश, सहस्रकूट चैत्यालयकी वन्दना, सिद्धचक्रव्रतका पालन, वीरदमनका साधु होना, मुनियोसे पूर्वभवोका वृत्तान्त सुनना तथा मुनिदीक्षा ग्रहण कर तपस्या करना आदि सदर्भोसे निर्वेदका सचार होता है।

कविने इस कथाकाव्यमे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, निदर्शना, अनुमान आदि अलकारोकी योजना भी की है। इस प्रकार यह काव्य कवित्वकी दृष्टिसे भी सुन्दर है।

महीन्दु

कवि महीन्दु या महीचन्द्र इल्लराजके पुत्र है। इससे अधिक इनके परिचय के सम्बन्धमे कुछ भी प्राप्त नही होता है। कविने 'सतिणाहचरिउ'की रचनाके अन्तमे अपने पिताका नामाकन किया है

भो सुणु बुद्धीसर वरमहि दुहहर, इल्लराजसुअ णाखिज्जइ।
सण्णाणमुअ साहारण दोसीणिवारण वरणेरहि धारिज्जइ॥

पुष्पिका-वाक्यसे भी इल्लराजका पुत्र प्रकट होता है।

ग्रन्थ-प्रशस्तिमे कविने योगिनीपुर (दिल्ली) का सामान्य परिचय कराते हुए काष्ठासघके माथुरगच्छ और पुष्करगणके तीन भट्टारकोका नामोल्लेख किया है यश कीर्ति, मलयकीर्त्ति और गुणभद्रसूरि। इसके पश्चात् ग्रथका निर्माण कराने वाले साधारणनामक अग्रवालश्रावकके वशादिका विस्तृत परिचय दिया है। ग्रन्थके प्रत्येक परिच्छेदके प्रारभमे एक-एक संस्कृत-पद्य द्वारा भगवान शान्तिनाथका जयघोष करते हुए साधारणके लिये श्री और कीर्त्ति आदि-की प्रार्थना की गई है।

भट्टारकोकी उपर्युक्त परम्परा अकनसे यह ध्वनित होता है कि कवि महीन्दुके गुरु काष्ठासघ माथुरगच्छ और पुष्करगणके आचार्य ही रहे हैं तथा कविका सम्बन्ध भी उक्त भट्टारक-परम्पराके साथ है।

स्थितिकाल

कविने इस ग्रथका रचनाकाल स्वय ही बतलाया है। लिखा है

विक्कमरायहु ववगय-कालइ। रिसि-वसु-सर-भुवि-अकालइ।
कत्तिय-पढम-पक्खि पचमि-दिणि। हुड परिपुण्ण वि उग्गतइ इणि।

अर्थात् इस ग्रथकी रचना वि० स० १५८७ कार्त्तिक कृष्ण पचमी मुगल-बादशाह बाबरके राज्यकालमे समाप्त हुई।

इतिहास बतलाता है कि बाबरने ई० सन् १५२६की पानीपतकी लड़ाईमे दिल्लीके बादशाह इब्राहिम लोदीको पराजित और दिवगतकर दिल्लीका राज्य-शासन प्राप्त किया था। इसके पश्चात् उसने आगरापर भी अधिकार कर लिया। सन् १५३० ई० (वि० स० १५८७)मे आगरामे ही उसकी मृत्यु हो गई। इससे यह विदित होता है कि बाबरके जीवनकालमे ही 'सन्तिणाहचरिउ'की रचना समाप्त हुई है। अतएव कविका स्थितिकाल १६वी शती सिद्ध होता है।

कविने इस ग्रन्थमे अपनेसे पूर्ववर्त्ती अकलंक, पूज्यपाद, नेमिचन्द्र सैद्धान्तिक, चतुर्मुख, स्वयंभू, पुष्पदन्त, यश कीर्त्ति, रइधू, गुणभद्रसूरि और सहणपालका स्मरण किया है। रइधूका समय वि०की १५वी शतीका अन्तिम भाग अथवा १६वी शतीका प्रारम्भिक भाग है। अतएव कविका समय पूर्व आचार्योके स्मरणसे भी सिद्ध हो जाता है। लिखा है

अकलकसामि सिरिपायपूय, इदाइ महाकइ अट्ठहूय।
सिरिणेमिचद सिद्धतियाइ, सिद्धतसार मुणि ण विवि ताई।
चउमुहु-सुयभु-सिरिपुप्फयतु, सरसइ-णिवासु गुण-गण-महंतु।
जसकित्तिमुणीसर जस-णिहाणु, पडिय रइधूकइ गुण अमाणु।
गुणभद्दसूरि गुणभद्द ठाणु, सिरिसहणपाल वहुवुद्धि जाणु।

रचना

कवि द्वारा लिखित 'सतिणाहचरिउ'की प्रति वि० स० १५८८ फाल्गुण कृष्णा पंचमीको लिखी हुई उपलब्ध है।

प्रस्तुत ग्रथकी रचना योगिनीपुर (दिल्ली) निवासी अग्रवालकुलभूषण गर्गगोत्रीय साहू भोजराजके पाँच पुत्रोमेसे ज्ञानचन्दके पुत्र साधारण श्रावककी प्रेरणासे की गई है। भोजराजके पुत्रोंके नाम खेमचन्द, ज्ञानचन्द, श्रीचन्द, राजमल्ल और रणमल बताये गये है। ग्रंथकी प्रशस्तिमे कविने साधारण श्रावक-के वशका परिचय कराया है। बताया है कि उसने हस्तिनागपुरके यात्रार्थ सघ चलाया था और जिनमदिरका निर्माण कराकर उसकी प्रतिष्ठा भी कराई थी। भोजराजके पुत्र ज्ञानचदकी पत्नीका नाम 'भोराजही', था जो अनेक गुणोसे विभूषित थी। इसके तीन पुत्र हुए, जिनमे सारगसाहू और साधारण प्रसिद्ध है। सारगसाहूने सम्मेदशिखरकी यात्रा की थी। इसकी पत्नीका नाम 'तिलोकाही' था। दूसरा पुत्र साधारण बडा विद्वान् और गुणी था। उसने शत्रुंजयकी यात्रा-की थी। इसकी पत्नीका नाम 'सीवाही' था। इसके चार पुत्र हुए अभयचन्द, मल्लिदास, जितमल्ल और सोहिल्ल। इनकी पत्नियोके नाम चदणही, मदासही, समदो और भीखणही। ये चारो ही पतिव्रता और धर्मनिष्ठा थी। इस प्रकार कविने ग्रथ-रचनाके प्रेरकका परिचय प्रस्तुत किया है।

'सतिणाहचरिउ'मे १६वें तीर्थंकर शान्तिनाथ चक्रवर्तीका जीवनवृत्त गुम्फित है। कथा-वस्तु १३ परिच्छेदोमे विभक्त है। पद्य-प्रमाण ५०००के लगभग है।

शान्तिनाथ चक्रवर्ती, कामदेव और धर्मचक्री थे। कविने इनकी पूर्वभवावली-के साथ वर्त्तमान जीवनका अकन किया है। चक्रवर्तीने सभी प्रकारके वैभवोका

उपभोग किया और षट्खण्डभूमिको अपने अधीन किया। अन्तमे इन्द्रियविषयोको दुःखद अवगत कर देह-भोगोंसे विरक्त हो दिगम्बर-दीक्षा धारण कर तपश्चरण किया। समाधिरूपी चक्रसे कर्मशत्रुओको विनष्टकर धर्मचक्री बने। विविध देशोमे विहार कर जगत्को कल्याणका मार्ग बताया और अघातिया कर्मोंको नष्ट कर मोक्ष प्राप्त किया।

विजयसिंह

कवि विजयसिंहने अजितपुराणकी प्रशस्तिमे अपना परिचय दिया है। बताया है कि मेरुपुरमे मेरुकीर्त्तिका जन्म करमसिंह राजाके यहाँ हुआ था, जो पद्मावतीपुरवालवशके थे। कविके पिताका नाम दिल्हण और माताका नाम राजमती था। कविने अपनी गुरुपरम्पराका निर्देश नही किया है। सन्धिके पुष्पिका-वाक्यसे यह प्रकट है कि यह ग्रंथ देवपालने लिखवाया था।

"इय सिरिअजियणाहतित्थयरदेवमहापुराणे धम्मत्थ-काम-मोक्ख-चउपयत्थ पहाणे सुकइणासिरिविजयसिंहवुहविरइए महाभव्व-कामरायसुय-सिरिदेवपाल-विवुहसिरसेहरोवमिए दायार-गुणाण-कित्तण पुणो मगह-देसाहिववण्णण णाम पढमो सधीपरिछेओ समत्तो ॥"

कवि विजयसिहकी कविता उच्चकोटिकी नहीहै। यद्यपि उनका व्यक्तित्व महत्त्वाकांक्षीका है, तो भी वे जीवनके लिए आस्था, चरित्र और विवेकको आवश्यक मानते हैं।

स्थितिकाल

कविने अजितपुराणकी समाप्ति वि० स० १५०५ कार्त्तिकी पूर्णिमाके दिन की है। इसी सवत्की लिखी हुई एक प्रति भोगाँवके शास्त्रभण्डारमे पाई जाती है। इस प्रतिकी लेखन-प्रशस्तिमे बताया है

"सवत् १५०५ वर्षे कार्तिक सुदि पूर्णमासो दिने श्रीमूलसघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे भट्टारकश्रीपद्मनदिदेवस्तत्पट्टे भट्टारकश्रीशुभचन्द्रदेव तस्य पट्टे भट्टारकश्रीजिनचन्द्रदेव तस्याम्नाये श्रीखंडेलवालान्वये सकलग्रथार्थप्रवीण पडितकउडि तस्य पुत्र सकलकलाकुशल पण्डितछीत (र) तत्पुत्र निरवद्य-श्रावकाचारधर पडितजिनदास, पडितखेता तत्पुत्रपचाणुव्रतपालक पण्डित-कामराजस्तद्भार्या कमलश्री तत्पुत्रास्त्रय पण्डितजिनदास, पडितरतन देवपाल एतेषा मध्ये पडितदेवपालेन इद अजितनाथदेवचरित लिखापित निजज्ञाना-वरणीयकर्मक्षयार्थं, शुभमस्तु लेखकपाठकयो ।"

जैन सि० भा० भा० २२, कि० २।

अतएव कविका समय विक्रमकी १६वी शती है। कविने इस ग्रन्थकी रचना महाभव्य कामराजके पुत्र पडित देवपालकी प्रेरणासे की है। बताया है कि वणिपुर या वणिक्पुर नामके नगरमे खण्डेलवाल वशमे कउडि (कौडी) नामके पडित थे। उनके पुत्रका नाम छीतु था, जो बडे धर्मनिष्ठ और आचारवान थे। वे श्रावककी ११ प्रतिमाओका पालन करते थे। वहीपर लोकमित्र पडित खेता था। इन्हीके प्रसिद्ध पुत्र कामराज हुए। कामराजकी पत्नीका नाम कमलश्री था। इनके तीन पुत्र हुए जिनदास, रयणु और देवपाल। देवपालने वर्धमानका एक चैत्यालय बनवाया था, जो उत्तु ग ध्वजाओसे अलकृत था। इसी देवपालकी प्रेरणासे अजितपुराण लिखा गया है।

इस ग्रन्थकी प्रथम सन्धिके नवम कडवकमे जिनसेन, अकलक, गुणभद्र, गृद्धपिच्छ, प्रोष्ठिल, लक्ष्मण, श्रीधर और चतुर्मुखके नाम भी आये हैं।

इस ग्रन्थमे कविने द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथका जीवनवृत्त गुम्फित किया है। इसमे १० सन्धियाँ हैं। पूर्वभवावलीके पश्चात् अजितनाथ तीर्थंकरके गर्भ जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण कल्याणकोका विवेचन किया है। प्रसगवश लोक, गुणस्थान, श्रावकाचार, श्रमणाचार, द्रव्य और गुणोका भी निर्देश किया गया है।

कवि असवाल

कवि असवालका वश गोलाराड था। इनके पिताका नाम लक्ष्मण था। इन्होने अपनी रचनामे मूलसघ बलात्कारगणके आचार्य प्रभाचन्द्र, पद्मनन्दि, शुभचन्द्र और धर्मचन्द्रका उल्लेख किया है, जिससे यह ध्वनित होता है कि कवि इन्हीको आम्नायका था। कविने कुशार्त्त देशमे स्थित करहल नगर निवासी साहू सोणिगके अनुरोधसे लिखा है। ये सोणिग यदुवशमे उत्पन्न हुए थे।

ग्रन्थ-रचनाके समय करहलमे चौहानवशी राजा भोजरायके पुत्र ससारचन्द (पृथ्वीसिह) का राज्य था। उनकी माताका नाम नाइक्कदेवी था। यदुवशी अमरसिह भोजराजके मंत्री थे, जो जैनधर्मके अनुयायी थे। इनके चार भाई और भी थे, जिनके नाम करमसिह, समरसिह, नक्षत्रसिह और लक्ष्मणसिह थे। अमरसिहकी पत्नीका नाम कमलश्री था। इसके तीन पुत्र हुए नन्दन, सोणिग और लोणा साहू। लोणा साहू जिनयात्रा, प्रतिष्ठा आदिमे उदारतापूर्वक धन व्यय करते थे।

मल्लिनाथचरितके कर्त्ता कवि हल्लकी प्रशसा भी असवाल कविने की है। लोणा साहूके अनुरोधसे ही कवि असवालने 'पासणाहचरिउ'की रचना अपने

ज्येष्ठ भ्राता सोणिगके लिये कराई थी। सन्धि-वाक्यमे भी उक्त कथनकी पुष्टि होती है।

"इय पासणाहचरिए आयमसारे सुवण्णचहुभरिए बुहअसवालविरइए सधाहिपसोणिगस्स कण्णाहरणसिरिपासणाहणिव्वाणगमणो णाम तेरहमो परिच्छेओ सम्मत्तो।"

स्थितिकाल

कविने 'पासणाहचरिउ'की प्रशस्तिमे इस ग्रन्थका रचनाकाल अंकित किया है

इगवीरहो णिव्वुइ कुच्छराइ, सत्तरिसहुँ चउसयवत्थराइ।
पच्छइ सिरिणिवविक्कमगयाइ, एउणसीदीसहुँ चउदहसयाइ।
भादव-तम-एयारसि मुणेहु, वरिसिक्के पूरिउ गथु एहु।
पचाहियवीससयाइ सुत्तु, सहसइ चयारि मउणिहिं जुत्तु।

अर्थात् वि० स० १४७९ भाद्रपद कृष्णा एकादशीको यह ग्रन्थ समाप्त हुआ। ग्रन्थ लिखनेमे कविको एक वर्ष लगा था।

प्रशस्तिमे वि० सं० १४७१ भोजराजके राज्यमे सम्पन्न होनेवाले प्रतिष्ठोत्सवका भी वर्णन आया है। इस उत्सवमे रत्नमयी जिनबिम्बोकी प्रतिष्ठा की गई थी।

प्रशस्तिमे जिस राजवशका उल्लेख किया है उसका अस्तित्व भी वि० स० की १५वी शताब्दीमे उपलब्ध होता है। अतएव कविका समय विक्रमकी १५ वी शताब्दी है। कविकी एक ही रचना 'पासणाहचरिउ' उपलब्ध है। इसमे २३वे तीर्थंकर पार्श्वनाथका जीवन-चरित अंकित है। कथावस्तु १३ सन्धियोमे विभक्त है। कविने इस काव्यमे मरुभूति और कमठके जीवनका सुन्दर अकन किया है। सदाचार और अत्याचारकी कहानी प्रस्तुत की है। प्रत्येक जन्ममे मरुभूतिका जीव कमठके जीवके विद्वेषका शिकार होता है। कमठका जीव मरुभूतिके जीवके समान ही इस लोकमे उत्पन्न होता है, किन्तु अपने दुष्कृत्यके कारण तिर्यञ्चमे जन्म ग्रहणकर नरकवास भोगता है। उसे छठवें भवमे पुन मनुष्य-योनिकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार मरुभूति और कमठका वैर-विरोध १० जन्मो तक चलता है। १० वें भवमे मरुभूतिका जीव पार्श्वनाथके रूपमे जन्म ग्रहण करता है। पार्श्व जन्मके पश्चात् अपने बल, पौरुष एव बुद्धिका परिचय देते है। और ३० वर्षकी आयु पूर्ण होनेपर माघ शुक्ला एकादशीको दीक्षा ग्रहण करते हैं। वे तपश्चरण कर केवलज्ञान लाभ करते हैं और सम्मेद-

गिरनारपर निर्वाण-लाभ करते हैं। कविने प्रसंगवश सम्यक्त्व, श्रावकधर्म, मुनिधर्म, कर्मसिद्धान्त और लोकके स्वरूपका विवेचन भी किया है। कविता साधारण है और भाषा लोकभाषाके निकट है।

इस चरितग्रन्थमें कविने ग्राम, नगर और प्रकृतिका विवरणात्मक चित्रण किया है। नर-नारियोंके चित्रणमें परम्परायुक्त उपमानोंका व्यवहार किया गया है।

वल्ह या बूचिराज

कवि वल्ह या बूचिराज मूलसंघके भट्टारक पद्मनन्दिकी परम्परामें हुए हैं। ये राजस्थानके निवासी थे। सम्यक्त्वकौमुदीनामक ग्रंथ उन्हें चम्पावती (चाटसु)में भेंट किया गया था। बूचिराज अच्छे कवि थे और पठन-पाठन आदिमें इनका समय व्यतीत होता था।

कवित्वको शक्ति प्राप्त है। कवि अपभ्रंश और लोक-भाषाओंका अच्छा जानकार है।

स्थितिकाल

कविने अपनी कतिपय रचनाओंमें रचनाकालका निर्देश किया है। उन्होंने 'मयणजुज्झ'की समाप्ति वि० १५८९में की है। 'सन्तोषतिलक जयमाल' नामक ग्रन्थ की रचना वि० सं० १५९१में की गई है। अतएव रचनाओंपरसे कविका समय विक्रम सं० की १६वीं शती का उत्तरार्द्ध आता है। भाषा, शैली एवं वर्ण्य विषयकी दृष्टिसे भी इस कविका समय विक्रमकी १६वीं शती प्रतीत होता है।

रचनाएँ

कवि आचार-नीति और अध्यात्मका प्रेमी है। अतएव उसने इन विषयोंसे सम्बद्ध निम्नलिखित रचनाएँ लिखी हैं

१ मयणजुज्झ (मदनयुद्ध), २. सन्तोषतिलकजयमाल, ३ चेतनपुद्गलधमाल, ४ टंडाणागीत, ५. भुवनकीर्त्तिगीत, ६. नेमिनाथवसन्त और ७. नेमिनाथबारहमासा।

'मयणजुज्झ' रूपक-काव्य है। इसकी रचनाका मुख्य उद्देश्य मनोविकारों पर विजय प्राप्त करना है। इस काव्यमें १५९ पद्य हैं, जिनमें आदिनाथ तीर्थंकरका मदनके साथ युद्ध दिखलाकर उनकी विजय बतलाई गई है।

वसन्तऋतु कामोत्पादक है। उसके आगमनके साथ प्रकृतिमे चारो ओर आह्लादक वातावरण व्याप्त हो जाता है। सुरभित मलयानिल प्रवाहित होने लगता है, कोयलकी कूज सुनाई पडती है और प्रकृति नई वधूके समान इठलाती हुई दृष्टिगोचर होती है।

इसी सुहावने समयमे तीर्थंकर ऋषभदेव ध्यानस्थ थे। कामदेवने जब उन्हे शान्त-मुद्रामे निमग्न देखा, तो वह कुपित होकर अपने सहायकोके साथ ऋषभदेवपर आक्रमण करने लगा। कामके साथ क्रोध, मद, माया, लोभ, मोह, राग-द्वेष और अविवेक आदि सेनानियोने भी अपने-अपने पराक्रमको दिखलाया। पर ऋषभदेवपर उनका कुछ भी प्रभाव नही पडा। उनके सयम, त्याग, शील और ध्यानके समक्ष मदनको परास्त होना पडा। कविने युद्धका सजीव वर्णन निम्नलिखित पक्तियोमे किया है

चढिउ कोपि कदप्पु अप्पु बलि अवर न मन्नइ।
कुदे कुरले तसै हसै सव्वह अवगन्नइ।
ताणि कुसुम-कोवडु भविय सयह दलु मिल्लिउ।
मोहु वहिड तहगवि तासु वलु खिणमहि पिल्लिउ।
कवि वल्लह जैनु जगम अटलु तासु सरि अवरु न करै कुइ।
असि-झाणि-हणिउ श्री आदिजिण, गयो मयणु दहवउहोइ॥

कविकी दूसरी रचना सतोषतिलकजयमाल है। यह भी रूपक काव्य है। इसमे सन्तोषद्वारा लोभपर विजय प्राप्त करनेका वर्णन आया है। काव्यका नायक सन्तोष है और प्रतिनायक लोभ। लोभ प्रवृत्तिमार्गका पथिक है और सन्तोष निर्वृत्तिमार्गका। लोभके सेनानी असत्य, मान, माया, क्रोध, मोह, कलह, व्यसन, कुशील, कुमति और मिथ्याचरित्त आदि हैं। सन्तोषके सहायक शील, सदाचार, सुधर्म, सम्यक्त्व, विवेक, सम्यक्चारित्र, वैराग्य, तप, करुणा, क्षमा और सयम आदि हैं।

कविने यह काव्य १३१ पद्योमे रचा है। लोभ और सन्तोषके परिकरका परिचय प्रस्तुत करते हुए लिखा है

लोभ

आपउ झूठु परधानु मतन्तत खिणि कीयउ।
मानु मोह अरु दोहु मोहु इकु युद्धउ कीयउ।
माया कलह कलेपु थापु, सताप छद्म दुखु
कम्म मिथ्या आचरउ, आइ अद्धम्मि कियउ पखु
कुविसन कुसीलु कुमतु जुडिउ राग दोष आइए लहिउ।
अप्पणउ सयनु बल देखिकरि, लोहुराउ तब गह गहिउ॥

सन्तोष

आइयौ सीलु सुधम्मु समकितु ग्यान चारित सवरो,
वैरागु तप करुणा महाव्रत खिया चिति सजय थिरो।
अज्जउ सुमइउ मुत्ति उपसमु धम्मु सो आकिंचिणो,
इन मेलि दलु सन्तोषराजा लोभ सिव मडक रणो॥

चेतनपुद्गल धमाल

इसका दूसरा नाम अध्यात्म धमाल भी है। यह भी एक रूपक काव्य है। कुल १३६ पद्य हैं। इसमे पुद्गलकी सगतिसे होने वाली चेतन-विकृत परिणतिका अच्छा वर्णन किया है। चेतन और पुद्गल का बहुत ही रोचक संवाद आया है। कवि की कविताका नमूना निम्न प्रकार है

जिउ ससि मउणु रयणिका दिनका मउणु भाणु।
तिम चेतनका मडणा, यहु पुद्गल तू जाणु॥
× × ×
काइ कलेवरु वसि सुहु, जतनु कर तिहि जाइ।
जिउ जिउ वाचे तंबडो, तिव तिव अति करवाइ॥
× × ×
कायाकी निन्दा करइ, आपु न देखइ जोइ।
जिउ जिउ भीजह कावली, तिउ तिउ भारी होइ॥[1]

टंडाणागीत यह उपदेशात्मक रचना है। इसका मुख्य उद्देश्य ससारके स्वरूपका चित्रण कर उसके दु खोसे उन्मुक्त करना है। यह मोही प्राणी अनादिकालसे स्वरूपको भूलकर परमे अपनी कल्पना करता आ रहा है। इसी कारण उसका परवस्तुओसे अधिक राग हो गया है। कविने अन्तिम पदमे आत्माको सम्बोधन कर आत्मसिद्धि करनेका सकेत किया है। कविकी यह रचना बडी ही सरल और मनोहर है।

भुवनकीर्तिगीत इसमे पाँच पद्य हैं, जिनमे भट्टारक भुवनकीर्तिके गुणोकी प्रशसा की गई है। भुवनकीर्ति अट्ठाइस मूलगुण और १३ प्रकारके चारित्रका पालन करते हुए मोहरूपी महाभटको ताडन करनेवाले थे। कविने इस कृतिमे इन्हीके गुणोका वर्णन किया है।

नेमिनाथवसन्त इसमे २३ पद्य हैं। वसन्त ऋतुका रोचक वर्णन करनेके

१ अनेकान्त वर्ष १६, किरण ६, १९६४ फरवरी, पृ० २५४–२५६।

अनन्तर नेमिनाथका अकारण पशुओको घिरा हुआ देखकर और सारथीसे अतिथियोंके लिए वधकी वात सुनकर विरक्त हो रैवन्तगिरि पर जाना वर्णित है। राजमतीका विरह और उसका तपस्विनीके रूपमे आत्म-साधना करना भी वर्णित है।

वल्हि वियक्खणु सखीय बधण।
मूल सध मुख मडिया पद्मनदि सुपसाइ,
वल्हि वसतु जु गावहि सो सखि रलिय कराइ॥

नेमिनाथबारहमासा १२ महीनोमे राजोमतिने अपने उद्‌गारोको व्यक्त किया है। चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ आषाढ आदि मास अपनी विभिन्न प्रकारकी विशेषताओ और प्राकृतिक सौदर्यके कारण राजोमतिको उद्वेलित करते हैं और वह नेमिनाथको सम्वोधित कर अपने भावोको व्यक्त करती है। कृति सरस और मार्मिक है।

कवि शाह ठाकुर

कवि शाह ठाकुरने 'सतिणाहचरिउ' की प्रशस्तिमे अपना परिचय दिया है। अपनी गुरुपरम्परामे वताया है कि भट्टारक पद्मनन्दिकी आम्नायमे होने वाले भट्टारक विशालकीर्त्तिके वे शिष्य थे। मूलसघ नन्द्याम्नाय, सरस्वतीगच्छ, वलात्कारगणके विद्वान थे। कविने भट्टारक पद्मनन्दि, शुभचन्द्रदेव, जिनचन्द्र, प्रभाचन्द्र, चन्द्रकीर्त्ति, रत्नकीर्त्ति, भुवनकीर्त्ति, विशालकीर्त्ति, लक्ष्मीचन्द्र, सहस्र-कीर्त्ति, नेमिचन्द्र, आर्यिका अनन्तश्री और दाभडालीवाईका नामोल्लेख किया है। कविने यहाँ दो परम्पराके भट्टारकोका उल्लेख किया है अजमेर-पट्ट और आमेरपट्ट। भट्टारक विशालकीर्त्ति अजमेर-शाखाके विद्वान थे और वे भट्टारक चन्द्रकीर्त्तिके पट्टधर थे। विशालकीर्त्ति नामके अनेक विद्वान् हुए हैं।

"सिरि पद्मनन्दि भट्टारकेण पठहु सुतासु सुभचन्ददेव।
जिणचद भट्टारक सुभगसेव।
सिरि पहाचद पापाटि सुमत्ति। परिमणहु भट्टारक चदकित्ति।
तहु वारइ किय सुकहा-पवधु। सुसहावकरण जणि जेम वधु।
आचारिय घुरि हुउ रयणकित्ति। तहु सीसु भलो जग भुवणकित्ति।
× × × ×
दिक्खा-सिक्खा-गुण-गाइणसार। सिरिविशालकित्ति विद्या-अपार।
तहु सिखि हूवउ लक्ष्मी सुचद। भवि-बोहण-सोहण भुवणमिदु।

ता सिक्खु सुभग जगि सहसकित्ति । नेमिचद हुवो सासनि सुयत्ति ।
अज्जिका अन्नतिसिरि ले पदेसि । दाभाडालीवाई विसेसि ।"

कविके पितामहका नाम साहू सील्हा और पिताका नाम खेत्ता था । जाति खडेलवाल और गोत्र लोहडिया था । यह लोवाइणिपुरके निवासी थे । इस नगरमे चन्द्रप्रभ नामका विशाल जिनालय था । इनके दो पुत्र थे धर्मदास और गोविन्ददास । इनमे धर्मदास बहुत ही सुयोग्य और गृहभार वहन करने वाला था । उसकी वुद्धि जैनधर्ममे विशेष रस लेती थी। कवि देव-शास्त्र-गुरुका भक्त और विद्या-विनोदी था । विद्वानोके प्रति उसका विशेष प्रेम था । कविने लिखा है

"खडेलवाल साल्हा पससि । लोहाडिउ खेत्तात्तणि सुससि ।
ठाकुरसी सुकवि णामेण साह, पडितजन प्रीति वहइ उछाह ।
तहु पुत्त पयड जगि जसु मईय, मानिसालोय महि मडलीय ।
गुरुयण सुभट गोविददास, जिणधम्मबुद्धि जगि धम्मदास ।
णदहु लुवायणिपुर लोणविद, णदहु जिण सासण जगि जिणिदु ।
चदप्पहु जिनमदिर विशाल, णदहु पाति मडल सामिसाल ।"

प्रशस्तिसे अवगत होता है कि कविका वश राजमान्य रहा है । कविने विशालकीर्त्तिको अपना गुरु बताया है । पर विशालकीर्त्ति नामके कई भट्टा-रक हुए हैं । अत यह निश्चय कर सकना कठिन है कि कौन विशालकीर्त्ति इनके गुरु थे । एक विशालकीर्त्ति वे हैं, जिनका उल्लेख भट्टारक शुभचन्द्रकी गुर्वावलीमे ८०वें नम्बरपर आया है और जो वसन्तकीर्त्तिके शिष्य और शुभ-कीर्त्तिके गुरु थे । दूसरे विशालकीर्त्ति वे है, जो भट्टारक पद्मनन्दिके पट्टधर थे, जिनके द्वारा वि० स० १४७०मे मूर्तियोकी प्रतिष्ठा हुई थी । तीसरे विशाल-कीर्त्ति वे हैं, जिनका उल्लेख नागौरके भट्टारकोकी नामावलीमे आया है, जो धर्मकीर्त्तिके पट्टधर थे, जिनका पट्टाभिषेक वि० स० १६०१मे हुआ था ।

'महापुराणकलिका'मे भी कविने अपनेको विशालकीर्त्तिका शिष्य कहा है और नेमिचन्द्रका भी आदरपूर्वक स्मरण किया है । अतएव उपलब्ध सामग्रीके आधारपर इतना ही कहा जा सकता है कि कवि शाह ठाकुर खडेलवाल वशमे उत्पन्न हुए थे और इनके दादाका नाम सीहा और पिताका नाम खेत्ता था । इनके गुरुका नाम विशालकीर्त्ति था ।

स्थितिकाल

कविकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं १. सतिणाहचरिउ और २ महापुराण-कलिका । सतिणाहचरिउकी रचना वि० स० १६५२ भाद्रपद शुक्ला पचमीके

दिन चकत्तावशके जलालुद्दीन अकवर वादशाहके शासनकालमे पूर्ण हुई थी। उस समय ढूढाहाड देशके कच्छपवशी राजा मानसिहका राज्य वर्त्तमान था। मानसिहकी राजधानी उस समय अम्वावती या आमेर थी।

कविकी दूसरी रचना वि० सं० १६५०मे मानसिहके शासनमे ही समाप्त हुई थी। अतएव कविका समय वि० स० को १७वी शताब्दी निर्णीत है।

रचनाएँ

कविकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं सतिणाहचरिउ और महापुराणकलिका। सतिणाहचरिउमे ५ सन्धियाँ हैं और १६वे तीर्थंकर शान्तिनाथका जीवनवृत्त वर्णित है। शान्तिनाथ कामदेव, चक्रवर्ती और तीर्थंकर इन तीनो पदोको अलकृत करते थे। यह चरित ग्रन्थ वर्णनात्मक शैलीमे लिखा गया है। भाषा सरस और सरल है।

महापुराणकलिकामे २७ सन्धियाँ है, जिनमे ६३ शलाकापुरुषोकी गौरव-गाथा गुम्फित है। इसमे तीर्थंकर ऋषभदेवका चरित तो विस्तारके साथ अकित किया गया है। भरत, वाहुवली, जयकुमार आदिके इतिवृत्त भी विस्तार-पूर्वक दिये गये हैं। शेष महापुरुषोके जीवनवृत्त सक्षेपमे ही आये है। २३ तीर्थं-कर, ११ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ वलभद्र और ९ प्रतिनारायणोके नाम, जन्म-ग्राम, माता-पिता, राज्यकाल, तपश्चरण आदिका सक्षेपमे वर्णन आया है। इसप्रकार कविने अपने इस पुराणमे शलाकापुरुषोका जीवनवृत्त निरूपित किया है।

माणिक्यराज

१६ वी शताब्दीके अपभ्रशकाव्य-निर्माताओमे माणिक्यराजका महत्त्व-पूर्ण स्थान है। ये वुहसूरा (वुधसूरा) के पुत्र थे। जायस अथवा जयसवाल-कुलरूपी कमलोको प्रफुल्लित करनेके लिए सूर्य थे। इनकी माताका नाम दीवा-देवी था। 'णायकुमारचरिउ'की प्रशस्तिमे कविने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है

तहि णिवसइ पडिउ सत्थखणि, सिरिजयसवालकुलकमलतरणि।
इक्खाकुवंस-महियवलि-वरिट्ठ, वुहसुरा-णदणु सुयगरिट्ठु।
उप्पण्णउ दीवा-उयरिखाणु, बुह माणिकुराये बुहहिमाणु।

कवि माणिक्यराजने अमरसेन-चरितमे अपनी गुरुपरम्पराका निर्देश करते हुए लिखा है—

"तव-तेय-णियत्तणु कियउ खीणु, सिरिखेमकित्ति पट्टहि पवीणु।
सिरिहेमकित्ति जि हयउ वामु, तहु पट्टवि कुमर वि सेण णामु।
णिग्गथु दयालउ जइ वरिट्ठु, जि कहिउ जिणागममेउ सुट्ठु।
तहु पट्टि णिविट्ठिउ बुहपहाणु, सिरिहेमचदु मय-तिमिर-भाणु।
त पट्टि धुरधरु वयपवीणु, वर पोमणदि जो तवहँ खीणु।
त पणविवि णियगुरुसीलखाणि, णिग्गथु दयालउ अमियवाणि।"

अर्थात् क्षेमकीर्त्ति, हेनकीर्त्ति, कुमारसेन, हेमचन्द्र और पद्मनन्दि आचार्य हुए। प्रस्तुत पद्मनन्दि तपस्वी, शीलकी खान, निर्ग्रंथ, दयालु और अमृतवाणी थे। ये पद्मनन्दि ही माणिक्यराजके गुरु थे।

अमरसेनग्रन्थकी अन्तिम प्रशस्तिमे पद्मनन्दिके एक और शिष्यका उल्लेख आया है, जिसका नाम देवनन्दि है। ये देवनन्दि श्रावककी एकादश प्रतिमाओके पालन करनेवाले राग-द्वेष-मद-मोहके विनाशक, शुभध्यानमे अनुरक्त और उपशमभावी थे। इस ग्रन्थका प्रणयन रोहतकके पार्श्वनाथ मन्दिरमे हुआ है।

कवि माणिक्यराज अपभ्रशके लब्धप्रतिष्ठ कवि हैं और इनका व्यक्तित्व सभी दृष्टियोसे महनीय है।

स्थितिकाल

कविने अमरसेनचरितकी रचना वि० स० १५७६ चैत्र शुक्ला पचमी शनिवार और कृत्तिका नक्षत्रमे पूर्ण की है। ग्रन्थकी प्रशस्तिमे उक्त रचना-कालका विवरण अकित मिलता है

"विक्कमरायहु ववगइ कालइ, लेसु मुणीस विसर अकालइ।
धरणि अक सहु चइत विमाणे, सणिवारें सुय पचमि-दिवसें।
कित्तिय णक्खत्तें सुहजोएँ, हुउ उप्पण्णउ सुत्तु सुहजोएँ।"

अमरसेनचरितके लिखनेके एक वर्ष पश्चात् अर्थात् वि० स० १५७७ की लिखी हुई प्रति उपलब्ध है। यह प्रति कार्तिक कृष्णा चतुर्थी रविवारके दिन कुरुजागल देशके सुवर्णपथ (सुनपत) नगरमे काष्ठासघ माथुरान्वय पुष्करगणके भट्टारक गुणभद्रकी आम्नायमे उक्त नगरके निवासी अग्रवालवशीय गोयल गोत्री साहू छल्हूके पुत्र साहू बाटूके द्वारा लिखी गई।

दूसरी रचना नागकुमारचरितका प्रणयन विक्रम सवत् १५७९ मे फाल्गुण शुक्ला नवमीके दिन हुआ है। इस ग्रन्थमे साहू जगसीके पुत्र साहू-टोडरमलकी बहुत प्रशसा की गई है। उसे कर्णके समान दानी, विद्वज्जनोका

सम्पोषक, रूप-लावण्यसे युक्त और विवेकी बताया है। नागकुमारचरितको रचनेकी प्रेरणा कविको इन्हीं टोडरमलसे प्राप्त हुई थी। अत इस रचनाको पूर्णकर जब साहू टोडरमलके हाथमे इसे दिया गया, तो उसने इसे अपने सिरपर चढाया और कवि माणिकराजका खूब सत्कार किया। और उसे वस्त्राभूषण भेंट किये।

उपर्युक्त ग्रन्थरचना-कालोंसे यह स्पष्ट है कि कविका समय वि० की १६ वी शती है।

रचनाएँ

अमरसेनचरित इस चरित-ग्रन्थमे मुनि अमरसेनका जीवनवृत्त अकित है। कथावस्तु ७ सन्धियोमे विभक्त है। ग्रन्थकी पाण्डुलिपि आमेर-शास्त्र-भण्डार जयपुरमे उपलब्ध है।

दूसरी कृति नागकुमारचरित है। इसमे पुण्यपुरुष नागकुमारकी कथा वर्णित है। कथावस्तु ९ सन्धियोमे विभक्त है तथा ग्रथप्रमाण ३३०० श्लोक है।

माणिक्यराजने अमरसेनचरिउ नामक काव्यमे ग्वालियर नगरका वर्णन किया है। इस वर्णनका अनुसरण महाकवि रइधूके ग्वालियरनगर-वर्णनसे किया गया है। यहाँ उदाहरणार्थ रइधू विरचित पासणाहचरिउ और अमर-सेनचरिउकी पक्तियाँ तुलनाहेतु प्रस्तुत की जा रही हैं

महिवीढि पहाणउँ णं गिरिरणउँ, सुरहँ वि मणि विभउ जणिउँ।
कउसीसहिँ मडिउ णं इहु पडिउ, गोपायलु णामे भणिउँ।
रइधूकृत पासणाहचरिउ १।२।१५-१६

महीवीढि पहाणउँ गुण-वरिट्ठु, सुरहँ वि मणि विभउ जणइ सुट्ठु।
वरतिण्णिसालमडिउ पवित्तु, णंदह पडिउ सुरपारपत्तु।
अमरसेनचरिउ १।३।१-१८

कवि माणिकराजकी भाषा-शैली पुष्ट है तथा चरित-काव्योचित सभी गुण पाये जाते हैं।

कवि माणिकचन्द

डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्रीने[1] भरतपुरके जैनशास्त्र भण्डारसे कवि माणिक-चन्दकी 'सत्तवसणकहा' को प्रति प्राप्त की है। इस कथाग्रन्थके रचयिता

१ भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंशकथाकाव्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पृ० ३२६।

जयसवालकुलोत्पन्न कवि माणिकचन्द हैं। इस कथाकी रचना टोडरसाहूके पुत्र ऋषभदासके हेतु हुई है। कवि मलयकीर्त्ति भट्टारकके वशमे उत्पन्न हुआ था। ये मलयकीर्त्ति यश कीर्त्तिके पट्टधर थे।

ग्रथका रचनाकाल वि० स० १६३४ है।[1] अत कविका समय १७वी शती निश्चित है।

'सत्तवसणकहा' इसमे सप्तव्यसनोकी सात कथाएँ निबद्ध है। कथाग्रथ सात सन्धियोमे विभक्त है। यह प्रबन्ध शैलीमे लिखा गया है। कथामे वस्तु-वर्णनोका आधिक्य नही है। कथा सीधे और सरल रूपमे चलती है। सवाद-योजना वडी मधुर है। भाषा सरल और स्पष्ट है। युद्ध-वर्णन विस्तृत रूपमे मिलता है। यहाँ उदाहरणार्थ कुछ पक्तियाँ प्रस्तुत हैं

ता उहय वलहि सगामु जाउ, भड भडहि रहहु भिडिउ ताउ।
गउ गयहि पुणु हउ हयहि वग्गु, खण खण करत करिवार अग्गु।
वरसहि समरगण वाणपंत्ति, णावइ धाराहर घणहु जुत्ति।
रणभूमे भडहिमि भडु णिरुद्धु, गउ गयहि तुरिउ तुरएहि कुद्धु। (७,२४)

इस कथाकाव्यमे कृष्ण और जरासधका युद्ध, नेमीश्वरका विवाह द्यूत-क्रीडा आदिका वर्णन आया है। इन वर्णनोसे यह स्पष्ट है कि यह एक कथा काव्यात्मक सग्रह है, जिसमे ७ व्यसनोकी कथाएँ अलग-अलग काव्यात्मक रूपमें लिखी गई हैं। इसमे लोकोक्तियो और देशी शब्दोकी भी प्रचुरता है।

भगवतीदास

भगवतीदास भट्टारक गुणचन्द्रके पट्टधर भट्टारक सकलचन्द्रके प्रशिष्य और महीन्द्रसेनके शिष्य थे। महीन्द्रसेन दिल्लीकी भट्टारकीय गद्दीके पट्टधर थे। पडित भगवतीदासने अपने गुरु महीन्द्रसेनका वडे आदरके साथ स्मरण किया है। यह वूढिया, जिला अम्वालाके निवासी थे। इनके पिताका नाम किसनदास था। इनकी जाति अग्रवाल और गोत्र वसल था। कहा जाता है कि चतुर्थ वयमे इन्होने मुनिव्रत धारण कर लिया था।

कवि भगवतीदास सस्कृत, अपभ्रश और हिन्दी भाषाके अच्छे कवि और विद्वान् थे। ये वूढियासे योगिनीपुर (दिल्ली) आकर वस गये थे। उस समय दिल्लीमे अकवर वादशाहके पुत्र जहाँगीरका राज्य था। दिल्लीके मोतीवाजार-

१. अह सोलह सइ चउतीस एण, चडतहु उज्जलपक्खें सुहेण।
आइच्चवार तिहि पचमीहि, इहु गथू सकरणु हुउ विहीहि। ७-३२।

मे भगवान् पार्श्वनाथका मन्दिर था। इसी मदिरमे आकर भगवतीदास निवास करते थे।

स्थितिकाल

कविने अपनी अधिकाश रचनाएँ जहाँगीरके राज्यकालमे लिखी हैं। जहाँगीरका राज्य ई० सन् १६०५–१६२८ ई० तक रहा है। अवशिष्ट रचनाएँ शाहजहाँके राज्यमे ई० सन् १६२८–१६५८मे लिखी गई हैं।

कतिपय रचनाओमे कविने उनके लेखनकालका उल्लेख किया है। 'चूनडी' रचना वि० स० १६८०मे समाप्त हुई है। अन्य १९ रचनाएँ भी सभवत सं० १६८० या इसके पूर्व लिखी जा चुकी थी। 'वृहत् सीता सतु'की रचना वि० स० १६८४ और 'लघु सीतासतु'की रचना वि० स० १६८७मे की है। कविने अपभ्रश भाषाका 'मृगाकलेखाचरित' वि० स० १७०० मार्गशीर्ष शुक्ल पचमी सोमवारके दिन पूरा किया है। लिखा है

सगदह सवदतीह तहा, विक्कमराय महप्पए।
अगहण-सिय पचमि सोम-दिणे, पुण्ण ठियउ अवियप्पए।

अतएव कवि भगवतीदासका समय १७वी शतीका उत्तरार्द्ध और अठारहवी शतीका पूर्वार्ध सुनिश्चित है। कविकी सभी रचनाएँ १७वी शतीमे सम्पन्न हुई हैं।

रचनाएँ

कवि प० भगवतीदासने अपभ्रश और हिंदीमे प्रचुर परिमाणमे रचनाए लिखी हैं। उनकी उपलब्ध रचनाओका उल्लेख निम्न प्रकार है

१ ढडाणारास यह रूपक काव्य है। इसमे वताया गया है कि एक चतुर प्राणी अपने-अपने दर्शन, ज्ञान, चारित्रादि गुणोको छोडकर अज्ञानी बन गया और मोह-मिथ्यात्वमे पडकर निरन्तर परवश हुआ चतुर्गतिरूप ससारमे भ्रमण करता है। अत कवि सम्बोधन करता हुआ कहता है—,

धर्म-सुकल धरि ध्यानु अनूपम, लहि निजु केवलनाणा वे।
जम्पति दासभगवती पावहु, सासउ-सुहु निव्वाणा वे॥

२. आदित्यरास इसमे बीस पद्य हैं।

३ पखवाडारास २२ पद्य है। पन्द्रह तिथियोमे विधेय कर्त्तव्यपर प्रकाश डाला गया है।

४. दशलक्षणरास ३४ पद्य हैं और उत्तमक्षमादि दश धर्मोंका स्वरूप वतलाया गया है। दश धर्मोंको अवगत करनेके लिए यह रचना उपादेय है।

५ खिचडीरास ४० पद्य है। इसमे भावनाओको उदात्त बनानेपर जोर दिया है।

६ समाधिरास इसमे साधु-समाधिका चित्रण आया है।

७. जोगारास ३८ पद्य हैं। भ्रमवश ससारमे भ्रमण करनेवाले जीवको भ्रम त्याग अतीन्द्रिय सुख-प्राप्तिके हेतु प्रयत्नशील रहनेके लिए सकेत किया है।

पेखहु हो तुम पेखहु भाई, जोगी जगमहि सोई।
घट-घट-अन्तरि वसइ चिदानदु, अलखु न लखिए कोई॥
भववन भूल रह्यो भ्रमिरावलु, सिवपुर-सुव विसराई।
परम अतीन्द्रिय शिव-सुख तजिकर, विषयनि रहिउ भुलाई॥

८ मनकरहारास २५ पद्य हैं। इस रूपक काव्यमे मनकरहाके चौरासी लाख योनियोमे भ्रमण करने और जन्म-मरणके असह्य दुःख उठानेका वर्णन किया है और बताया है कि रत्नत्रय द्वारा ही जीव जन्म-मरणके दुःखोसे मुक्त हो शिवपुरी प्राप्त करता है। रूपकको पूर्णतया स्पष्ट किया गया है।

९ रोहिणीव्रतरास ४२ पद्य हैं।

१० चतुर वनजारा ३५ पद्य हैं। यह भी रूपक काव्य है।

११ द्वादशानुप्रेक्षा १२ पद्योमे द्वादश भावनाओका निरूपण किया है।

१२ सुगन्धदशमीकथा ५१ पद्योमे सुगन्धदशमीव्रतके पालन करनेका फल निरूपित किया गया है।

१३. आदित्यवारकथा रविवारके व्रतानुष्ठानकी रचना की गयी है।

१४ अनथमीकथा २६ पद्योमे रात्रिभोजनके दोषोपर प्रकाश डाला गया है और उसके त्यागकी महत्ता बतलाई है।

१५. 'चूनडी' अथवा 'मुक्तिरमणीकी चूनडी'—यह रूपक काव्य है।

१६ वीरजिनिन्दगीत तीर्थंकर महावीरकी स्तुति वर्णित है।

१७. राजमती-नेमिसुर-ढमाल इसमे राजमति और नेमकुमारके जीवनको अकित किया गया है।

१८ लघुसीतासतु इसमे सीताके सतीत्वका चित्रण किया गया है। बारह महीनोके मन्दोदरी-सीताके प्रश्नोत्तरके रूपमे भावोको अभिव्यक्ति हुई है। आषाढ़ मासके प्रश्नोत्तरको उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जाता है

मदोदरी

तव बोलइ मदोदरी रानी, सखि अषाढ घनघट घहरानी।
पीय गए ते फिर घर आवा, पामर नर नित मन्दिर छावा।
लवहि पपीहे दादुर मोरा, हियरा उमग धरत नहिं धीरा।
बादर उमहि रहे चौपासा, तिय पिय विनु लिहिं उसन उसासा॥

सीता

करत कुशील बढत बहु पापू, नरकि जाइ तिउ हइ सतापू।
जिउ मधुबिंदु तनूसुख लहिये, शील विना दुरगति दुख सहिये।

१९ अनेकार्थ नाममाला यह कोषग्रन्थ है। इसमे एक शब्दके अनेकानेक अर्थोका दोहोमे सग्रह किया है। इसमे तीन अध्याय हैं और प्रथम अध्यायमे ६३, द्वितीयमे १२२ और तृतीयमे ७१ दोहे लिखित हैं। यह बनारसीदासकी नाममालासे १७ वर्ष बादकी रचना है।

२० मृगांकलेखाचरित इस ग्रन्थमें चन्द्रलेखा और सागरचन्द्रके चरितका वर्णन करते हुए चन्द्रलेखाके शीलव्रतका महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। चन्द्रलेखा नाना प्रकारकी विपत्तियोंको सहन करते हुए भी अपने शीलव्रतसे च्युत नही होती।

इस ग्रन्थकी कथावस्तु चार सन्धियोमे विभक्त है। इस अपभ्रश-काव्यमे काव्यतत्त्वोका पूर्णतया समावेश हुआ है। कवि चन्द्रलेखाका वर्णन करता हुआ कहता है

सुहलग्ग जोइ वर सुह णरवत्ति, सुउवण्ण कण्ण ण काम थत्ति।
कम पाणि कवल सुसुवण्ण देह, तिहं णाउ धरिउ सुमइंक लेह।
कमि कमि सुपवड्ढइ सागुणाल, दिग मिग ससिवत्तु मराल वाल।
रूव रइ दासि व णियडि तासु, किं वण्णमि अमरी खयरि जासु।
लछी सुविलछो सोह दित्ति, तिह तुल्लि ण छज्जइ वुद्धि कित्ति।

मृगांक १।२

चन्द्रलेखाकी आँखें मृगकी आँखोके समान, वक्त्र चंद्रके समान और चाल हसके समान थी। उसके निकट रति दासीके समान प्रतीत होती थी, अत इस स्थितिमे अमरांगना या विद्याधारी उसकी समता कैसे कर सकती थी?

ग्रन्थकी भाषा खिचडी है। पद्धडीबन्धमे अपभ्रश, दोहा-सोरठा आदिमे हिन्दी और गाथाओमे प्राकृतभाषाका प्रयोग किया है।

इस प्रकार भगवतीदासने अपभ्रश और हिन्दीमे काव्य-रचनाएँ लिखकर जिनवाणीकी समृद्धि की है।

अपभ्रंशके अन्य चर्चित कवि

अपभ्रश-साहित्यकी समृद्धिमे अनेक कवि और लेखकोने योगदान दिया है। इन कवियो द्वारा विरचित अधिकाश रचनाएँ अप्रकाशित हैं। अत उनका यथार्थ मूल्याकन तब तक संभव नही है, जबतक रचनाएँ मुद्रित होकर सामने न आ जायें। अपभ्रंशमे ऐसे और कई कवि और लेखक है जिन्होने

एकाधिक रचनाएँ लिखी हैं। हम यहाँ कतिपय ऐसे कवियोका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करेंगे, जिन्होंने कई दृष्टियोसे अपभ्रंश-साहित्यके विकासमे अपनी शक्ति और समयका व्यय किया है।

कवि ब्रह्मसाधारण

इन्होंने कई कथाग्रन्थोंकी रचना की है। इनने अपनी रचनाओंमे न तो अपना परिचय ही अंकित किया है और न रचनाकाल ही। कुन्द-कुन्द-आम्नायमे रत्नकीर्त्ति, प्रभाचन्द्र, पद्मनन्दि, हरिभूषण, नरेन्द्रकीर्त्ति, विद्यानन्दि और ब्रह्मसाधारणके नाम प्राप्त होते है। ब्रह्मसाधारण भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्तिके शिष्य थे। ब्रह्मसाधारणने प्रत्येक ग्रंथके पुष्पिकावाक्यमे अपने-को नरेन्द्रकीर्तिका शिष्य कहा है। इनके कथाग्रथोकी प्रतिलिपि वि० सं० १५०८ की लिखी हुई प्राप्त है। अतएव इनका समय वि० सं० १५०८के पूर्व निश्चित है। गुरुपरम्परासे भी इनका समय वि० की १५वी शती सिद्ध होता है। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त हैं

१ कोइलपंचमीकहा, २. मउडसत्तमीकहा, ३. रविवयकहा, ४ तियाल-चउवीसीकहा, ५ कुसुमंजलिकहा, ६. निद्दूसिसत्तमीवयकहा, ७. णिज्झर-पंचमीकहा और ८ अणुपेहा।

कवि देवनन्दि

इनने भी कथा-ग्रन्थोकी रचना कर अपभ्रंश-साहित्यकी श्रीवृद्धिमे योगदान दिया है। ये देवनन्दि पूज्यपाद-देवनन्दिसे भिन्न हैं और उनके पश्चात्वर्त्ती हैं। इनका 'रोहिणीविहाणकहा' नामक ग्रन्थ उपलब्ध है। रचनाकी शैलीके आधारपर कविका समय १५वीं शती माना जा सकता है।

कवि अल्हू

इन्होंने 'अणुवेक्खा' नामक ग्रंथ की रचना कर संसारकी असारता, अशुचिता, अनित्यता आदिका स्वरूप प्रस्तुत किया है। आत्मोत्थानके लिए अणुवेक्खाका अध्ययन उपयोगी है। रचनाकी भाषा और शैलीसे कविका समय १६वी शती प्रतीत होता है।

जल्हिगले

इन्होंने 'अनुपेहारास' नामक उपदेशप्रद ग्रन्थ लिखा है। इसमे अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अनेकत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, बोधदुर्लभ और धर्म इन बारह भावनाओंका स्वरूपाङ्कन किया है। कविके सम्बन्धमे कुछ

भी जानकारी प्राप्त नही होती। अनुमानत' कविका समय वि० की १५वी शताब्दी प्रतीत होता है।

पं० योगदेव

प० योगदेवने कुम्भनगरके मुनिसुव्रतनाथचैत्यालयमे बैठकर 'बारस अणुवेक्खारास' नामक ग्रंथकी रचना की है। यह ग्रथ भी १५वी-१६वी शताब्दी-का प्रतीत होता है।

कवि लक्ष्मीचन्द

लक्ष्मीचन्दने 'अणुवेक्खा-दोहा'की रचना की है। इसमे ४७ दोहे हैं। सभी दोहे शिक्षाप्रद और आत्मोद्‌बोधक हैं।

कवि नेमिचन्द

नेमिचन्द भी १५वी शतीके प्रसिद्ध कवि हैं। इन्होने 'रविव्रतकथा', 'अनन्तव्रत कथा' आदि ग्रथोकी रचना की है।

कवि देवदत्त

वि० सं० १०५०के लगभग हुए कवि देवदत्तका नाम भी अपभ्रशके रचयिताओमे मिलता है। देवदत्तने वरांगचरिउ, शान्तिनाथपुराण और अम्बादेवी रासकी रचना की है।

तारणस्वामी

तारणस्वामी बालब्रह्मचारी थे। आरम्भसे ही उन्हे घरसे उदासीनता और आत्मकल्याणकी रुचि रही। कुन्दकुन्दके समयसार, पूज्यपादके इष्टोपदेश और समाधिशतक तथा योगीन्दुके परमात्मप्रकाश और योगसारका उनपर प्रभाव लक्षित होता है। सवेगी-श्रावक रहते हुए भी अध्यात्म-ज्ञानकी भूख और उसके प्रसारकी लगन उनमे दृष्टिगोचर होती है।

तारणस्वामीका जन्म अगहन सुदी ७, विक्रम सवत् १५०५ मे पुष्पावती (कटनी, मध्यप्रदेश) मे हुआ था। पिताका नाम गढ़ासाहू और माताका नाम वीरश्री था। ज्येष्ठ वदी ६, विक्रम सवत् १५७२ मे शरीरत्याग हुआ था। ६७ वर्षके यशस्वी दीर्घ जीवनमे इन्होने ज्ञान-प्रचारके साथ १४ ग्रन्थोकी रचना भी की है। ये सभी ग्रन्थ आध्यात्मिक हैं, जिन्हे तारण-अध्यात्मवाणीके नामसे जाना जाता है। वे १४ ग्रन्थ निम्न प्रकार हैं

१ मालारोहण इसमे 'ओम्' के स्वरूपपर प्रकाश डाला गया है और बताया गया है कि जो इस 'ओम्' का ध्यान करते हैं उन्हे परमात्मपदकी प्राप्ति तथा अक्षयानन्दकी प्राप्ति होती है।

२ पण्डितपूजा आत्माके अस्तित्व आदिका कथन करते हुए इसमे आत्म-देवदर्शन, निग्रंथ-गुरु-सेवा, जिनवाणीका स्वाध्याय, इन्द्रिय-दमन आदि क्रियाओको आत्मस्वरूपकी प्राप्तिका साधन बताया है। सम्यग्दृष्टि ही आस्तिक होता है और आस्तिक ही पूर्ण ज्ञानी एव परमपदका स्वामी होता है। नास्तिकको ससारमे ही भ्रमण करना पडता है, इत्यादिका सुन्दर विवेचन इसमे है।

३. कमलवत्तीसी इसमे जीवनको ऊँचा उठानेके लिए आठ बातोका निर्देश है १ चिन्तारहित जीवन-यापन, २. सुखी और प्रसन्न रहना, ३. ससारको रंगमच समझना, ४ मनको स्वच्छ रखना, ५. अच्छे कार्योंमे प्रमाद न करना, सहनशील बनना और परोपकारमे निरत रहना, ६. आडम्बर और विलासतासे दूर रहना, ७ कर्त्तव्यका पालन तथा ८ निर्भय रहना।

४. श्रावकाचार इसमे श्रावकके पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन बारह व्रतोके पालनपर बल देते हुए बारह अव्रत (५ मिथ्याभाव, ३ मूढ़ता और ४. कषायभाव)के त्यागका उपदेश दिया गया है।

५. ज्ञानसमुच्चयसार इसमे ज्ञानके महत्त्वका कथन किया है।

६ उपदेशशुद्धसार आत्माको परमात्मा स्वरूप समझकर उसे शुद्ध-बुद्ध बनानेके लिए सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको अपनानेका उपदेश है।

७ त्रिभंगीसार इसमे कर्मास्रवके कारण तीन मिथ्याभावो और उनके निरोधक कारणोको बताते हुए आयुबन्धकी त्रिभागीका कथन किया है।

८ चौबीसठाना इसमे गति, इन्द्रिय, काय आदि १८ विधियोसे जीवोके भावो द्वारा उनकी उन्नति-अवनतिको दिखाया गया है।

९ ममलपाहुड इसमे १६४ भजनोके माध्यमसे ३२०० गाथाओमे निश्चयनयकी अपेक्षासे प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा आदिका विवेचन है।

१० खातिकाविशेष किन-किन अशुभ भावनाओसे जीव निम्न गतियोको प्राप्त होता है, इसका इसमे कथन है।

११ सिद्धिस्वभाव इसमे किन शुभ भावोसे आत्मा उन्नति करता और सम्यक्त्वके उन्मुख होता है, इसका निरूपण है।

१२. सुन्नस्वभाव ध्यानयोगके द्वारा राग-द्वेषके विकल्पोकी शून्यता ही आत्मस्वरूपकी उपलब्धिका परम साधन है, इसका प्रतिपादन है।

१३ छद्मस्थवाणी इसमे अनन्तचतुष्टय और रत्नत्रययुक्त आत्मा ही उपादेय और ज्ञेय है तथा मिथ्याभावादिसे युक्त आत्मा हेय है। उपादेय

आत्मा महावीरके समान वीतराग-सर्वज्ञ है और हेय आत्मा छद्मस्थके समान रागी-अज्ञानी है, इसका विशद वर्णन है।

१४ नाममाला तारणस्वामीका यह अन्तिम ग्रन्थ है। इसमे उनके उपदेशके पात्र सभी भव्यात्माओको नामावली है और बताया गया है कि उनके उपदेशके लिए जाति, पद, भाषा, देश या धर्म की रेखाएँ वाधक नही थी सब उनके उपदेशसे लाभ उठाते थे।

स्वामोजीके मुख्य तीन केन्द्र हैं १ ज्ञान-साधना, २ ज्ञान-प्रचार और समाधिस्थल। श्री सेमरखेड़ी (सिरोज से ६ मील दूर) जिला विदिशामे आपने ज्ञानर्जन किया था। वहाँ एक चैत्यालय, धर्मशाला और शास्त्रभण्डार है। वसन्त पचमीपर वार्षिक मेला भरता है। श्रीनिसईजी (रेलवे स्टेशन पथरिया, जिला दमोहसे ११ मीलपर स्थित)मे अपने प्राप्त ज्ञानका प्रचार-प्रसार किया था। यहाँ भी विशाल चैत्यालय, धर्मशाला और शास्त्रभण्डार हैं। अगहन सुदी ७ को प्रतिवर्ष सामाजिक मेला लगता हैं। श्री मल्हारगढ (रेलवे स्टेशन मुगवली, जिला गुनासे ९ मीलकी दूरीपर स्थित)मे वेतवा नदीके तटपर स्वामीजीने उक्त ग्रन्थोका प्रणयन किया और यही समाधिपूर्वक देहत्याग किया। इसमे सन्देह नही कि तारणस्वामी १६वी शतीके लोकोपकारी और अध्यात्म-प्रचारक सन्त हैं। इनके ग्रन्थोकी भाषा उस समयकी वोलचालकी भाषा जान पड़ती है, जो अपभ्रशकी कोटिमे रखी जा सकती है। हिन्दी, प्राकृत, सस्कृत और तत्कालीन वोलीके शव्दोसे ही उनके ये ग्रन्थ सृजित हैं।

इसप्रकार अपभ्रश-साहित्यकी विकासोन्मुख साहित्य-धारा ६ठी शतीसे आरभ होकर १७वी शती तक अनवरत रूपसे चलती रही। इन कवियोने मध्यकालीन लोक-सस्कृति, साहित्य, उपासनापद्धति एव उस समयमे प्रचलित आचार-शास्त्रपर प्रकाश डाला है। अपभ्रश-कवियोने तीर्थंकर महावीरकी उत्तरकालीन परम्पराका सम्यक् निर्वाह किया है। पुराण, आचार-शास्त्र, व्रतविधान आदिपर सैकड़ो ग्रन्थोकी उन्होने रचना की है।

●

तृतीय परिच्छेद

हिन्दी कवि और लेखक

संस्कृत, प्राकृत और और अपभ्रंशके समान ही जैन कवि और लेखकोंने हिन्दी भाषामे भी अनेक ग्रन्थोका प्रणयन किया। अपभ्रंश और पुरानी हिन्दीके जैन कवियोने लोकप्रचलित कथाओको लेकर उनमे स्वेच्छानुसार परिवर्तन कर सुन्दर काव्य लिखे। मध्यकालके प्रारम्भमे समाज और धर्म संकीर्ण हो रहे थे। अत. जैन लेखकोने अपने पुरातन कथानको और लोकप्रिय परिचित कथानकोमे जैन धर्मका पुट देकर अपने सिद्धान्तोके अनुकूल हिन्दी भाषामे काव्य लिखे।

वाहरी वेशभूषा, पाखण्ड आदिका, जिनसे समाज विकृत होता जा रहा था, बडी ही ओजस्वी वाणीमे हिन्दीके जैन कवियोने निराकरण किया। अपभ्रंश-साहित्यकी विभिन्न विधाओने सामान्यत हिन्दी साहित्यको प्रभावित किया था। अत जैन कवि व्रज और राजस्थानीमे प्रवन्ध-काव्य और मुक्तक-काव्योकी रचना करनेमे सलग्न रहे। इतना ही नही, जैन कवि मानव-जीवनकी विभिन्न समस्याओ-

का समाधान करते हुए काव्य-रचनामे प्रवृत्त रहे। धर्मविशेषके कवियो द्वारा लिखा जानेपर भी जनसामान्यके लिए भी यह साहित्य पूर्णतया उपयोगी है। इसमे सुन्दर आत्म-पीयूषरस छलछलाता है और मानवकी उन भावना और अनुभूतियोको अभिव्यक्ति प्रदान की गई है, जो समाजके लिए सबल हैं और जिनके आधारपर ही समाजका सगठन, सशोधन और संस्करण होता है।

स्वातन्त्र्य या स्वावलम्बनका पाठ पढानेके लिए आत्माको उन शक्तियोका विवेचन किया गया है, जिनके आधारपर समाजवादी मनोवृतिका विकास किया जाता है। आध्यात्मिक और आर्थिक दोनो ही दृष्टियोसे समाजवादी विचारधाराको स्थान दिया गया है। स्याद्वाद-सिद्धान्त द्वारा उदारता और सहिष्णुताको शिक्षा दी गई है।

आरभमे जैन कलाकारोने लोकभाषा हिन्दीको ग्रहणकर जीवनका चिरन्तन सत्य, मानव-कल्याणको प्रेरणा एव सौन्दर्यकी अनुभूतिको अनुपम रूपमे अभिव्यक्ति प्रदान की है।

आत्मशुद्धिके लिए पुरुषार्थ अत्यावश्यक है। इसीके द्वारा राग-द्वेषको हटाया जा सकता है। यह पुरुषार्थ प्रवृत्ति और निवृत्तिमार्गो द्वारा सम्पन्न किया जाता है। प्रवृत्तिमार्ग कर्मबन्धका कारण है और निवृत्तिमार्ग अबन्धका। यदि प्रवृत्तिमार्गको घूमघूमावदार गोलधर माना जाये, जिसमे कुछ समयके पश्चात् गमन स्थानपर इधर-उधर दौड लगानेके अनन्तर पुन आ जाना पडता है, तो निवृत्तिमार्गको पक्की, सीधी, ककड़ीली सीमेण्टकी सडक कहा जा सकता है, जिसमे गन्तव्य स्थानपर पहुँचना सुनिश्चित है, पर गमन करना कष्टसाध्य है। हिन्दी के जैन कवियोने दोनो ही मार्गोका निरूपण अपने काव्योमे किया, पर उपादेय निवृत्तिको ही माना है।

अहिंसा, अपरिग्रह और स्याद्वादके सिद्धान्तने आध्यात्मिक समानताके साथ आर्थिक समानताको भी प्रस्तुत किया है। १७वी शतीसे अद्यावधि जैन कवि और लेखक हिन्दी-भाषामे विभिन्न प्रकारके काव्य-ग्रन्थोका निर्माण करते चले आ रहे हैं। इन लेखकोकी रचनाएँ मानवको जड़तासे चैतन्यकी ओर, शरीरसे आत्माकी ओर, रूपसे भावकी ओर, सग्रहसे त्यागकी ओर एव स्वार्थसे सेवाकी ओर ले जानेमे समर्थ है। जब तक जीवनमे राग-द्वेषकी स्थिति बनी रहती है, तब तक त्याग और सयमकी प्रवृत्ति आ नही सकती। राग और द्वेष ही विभिन्न आश्रय और अवलम्बन पाकर अगणित भावनाओके रूपमे परिवर्तित हो जाते हैं। जीवनके व्यवहारक्षेत्रमे व्यक्तिकी विशिष्टता, समानता एव हीनताके

अनुसार उक्त दोनो भावोंमे मौलिक परिवर्त्तन होता है। साधु और गुणवानके प्रति राग सम्मान हो जाता है। यही सम्मानके प्रति प्रेम एव हीनके प्रति करुणा बन जाता है। मानव रागभावके कारण ही अपनी अभीष्ट इच्छाओकी पूर्त्ति न होनेपर क्रोध करता है, अपनेको उच्च और बडा समझ कर दूसरोका तिरस्कार करता है। दूसरोकी धन-सम्पत्ति एव ऐश्वर्य देखकर हृदयमे ईर्ष्या-भाव उत्पन्न करता है तथा सुन्दर रमणियोके अवलोकनसे काम-तृष्णा उसके हृदयमे जागृत हो जाती है। अतएव यह स्पष्ट है कि ससारके दु खोका मूल कारण राग-द्वेष है। इन्हीकी अधीनताके कारण सभी प्रकारकी विषमताएँ समाजमे उत्पन्न होती हैं।

अतएव हिन्दीके जैन कवियोने मानवके अन्तर्जगतके रहस्यके साथ बाह्यरूप-मे होनेवाले सघर्षो, उलट-फेरो एव पारस्परिक-कलह या अन्य झगडोका काव्यो-के द्वारा उद्घाटन किया है।

हिन्दीके शताधिक जैन-कवि हुए हैं। पर उन सबका इतिवृत्त प्रस्तुत कर सकना सभव नही है। अत प्रतिनिधिकवि और लेखकोके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालना समीचीन होगा। यह सत्य है कि जैन लेखकोने जैनदर्शनके सिद्धान्तोको अपने काव्योमे स्थान दिया है, पर रस-परिपाक, मानवीय प्रवृत्ति, आर्थिक सघर्ष, जातिवादके अहकार आदिकी सूक्ष्म व्यजना की है।

महाकवि बनारसीदास

बीहोलिया वशकी परम्परामे श्रीमाल-जातिके अन्तर्गत बनारसीदासका एक धनी-मानी सम्भ्रान्त परिवारमे जन्म हुआ। इनके प्रपितामह जिनदासका 'साका' चलता था। पितामह मूलदास हिन्दी और फारसीके पंडित थे। और ये नरवर (मालवा)मे वहाँके मुसलमान-नवाबके मोदी होकर गये थे। इनके मातामह मदनसिंह चिनालिया जौनपुरके प्रसिद्ध जौहरी थे। पिता खड्गसेन कुछ दिनो तक बगालके सुल्तान मोदीखाँके पोतदार थे। और कुछ दिनोंके उपरान्त जौनपुरमे जवाहरातका व्यापार करने लगे थे। इस प्रकार कविका वश सम्पन्न था तथा अन्य सम्बन्धी भी धनी थे।

खड्गसेनको बहुत दिनो तक सन्तानकी प्राप्ति नही हुई थी और जो सन्तान-लाभ हुआ भी, वह असमयमे ही स्वर्गस्थ हो गया। अतएव पुत्र-कामनासे प्रेरित हो खड्गसेनने रोहतकपुरकी सतीकी यात्रा की।

बनारसीदासका जन्म वि० स० १६४३ माघ, शुक्ला एकादशी रविवारको

रोहिणी नक्षत्रमें हुआ और बालकका नाम विक्रमाजीत रखा गया। खड्गसेन बालकके जन्मके छ-सात महीनेके पश्चात् पार्श्वनाथकी यात्रा करने काशी गये। बड़े भक्तिभावसे पूजन किया और बालकको भगवत्-चरणोमे रख दिया तथा उसके दीर्घायुष्मकी प्रार्थना की। मन्दिरके पुजारीने मायाचार कर खड्गसेनसे कहा कि तुम्हारी प्रार्थना पार्श्वनाथके यक्षने स्वीकार कर ली है। तुम्हारा पुत्र दीर्घायुष्क होगा। अब तुम उसका नाम बनारसीदास रख दो। उसी दिनसे विक्रमाजीतनाम परिवर्त्तित हो बनारसीदास हो गया। पाँच वर्षकी अवस्थामे बनारसीदासको सग्रहणी रोग हो गया और यह डेढ-दो वर्षों तक चलता रहा। बीमारीसे मुक्त होकर बनारसीदासने विद्याध्ययनके लिए गुरु-चरणोका आश्रय ग्रहण किया।

नव वर्षकी अवस्थामे इनकी सगाई हो गई और इसके दो वर्ष पश्चात् स० १६५४मे विवाह हो गया। बनारसीदासका अध्ययनक्रम टूटने लगा। फिर भी उन्होने विद्याप्राप्तिके योगको किसी तरह बनाये रखनेका प्रयास किया। १४ वर्षकी अवस्थामे उन्होने प० देवीदाससे विद्याध्ययनका सयोग प्राप्त किया। पडितजीसे अनेकार्थनाममाला, ज्योतिषशास्त्र, अलकार तथा कोकशास्त्र आदिका अध्ययन किया। आगे चलकर इन्होने अध्यात्मके प्रखर पडित मुनि भानुचन्द्रसे भी विविध-शास्त्रोका अध्ययन आरभ किया। पचसधि, कोष, छन्द, स्तवन, सामायिकपाठ आदिका अच्छा अभ्यास किया। बनारसीदासकी उक्त शिक्षासे यह स्पष्ट है कि वे बहुत उच्चकोटिकी शिक्षा नही प्राप्त कर सके थे। पर उनकी प्रतिभा इतनी प्रखर थी, जिससे वे सस्कृतके बडे-बड़े ग्रथोको समझ लेते थे।

१४ वर्षकी अवस्थामे प्रवेश करते ही कविकी कामुकता जाग उठी और वह ऐयाशी करने लगा। अपने अर्द्धकथानकमे स्वय कविने लिखा है

तजि कुल-आन लोककी लाज, भयो बनारसि आसिखबाज ॥१७०॥
करै आसिखी धरत न धीर, दरदबद ज्यो सेख फकीर।
इक-टक देख ध्यान सो धरै, पिता आपनेको धन हरै ॥१७१॥
चोरै चूनी मानिक मनी, आने पान मिठाई घनी।
भेजै पेसकसी हितपास, आप गरीब कहावै दास ॥१७२॥

माता-पिताकी दृष्टि बचाकर मणि, रत्न तथा रुपये चुराकर स्वय उड़ाना-खाना और अधिकाश प्रेम-पात्रोमे वितरित करनेका एक लम्बा क्रम बँध गया। मुनि भानुचन्द्रने भी इन्हे समझानेका बहुत प्रयास किया, पर सब व्यर्थ हुआ। कविने इसी अवस्थामे एक हजार दोहा-चौपाईप्रमाण नवरसकी कविता लिखी

थी, जिसे पीछे बोध आनेपर गोमतीमे प्रवाहित कर दिया। १५ वर्ष १० महीना की अवस्थामे कवि सजधज अपनी ससुराल खैरावातसे पत्नीका द्विरागमन कराने गया। ससुरालमे एक माह रहनेके उपरान्त कविको पूर्वोपार्जित अशुभोदयके कारण कुष्ठ रोग हो गया। विवाहिता भार्या और सासुके अतिरिक्त सबने साथ छोड दिया। वहाँके एक नाईकी चिकित्सासे कविको कुष्ठ-रोगसे मुक्ति मिली। कविके पिता खड्गसेन सं० १६६१मे हीरानन्दजी द्वारा चलाये गये शिखरजी यात्रा-सघमे यात्रार्थ चले गये। बनारसीदास बनारस आदि स्थानोमे घूमकर अपना समय-यापन करते रहे।

वि० स० १६६६मे एक दिन पिताने पुत्रसे कहा "वत्स! अब तुम सयाने हो गये हो, अतः घरका सब कामकाज सभालो और हमे धर्मध्यान करने दो।" पिताकी इच्छानुसार कवि घरका काम-काज करने लगा। कुछ दिन उपरान्त वह दो हीरेकी अगूठी, २४ माणिक्य, ३४ मणियाँ, ९ नीलम, २० पन्ना, ४ गाँठ फुटकर चुन्नी इस प्रकार जवाहरात, २० मन घी, २ कुप्पे तेल, २०० रुपयेका कपडा और कुछ नगद रुपये लेकर आगराको व्यापार करने चला। प्रतिदिन पाँच कोसके हिसाबसे चलकर गाड़ियाँ इटावाके निकट आई। वहाँ मजिल पूरी हो जानेसे एक बीहड़ स्थानपर डेरा डाला। थोड़े समय विश्राम कर पाये थे कि मूसलाधार बारिस होने लगी। तूफान और पानी इतनी तेजीसे बह रहे थे कि खुले मैदानमे रहना अत्यन्त कठिन था। गाड़ियो जहाँ-की-तहाँ छोड साथी इधर-उधर भागने लगे। शहरमे भी कही शरण न मिली। किसी प्रकार चौकीदारोकी झोपडीमे शरण मिली और कष्टपूर्वक रात्रि व्यतीत हुई। प्रात काल गाड़ियाँ लेकर आगरेको चला और मोतीकटरामे एक मकान लेकर सारा सामान रख दिया। व्यापारसे अनभिज्ञ होनेके कारण कविको घी, तेल और कपडेमे घाटा ही रहा। बिक्रीके रुपयोको हुण्डी द्वारा जौनपुर भेज दिया। जवाहरात घाटेमे बेचे और दुर्भाग्यसे कुछ जवाहरात उससे कही गिर गये। माल बहुत था। इससे अत्यधिक हानि हुई। एक जड़ाऊ मुद्रिका सडकपर गिर गई और दो जड़ाऊ पहुँची किसी सेठको बेची थी, जिसका दूसरे दिन दिवाला निकल गया। इस प्रकार धनके नष्ट होनेसे बनारसीदासके हृदयको बहुत बड़ा धक्का लगा। इससे संध्या-समय उन्हे ज्वर चढ आया और दस लघनोके पश्चात् ठीक हुआ। इसी बीच पिताके कई पत्र आये, पर इन्होने लज्जावश उत्तर नही दिया। सत्य छिपाये नहीं छिपता। अत इनके बड़े बहनोई उत्तमचन्द जौहरीने समस्त घटनाएँ इनके पिताके पास जौनपुर लिख दी। खड्गसेन पश्चाताप करने लगे।

जब बनारसीदासके पास कुछ न बचा, तब गृहस्थीकी चीजें बेंच-बेच कर

खाने लगे। समय काटनेके लिये मृगावती और मधुमालती नामक पुस्तकोको बैठे पढा करते थे। दो-चार रसिक श्रोता भी आकर सुनते थे। एक कचौड़ी वाला भी इन श्रोताओमे था, जिसके यहाँसे कई महीनो तक दोनो शाम उधार लेकर कचौडियाँ खाते रहे। फिर एक दिन एकान्तमे इन्होने उससे कहा

तुम उधार कीनौ वहुत, अव आगे जनि देहु।
मेरे पास कछू नही, दाम कहाँ सौं लेहु॥

कचौडी वाला सज्जन था। उसने उत्तर दिया

कहै कचौडीवाला नर, बीस सवैया खाहु।
तुमसौं कोउ न कछु कहै, जहँ भावै तहँ जाहु॥

कवि निश्चिन्त होकर छ सात महीने तक भरपेट कचौडियाँ खाता रहा। और जव पासमे पैसे हुए, तो १४ रुपयेका हिसाव साफ कर दिया। कुछ समय पश्चात् कवि अपनी ससुराल खैरावाद पहुँचा। उनकी पत्नीने वास्तविक स्थिति जानकर इनको स्वयके अर्जित वीस रुपये तथा अपनी मातासे २०० रुपये व्यापार करनेके लिये दिलाए। कवि आगरा आकर पुन व्यापार करने लगा; पर यहाँ भी दुर्भाग्यवश घाटा ही रहा। फलत वह अपने मित्र नरोत्तमदासके यहाँ रहने लगा। दुर्भाग्य जीवन-पर्यन्त साथमे लगा रहा। अत आगरा लौटते समय कुरी-नामक ग्राममे झूठे सिक्के चलानेका भयकर अपराध लगाया गया। और इन्हे मृत्यु-दण्ड दिया गया। किसी प्रकार वनारसीदास वहाँसे छूटे। इनकी दो पत्नियो और नौ वच्चोका भी स्वर्गवास हुआ। स० १६९८मे अपनी तीसरी पत्नीके साथ वैठा हुआ कवि कहता है

नौ वालक हूए मुए, रहे नारि-नर दोइ।
ज्यो तरुवर पतझार ह्वै, रहैं ठूँठसे होइ॥

कवि जन्मना श्वेताम्बर-सम्प्रदायका अनुयायी था। उसने खरतरगच्छी श्वेताम्वराचार्य भानुचन्द्रसे शिक्षा प्राप्त की थी। उसके सभी मित्र भी श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुयायी थे। पर स० १६८०के पश्चात् कविका झुकाव दिगम्बर सम्प्रदायकी मान्यताओकी ओर हुआ। इन्हे खैरावाद निवासी अर्थमलजीने समयसारकी हिन्दी अर्थ सहित राजमलकी टीका सौंप दी। इस ग्रथका अध्ययन करनेसे उन्हे दिगम्वर सम्प्रदायकी श्रद्धा हो गयी। स० १६९२मे अध्यात्म-के प्रकाण्ड पडित रूपचन्द पाण्डेय आगरा आये। रूपचन्दने गोम्मटसार ग्रन्थका प्रवचन आरभ किया, जिसे सुनकर वनारसीदास दिगम्वर सम्प्रदायके अनुयायी वन गये। यही कारण है कि उनकी सभी रचनाओमे दिगम्वरत्वकी झलक मिलती है।

स्थिति काल

बनारसीदासका समय वि० की १७वी शती निश्चित है, क्योकि उन्होने स्वय ही अपने अर्द्धकथानकमे अपनी जीवन-तिथियोके सम्बन्धमे प्रकाश डाला है।

रचनाएँ

बनारसीदासके नामसे निम्न लिखित रचनाएँ प्रचलित हैं १ नाममाला, २. समयसारनाटक, ३. बनारसीविलास, ४ अर्द्धकथानक, ५. मोहविवेकयुद्ध एव ६ नवरसपद्यावली।

नाममाला प्राप्त रचनाओमे नाममाला सबसे पूर्व की है। इसका समाप्ति-काल वि० स० १६७० आश्विन शुक्ला दशमी है। परममित्र नरोत्तमदास सोवरा और थानमल सोवराकी प्रेरणासे कविने यह रचना लिखी है। यह पद्य-बद्ध शब्दकोष १७५ दोहोमे लिखा गया है। प्रसिद्ध कवि धनञ्जयकी सस्कृत नाममाला और अनेकार्थकोशके आधारपर इस ग्रथकी रचना हुई है। कविकी इसकी साज-सज्जा, व्यवस्था, शब्द-योजना और लोकप्रचलित शब्दोंकी योजनाके कारण इसे मौलिक माना जा सकता है।

नाटक समयसार अध्यात्म-सत कविवर बनारसीदासकी समस्त कृतियोमे नाटक-समयसार अत्यन्त-महत्त्वपूर्ण है। आचार्य कुन्दकुन्दके समय पाहुडपर आचार्य अमृतचन्द्रकी आत्मख्याति नामक विशद टीका है। ग्रथके मूल भावोको विस्तृत करनेके लिए कुछ सस्कृत-पद्य भी लिखे गये हैं, जो कलश नामसे प्रसिद्ध हैं। इसमे २७७ पद्य है। इन कलशोपर भट्टारक शुभचन्द्रकी परमाध्यात्मतरगिणीनामक संस्कृत-टीका भी है। पाण्डेय राजमलने कलशो-पर बालबोधिनी नामक हिन्दी-टीका भी लिखी है। इसी टीकाको प्राप्त कर बनारसीदासने कवित्तबद्ध नाटक-समयसारकी रचना की है। इस ग्रथमे ३१० दोहा-सोरठा, २४५ इकत्तीसा कवित्त, ८६ चौपाई, ३७ तेइसा सवैया, २० छप्पय, १८ घनाक्षरी, ७ अडिल्ल और ४ कुडलियाँ इस प्रकार सब मिलाकर ७२७ पद्य है। बनारसीदासने इस रचनाको वि० सं० १६९३ आश्विन-शुक्ला, त्रयो-दशी रविवारको समाप्त किया है।

नाटक-समयसारमे जीवद्वार अजीवद्वार, कर्त्ता-कर्म-क्रियाद्वार, पुण्यपाप-एकत्व-द्वार, आस्रव-द्वार, सवरद्वार, निर्जराद्वार, बन्धद्वार, मोक्षद्वार सर्वविशुद्धि-द्वार, स्याद्वादद्वार, साध्यसाधकद्वार और चतुर्दश गुणस्थानाधिकार प्रकरण हैं। नामानुसार इन प्रकरणोमे विषयोका निरूपण किया गया है। कविने इस नाटकको यथार्थताका विश्लेषण करते हुए लिखा है

काया चित्रसारीमे करम-परजक भारी,
मायाकी सवारी सेज चादर कलपना ।
शैन करे चेतन अचेतनता नीद लिए,
मोहकी मरोर यहै लोचनको ढपना ॥
उदै वल जोर यहै श्वासको सवद घोर,
विषै सुखकारी जाकी दौर यहै सपना ।
ऐसी मूढ-दशामे मगन रहे तिहुँकाल,
धावे भ्रम-जालमे न पावे रूप अपना ॥

अज्ञानी व्यक्ति भ्रमके कारण अपने स्वरूपको विस्मृत कर ससारमे जन्म-मरणके कष्ट उठा रहा है । कवि कहता है कि कायाकी चित्रशालामे कर्मका पलग विछाया गया है । उसपर मायाकी सेज सजाकर मिथ्या-कल्पनाकी चादर डाल रखी है । इस शय्यापर अचेतनकी नीदमे चेतन सोता है । मोहकी मरोड नेत्रोका वन्द करना झपकी लेना है । कर्मके उदयका वल ही स्वाँसका घोर शब्द है । विषय-सुखकी दौर ही स्वप्न है । इस प्रकार तीनो कालोमे अज्ञानकी निद्रामे मग्न यह आत्मा भ्रमजालमे दौडती है । अपने स्वरूपको कभी नही पाती । अज्ञानी जीवकी यह निद्रा ही ससार-परिभ्रमणका कारण है । मिथ्या-तत्त्वोकी श्रद्धा होनेसे ही इस जीवको इस प्रकारकी निद्रा अभिभूत करती है । आत्मा अपने शुद्ध निर्मल और शक्तिशाली स्वरूपको विस्मृत कर ही इस व्यापक असत्यको सत्य-रूपमे समझती है ।

इस प्रकार कविने रूपक द्वारा अज्ञानी-जीवकी स्थितिका मार्मिक चित्र उपस्थित किया है । आत्मा सुख-शान्तिका अक्षय भण्डार है । इसमे ज्ञान, सुख, वीर्य आदि गुण पूर्णरूपेण विद्यमान हैं । अतएव प्रत्येक व्यक्तिको इसी शुद्धात्माकी उपलब्धि करनेके लिए प्रयत्नशील होना चाहिए । कविने वताया है कि ज्ञानी व्यक्ति संसारकी समस्त-क्रियाओका करते हुए भी अपनेको भिन्न एव निर्मल समझता है ।

जैसे निशि-वासर कमल रहे पक ही मे,
पकज कहावै पै न वाके ढिग पक है ।
जैसे मन्त्रवादी विषधरसो गहावैं गात,
मन्त्रकी शकति वाके बिना विष डक है ॥
जैसे जीभ गहे चिकनाई रहे रूखे अग,
पानीमे कनक जैसे काईसे अटक है ।
तैसे ज्ञानवान नाना भाँति करतूत ठानै,
किरियातै भिन्न माने मोते निष्कलक है ॥

आत्मामे अशुद्धि पर-द्रव्यके सयोगसे आई है। यद्यपि मूलद्रव्य अन्य प्रकार रूप परिणमन नही करता, तो भी परद्रव्यके निमित्तसे अवस्था मलिन हो जाती है। जब सम्यक्त्वके साथ ज्ञानमे भी सच्चाई उत्पन्न होती है तो ज्ञान-रूप आत्मा परद्रव्योसे अपनेको भिन्न समझकर शुद्धात्म अवस्थाको प्राप्त होती है। कवि कहता है कि कमल रात-दिन पकमे रहता है तथा पकज कहा जाता है फिर भी कीचड़से वह सदा अलग रहता है। मन्त्रवादी सर्पको अपना गात्र-पकड़ाता है, परन्तु मन्त्र-शक्तिसे विषके रहते हुए भी सर्पका दश निर्विष रहता है। पानीमे पडा रहनेपर भी जैसे स्वर्णमे काई नही लगती उसी प्रकार ज्ञानी-व्यक्ति ससारकी समस्त क्रियाओको करते हुए भी अपनेको भिन्न एव निर्मल समझता है।

इस नाटक-समयसारमे अज्ञानीकी विभिन्न अवस्थाएँ, ज्ञानीकी अवस्थाएँ, ज्ञानीका हृदय, ससार और शरीरका स्वरूप-दर्शन, आत्म-जागृति, आत्माकी अनेकता, मनकी विचित्र दौड एव सप्तव्यसनोका सच्चा स्वरूप प्रतिपादित करनेके साथ जीव, अजीव, आस्रव, वन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वोका काव्य-रूपमे चित्रण किया है।

वनारसी-विलास इस ग्रन्थमे महाकवि वनारसीदासकी ४८ रचनाओका सकलन है। यह सग्रह आगरानिवासी दीवान जगजीवनजीने वनारसीदासके स्वर्गवासके कुछ समयके पश्चात् वि० स० १७०१ चैत्र शुक्ला द्वितीयाको किया है। वनारसीदासने वि० स० १७०० फाल्गुन शुक्ला सप्तमीको कर्म-प्रकृति-विधानकी रचना की थी। यह रचना भी इस सग्रहमे समाविष्ट है। सगृहीत रचनाओके नाम निम्न प्रकार हैं

१. जिनसहस्रनाम, २. सूक्तिमुक्तावली, ३ ज्ञानवावनी, ४. वेदनिर्णय-पंचाशिका, ५ शलाकापुरुषोकी नामावली, ६ मार्गणाविचार, ७. कर्मप्रकृति-विधान, ८ कल्याणमन्दिरस्तोत्र, ९ साधुवन्दना, १० मोक्षपैडी, ११. करम-छत्तीसी, १२ ध्यानवत्तीसी, १३ अध्यात्मवत्तीसी, १४ ज्ञानपच्चीसी, १५ शिव-पच्चीसी १६ भवसिन्धुचतुर्दशी १७ अध्यात्मफाग १८ सोलहतिथि १९ तेरह-काठिया, २० अध्यात्मगीत, २१ पचपदविधान, २२ सुमतिदेवीके अष्टोत्तर-शत नाम, २३ शारदाष्टक, २४. नवदुर्गाविधान, २५ नामनिर्णयविधान, २६. नवरत्नकवित्त, २७ अष्टप्रकारी जिनपूजा, २८ दशदानविधान, २९ दश-वोल, ३० पहेली, ३१. प्रश्नोत्तरदोहा, ३२ प्रश्नोत्तरमाला, ३३. अवस्थाष्टक, ३४ षट्दर्शनाष्टक, ३५ चातुर्वर्ण्य, ३६. अजितनाथके छन्द, ३७. शान्तिनाथ-स्तुति ३८. नवसेनाविधान, ३९ नाटकसमयसारके कवित्त, ४० फुटकर कविता,

४१ गोरखनाथके वचन, ४२. वैद्य आदिके भेद, ४३ परमार्थवचनिका, ४४ उपादान-निमित्तकी चिट्ठी, ४५. उपादान-निमित्तके दोहे, ४६ अध्यात्मपद, ४७ परमार्थ हिंडोलना, ४८ अष्टपदी मल्हार।

इन समस्त रचनाओमे हमे महाकविकी बहुमुखी प्रतिभा, काव्य-कुशलता एव अगाध विद्वत्ताके दर्शन होते है। धार्मिक मुक्तकोमे कविने उपमा, रूपक, दृष्टान्त, अनुप्रास आदि अलकारोकी योजना की है। सैद्धान्तिक-रचनाओमे विषय-प्रधान वर्णन-शैली है। इन रचनाओमे कवि, कवि न रहकर, तार्किक हो गया है। अत कविता तर्कों, गणनाओ, उक्तियो और दृष्टान्तोसे बहुधा बोझिल हो गई है। कविने सभी सिद्धान्तोका समावेश सरल-शैलीमे किया है।

मोह-विवेक-युद्ध- इस रचनाको कुछ लोग बनारसीदासकृत मानते हैं और कुछ लोग उसके विरोधी भी हैं। कृतिके आरभमे कहा है कि मेरे पूर्ववर्ती कविमल्ल, लालदास और गोपाल द्वारा पृथक-पृथक रचे गये मोहविवेकयुद्धके आधारपर उनका सार लेकर इस ग्रथकी सक्षेपमे रचना की जा रही है। इससे स्पष्ट है कि कविने उक्त तीनो कवियोके ग्रथोका सार ग्रहणकर ही अपने इस ग्रन्थकी रचना की है।

इसमे ११० दोहा-चौपाई है। यह लघु खण्ड-काव्य है। इसका नायक मोह है और प्रतिनायक विवेक। दोनोमे विवाद होता है और दोनो ओरकी सेनाएँ सजकर युद्ध करती हैं। महाकवि बनारसीदासकी शैली प्रसन्न और गम्भीर है। उन्होने अध्यात्मकी बडी-से-बडी बातोको सक्षेपमे सरलता-पूर्वक गुम्फित कर दिया है।

अर्द्धकथानकमे कविने अपनी आत्म-कथा लिखी है। इसमे स० १६९८ तक की सभी घटनाएँ आ गई हैं। कविने ५५वर्षोंका यथार्थ जीवनवृत्त अकित किया है।

पं० रूपचन्द या रूपचन्द पाण्डेय

प० रूपचन्द्र और पाण्डेय रूपचन्द्र दोनो अभिन्न-व्यक्ति प्रतीत होते हैं। महाकवि बनारसीदासने इन दोनोका उल्लेख किया है। नाटकसमयसारकी प्रशस्तिमे रूपचन्दपडित कहा है और अर्द्धकथानकमे पाण्डेय रूपचन्द कहा गया है। बनारसीदासने अपने गुरुरूपमे पाण्डेय रूपचन्दका उल्लेख करते हुए लिखा है

तब बनारसी और भयो। स्यादवाद परिनति परिनयौ।
पाडे रूपचन्द गुरु पास। सुन्यौ ग्रन्थ मन भयौ हुलास॥

फिर तिस समै वरस द्वै वीच । रूपचन्दको आई मीच ।
सुनि-सुनि रूपचन्दके वैन । वानारसी भयौ दिढ जैन ।।

उक्त उद्धरणसे भी ऐसा अवगत होता है कि पंडित रूपचन्द और पाण्डेय रूपचन्द अभिन्न-व्यक्ति हैं। ये महाकवि बनारसीदासके गुरु हैं। बनारसीदासने रूपचन्दका परिचय प्रस्तुत करते हुए बताया है कि इनका जन्म-स्थान कोइदेशमे स्थित सलेमपुर था। ये गर्गगोत्री अग्रवाल कुलके भूषण थे। इनके पितामहका नाम मामह और पिताका नाम भगवानदास था। भगवानदासको दो पत्नियाँ थी, जिनमे प्रथमसे ब्रह्मदास नामक पुत्रका जन्म हुआ और दूसरी पत्नीसे पाँच पुत्र हुए १. हरिराज, २ भूपति, ३. अभयराज, ४ कीर्त्तिचन्द, ५ रूपचन्द।

यह रूपचन्द ही रूपचन्द पाण्डेय हैं। भट्टारकीय पंडित होनेके कारण इनकी उपाधि पाण्डेय थी। ये जैन-सिद्धान्तके मर्मज्ञ विद्वान थे। और शिक्षा अर्जनहेतु बनारसकी यात्रा की थी।[1] महाकवि बनारसीदासने इन्ही रूपचन्द-को अपना गुरु बताया हैं और पाण्डेयशब्दसे उनका उल्लेख किया है।[2]

जब महाकवि बनारसीदासको व्यवसायके हेतु आगराको यात्रा करनी पड़ी थी और व्यापारमें असफल होनेके कारण आगरामे उनका समय काव्य-रचना लिखने और विद्वानोकी गोष्ठीमे सम्मिलित होनेमे व्यतीत्त होता था, तभी स० १६९२मे इनके गुरु पाण्डेयरूपचन्दका आगरामे आगमन हुआ।

सोलहसै बानवे लौं, कियौ नियत रसपान।
पै कवीसुरी सब सब भई, स्याद्वाद परवान।
अनायास इस ही समय, नगर आगरे थान।
रूपचन्द पंडित गुनी, आयौ आगम जान।

अर्द्धकथानक पृ० ५७, पद्य ६२९-६३०

इन्होने आगरामे तिहुना नामक मन्दिरमे डेरा डाला। उनके आगमनसे बनारसीदासको पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। यहाँ इन्ही पाण्डेयरूपचन्दसे कविने

१. अनेकान्त, वर्ष १०, किरण २ (अगस्त १९४७), पाण्डेयरूपचन्द और उनका साहित्य, पृ० ७७।

२ आठ-वरस को हुओ वाल। विद्या पढन गयो चटसाल ।।
गुरु पाडेसो विद्या सिखै। अक्खर वाँचै लेखा लिखै ।।

- अर्धकथानक, पृ० १०।

गोम्मटसार-ग्रन्थकी व्याख्या सुनी थी। सं० १६९४मे पाण्डेयरूपचन्दकी मृत्यु हो गई।

श्री प० श्रीनाथूरामजी प्रेमीने रूपचन्दको पाण्डेयरूपचन्दसे भिन्न माना है। उन्होने बताया है कि कवि बनारसीदासने अपने नाटकसमयसारमे अपने जिन पाँच साथियोका उल्लेख किया है। उनमे एक रूपचन्द भी है, जो पाण्डेय रूपचन्दसे भिन्न हैं। बनारसीदास इन रूपचन्दके साथ भी परमार्थकी चर्चा किया करते थे। पर हमारी दृष्टिमे पडित रूपचन्द और पाण्डेयरूपचन्द भिन्न नही हैं एक ही व्यक्ति हैं। यही रूपचन्द बनारसीदासके गुरु हैं और बनारसीदास इनसे अध्यात्मचर्चा करते थे।

स्थितिकाल

पाण्डेयरूपचन्दका समय बनारसीदासके समयके आसपास है। महाकवि बनारसीदासका जन्म स० १६४३मे हुआ और पाण्डेय रूपचन्द इनसे अवस्थामे कुछ बड़े ही होगे। बहुत सभव है कि इनका जन्म स० १६४०के आसपास हुआ होगा। अर्धकथानकमे बनारसीदासने पाण्डेय रूपचन्दका उल्लेख किया है। अतएव इनका समय वि०की १७वी शती सुनिश्चित है। रूपचन्दने सस्कृत और हिन्दी इन दोनो भाषाओमे रचनाएँ लिखी हैं। इनके द्वारा सस्कृतमे लिखित समवशरणपूजा अथवा केवलज्ञान-चर्चा ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमे पाण्डेय रूपचन्दने अपना परिचय प्रस्तुत किया है। हिन्दीमे इनके द्वारा लिखित रचनाएँ अध्यात्म, भक्ति और रूपक काव्य-सम्बन्धी हैं। इन रचनाओसे इनके शास्त्रीय और काव्यात्मक ज्ञानका अनुमान किया जा सकता है। पाण्डेयरूपचन्द सहज कवि हैं। इनकी रचनाओमे सहज स्वाभाविकता पाई जाती है।

१ परमार्थदोहाशतक या दोहापरमार्थ इसमे १०१ दोहोका सग्रह है। ये सभी दोहे अध्यात्म-विषयक हैं। कविने विषय-वासनाकी अनित्यता, क्षण-भगुरता और असारताका सजीव चित्रण किया है। प्रत्येक दोहेके प्रथम चरणमे विषयजनित दुख तथा उसके उपभोगसे उत्पन्न असन्तोष और दोहेके दूसरे चरणमे उपमान या दृष्टान्त द्वारा पूर्व कथनकी पुष्टि की गई है। प्राय समस्त दोहोमे अर्थान्तरन्यास पाया जाता है।

विषयन सेवत हउ भले, तृष्णा तउ न बुझाय।
जिमि जल खारा पीव तइ, बाढइ तिस अधिकाय ॥४॥
विषयन सेवत दुख बढइ, देखहु किन जिन जोइ।
खाज खुजावत ही भला, पुनि दुख इनउ होय ॥५॥

सेवत हो जु मधुर विषय, करुए होहि निदान।
विषफल मीठे खातके, अंतहि हरहि परान ॥११॥

विषय-सुखोंकी निस्सारता दिखलानेके पश्चात् कवि सहज सुखका वर्णन करता है, जिसके प्राप्त होते आत्मा निहाल हो जाती है। यह सहज सुख स्वात्मानुभूतिरूप है। जिस प्रकार पाषाणमें सुवर्ण, पुष्पमें गन्ध, तिलमें तेल व्याप्त है, उसी प्रकार आत्मा प्रत्येक घटमें विद्यमान है। जो व्यक्ति जड-चेतनका परिज्ञानी है, जिसने दोनों द्रव्योंके स्वभावको भली प्रकार अवगत कर लिया है, वही व्यक्ति ज्ञानदर्शन-चैतन्यात्मक स्वपरिणतिका अनुभवकर सहज सुखको प्राप्त कर सकता है। कविने सहज सुखको विवेचित करते हुए लिखा है

चेतन सहज सुख ही विना, इहु तृष्णा न बुझाइ।
सहज सलिल विन कहहु क्यउं, उसन प्यास बुझाइ ॥३०॥

२. गीत परमार्थी अथवा परमार्थगीत यह एक छोटी-सी कृति है। इसमें १६ पद्य हैं और सभी पद्य आध्यात्मिक हैं। जीवनको सम्बोधन कर उसे राग-द्वेष-मोहसे पृथक् रहनेकी चेतावनी दी गई है। आत्माका वास्तविक स्वरूप सत्, चित् आनन्दमय है। इस स्वरूपको जीव अपनी पुरुषार्थहीनताके कारण भूल जाता है और रागद्वेषरूपी विकृतिको ही अपना निजरूप मान लेता है। इस विकारसे दूर रहनेके लिए कवि वार-वार चेतावनी देता है। पहला पद निम्न प्रकार है

चेतन हो चेत न चेतऊ काहिन हो।
गाफिल होइ न कहा रहे विधिवस हो॥
. . . . . . चेतन हो ॥१॥

३ अध्यात्म सवैया १०१ कवित्त और सवैया छन्दोंका यह संग्रह है। जैन सिद्धान्त भवन आराकी हस्तलिखित प्रतिमें इसे रूपचन्द-शतक कहा गया है। समस्त छन्द अध्यात्मपूर्ण है। जीवन, जगत् और जीवकी वर्तमान विकृत अवस्थाका चित्रण इन सवैयोंमें पाया जाता है। कविने लिखा है कि यह जीव महासुखकी शय्याका त्यागकर क्षणिक सुखके प्रलोभनमें आकर संसारमें भटकता है और अनेक प्रकारके कष्टोंको सहन करता है। मिथ्यात्व आत्मानुभवसे वहिर्मुख प्रवृत्ति का निरोध समतारसके उत्पन्न होनेपर ही प्राप्त होता है। यह समता आत्माका निजी पुरुषार्थ है। जब समस्त परद्रव्योंके संयोगको छोड़ आत्मा अपने स्वरूपमें विचरण करने लगता है, तो समतारसकी प्राप्ति होती है। कविने इस समतारसका विवेचन निम्न प्रकार किया है

भूल गयो निज सेज महासुख, मान रह्यो सुख सेज पराई।
आस-हुतासन तेज महा जिहि, सेज अनेक अनन्त जराई॥
कित पूरी भई जु मिथ्यामतिको इति, भेदविज्ञान घटा जु भराई।
उमग्यो समितारस मेघ महा, जिह वेग हि आस-हुतास सिराई॥८२॥

यदि आत्मा मिथ्या स्थितिको दूर कर समतारसका पान करने लगे, तो उसे अपनेमे परमात्माका दर्शन हो सकता है, क्योकि कर्म आदि परसयोगी है। जिस प्रकार दूध और पानी मिल जानेपर एक प्रतीत होते हैं, पर वास्तवमे उनका गुण-धर्म पृथक्-पृथक् है। जो व्यक्ति द्रव्य और तत्त्वोके स्वभावको यथार्थ रूपमे अवगत कर निजी रूपका अनुभव करता है उसका उत्थान स्वयमेव हो जाता है। यह सत्य है कि उत्पाद-व्ययध्रौव्यात्मक उस आत्मतत्त्वकी प्राप्ति निजानुभूतिसे ही होती है और उसीसे मिथ्यात्वका क्षय भी होता है। कविने उक्त तथ्यपर बहुत ही सुन्दर प्रकाश डाला है :

काहू न मिलायो जाने करम-सजोगी सदा,
छीर नीर पाइयौ अनादि हीका धरा है।
अमिल मिलाय जड़ जीव गुन भेद न्यारे,
न्यारे पर भाव परि आप हीमे धरा है।
काइ भरमायौ नाहि भम्यौ भूल आपन ही,
आपने प्रकास कै विभाव भिन्न धरा है।
साचे अविनासी परमातम प्रगट भयौ,
नास्यौ है मिथ्यात वस्यौ जहाँ ध्यान धरा है॥९५॥

४ खटोलनागीत खटोलनागीत छोटी-सी कृति है। इसमे कुल १३ पद्य हैं। यह रूपक काव्य है। कविने बताया है कि ससाररूपी मन्दिरमे एक खटोला है, जिसमे क्रोधादि चार पग हैं। काम और कपटका सिरा है और चिन्ता और रतिकी पाटी है। यह अविरतिके बानोसे बुना है और उसमे आशा-की आडवाडन लगायी गयी है। मनरूपी बढईने विविध कर्मोकी सहायतासे उसका निर्माण किया है। जीवरूपी पथिक इस खटोलेपर अनादिकालसे लेटा हुआ मोहकी गहरी निद्रामे सो रहा है। पाँच पापरूपी चोरोने उसकी सयम-रूपी सपत्तिको चुरा लिया है। मोहनिद्राके भग न होनेके कारण ही यह आत्मा निर्वाण-सुखसे वचित है। वीतरागी गुरु या तीर्थंकरके उपदेशसे यह काल-रात्रि समाप्त हो सकती है और सम्यक्त्वरूपी सूर्यका उदय हो सकता है। कवि-ने इस प्रकार शरीरको खटोलाका रूपक देकर आध्यात्मिक तत्त्वोका विवेचन किया है। पद्य बहुत ही सुन्दर और काव्यचमत्कारपूर्ण हैं। उदाहरणार्थ कुछ पक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं

भव रतिमंदिर पौठियो, खटोला मेरो, कोपादिक पग चारि।
काम कपट सीरा दोऊ, चिन्ता रति दोउ पाटि ॥१॥
अविरति दिढ़ वाननि वुनो, मिथ्या माई विसाल।
आशा-अडवाइनि दई, शकादिक वसु साल ॥२॥

× × × ×

राग-द्वेष दोउ गडुवा, कुमति सुकोमल सौरि।
जीव-पथिक तँह पौढियो, परपरिणति सग गौरि ॥४॥

५. स्फुट पद रूपचन्दके स्फुट पद लगभग ६०-७०की सख्यामे उपलब्ध हो चुके हैं। ये भी पद भक्तिरससे पूर्ण हैं। कविने अपने आराध्यकी भक्ति करते हुए उसके रूप-लावण्यका विवेचन किया है। कवि एक पदमे अपने आराध्यके मुखको अपूर्व चन्द्रमा वतलाता है और इस अपूर्व चन्द्रमाकी तर्क द्वारा पुष्टि करता है

प्रभु मुख-चन्द अपूरव तेरौ।
संतत सकल-कला-परिपूरन,
पारे तुम तिहुँ जगत उजेरौ ॥प्रभु० ॥१॥
निरुप-राग निरदोष निरजनु,
निरावरनु जड जाड्य निवेरौ ॥
कुमुद विरोधि कुसी कृतसागरु,
अहि निसि अमृत श्रवै जु घनेरौ ॥प्रभु० ॥२॥
उदै अस्त वन रहितु निरन्तरु,
सुर नर मुनि आनन्द जनेरौ ॥
रूपचन्द इमि नैनन देखति,
हरषित मन-चकोर भयो मेरो ॥प्रभु० ॥३॥

६ पञ्चमङ्गल या मङ्गलगीतप्रवन्ध इस रचनासे प्राय· सभी लोग सुपरिचित हैं। कविने तीर्थंकरके पञ्चकल्याणकोकी गाथा काव्यरूपमें निवद्ध की है।

जगजीवन

आगरानिवासी जगजीवन अग्रवाल जैन थे। इनका गोत्र गर्ग था। इनके पिताका नाम अभयराज और माताका नाम मोहनदे था। ये अभयराज जाफरखांके दीवान थे, जो वादशाह शाहजहाँका पाँच हजारी उमराव था। जगजीवन अध्यात्मशैलीके कवि थे। पण्डित हीरानन्दने वि० सं० १७०१मे समवशरण-

विधानकी रचना की है। इस रचनामे जगजीवनका परिचय निम्न प्रकार दिया है -

अब सुनि नगरराज आगरा, सकल सोभा अनुपम सागरा।
साहजहाँ भूपति है जहाँ, राज करै नयमारग तहाँ॥
ताको जाफरखाँ उमराव, पच हजारी प्रकट कराउ।
ताको अगरवाल दीवान, गरग गोत सब विधि परवान॥
संघही अभैराज जानिए, सुखी अधिक सब करि मानिए।
वनितागण नाना परकार, तिनमैं लघु मोहनदे सार॥
ताको पूत पूत-सिरमौर, जगजीवन जीवनकी ठौर।
सुन्दर सुभग रूप अभिराम, परम पुनीत धरम-धन-धान॥

जगजीवनने स० १७०१मे बनारसीविलासका सपादन किया था। इनके अब तक ४५ पद भी उपलब्ध हो चुके है। इनके पदोको तीन वर्गोमे विभक्त किया जा सकता है

१. प्रार्थना एव स्तुतिपरक
२ आध्यात्मिक
३ सासारिक प्रपञ्चके विश्लेषण-मूलक

यहाँ उदाहरणके लिए एक पदकी कुछ पक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं। कवि-ने सासारिक प्रपञ्चको बादलकी छाया माना है और छायाका रूपक देकर पुरजन, परिजन, इन्द्रिय-विषय. राग-द्वेष-मोह, सुमति-कुमति सभीकी व्याख्या प्रस्तुत की है। यथा —

जगत सब दीसता घनकी छाया॥
पुत्र कलत्र मित्र तन संपति
उदय पुद्गल जुरि आया।
भव परनति वरषागम सोहै
आश्रव पवन बहाया॥जगत०॥१॥
इन्द्रियविषय लहरि तडता है
देखत जाय बिलाया।
राग दोष वगु पंकति दोरघ
मोह गहल घरराया॥जगत०॥२॥
सुमति विरहनी दुखदायक है,
कुमति संजोगति भाया।

निज संपति रतनत्रय गहिकर
मुनि जनें नर मन भाया ॥
सहज अनन्त चतुष्ट मंदिर
जगजीवन सुख पाया ॥जगत०॥३॥

कुँवरपाल

कुँवरपाल बनारसीदासके अभिन्न मित्र थे। इन्होंने सूक्तिमुक्तावलीका पद्यानुवाद बनारसीदासके साथ मिलकर किया है। इस पद्यानुवादसे उनकी काव्यप्रतिभाका परिचय प्राप्त होता है। सोमप्रभने संस्कृत-भाषामें सूक्ति-मुक्तावलीकी रचना की थी। इसीका पद्यबद्ध हिन्दी अनुवाद इन्होंने किया है। यह समस्त काव्य मानवजीवनको परिष्कृत करने वाला है। कविने संस्कृत-ग्रन्थका आधार ग्रहणकर भी अपनी मौलिकताको अक्षुण्ण रखा है। वह समस्त दोषोंको खानि अहंकारको मानता है। मनुष्य 'अहं' प्रवृत्तिके अधीन होकर दूसरोंकी अवहेलना करता है। अपनेको बड़ा और दूसरेको तुच्छ या लघु समझता है। समस्त दोष इस एक ही प्रवृत्तिमें निवास करते हैं। कवि कहता है कि इस अभिमानसे ही विपत्तिकी सरिता कल-कल ध्वनि करती हुई चारों ओर प्रवाहित होती है। इस नदीकी धारा इतनी प्रखर है कि जिससे यह एक भी गुणग्रामको अपने पूरमें बहाये विना नहीं छोड़ती। 'अहं' भाव विशाल पर्वतके तुल्य है। कुबुद्धि और माया उसकी गुफाएँ हैं। हिंसक बुद्धि धूम्ररेखाके समान है और क्रोध दावानलके तुल्य है। कवि कहता है

जातैं निकस विपति-सरिता सब, जगमें फैल रही चहुँ ओर।
जाके ढिग गुण-ग्राम नाम नहिं, माया कुमति गुफा अति घोर॥
जहँ वध-बुद्धि धूमरेखा सम, उदित कोप दावानल जोर।
सो अभिमान-पहार पठतर, तजत ताहि सर्वज्ञ किशोर॥

कवि सालिवाहन

कवि सालिवाहन भदावर प्रान्तके कञ्चनपुर नगरके निवासी थे। कविके पिताका नाम रावत खरगसेन और गुरुका नाम भट्टारक जगभूषण था। इन्होंने वि० सं० १६९५में आगरामें रहकर जिनसेनाचार्यकृत संस्कृतके हरिवंशपुराण-का हिन्दीमें पद्यानुवाद उपस्थित किया है। हरिवंशपुराणकी प्रशस्तिसे अव-

गत होता है कि कविने उक्त दोहा-चौपाईबद्ध रचना आगराकी साहित्य भूमिमे ही सम्पन्न की है।

सवत् सोरहिसै तहाँ भये तापरि अधिक पचानवै गये।
माघ मास किसन पक्ष जानि सोमवार सुभवार बखानि॥
भट्टारक जगभूषण देव गनधर सादृस वाकि जुएइ।
नगर आगिरौ उत्तम थानु साहिजहाँ तपै दूजौ भान॥
वाहन करी चौपईबन्धु, हीनबुधि मेरी मति अधु।

कवि बुलाकीदास

बुलाकीदासका जन्म आगरेमे हुआ था। ये गोयलगोत्री अग्रवाल दिगम्बर जैन श्रावक थे। इनके पूर्वज बयाना (भरतपुर)मे रहते थे। इनके पितामह भवणदास बयाना छोडकर आगरेमे बस गये थे। उनके पुत्र नन्दलालको सुयोग्य देखकर पंडित हेमराजने उनके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया था, जिसका नाम जैनी था। हेमराजने अपनी इस कन्याको बहुत ही सुशिक्षित किया था। बुलाकीदासका जन्म इसी जैनी उदरसे हुआ था। उन्होने अपनी माताकी प्रशसामे लिखा है

हेमराज पडित वसै, तिसी आगरे ठाइ।
गरग गोत गुन आगरो, सब पूजं जिस पाइ॥
उपगोता के देहजा, जनी नाम विख्याति।
सील रूप गुन आगरो, प्रीति-नीतिकी पाँति॥
दीनी विद्या जनकनै कीनी अति व्युत्पन्न।
पंडित जापै सीख लै धरनीतलमे धन्न॥

कविकी 'पाण्डवपुराण' नामक एक ही रचना उपलब्ध है। यह रचना उसने अपनी माताके आग्रहसे लिखी है।

भैया भगवतीदास

भैया भगवतीदास आगरानिवासी कटारियागोत्रीय ओसवाल जैन थे। इनके दादाका नाम दशरथ साहू और पिताका नाम लालजी था। इनकी रचनाओसे अवगत होता है कि जिस समय ये काव्यरचना कर रहे थे उस समय आगरा दिल्ली-शासनके अन्तर्गत था और औरगजेब वहाँका शासक था।[1]

१ हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन प्रथम भाग, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, पृ० १६३-१६९ तथा २४६।

ओसवाल होनेके कारण कविको जन्मना श्वेताम्बरसम्प्रदायानुयायी होना चाहिए; पर उनकी रचनाओंके अध्ययनसे उनका दिगम्बर सम्प्रदायानुयायी होना सिद्ध होता है। कविकी रचनाओके अवलोकनसे ज्ञात होता है कि भैया भगवतीदासने समयसार, आत्मानुशासन, गोम्मटसार और द्रव्यसंग्रह आदि दिगम्बर ग्रन्थोका पूरा अध्ययन किया है। उनकी आध्यात्मिक रचनाओ पर समयसारका पूरा प्रभाव है।

इन्होने स्तुतिपरक या भक्तिपरक जितने पद लिखे है उनमे तीर्थंकरोके गुण और इतिवृत्त दिगम्बर सम्प्रदायके अनुसार अकित है।

संवत सत्रह सै इकतीस, माघसुदी दशमी शुभदीस।
मगलकरण परमसुखधाम, द्रवसंग्रह प्रति करहु प्रणाम॥

द्रव्यसग्रहकी रचनाके साथ भैया भगवतीदासकी स्वप्नवत्तीसी, द्वादशानुप्रेक्षा, प्रभाती और स्तवनोसे भी उनका दिगम्बर सम्प्रदायी होना सिद्ध होता है।

वि० स० १७११मे हीरानन्दजीने पचास्तिकायका अनुवाद किया था। उसमे उन्होने आगरामे एक भगवतीदास नामक व्यक्तिके होनेका उल्लेख किया है। सभवत भैया भगवतीदास ही उक्त व्यक्ति हो। इन्होने कवितामे अपना उल्लेख भैया, भविक और दासकिशोर उपनामोसे किया है। इनकी समस्त रचनाओका सग्रह ब्रह्मविलासके नामसे प्रकाशित है।

भैया भगवतीदासका समय वि० स० की १८वी शताब्दी है। इन्होने अपनी रचनाओमे औरगजेबका उल्लेख किया है। औरगजेबका शासनकाल वि० स० १७१५-१७६४ रहा है। भैया भगवतीदासके समकालीन महाकवि केशवदास है, जिन्होने रसिकप्रिया नामक शृगाररसपूर्ण रचना लिखी है। कवि भगवतीदासने इस रसिकप्रियाकी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा है

वड़ी नीत लघु नीत करत है, वाय सरत वदवोय भरी।
फोडो वहुत फुनगणी मडित सकल देह मनु रोगदरी॥
शोणित हाड मांसमय मूरत तापर रीझत घरी-घरी।
ऐसी नारी निरखि करि केशव ? रसिकप्रिया तुम कहा करी॥

अतएव भैया भगवतीदास १८वी शताब्दीके कवि हैं।

रचनाएँ

भैया भगवतीदासकी रचनाओका सग्रह ब्रह्मविलासके नामसे प्रकाशित है। इसमे ६७ रचनाएँ सगृहीत हैं। इन रचनाओको काव्यविधाकी दृष्टिसे निम्नलिखित वर्गोमे विभक्त किया जा सकता है

१. पदसाहित्य
२. आध्यात्मिक रूपककाव्य
३ एकार्थ काव्य
४ प्रकीर्णककाव्य

१ पदसाहित्य इनके पदसाहित्यको १ प्रभाती, २. स्तवन, ३ अध्यात्म, ४ वस्तुस्थितिनिरूपण, ५ आत्मालोचन एव ६ आराध्यके प्रति दृढतर विश्वास, विषयोमे विभाजित किया जा सकता है। वस्तुस्थितिका चित्रण करते हुए बताया है कि यह जीव विश्वको वास्तविकता और जीवनके रहस्योसे सदा आँखें बन्द किये रहता है। इसने व्यापक विश्वजनीन और चिरन्तन सत्यको प्राप्त करनेका प्रयास नही किया। पार्थिव सौन्दर्यके प्रति मानव नैसर्गिक आस्था रखता है। राग-द्वेषोकी ओर इसका झुकाव निरन्तर होता रहता है, परन्तु सत्य इससे परे है, विविधनामरूपात्मक इस जगत्से पृथक् होकर प्रकृत भावनाओका सयमन, दमन और परिष्करण करना ही व्यक्तिका जीवन-लक्ष्य होना चाहिए। इसी कारण पश्चात्तापके साथ सजग करते हुए वैयक्तिक चेतनामे सामूहिक चेतनाका अध्यारोप कर कवि कहता है

अरे तैं जु यह जन्म गमायो रे, अरे तै॥
पूरव पुण्य किये कहुँ अति ही, तातै नरभव पायो रे।
देव धरम गुरु ग्रन्थ न परसै, भटकि भटकि भरमायो रे॥अरे०॥१॥
फिरि तोको मिलिबो यह दुरलभ दश दृष्टान्त बतायो रे।
जो चेतै तो चेत रे भैया, तोको करि समुझायो रे॥अरे०॥२॥

आत्मालोचन सम्बन्धी पदोमे कविने राग-द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, मद, मात्सर्य आदि विकारोसे अभिभूत हृदयकी आलोचना करते हुए गूढ अध्यात्मकी अभिव्यञ्जना की है। कवि कहता है

छाँड़ि दे अभिमान जियरे, छाँडि दे अभि० ॥टेक॥
काको तू अरु कौन तेरे, सब ही हैं महिमान।
देखा राजा रक कोऊ, थिर नही यह थान ॥जियरे०॥१॥
जगत देखत तेरि चलवो, तू भी देखत आन।
घरी पलकी खबर नाही, कहा होय विहान ॥जियरे०॥२॥
त्याग क्रोध रु लोभ माया, मोह मदिरा पान।
राग-दोषहि टार अन्तर, दूर कर अज्ञान ॥जियरे०॥३॥
भयो सुरपुर-देव कबहूँ, कबहुँ नरक निदान।
इम कर्मवश बहु नाच नाचे, भैया आप पिछान ॥जियरे०॥४॥

२ आध्यात्मिक रूपकाव्य के अन्तर्गत कविकी चेतनकर्मचरित, पट्-अष्टोत्तरी, पचइन्द्रियसवाद, मधुविन्दुकचौपाई, स्वप्नवत्तीसी, द्वादशानुप्रेक्षा आदि रचनाएँ प्रमुख हैं। चेतनकर्मचरितमें कुल २९६ पद्य हैं। कल्पना, भावना, अलकार, रस, उक्ति-सौन्दर्य और रमणीयता आदिका समवाय पाया जाता है। भावनाओके अनुसार मधुर अथवा परुष वर्णोका प्रयोग इस कृतिमें अपूर्व चमत्कार उत्पन्न कर रहा है। विकारोको पात्रकल्पना कर कविने इस चरित-काव्यमे आत्माकी श्रेयता और प्राप्तिका मार्ग प्रदर्शित किया है। कुवुद्धि एव सुवुद्धि ये दो चेतनकी भार्या है। कविने इस काव्यमे प्रमुखरूपने चेतन और उनकी पत्नियोके वार्तालाप प्रस्तुत किये हैं। सुवुद्धि चेतन-आत्माको कर्मसयुक्त अवस्थाको देखकर कहती है "चेतन, तुम्हारे साथ यह दुष्टोका सग कहाँसे आ गया? क्या तुम अपना सर्वस्व खोकर भी सजग होनेमे विलम्व करोगे? जो व्यक्ति जीवनमें प्रमाद करता है, सयमसे दूर रहता है वह अपनी उन्नति नही कर सकता।"

चेतन "हे महाभागे! मैं तो इस प्रकार फँस गया हूँ, जिससे इस गहन पकसे निकलना मुश्किल-सा लग रहा है। मेरा उद्धार किस प्रकार हो, इसकी मुझे जानकारी नही।"

सुवुद्धि "नाथ! आप अपना उद्धार स्वय करनेमें समर्थ है। भेदविज्ञानके प्राप्त होते ही आपके समस्त पर-सम्वन्ध विगलित हो जायगे और आप स्वतत्र दिखलाई पडेंगे।"

कुवुद्धि "अरी दुष्टा! क्या वक रही है? मेरे सामने तेरा इतना वोलने-का साहस? तू नही जानती कि मैं प्रसिद्ध शूरवीर मोहकी पुत्री हूँ?"

कविने इस सदर्भमे सुवुद्धि और कुवुद्धिके कलहका सजीव चित्रण किया है। और चेतन द्वारा सुवुद्धिका पक्ष लेनेपर कुवुद्धि रूठ कर अपने पिता मोहके यहाँ चली जाती है और मोहको चेतनके प्रति उभारती है। मोह युद्ध-की तैयारी कर अपने राग-द्वेषरूपी मत्रियोसे साहाय्य प्राप्त करता है और अष्ट कर्मोकी सेना सजाकर सैन्य सचालनका भार मोहनीय कर्मको देता है। दोनो ओरकी सेनाएँ रणभूमिमे एकत्र हो जाती हैं। एक ओर मोहके सेनापतित्वमे काम, क्रोध आदि विकार और अष्ट कर्मोका सैन्य-दल है। दूसरी ओर ज्ञानके सेनापतित्वमे दर्शन, चरित्र, सुख, वीर्य आदिकी सेनाएँ उपस्थित हैं। मोहराज चेतनपर आक्रमण करता है, पर ज्ञानदेव स्वानुभूतिकी सहायतासे विपक्षी दलको परास्त देता है। कविने युद्धका वडा ही सजीव वर्णन किया है। निम्न पक्तियाँ हैं.

सूर बलवत्त मदमत्त महामोहके, निकसि सब सैन आगे जु आये।
मारि घमासान महाजुद्ध बहुक्रुद्ध करि, एक तै एक सातो सवाए॥
वीर-सुविवेकने धनुष ले ध्यानका, मारि कै सुभट सातो गिराए।
कुमुक जो ज्ञानकी सैन सब सग घसी मोहके सुभट मूर्छा सवाए॥
रणसिगे वज्जहि कोऊ न भज्जहि, करहि महा दोऊ जुद्ध।
इत जीव हकारहि, निजपर वारहि, करहे अरिनको रुद्ध॥

शतअष्टोत्तरी इसमे १०८ पद्य हैं। कविने आत्मज्ञानका सुन्दर उपदेश अंकित किया है। यह रचना बड़ी ही सरस और हृदयग्राह्य है। अत्यल्प कथानकके सहारे आत्मतत्त्वका पूर्ण परिज्ञान सरस शैलीमे करा देनेमे इस रचनाको अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई है। कवि कहता है कि चेतनराजाकी दो रानियाँ हैं, एक सुबुद्धि और दूसरी माया। माया बहुत ही सुन्दर और मोहक है। सुबुद्धि बुद्धिमती होनेपर भी सुन्दरी नही है। चेतनराजा मायारानीपर बहुत आसक्त है। दिन-रात भोग-विलासमे सलग्न रहता है। राजकाज देखनेका उसे बिल्कुल अवसर नही मिलता। अत राज्यकर्मचारी मनमानी करते हैं। यद्यपि चेतन राजाने अपने शरीर-देशकी सुरक्षाके लिए मोहको सेनापति, क्रोधको कोतवाल, लोभको मत्री, कर्मोदयको काजी, कामदेवको वैयक्तिक सचिव और ईर्ष्या-घृणाको प्रबन्धक नियुक्त किया है। फिर भी शरीर-देशका शासन चेतनराजाकी असावधानीके कारण विशृंखलित होता जा रहा है। मान और चिन्ताने प्रधानमत्री बननेके लिए सघर्ष आरंभ कर दिया है। इधर लोभ और कामदेव अपना पद सुरक्षित रखनेके लिये नाना प्रकारसे देशको त्रस्त कर रहे हैं। नये-नये प्रकारके कर लगाये जाते है, जिससे शरीर-राज्यकी दुरवस्था हो रही है। ज्ञान, दर्शन, सुख वीर्य, जो कि चेतनराजाके विश्वासपात्र अमात्य हैं, उनको कोतवाल सेनापति, वैयक्तिक सचिव आदिने खदेड़ बाहर कर दिया है। शरीर-देशको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ चेतनराजाका राज्य न हो कर सेनापति मोहने अपना शासन स्थापित कर लिया है। चेतनकी आज्ञाको सभी अवहेलना करते हैं।

माया-रानी भी मोह और लोभको चुपचाप-राज्य शरीर-सचालनमे सहायता देती है। उसने इस प्रकार षड्यन्त्र किया है जिससे चेतनराजाका राज्य उलट दिया जाय और वह स्वय उसकी शासिका बन जाये। जब सुबुद्धिको चेतनराजाके विरुद्ध किये गये षड्यन्त्रका पता लगा तो उसने अपना कर्त्तव्य और धर्म समझकर चेतनराजाको समझाया तथा उससे प्रार्थना की "प्रिय चेतन, तुम अपने भीतर रहनेवाले ज्ञान, दर्शन आदि गुणोकी सम्हाल नही करते।

इन्द्रिय और शरीरके गुणोको अपना समझ माया-रानीमे इतना आसक्त होना तुम्हे शोभा नही देता। जिन क्रोध, मोह और काम-कर्मचारियोपर तुमने विश्वास कर लिया है वे निश्चय ही तुमको ठग रहे हैं। तुम्हारे चैतन्य-नगर-पर उनका अधिकार होनेवाला है, क्योकि तुमने शरीरके हारनेपर अपनी हार और उसके जीतनेपर जीत समझ ली, दिन-रात मायाके द्वारा निरूपित सासारिक धन्धोमे मस्त रहनेसे तुम्हे अपने विश्वासप्राप्त अमात्योको भी खो देना पडेगा। तुमने जो मार्ग अभी ग्रहण किया है वह बिल्कुल अनुचित है। क्या कभी तुमने विचार किया है कि तुम कौन हो ? कहाँसे आये हो ? तुम्हे कौन-कौन धोखा दे रहे हैं ? और तुम अपने स्वभावसे किस प्रकार च्युत हो रहे हो ? ये द्रव्य-कर्म ज्ञानावरणादि तथा भावकर्म राग-द्वेष आदि, जिनपर तुम्हारा अटूट विश्वास हो गया है, तुमसे बिल्कुल भिन्न हैं। इनका तुमसे कुछ भी तादात्म्य-भाव नही है। प्रिय चेतन ! क्या तुम राजा होकर दास बनना चाहते हो ? इतने चतुर और कलाप्रवीण होकर तुमने यह मूर्खता क्यो की ? तीन लोकके स्वामी होकर मायाकी मीठी बातोमे उलझकर भिखारी बन रहे हो ? तुम्हारे-त्रासको देखकर मैं वेदनासे झुलस रही हूँ। तुम्हारी अन्धता मेरे लिये लज्जाकी बात है, अब भी समय है, अवसर है, सुयोग है और है विश्वासपात्र अमात्योका सहारा। हृदयेश ! अब सावधान होकर अपनी नगरीका शासन करें, जिससे शीघ्र ही मोक्ष-महलपर अधिकार किया जा सके। प्राणनाथ ! राज्य सम्हालते समय तुमने मोक्षमहलको प्राप्त करनेकी प्रतिज्ञा भी की थी। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मोक्ष-महलमे रहनेवाली मुक्ति-रानी इस ठगिनी मायासे करोडो-गुणी सुन्दरी और हाव-भावप्रवीण है। उसे देखते ही मुग्ध हो जाओगे। प्रमाद और अहकार दोनो ही तुमको मुक्ति-रमाके साथ विहार करनेमे बाधा दे रहे हैं।

इस प्रकार सुबुद्धिने नानाप्रकारसे चेतनराजाको समझाया। सुबुद्धिकी बात मान लेनेपर चेतनराजा अपने विश्वासपात्र अमात्य ज्ञान, दर्शन आदिकी सहायतासे मोक्ष-महलपर अधिकार करने चल दिया।

काव्यकी दृष्टिसे इस रचनामे सभी गुण वर्त्तमान हैं। मानवके विकार और उसकी विभिन्न चित्तवृत्तियोका अत्यन्त सूक्ष्म और सुन्दर विवेचन किया है। यह रचना रसमय होनेके साथ मगलप्रद है। भावात्मक शैलीमे कविने अपने हृदयकी अनुभूतिको सरलरूपसे अभिव्यक्त किया है। दार्शनिकताके साथ काव्यात्मक शैलीमे सम्बद्ध और प्रवाहपूर्ण भावोकी अभिव्यञ्जना रोचक हुई है। कवि चेतनराजाको सुव्यवस्थाका विश्लेषण करता हुआ कहता है

काया-सी जु नगरीमे चिदानन्द राज करै,
माया-सी जु रानी पै मगन बहु भयो है।

मोह-सो है फौजदार क्रोध-सो है कोतवार;
लोभ-सो वजीर जहाँ लूटिवैको रह्यो है ॥
उदैको जु काजी मानै, मानको अदल जानै,
कामसेनाका नवीस आई वाको कह्यो है।
ऐसी राजधानीमे अपने गुण भूलि रह्यो,
सुधि जब आई तवै ज्ञान आय गह्यो है।

सुवुद्धि चेतनराजाको समझाती है

कौन तुम, कहाँ आए, कौन बौराये तुर्महि;
काके रस राचे कछु सुधहू धरतु हो।
कौन है वे कर्म, जिन्हे एकमेक मानि रहे,
अजहू न लागे हाथ भाँवरि भरतु हो ॥
वे दिन चितारो, जहाँ बीते है अनादि काल;
कैसें-कैसे सकट सहे हू विसरतु हो।
तुम तो सयाने पै सयान यह कौन कीन्हो,
तीन-लोक-नाथ ह्वैके दीनसे फिरतु हो ॥

पञ्चेन्द्रियसंवाद मे वताया गया है कि एक सुरम्य उद्यानमे एक दिन एक मुनिराज धर्मोपदेश दे रहे थे। उनकी धर्मदेशनाका श्रवण करनेके लिए अनेक व्यक्ति एकत्र हुए। सभामे नानाप्रकारकी शकाएँ की जाने लगी। एक व्यक्तिने मुनिराजसे पूछा 'पचेन्द्रियोंके विषय सुखकर हैं या दुखकर ?' मुनिराजबोले "ये पचेन्द्रियाँ बड़ी दुष्ट हैं। इनका जितना ही पोषण किया जाता है, दु ख ही देती हैं।"

एक विद्याधर बीचमे ही इन्द्रियोका पक्ष लेकर बोला "महाराज इन्द्रियाँ दुष्ट नही हैं, इनकी वात इन्हीके मुखसे सुनिये। ये प्राणियोको कितना सुख देती हैं ?"

मुनिराजका सकेत पाते ही सभी इन्द्रियाँ अपने-अपनेको वडा सिद्ध करने लगी। पश्चात् मुनिराजने उन सभी इन्द्रियो और मनको समझाकर वताया कि तुम सवसे वडी आत्मा हो। राग-द्वेषके दूर होनेपर आत्मा ही परमात्मा बन जाता है।

इस पंचेन्द्रिय-सवादमे इन्द्रियोके उत्तर-प्रत्युत्तर वडे ही सरस और स्वाभाविक है। प्रत्येक इन्द्रियका उत्तर इतने प्रामाणिक ढगसे उपस्थित किया है, जिससे पाठक मुग्ध हो जाता है। सर्वप्रथम अपने पक्षको स्थापित करती हुई नाक कहती है

नाक कहै प्रभु म वडो, और न वड़ो कहाय।
नाक रहै पत लोकमे, नाक गये पत जाय॥
प्रथम वदनपर देखिए, नाक नवल आकार।
सुन्दर महा सुहावनी, मोहित लोक अपार॥
सुख विलसै ससारका, सो सव मुझ परसाद।
नाना वृक्ष सुगन्धिको, नाक करै आस्वाद॥

कानका उत्तर

कान कहै, री नाक, सुन, तू कहा करै गुमान।
जो आकर आगे चलै, तो नहि भूप समान॥
नाक सुरनि पानी झरै, वहे श्लेषम अपार।
गूँधनि करि पूरित रहै, लाजै नही गँवार॥
तेरी छीक सुनै जिते, करै न उत्तम काज।
मूदै तुह दुर्गन्ध मे, तऊ न आवै लाज॥
वृषभऊँ नारी निरख, और जीव जग माँहि।
जित तित तोको छेदिये, तोऊ लजानो नाहि॥

× × ×

कानन कुण्डल झलकता, मणि मुक्ताफल सार।
जगमग जगमग ह्वै रहै, देखै सव ससार॥
सातो सुरको गाइवो, अद्भुत सुखमय स्वाद।
इन कानन कर परखिये, मोठे-मीठे नाद॥
कानन सरभर को करै, कान वडे सरदार।
छहो द्रव्य के गुण सुनै, जानै सवद-विचार॥

मधुबिन्दुकचौपाई भी कविका एक सरस आध्यात्मिक रूपक काव्य है। इस काव्यमे वताया है कि एक पुरुष वनमे जाते हुए रास्ता भूलकर इधर-उधर भटकने लगा। जिस अरण्यमे वह पहुँच गया था वह अरण्य अत्यन्त भयकर था। उसमे सिंह और मदोन्मत्त गजोकी गर्जनाएँ सुनाई पड रही थी। वह भयाक्रान्त होकर इधर-उधर छिपनेका प्रयास करने लगा। इतनेमे एक पागल हाथी उसे पकड़नेके लिए दौड़ा। हाथीको अपनी ओर आते हुए देखकर वह व्यक्ति भागा। वह जितनी तेजीसे भागता जाता था, हाथी भी उतनी ही तेजीसे उसका पीछा कर रहा था। जव उसने इस प्रकार जान बचते न देखी, तो वह एक वृक्षकी शाखासे लटक गया। उस वृक्षकी शाखाके नीचे एक बड़ा अन्धकूप था तथा उसके ऊपर एक मधुमक्खीका छत्ता लगा हुआ था। हाथी

भी दौडता हुआ उसके पास आया। पर शाखासे लटक जानेके कारण वह उस पेड़के तनेको सूँड़से पकडकर हिलाने लगा। वृक्षके हिलनेसे मधुछत्तेसे एक-एक बूँद मधु गिरने लगा और वह पुरुष उस मधुका आस्वादन कर अपनेको सुखी समझने लगा।

नीचेके अन्धकूपमे चारो किनारेपर चार अजगर मुँह फैलाये बैठे थे तथा जिस शाखाको वह पकड़े हुए था, उसे काले और सफेद रगके दो चूहे काट रहे थे। उस व्यक्तिकी बुरी अवस्था थी। पागल हाथी वृक्षको उखाडकर उसे मार डालना चाहता था तथा हाथीसे बच जानेपर चूहे उसकी डालको काट रहे थे, जिससे वह अन्धकूपमे गिरकर अजगरोका भक्ष्य बनने जा रहा था। उसकी इस दयनीय अवस्थाको आकाशमार्गसे जाते हुए विद्याधर-दम्पतिने देखा। स्त्री अपने पतिसे कहने लगी "स्वामिन् इस पुरुषका जल्द उद्धार कीजिए। यह जल्दी ही अन्धकूपमे गिरकर अजगरोका शिकार होना चाहता है। आप दयालु हैं। अतः अब विलम्ब करना अनुचित है। इसे विमानमे बैठाकर इस दु खसे छुटकारा दिला देना हमारा परम कर्त्तव्य है।"

स्त्रीके अनुरोधसे वह विद्याधर वहाँ आया और उससे कहने लगा "आओ, मैं तुम्हारा हाथ पकड लेता हूँ। विश्वास करो, मैं तुम्हे विमान द्वारा सुरक्षित स्थानपर पहुँचा दूँगा।" वह पुरुष बोला- "मित्र आप बडे उपकारी हैं। कृपया थोड़ी देर रुके रहे। अबकी बार गिरने वाली मधुबूँदको खाकर मै आता हूँ।" विद्याधरने बहुत देर तक प्रतीक्षा करनेके बाद पुन कहा "भाई, निकलना है, तो निकलो, विलम्ब करनेसे तुम्हारे प्राण नही बच सकेंगे। जल्दी करो।"

पुरुष "महाभाग! इस मधुबूँदमे अपूर्व स्वाद है। मै निकलता हूँ, अबकी बूँद और चाट लेने दीजिये। बेचारे विद्याधरने कुछ समय तक प्रतीक्षा करनेके उपरान्त पुन कहा "क्या भाई! तुम्हे इससे छुटकारा पाना नही है? जल्दी आओ, अब मुझे देरी हो रही है। वह लोभी पुरुष बार-बार उसी प्रकार बूँद और चाट लेने दो, उत्तर देता रहा। अब निराश होकर विद्याधर चला गया और कुछ समय पश्चात् शाखाके कट जानेपर वह उस अन्धकूपमे गिर पडा तथा एक किनारेके अजगरका शिकार हुआ।

इस रूपकको स्पष्ट करते हुए कविने लिखा है

यह ससार महा वन जान। तामहिं भयभ्रम कूप समान॥
गज जिम काल फिरत निशदीस। तिहँ पकरन कहुँ विस्वावीस॥
वटको जटा लटकि जो रही। सो आयुर्दा जिनवर कही॥

तिहँ जर काटत मूसा दोय । दिन अरु रैन लखहु तुम सोय ॥
माँखी चूँटित ताहि शरीर । सो वहु रोगादिककी पीर ॥
अजगर पर्‌यो कूपके बीच । सो निगोद सबतैं गति बीच ॥

इस प्रकार इस रूपक द्वारा कविने विषय-सुखकी सारहीनताका उदाहरण प्रस्तुत किया है। भैया भगवतीदासकी पुण्यपच्चीसिका, अक्षरबत्तीसिका, शिक्षावली, गुणमंजरी, अनादिवत्तीसिका, मनबत्तीसी, स्वप्नबत्तीसी, वैराग्य-पचाशिका और आश्चर्यचतुर्दशी आदि रचनाएँ काव्यकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं।

महाकवि भूधरदास

हिन्दी भाषाके जैन-कवियोंमे महाकवि भूधरदासका नाम उल्लेखनीय है। कवि आगरानिवासी था और इसकी जाति खण्डेलवाल थी। इससे अधिक इनका परिचय प्राप्त नही होता है। इनकी रचनाओंके अवलोकनसे यह अवश्य ज्ञात होता है कि कवि श्रद्धालु और धर्मात्मा था। कविता करनेका अच्छा अभ्यास था। कविके कुछ मित्र थे, जो कविसे ऐसे सार्वजनीन साहित्यका निर्माण कराना चाहते थे, जिसका अध्ययन कर साधारण जन भी आत्मसाधना और आचार-तत्त्वको प्राप्त कर सके। उन्ही दिनों आगरामे जयसिंहसवाई सूबा और हाकीम गुलाबचन्द वहाँ आये। शाह हरिसिंहके वंशमे जो धर्मानुरागी मनुष्य थे उनकी बार-बार प्रेरणासे कविके प्रमादका अन्त हो गया और कविने विक्रम सं० १७८१मे पौष कृष्णा त्रयोदशीके दिन अपना 'शतक' नामक ग्रन्थ रचकर समाप्त किया।

कविके हृदयमें आत्मकल्याणकी तरंग उठती थी और विलीन हो जाती थी, पर वह कुछ नही कर पाता था। अध्यात्मगोष्ठीमे जाना और चर्चा करना नित्यका काम था। एक-दिन कवि अपने मित्रोंके साथ बैठा हुआ था कि वहाँसे एक वृद्ध पुरुष निकला, जिसका शरीर थक चुका था, दृष्टि कमजोर हो गई थी, लाठीके सहारे चला जा रहा था। उसका सारा शरीर काँप रहा था। मुँहसे कभी-कभी लार भी टपकती थी। वह लाठीके सहारे स्थिर होकर चलना चाहता था, पर वहाँसे दस-पाँच कदम ही आगे चल पाया था कि संयोगसे उसकी लाठी टूट गई। पासमे स्थित लोगोंने उसे खड़ा किया और दूसरी लाठी-का सहारा देकर उसे घर पहुँचाया। वृद्धकी इस अवस्थासे कवि भूधरदासका मन विचलित हो गया[1] और उनके मुखसे निम्नलिखित पद्य निकल पड़ा।

१. आगरे में बालबुद्धि भूधर खंडेलवाल, बालकके ख्याल सौं कवित्त कर जानैं है।
ऐसे ही करत भयो जैसिंह सवाई सूबा, हाकिम गुलाबचन्द आये तिहि थानै है।

आया रे बुढ़ापा मानी, सुधि-बुधि बिसरानी ॥
श्रवनकी शक्ति घटी, चाल चले अटपटी,
देह लटी भूख घटी, लोचन झरत पानी ॥१॥
दाँतनकी पंक्ति टूटी, हाडनकी सन्धि छूटी,
कायाकी नगरी लूटी, जात नहि पहिचानी ॥२॥
बालोंने वरन फेरा, रोगने शरीर घेरा,
पुत्रहू न आवै नेरा, औरोंकी कहा कहानी ॥३॥
'भूधर' समुझि अब, स्वहित करोगे कब ?
यह गति ह्वै है जब, तब पछतैहै प्रानी ॥४॥

पदके अन्तिम चरणको कविने कई बार पढा और अनुभव किया कि वृद्धावस्थामे हम सबकी ऐसी ही हालत होती है। अतः आत्मोत्थानकी ओर प्रवृत्त होना चाहिए। इस प्रकार कवि भूधरदासका व्यक्तित्व सांसारिकतासे परे आत्मोन्मुखी है।

इनकी रचनाओंसे इनका समय वि० स० की १८वी शती (१७८१) सिद्ध होता है।

रचनाएँ

महाकवि भूधरदासने पार्श्वपुराण, जिनशतक और पद-साहित्यकी रचना कर हिन्दी-साहित्यको समृद्ध बनाया है। इनकी कविता उच्च-कोटिकी होती है।

१ पार्श्वपुराण यह एक महाकाव्य है। इसकी कथा बड़ी ही रोचक और आत्मपोषक है। किस प्रकार वैरकी परम्परा प्राणियोंके अनेक जन्म जन्मान्तरो तक चलती रहती है, यह इसमे बड़ी ही खूबीके साथ बतलाया गया है। पार्श्वनाथ तीर्थंकर होनेके नौ भव पूर्व पोदनपुर नगरके राजा अरविन्दके मन्त्री विश्वभूतिके पुत्र थे। उस समय इनका नाम मरुभूति और इनके भाईका नाम कमठ था। विश्वभूतिके दीक्षा लेनेके अनन्तर दोनो भाई राजाके मन्त्री हुए और जब राजा अरविन्दने वज्रकीर्त्तिपर चढाई की, तो कुमार मरुभूति इनके साथ युद्धक्षेत्रमे आया। कमठने राजधानीमे अनेक उपद्रव मचाये और अपने

हरीसिह शाहके सुवश धर्मरागी नर, तिनके कहे सौं जोरि कीनी एक ठानै है।
फिरि-फिरि प्रेरे मेरे आलसको अन्त भयो, उनकी सहाय यह मेरो मन मानै हैं।
सतरहसै, इक्यासिया, पोह पाख तमलीन।
तिथि तेरस रविवारको, सतक समापत कीन ॥

जिनशतकप्रशस्ति

छोटे भाईकी पत्नीके साथ दुराचार किया। जब राजा शत्रुको परास्त कर राजधानीमे आया, तो कमठके कुकृत्यकी बात सुनकर उसे बड़ा दुःख हुआ। कमठका काला मुँह कर गदहेपर चढा सारे नगरमे घुमाया और नगरकी सीमासे बाहर कर दिया। आत्म-प्रताडनासे पीडित कमठ भूताचल पर्वतपर जाकर तपस्वियोके साथ रहने लगा। मरुभूति कमठके इस समाचारको प्राप्त कर भूताचलपर गया और वहाँ दुष्ट कमठने उसकी हत्या कर दी। इसके बाद कविने आठ जन्मोकी कथा अकित की है। नवें जन्ममे काशीके विश्वसेन राजाके यहाँ पार्श्वनाथका जन्म होता है। पार्श्व आजन्म ब्रह्मचारी रहकर आत्मसाधना करते हैं। वे तीर्थंकर बन जाते हैं। कमठका जीव उनकी तपस्यामे विघ्न करता है, पर पार्श्वनाथ अपनी साधनासे विचलित नही होते। केवलज्ञान प्राप्त होनेपर वे प्राणियोको धर्मोपदेश देते हैं और अन्तमे सम्मेदाचलसे निर्वाण प्राप्त करते है।

नायक पार्श्वनाथका जीवन अपने समयके समाजका प्रतिनिधित्व करता हुआ लोक-मगलकी रक्षाके लिए बद्धपरिकर है। कविने कथामे क्रमबद्धताका पूरा निर्वाह किया है। मानवता और युगभावनाका प्राधान्य सर्वत्र है, पर स्थिति-निर्माणमे पूर्वके नौ भवोकी कथा जोडकर कविने पूरी सफलता प्राप्त की है। जीवनका इतना सर्वांगीण और स्वस्थ विवेचन एकाध महाकाव्यमे ही मिलेगा। इसमे एक व्यक्तिका जीवन अनेक अवस्थाओ और व्यक्तियोके बीच अकित हुआ है। अत इसमे मानवके रागद्वेषोकी क्रीडाके लिए विस्तृत क्षेत्र है। मनुष्यका ममत्व अपने परिवारके साथ कितना अधिक रहता है, यह पार्श्वनाथके जीव मरुभूतिके चरित्रसे स्पष्ट है।

वस्तुव्यापार-वर्णन, घटना-विधान और दृश्य-योजनाओकी दृष्टिसे भी यह काव्य सफल है। कवि जीवनके सत्यको काव्यके माध्यमसे व्यक्त करता हुआ कहता है

बालक-काया कूपल लोय। पत्ररूप - जीवनमे होय॥
पाको पात जरा तन करै। काल-बयारि चलत पर झरै॥
मरन-दिवसको नेम न कोय। यातै कछु सुधि परै न लोय॥
एक नेम यह तो परमान। जन्म धरै सो मरै निदान॥४।६५-६७

अर्थात् किशोरावस्था कोपलके तुल्य है। इसमे पत्रस्वरूप यौवन अवस्था है। पत्तोका पक जाना जरा है। मृत्युरूपी वायु इस पके पत्तेको अपने एक हल्के धक्केसे ही गिरा देती है। जब जीवनमे मृत्यु निश्चित है तो हमे अपनी महायात्राके लिए पहलेसे तैयारी करनी चाहिए।

जीवनका अन्तर्दर्शन ज्ञान-दीपके द्वारा ही सभव है, पर इस ज्ञान-दीपमें तपरूपी तेल और स्वात्मानुभवरूपी बत्तीका रहना अनिवार्य है।

ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसै नही, पैठे पूरब चोर ॥४॥८१

कविने इस काव्यकी समाप्ति वि० सं० १७८९ आषाढ शुक्ला पचमीको की है।[1]

२ जैन शतक इस रचनामे १०७ कवित्त, दोहे, सवैये और छप्पय हैं। कविने वैराग्य-जीवनके विकासके लिए इस रचनाका प्रणयन किया है। वृद्धावस्था, ससारकी असारता, काल सामर्थ्य, स्वार्थपरता, दिगम्बर मुनियोकी तपस्या, आशा-तृष्णाकी नग्नता आदि विषयोका निरूपण बड़े ही अद्भुत ढगसे किया है। कवि जिस तथ्यका प्रतिपादन करना चाहता है उसे स्पष्ट और निर्भय होकर प्रतिपादित करता है। नीरस और गूढ विषयोका निरूपण भी सरस एव प्रभावोत्पादक शैलीमे किया गया है। कल्पना, भावना और विचारोका समन्वय सन्तुलित रूपमे हुआ है। आत्म-सौन्दर्यका दर्शन कर कवि कहता हैं कि संसारके भोगोमे लिप्त प्राणी अहर्निश विचार करता रहता है कि जिस प्रकार भी सभव हो उस प्रकार मैं धन एकत्र कर आनन्द भोगूँ। मानव नाना प्रकारके सुनहले स्वप्न देखता है और विचारता है कि धन प्राप्त होनेपर ससारके समस्त अभ्युदयजन्य कार्योंको सम्पन्न करूँगा, पर उसकी धनार्जनकी यह अभिलाषा मृत्युके कारण अधूरी ही रह जाती है। यथा

चाहत है धन होय किसी विध, तो सब काज करे जिय राजी।
गेह चिनाय करूँ गहना कछु, ब्याहि सुता सुत बाँटिय भाजी ॥
चिन्तत यो दिन जाहि चले, जम आनि अँचानक देत दगाजी।
खेलत खेल खिलारि गये, रहि जाइ रुपी शतरजकी बाजी ॥

इस ससारमे मनुष्य आत्मज्ञानसे विमुख होकर शरीरकी सेवा करता है। शरीरको स्वच्छ करनेमे अनेक साबुनकी बट्टियाँ रगड डालता है और अनेक तेलकी शीशियाँ खाली कर डालता है। फैशनके अनेक पदार्थोंका उपयोग शारीरिक सौन्दर्य, प्रसाधनमे करता है, प्रतिदिन रगड़-रगड़कर शरीरको साफ करता है। इत्र और सेण्टोका व्यवहार करता है। प्रत्येक इन्द्रियकी तृप्तिके लिए अनेक पदार्थोंका सचय करता है। इस प्रकारसे मानवकी दृष्टि अनात्मिक

१. सवत् सतरह शतक मैं, और नवासी लीय।
सुदी अषाढ तिथि पचमी, ग्रन्थ समापत कीय ॥

हो रहा है। वह शरीरको ही सब कुछ समझ गया। कवि भूधरदासने अपने अन्तस्में उसी सत्यका अनुभव कर जगत्के मानवोंको सजग करते हुए कहा है

> मात-पिता-रज-वीरज सौं, उपजी सब सात कुधात भरी है।
> माखिनके पर माफिक बाहर, चामके बेठन बेढ धरी है॥
> नाहिं तो आय लगैं अबही, बक वायस जीव बचै न घरी है।
> देह-दशा यह दीखत भ्रात, घिनात नहीं किन बुद्धि हरी है॥

इस प्रकार कविने इस शतकमें अनात्मिक दृष्टिको दूर कर आत्मिक दृष्टि स्थापित करनेका प्रयास किया है।

३. पद साहित्य महाकवि भूधरदासकी तीसरी रचना पद-संग्रह है। इनके पदोंको—१ स्तुतिपरक, २. जीवके अज्ञानावस्थाके कारण परिणाम और विस्तार सूचक, ३. आराध्यकी शरणके दृढ़ विश्वास सूचक, ४. अध्यात्मोपदेशी, ५. संसार और शरीरसे विरक्ति उत्पादक, ६. नाम स्मरणके महत्त्व द्योतक और ७. मनुष्यत्वके पूर्ण अभिव्यञ्जक इन सात वर्गोंमें विभक्त किया जा सकता है। इन सभी प्रकारके पदोंमें शाब्दिक कोमलता, भावोंकी मादकता और कल्पनाओंका इन्द्रजाल समन्वित रूपमें विद्यमान है। इनके पदोंमें राग-विरागका गंगा-यमुनी संगम होनेपर भी शृंगारिकता नहीं है। कई पद सूरदासके पदोंके समान दृष्टिकूट भी हैं। "जगत्-जन जुआ हार चले" पदमें भाषाकी लाक्षणिकता और काव्योक्तियोंकी विदग्धता पूर्णतया समाविष्ट है। "सुनि ठगनी माया। तैं सब जग ठग खाया" पद कबीरके "माया महा ठगनी हम जानी" पदसे समकक्षता रखता है। इसी प्रकार "भगवन्त भजन क्यों भूला रे। यह संसार रैनका सुपना, तन धन वारि बबूला रे" पद "भजु मन जीवन नाम सवेरा" कबीरके पदके समकक्ष है। "चरखा चलता नाहीं, चरखा हुआ पुराना" आदि आध्यात्मिक पद कबीरके "चरखा चलै सुरत विरहिनका" पदके तुल्य है। इस प्रकार भूधरदासके पद जीवनमें आस्था, विश्वासकी भावना जागृत करते हैं।

कवि द्यानतराय

द्यानतराय आगरानिवासी थे। इनका जन्म अग्रवालजातिके गोयल गोत्रमें हुआ था। इनके पूर्वज लालपुरसे आकर यहाँ बस गये थे। इनके पितामहका नाम वीरदास और पिताका नाम श्यामदास था। इनका जन्म वि० सं० १७३३में हुआ और विवाह वि० सं० १७४८में। उस समय आगरामें मानसिंहजीकी धर्मशैली थी। कवि द्यानतरायने उनसे लाभ उठाया।

कविको पंडित बिहारीदास और पण्डित मानसिंहके धर्मोपदेशसे जैनधर्मके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई थी। इन्होने सं० १७७७मे श्रीसम्मेदशिखरकी यात्राकी थी। इनका महान ग्रन्थ 'धर्मविलासके' नामसे प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थमे ३३३ पद, अनेक पूजाएँ एव ४५ विषयोपर फुटकर कविताएँ सग्रहीत है। कविने इनका सकलन स्वयं वि० स० १७८०मे किया है। काव्य-विधाकी दृष्टिसे द्यानत-विलासकी रचनाओको निम्नलिखित वर्गोमें विभक्त किया जा सकता है

१ पद
२ पूजापाठ-भक्ति स्तोत्र और पूजाएँ।
३. रूपक काव्य
४ प्रकीर्णक काव्य

पद इनके पद-साहित्यको, १ बधाई, २ स्तवन, ३ आत्म-समर्पण ४. आश्वासन, ५ परत्वबोधक, ६ सहज समाधिकी आकाक्षा इन षट् श्रेणियोमे विभक्त किया जा सकता हैं। बधाई सूचक पदोमे तीर्थंकर ऋषभनाथके जन्म-समयका आनन्द व्यक्त किया है। प्रसगवश प्रभुके नख-शिखका वर्णन भी किया गया है। अपने इष्टदेवके जन्म-समयका वातावरण और उस कालकी समस्त परिस्थितियोका स्मरण कर कवि आनन्दविभोर हो जाता है और हर्षोन्मत्त हो गा उठता है

माई आज आनन्द या नगरी ॥टेक॥
गजगमनी, शशिवदनी तरुनी, मगल गावति हैं सगरी ॥माई०॥
नाभिराय घर पुत्र भयो है, किये है अजाचक जाचक री ॥माई०॥
'द्यानत' धन्य कूख मरुदेवी, सुर सेवत जाके पग री ॥माई०॥

कविके पदोकी प्रमुख विशेषता यह है कि तथ्योका विवेचन दार्शनिक शैलीमे न कर काव्यशैलीमे किया गया है। "रे मन भजभज दीन दयाल, जाके नाम लेत इक खिनमे, कटै कोटि अघजाल" जैसे पदो द्वारा नामस्मरणके महत्त्वको प्रतिपादित किया है।

प्रकीर्णक काव्य प्रकीर्णक-काव्यमे उपदेशशतक, दानबावनी, व्यवहारपच्चीसी, पूर्णपचाशिका आदि प्रधान हैं। उपदेशशतकमे १२१ पद्य हैं। कविने आत्मसौन्दर्यका अनुभव कर उसे ससारके समक्ष इस रूपमे उपस्थित किया है, जिससे वास्तविक आन्तरिक सौन्दर्यका परिज्ञान सहजमे हो जाता है।

यह कृति मानव-हृदयको स्वार्थ-सम्बन्धोकी सकीर्णतासे ऊपर उठाकर लोक कल्याणकी भावभूमिपर ले जाती है, जिससे मनोविकारोका परिष्कार हो जाता है। कविने आरभमे इष्टदेवको नमस्कार करनेके उपरान्त भक्ति एवं स्तुतिकी आवश्यकता, मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी महिमा, गृहवासका दु:ख, इन्द्रियोकी दासता, नरक-निगोदके दु:ख, पुण्यपापकी महत्ता, धर्मकी उपादेयता, ज्ञानी-अज्ञानीका चिन्तन, आत्मानुभूतिकी विशेषता, शुद्ध आत्मस्वरूप एव नवतत्त्व-स्वरूप आदिका सुन्दर विवेचन किया है। भवसागरसे पार होनेका कविने कितना सुन्दर उपाय बताया है

सोचत जात सबै दिन-रात, कछू न बसात कहा करिये जी।
सोच निवार निजातम धारहु, राग-विरोध सबै हरिये जी॥
यौ कहिये जु कहा लहिये, सु वहै कहिये करुना धरिये जी।
पावत मोख मिटावत दोष, सु यौं भवसागर को तरिये जी॥

कविने इसी ग्रन्थमे समताका महत्त्व बतलाते हुए कितने सुन्दर रूपमे कहा है—समदृष्टि आत्मरूपका अनुभव करता है। उसे अपने अन्तस्की छवि मुग्ध और अतुलनीय प्रतीत होती है। अत वह आध्यात्मिक समरसताका आस्वादन कर निश्चिन्त हो जाता है। कविने कहा है

काहेको सोच करै मन मूरख, सोच करै कछु हाथ न ऐहै।
पूरब कर्म सुभासुभ सचित, सो निहचय अपनो रस देहै॥
ताहि निवारनको बलवन्त, तिहूँ जगमाहि न कोउ लसै हैं।
तातै हि सोच तजो समता गहि, ज्यौं सुख होइ जिनद कहै हैं॥

धर्मविलास[1] या द्यानतविलासके अतिरिक्त कविके अन्य दो ग्रन्थ और पाये जाते हैं। आगमविलास तथा भेद-विज्ञान या आत्मानुभव। आगमविलासमे कविकी ४६ रचनाएँ सकलित हैं। उनका सकलन उनकी मृत्युके पश्चात् प० जगतराय द्वारा किया गया है। कहा जाता है कि द्यानतरायकी मृत्युके पश्चात् उनकी रचनाओको उनके पुत्र लालजीने आलमगंजवासी किसी झाझू नामक व्यक्तिको दे दिया। पडित जगतरायने वे रचनाएँ नष्ट न हो जायें, इस आशयसे उन्हे एक गुटकेमे[1] सगृहीत कर दिया है

१. यह ग्रन्थ जैन रत्नाकर कार्यालय बम्बई द्वारा फरवरी १९१४ में प्रकाशित।

आगमविलासके प्रारम्भमे १५२ सवैया-छन्दोमे सैद्धान्तिक विषयोकी चर्चा है। अत सैद्धान्तिक विषयोकी प्रधानताके कारण ही इस रचनाका नाम आगम-विलास रखा गया है।

भेदविज्ञान या आत्मानुभव यह कविकी एक अन्य रचना है। कविने इसमें जीवद्रव्य और पुद्गलादि द्रव्योका विवेचन किया है। कविका विश्वास है कि आत्मतत्त्वरूपी चिन्तामणिके प्राप्त होते ही समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। आत्मतत्त्वके उपलब्ध होते ही विषयरस नीरस प्रतीत होने लगते हैं।

मैं एक शुद्ध ज्ञानी, निर्मल सुभाव ज्ञाता,
दृग ज्ञान चरन धारी, थिर चेतना हमारी।
× × × ×
अब चिदानन्द प्यारा, हम आपमे निहारा ॥

कवि धार्मिक प्रवृत्तिका लेखक है; पर व्यवहार और काव्यतत्त्वोकी कमी नही आने पाई है। ससारकी सजीवताका चित्रण करते हुए लिखा है

रूजगार बनै नाहि धनतौ न घर माहिं
खानेकी फिकर वहु नारि चाहै गहना।
देनेवाले फिरि जाँहि मिलै तो उधार नाहिं
साझी मिले चोर धन आवै नाहि लहना।
कोऊ पूत ज्वारी भयो, घर माहि सुत थयौ,
एक पूत मरि गयौ ताको दुख सहना।
पुत्री वर जोग भई व्याही सुता जम लई,
एते दुख सुख जाने तिसै कहा कहना ॥

१ द्यानतका सुत लालजी, चिट्ठे ल्याओ पास।
सो ले झाझूको दिए, आलमगंज सुवास ॥१३॥
तासे पुनसे सकल ही, चिट्ठे लिये मँगाय।
मोती कटले मेल है, जगतराय सुख पाय ॥१४॥
तब मन माँहि विचार, पोथी किन्ही एक ठी।
जोरि पढै नर नारि, धर्म ध्यानमें थिर रहै ॥१५॥
संवत सतरह सै चौरासी, माघ सुदी चतुर्दशी मासी।
तब यह लिखत समापत कीन्ही, मैनपुरीके माहि नवीनी ॥१६॥

किशनसिंह

यह रामपुरके निवासी संगही कल्याणके पौत्र तथा आनन्दसिंहके पुत्र थे। इनकी खण्डेलवाल जैन जाति थी और पाटनी गोत्र था। यह रामपुर छोडकर साँगानेर आकर रहने लगे थे। इन्होंने सवत् १७८४मे क्रियाकोश नामक छन्दोवद्ध ग्रन्थ रचा था, जिसकी श्लोकसख्या २९०० है। इसके अलावा भद्रवाहुचरित सवत् १७८५ और रात्रिभोजन त्यागव्रतकथा स० १७७३ मे छन्दोवद्ध लिखे हैं। इनकी कविता साधारण कोटिकी है। नमूना निम्न प्रकार है

मायुर वसतराय वोहराको परधान,
संगही कल्याणदास पाटणी वखानिये।
रामपुर वास जाकौ सुत सुखदेव सुधी,
ताको सुत किस्नसिंह कविनाम जानिये॥
तिहिं निसि भोजन त्यजन व्रत कथा सुनी,
ताकी कीनी चौपई सुआगम प्रमाणिये।
भूलि चूकि अक्षर धर जौ वाकौं वुधजन,
सोधि पढि वीनती हमारी मनि आनिये॥

कवि खड्गसेन

यह लाहौर-निवासी थे। इनके पिताका नाम लूणराज था। कविके पूर्वज पहले नारनोलमे रहा करते थे। यहीसे आकर लाहौरमे रहने लगे थे। इन्होंने नारनोलमे भी चतुर्भुज वैरागीके पास अनेक ग्रन्थोका अध्ययन किया था। इन्होंने सवत् १७१३ मे त्रिलोकदर्पणकी रचना सम्पूर्ण की थी। कविता साधारण ही है। उदाहरणार्थ

वागड देश महा विसतार, नारनोल तहाँ नगर निवास।
तहाँ कौम छत्तीसौं वसें, अपणे करमतणां रस लसैं॥
श्रावक वसैं परम गुणवन्त, नाम पापडीवाल वसन्त।
सव भाई मैं परमित लियैं, मालू साह परमगण कियै।
जिसके दो पुत्र गुणखास, लूणराज ठाकुरीदास।
ठाकुरसीकै सुत हैं तीन, तिनकौ जाणौ परम प्रवीन।
वड़ो पुत्र धनपाल प्रमाण, सोहिलदास महासुख जाण।

मनोहरलाल या मनोहरदास

यह कवि धामपुरके निवासी थे। बासू साहके यहाँ इनका आश्रय था।

सेठके सम्बन्धमें इन्होने मनोरजक घटना लिखी है। सेठकी दरिद्रताके कारण वह बनारससे अयोध्या चले गये, किन्तु वहाँके सेठने सम्मान और प्रचुर सम्पत्तिके साथ वापस लौटा दिया। कविने हीरामणिके उपदेश एव आगरा निवासी सालिवाहण, हिसारके जगदत्त मिश्र तथा उसी नगरके रहनेवाले गग-राजके अनुरोधसे 'धर्मपरीक्षा' नामक ग्रन्थकी रचना सवत् १७७५ मे की है। यह रचना कही-कही बहुत सुन्दर है। इस ग्रन्थका परिमाण ३००० पद्य है। कविने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है .

कविता मनोहर खडेलवाल सोनी जाति,
मूलसघी मूल जाको सागानेर वास है।
कर्मके उदय तै धामपुर मैं वसन भयो,
सबसौं मिलाप पुनि सज्जनको दास है।
व्याकरण छद अलकार कछु पढ्यौ नाहिं,
भाषामे निपुन तुच्छ बुद्धिका प्रकास है।
बाई दाहिनी कछू समझै सतोष लीयै,
जिनकी दुहाई जाकै जिन ही की आस है।

नथमल बिलाला

नथमल बिलाला आगराके रहनेवाले थे। इन्होने वि० स० १८२७ मे 'वरागचरितभाषा'की रचना करनेवाले अटेरनिवासी पाण्डेय लालचन्द्रको सहायता प्रदान की थी।[1] नथमलके पिताका नाम शोभाचन्द्र था और गोत्र बिलाला, ये प्रतिभाशाली कवि थे। इनको रचनाएँ निम्न लिखित हैं :

१. सिद्धान्तसारदीपक (वि० सं० १८२४)
२ जिनगुणविलास
३ नागकुमारचरित (वि० स० १८३४)
४. जीवधरचरित (वि० स० १८३५)
५ जम्बूस्वामीचरित

पंडित दौलतराम कासलीवाल

प० दौलतरामजी कासलीवालका जन्म वि० स० १७४५मे बसवा ग्राममे

१ नन्दन सोभाचन्दको नथमल अति गुनवान। गोत बिलाला गगनमें उद्यो चंद समान ॥
नगर आगरो तज रहै, हीरापुरमें आय। करत देखि इस ग्रंथ कौ कीनो अधिक सहाय ॥

हुआ था। इनके पिताका नाम आनन्दराम था। जाति खण्डेलवाल और गोत्र कासलीवाल था। जयपुरके महाराजसे इनका विशेष परिचय था। ये उदयपुर राज्यमे जयपुरके वकील बनकर गये थे और वहाँ ३० वर्षों तक रहे। संस्कृतके अच्छे ज्ञाता थे। हिन्दी-गद्यसाहित्यके क्षेत्रमे सबसे पहली रचना इन्ही दौलतरामकी उपलब्ध है।

ये दौलतराम प० टोडरमल, रायमल आदिके समकालीन थे। संस्कृत, हिन्दी और अपभ्र श इन तीनो ही भाषाओके विद्वान् थे। इनका समय विक्रमको १८वी शतीका अतिम भाग और १९वी शतीका पूर्वार्द्ध है। इन्होने निम्नलिखित रचनाएँ लिखी हैं

१ पुण्यास्रववचनिका (वि० स० १७७७), २ क्रियाकोषभाषा (वि० १७९५) ३ आदिपुराणवचनिका (स० १८२४), ४. हरिवंशपुराण (स० १८२९), ५ परमात्मप्रकाशवचनिका, ६ श्रीपालचरित (सं० १८२२), ७ अध्यात्मबारखड़ी (वि० स० १७९८), ८ वसुनन्दीश्रावकाचार टब्बा (वि० स० १८१८), ९ पद्मपुराणवचनिका (स० १८२३), १० विवेकविलास (वि० स० १८२७), ११ तत्त्वार्थसूत्रभाषा, १२ चौबीसदण्डक, १३ सिद्धपूजा, १४ आत्मबत्तीसी, १५ सारसमुच्चय, १६ जीवंधरचरित (वि० स० १८०५), १७. पुरुषार्थसिद्धयुपाय जो प० टोडरमल पूर्ण नही कर पाये थे।

कविने पद्मपुराणवचनिकामे अपना परिचय देते हुए लिखा है कि रायमल्ल साधर्मी भाईकी प्रेरणासे इस ग्रन्थकी वचनिका लिखी जा रही है। लिखा है

जम्बूद्वीप सदा शुभ थान। भरत क्षेत्र ता माहि प्रमाण ॥
उसमे आरजखड पुनीत। वसै ताहि मे लोक विनीत ॥१॥
तिनके मध्य ढुढार जु देश। निवसैं जैनी लोक विशेष ॥
नगर सवाई जयपुर महा। तासकी उपमा जाय न कहा ॥२॥
राज्य करै माधव नृप जहा। कामदार जैनी जन तहा ॥
ठौर-ठौर जिनमदिर बने। पूजैं तिनकू भविजन घने ॥३॥
वसैं महाजन नाना जाति। सेवैं निजमारग बहु न्याति ॥
रायमल्ल साधर्मी एक। जाके घट मे स्वपर-विवेक ॥४॥
दयावन्त गुणवन्त सुजान। पर-उपकारी परम निधान ॥
दौलतराम सु ताको मित्र। तासो भाष्यो वचन पवित्र ॥५॥
पद्मपुराण महाशुभ ग्रन्थ। तामे लोकशिखरको पन्थ ॥
भाषारूप होय जो येह। बहुजन बाच करै अति नेह ॥६॥

ताके वचन हियेमे धार । भाषा कीनी मति अनुसार ॥
रविषेणाचारजकृत सार । जाहि पढ़ै बुधजन गुणधार ॥७॥
जिनधर्मिनकी आज्ञा लेय । जिनशासन माही चित देय ॥
आनन्दसुतने भाषा करी । नंदो विरदो अति रस भरी ॥८॥

× × ×

सम्वत् अष्टादश शत जान । ता ऊपर तेईस बखान (१८२३) ॥
शुक्ल पक्ष नवमी शनिवार । माध मास रोहिणी रिख सार ॥१०॥

आचार्यकल्प पं० टोडरमल

महाकवि आशाधरके अनुपम व्यक्तित्वकी तुलना करनेवाला व्यक्तित्व आचार्यकल्प पं० टोडरमलजीका है। इन्हे प्रकृतिप्रदत्त स्मरणशक्ति और मेधा प्राप्त थी। एक प्रकारसे ये स्वयबुद्ध थे। इनका जन्म जयपुरमे हुआ था। पिताका नाम जोगीदास और माताका नाम रमा या लक्ष्मी था। इनकी जाति खण्डेलवाल और गोत्र गोदीका था। ये शैशवसे ही होनहार थे। गूढ-से-गूढ शंकाओका समाधान इनके पास मिलता था। इनकी योग्यता एव प्रतिभाका ज्ञान तत्कालीन सधर्मी भाई रायमल्लने इन्द्रध्वज पूजाके निमन्त्रणपत्रमे जो उद्गार प्रकट किये हैं उनसे स्पष्ट हो जाता है। इन उद्गारोको ज्यो-का-त्यो दिया जा रहा है

"यहाँ घणा भायां और घणी बायाके व्याकरण व गोम्मटसारजीकी चर्चा का ज्ञान पाइए हैं। सारा ही विषै भाईजी टोडरमलजीके ज्ञानका क्षयोपशम अलौकिक है, जो गोम्मटसारादि ग्रन्थोकी सम्पूर्ण लाख श्लोक टीका बणाई, और पाँच-सात ग्रन्थोकी टीका बणायवेका उपाय है। न्याय, व्याकरण, गणित, छन्द, अलकारका यदि ज्ञान पाइये है। ऐसे पुरुष महन्त बुद्धिका धारक ईकाल विषै होना दुर्लभ है। ताते यासू मिलें सर्व सन्देह दूरि होय है। घणी लिखवा करि कहा आपणां हेतका वांछीक पुरुष शीघ्र आप यासू मिलाप करो।"

इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि टोडरमलजी महान् विद्वान् थे। वे स्वभावसे बडे नम्र थे। अहकार उन्हे छू तक न गया था। इन्हे एक दार्शनिकका मस्तिष्क, श्रद्धालुका हृदय, साधुका जीवन और सैनिककी दृढता मिली थी। इनकी वाणीमे इतना आकर्षण था कि नित्य सहस्रो व्यक्ति इनका शास्त्र-प्रवचन सुननेके लिए एकत्र होते थे। गृहस्थ होकर भी गृहस्थीमे अनुरक्त नही थे। अपनी साधारण आजीविका कर लेनेके बाद ये शास्त्रचिन्तनमे रत रहते

थे। इनकी प्रतिभा विलक्षण थी। इसका एक प्रमाण यही है कि इन्होने किसी से विना पढे ही कन्नड़ लिपिका अभ्यास कर लिया था।

अव तकके उपलब्ध प्रमाणोंके आधारपर इनका जन्म वि० स० १७९७ है और मृत्यु स० १८२४ है। टोडरमलजी आरंभसे ही क्रान्तिकारी और धर्मके स्वच्छ स्वरूपको हृदयगत करनेवाले थे। इनकी शिक्षा-दीक्षाके सम्बन्धमे विशेष जानकारी नही है, पर इनके गुरुका नाम वशीधरजी मैनपुरी वतलाया जाता है। वह आगरासे आकर जयपुरमे रहने लगे थे और वालकोको शिक्षा देते थे। टोडरमल वाल्यकालसे ही प्रतिभाशाली थे। अतएव गुरुको भी उन्हे स्वयवुद्ध कहना पड़ा था। वि० स० १८११ फाल्गुन शुक्ला पंचमीको १४-१५ वर्षकी अवस्थामे अध्यात्मरसिक मुलतानके भाइयोके नाम चिट्ठी लिखी थी, जो शास्त्रीय चिट्ठी है। राजस्थानके उत्साही विद्वान् पडित देवीदास गोधाने अपने सिद्धान्तसारसंग्रहवचनिका ग्रन्थमे इनका परिचय देते हुए लिखा है

"सो दिल्ली पढ़िकर वसुवा आय पाछै जयपुरमे थोड़ा दिन टोडरमल्लजी महा वुद्धिमानके पासि शास्त्र सुननेको मिल्या ·· सो टोडरमलजीके श्रोता विशेष वुद्धिमान दीवान रतनचन्दजी, अजवरायजी, तिलोकचन्दजी पाटणी, महारामजी, विशेष चरचावान ओसवाल, क्रियावान उदासीन तथा तिलोकचन्द सौगाणी, नयनचन्दजी पाटनी इत्यादि टोडरमलजीके श्रोता विशेष वुद्धिमान तिनके आगे शास्त्रका तो व्याख्यान किया।"

इस उद्धरणसे टोडरमलजीको शास्त्र-प्रवचन शक्ति एव विद्वता प्रकट होती है। आरा सिद्धान्त भवनमे सगृहीत शान्तिनाथपुराणकी प्रशस्तिमे टोडरमलजीके सम्वन्धमे जो उल्लेख मिलता है उससे उनके साहित्यिक व्यक्तित्वपर पूरा प्रकाश पड़ता है।

वासी श्री जयपुर तनौ, टोडरमल्ल क्रिपाल।
ता प्रसग को पाय कैं, गह्यो सुपथ विशाल।
गोमठसारादिक तने, सिद्धान्तन मे सार।
प्रवर वोध जिनके उदैं, महाकवि निरधार।
फुनि ताके तट दूसरो, राजमल्ल वुधराज।
जुगल मल्ल जव ये जुरे, और मल्ल किह काज।
देश ढूढाहड आदि दै, सम्वोधे वहु देस।
रचि रचि ग्रन्थ कठिन किये, 'टोडरमल्ल' महेश।

माता-पिताकी एकमात्र सन्तान होनेके नाते टोडरमल्लजीका वचपन वडे लाड-प्यारमे वीता। वालकको व्युत्पन्नमति देखकर इनके माता-पिताने शिक्षाकी

विशेष व्यवस्था की और वाराणसीसे एक विद्वान्को व्याकरण, दर्शन आदि विषयोको पढानेके लिए बुलाया। अपने विद्यार्थीकी व्युत्पन्नमति और स्मरण शक्ति देखकर गुरुजी भी चकित थे। टोडरमल व्याकरणसूत्रोको गुरुसे भी अधिक स्पष्ट व्याख्या करके सुना देते थे। छ मासमे ही इन्होने जैनेन्द्र व्याकरणको पूर्ण कर लिया।

अध्ययन समाप्त करनेके पश्चात् इन्हे धनोपार्जनके लिए सिंहाणा जाना पड़ा। इससे अनुमान लगता है कि इस समय तक इनके पिताका स्वर्गवास हो चुका था। वहाँ भी टोडरमलजी अपने कार्यके अतिरिक्त पूरा समय शास्त्र-स्वाध्यायमे लगाते थे। कुछ समय पश्चात् रायमल्लजी भी शका-समाधानार्थ सिंघाणा पहुँचे और इनकी नैसर्गिक प्रतिभा देखकर इन्हे 'गोम्मटसार'का भाषानुवाद करनेके लिए प्रेरित किया। अल्प समयमे ही इन्होने इसकी भाषाटीका समाप्त कर ली। मात्र १८-१९ वर्षकी अवस्थामे ही गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणसार एव त्रिलोकसारके ६५००० श्लोकप्रमाणकी टीका कर इन्होने जन-समूहमे विस्मय भर दिया।

सिंघाणासे जयपुर लौटनेपर इनका विवाह सम्पन्न कर दिया गया। कुछ समय पश्चात् दो पुत्र उत्पन्न हुए। बडेका नाम हरिश्चन्द्र और छोटेका नाम गुमानीराम था। इस समय तक टोडरमलजीके व्यक्तित्वका प्रभाव सारे समाज पर व्याप्त हो चुका था और चारो ओर उनकी विद्वत्ताकी चर्चा होने लगी थी। यहाँ उन्होने समाज-सुधार एव शिथिलाचारके विरुद्ध अपना अभियान शुरू किया। शास्त्रप्रवचन एव ग्रन्थनिर्माणके माध्यमसे उन्होने समाजमे नई चेतना एव नई जागृति उत्पन्न की। इनका प्रवचन तेरहपन्थी बडे मन्दिरमे प्रतिदिन होता था, जिसमे दीवान रतनचन्द, अजबराय, त्रिलोकचन्द महाराज जैसे विशिष्ट व्यक्ति सम्मिलित होते थे। सारे देशमे उनके शास्त्रप्रवचनकी धूम थी।

टोडरमलका जादू जैसा प्रभाव कुछ व्यक्तियोके लिए असह्य हो गया। वे उनकी कीर्त्तिसे जलने लगे और इस प्रकार उनके विनाशके लिए नित्य प्रति षड्यन्त्र किया जाने लगा। अन्तमे वह षड्यन्त्र सफल हुआ और युवावस्थामे यौवनकी कीर्त्ति अन्तिम चरणमे पहुँचने वाली थी कि उन्हे मृत्युका सामना करना पड़ा। स० १८२४मे इन्हे आततायियोका शिकार होना पडा और हँसते-हँसते इन्होने मृत्युका आलिंगन किया।

रचनाएँ

टोडरमलजीकी कुल ११ रचनाएँ हैं, जिनमे सात टीकाग्रन्थ और चार मौलिक ग्रन्थ हैं। मौलिक ग्रन्थोमे १ मोक्षमार्गप्रकाशक २ आध्यात्मिक पत्र, ३

अर्थसंदृष्टि और ४. गोम्मटसारपूजा परिगणित है। टीकाग्रन्थ निम्न लिखित हैं:

१ गोम्मटसार (जीवकाण्ड) सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका। यह सं० १८१५मे पूर्ण हुई।

२. गोम्मटसार (कर्मकाण्ड) ,, ,,

३ लब्धिसार ,, ,, टीका स० १८१८मे पूर्ण हुई।

४. क्षपणासार वचनिका सरस है।

५ त्रिलोकसार इस टीकामे गणितकी अनेक उपयोगी और विद्वत्तापूर्ण चर्चाएँ की गई हैं।

६ आत्मानुशासन यह आध्यात्मिक सरस संस्कृत-ग्रन्थ है। इसकी वचनिका संस्कृत-टीकाके आधारपर है।

७ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय- इस ग्रन्थकी टीका अधूरी ही रह गई है।

मौलिक रचनाएँ

१ अर्थसंदृष्टि, २ आध्यात्मिक पत्र, ३. गोम्मटसारपूजा और ४. मोक्षमार्ग-प्रकाशक।

इन समस्त रचनाओमे मोक्षमार्गप्रकाशक सबसे महत्त्वपूर्ण है। यह ९ अध्यायोमें विभक्त है और इसमे जैनागमका सार निबद्ध है। इस ग्रन्थके स्वाध्यायसे आगमका सम्यग्ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इस ग्रन्थके प्रथम अधिकारमे उत्तम सुख प्राप्तिके लिए परम इष्टअर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एव साधुका स्वरूप विस्तारसे बतलाया गया है। पंचपरमेष्ठीका स्वरूप समझनेके लिए यह अधिकार उपादेय है। द्वितीय अधिकारमे संसारावस्थाका स्वरूप वर्णित है। कर्मबन्धनका निदान, कर्मोंके अनादिपनकी सिद्धि, जीव-कर्मोंकी भिन्नता एवं कथचित् अभिन्नता, योगसे होनेवाले प्रकृति-प्रदेशबन्ध, कषायसे होनेवाले स्थिति और अनुभाग बन्ध, कर्मोंके फलदानमे निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध, द्रव्य-कर्म और भावकर्मका स्वरूप, जीवकी अवस्था आदिका वर्णन है।

तृतीय अधिकारमे ससार-दुःख तथा मोक्षसुखका निरूपण किया गया है। दुःखोका मूल कारण मिथ्यात्व और मोहजनित विषयाभिलाषा है। इसीसे चारो गतियोमे दुःखकी प्राप्ति होती है। चौथे अधिकारमे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्रका निरूपण किया गया है। इष्ट-अनिष्टकी मिथ्या कल्पना राग-द्वेषकी प्रवृत्तिके कारण होती है, जो इस प्रवृत्तिका त्याग करता है उसे सुखकी प्राप्ति होती है।

पचम अधिकारमे विविधमत-समीक्षा है। इस अध्यायसे प० टोडरमलके

प्रकाण्ड पाण्डित्य और उनके विशाल ज्ञानकोशका परिचय प्राप्त होता है। इस अध्यायसे यह स्पष्ट है कि सत्यान्वेषी पुरुष विविध मतोका अध्ययन कर अनेकान्तबुद्धिके द्वारा सत्य प्राप्त कर लेता है।

षष्ठ अधिकारमे सत्यतत्त्वविरोधी असत्यायतनोंके स्वरूपका विस्तार बतलाया गया है। इसमे यही बतलाया गया है कि मुक्तिके पिपासुको मुक्तिविरोधी तत्त्वोका कभी सम्पर्क नही करना चाहिए। मिथ्यात्वभावके सेवनसे सत्यका दर्शन नही होता।

सप्तम अधिकारमे जैन मिथ्या दृष्टिका विवेचन किया है। जो एकान्त मार्गका अवलम्बन करता है वह ग्रन्थकारकी दृष्टिमे मिथ्यादृष्टि है। रागादिकका घटना निर्जराका कारण है और रागादिकका होना बन्धका। जैनाभास, व्यवहाराभासके कथनके पश्चात्, तत्त्व और ज्ञानका स्वरूप बतलाया गया है।

अष्टम अधिकारमे आगमके स्वरूपका विश्लेषण किया है। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग और चरणानुयोगके स्वरूप और विषयका विवेचन किया गया है। नवम अधिकारमे मोक्षमार्गका स्वरूप, आत्महित, पुरुषार्थसे मोक्षप्राप्ति, सम्यक्त्वके भेद और उसके आठ अंग आदिका कथन आया है।

इस प्रकार प० टोडरमलने मोक्षमार्गप्रकाशकमे जैनतत्त्वज्ञानके समस्त विषयोका समावेश किया है। यद्यपि उसका मूल विषय मोक्षमार्गका प्रकाशन है, किन्तु प्रकारान्तरसे उसमे कर्मसिद्धान्त, निमित्त-उपादान, स्याद्वाद-अनेकान्त, निश्चय-व्यवहार, पुण्य-पाप, दैव और पुरुषार्थपर तात्त्विक विवेचना निबद्ध की गयी है।

रहस्यपूर्ण चिट्ठीमे प० टोडरमलने अध्यात्मवादकी ऊँची बातें कही हैं। सविकल्पके द्वारा निर्विकल्पक परिणाम होनेका विधान करते हुए लिखा है

"वही सम्यक्त्वी कदाचित् स्वरूप ध्यान करनेको उद्यमी होता है, वहाँ प्रथम भेदविज्ञान स्वपरका करे, नोकर्म-द्रव्यकर्म-भावकर्म रहित केवल चैतन्यचमत्कारमात्र अपना स्वरूप जाने, पश्चात् परका भी विचार छूट जाय, केवल स्वात्मविचार ही रहता है; वहाँ अनेक प्रकार निजस्वरूपमे अहंबुद्धि धरता है। चिदानन्द हूँ, शुद्ध हूँ, सिद्ध हूँ, इत्यादिक विचार होनेपर सहज ही आनन्दतरंग उठती है, रोमाच हो आता है, तत्पश्चात् ऐसा विचार तो छूट जाय, केवल चिन्मात्र स्वरूप भासने लगे, वहाँ सर्वपरिणाम उस रूपमे एकाग्र होकर प्रवर्तते हैं, दर्शन-ज्ञानादिकका व नय-प्रमाणादिकका भी विचार विलय हो जाता है।"

चैतन्यस्वरूपका जो सविकल्पसे निश्चय किया था, उस ही मे व्याप्य-व्यापक-रूप होकर इस प्रकार प्रवर्त्तता है जहाँ ध्याता-ध्येयपना दूर हो गया। सो ऐसी दशाका नाम निर्विकल्प अनुभव है। बड़े नयचक्र ग्रन्थमे ऐसा हो कहा है

तच्चाणेसणकाले समयं बुज्झेहि जुत्तिमग्गेण।
णो आराहण समये पच्चक्खो अणुहवो जम्हा ॥२६६॥"

शुद्ध आत्माको नय-प्रमाण द्वारा अवगत कर जो प्रत्यक्ष अनुभव करता है वह सविकल्पसे निर्विकल्पक स्थितिको प्राप्त होता है। जिस प्रकार रत्नको खरीदनेमे अनेक विकल्प करते हैं, जब प्रत्यक्ष उसे पहनते हैं तब विकल्प नही है, पहननेका सुख ही है। इस प्रकार सविकल्पके द्वारा निर्विकल्पका अनुभव होता है। इसी चिट्ठीमे प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रमाणोके भेदके पश्चात् परिणामोके अनुभवकी चर्चा की गई है। कथनकी पुष्टिके लिए आगमके ग्रन्थोंके प्रमाण भी दिये गये हैं।

पं० टोडरमल गद्यलेखकके साथ कवि भी हैं। उनके कविहृदयका पता टीकाओमे रचित पद्योसे प्राप्त होता है। लब्धिसारकी टीकाके अन्तमे अपना परिचय देते हुए लिखा है

मैं हो जीव द्रव्य नित्य चेतना स्वरूप मेरो,
लग्यो है अनादि तें कलंक कर्म-मलको।
वाहीको निमित्त पाय रागादिक भाव भए,
भयो है शरीरको मिलाप जैसे खलको॥
रागादिक भावनको पायके निमित्त पुनि,
होत कर्मबन्ध ऐसो है बनाव कलको।
ऐसे ही भ्रमत भयो मानुष शरीर जोग,
बने तो बने यहाँ उपाय निज थलको॥

दौलतराम द्वितीय

कवि दौलतराम द्वितीय लब्धप्रतिष्ठ कवि हैं। ये हाथरसके निवासी और पल्लीवाल जातिके थे। इनका गोत्र गगटीवाल था, पर प्राय. लोग इन्हे फतेहपुरी कहा करते थे। इनके पिताका नाम टोडरमल था। इनका जन्म वि० स० १८५५ या १८५६के मध्य हुआ था।

कविके पिता दो भाई थे। छोटे भाईका नाम चुन्नीलाल था। हाथरसमे ही दानो भाई कपडेका व्यापार करते थे। अलीगढ निवासी चिन्तामणि कविके

श्वसुर थे। जिस समय छीटका थान छापने बैठते थे, उस समय चौकीपर गोम्मटसार, त्रिलोकसार और आत्मानुशासन ग्रंथोको विराजमान कर लेते थे और छापनेके कामके साथ-साथ ७०-८० श्लोक या गाथाएँ भी कण्ठाग्र कर लेते थे।

वि० सं० १८८२मे मथुरा निवासी सेठ मनीरामजी प० चम्पालालजीके साथ हाथरस आये और उक्त पण्डितजीको गोम्मटसारका स्वाध्याय करते हुए देखकर बहुत प्रसन्न हुए तथा अपने साथ मथुरा लिवा ले गये। वहाँ कुछ दिन तक रहनेके पश्चात् आप सासनी या लश्करमे आकर रहने लगे।

कविके दो पुत्र हुए। बडे पुत्रका नाम टीकाराम था। इनके वशज आज-कल भी लश्करमें निवास करते हैं।

कहा जाता है कि कविको अपनी मृत्युका परिज्ञान अपने स्वर्गवाससे छ दिन पहले ही हो गया था। अत. उन्होने अपने समस्त कुटुम्बियोको एकत्र कर कहा "आजसे छठवें दिन मध्याह्नके पश्चात् मै इस शरीरसे निकलकर अन्य शरीर धारण करूँगा। अत. आप सबसे क्षमायाचना कर समाधिमरण ग्रहण करता हूँ।" सबसे क्षमायाचना कर सवत् १९२३ मार्गशीर्ष कृष्ण-अमावस्याको मध्याह्नमे दिल्लीमे अपने प्राणोका त्याग किया था।

कविवरके समकालीन विद्वानोमे रत्नकरण्डश्रावकाचारके वचनिकाकर्त्ता पं० सदासुख, बुधजन विलासके कर्त्ता बुधजन, तीस-चौबीसी आदि कई ग्रथोंके रचयिता वृन्दावन, चन्द्रप्रभकाव्यकी वचनिकाके कर्त्ता तनसुखदास, प्रसिद्ध भजनरचयिता भागचन्द्र और प० बख्तावरमल आदि प्रमुख हैं।

रचनाएँ

इनकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं १ छहढाला और २ पदसग्रह। छहढालाने तो कविको अमर बना दिया है। भाव, भाषा और अनुभूतिकी दृष्टिसे रचना बेजोड़ है। जैनागमका सार इसमे अकित कर 'गागरमे सागर' भर देनेकी कहावतको चरितार्थ किया है। इस अकेले ग्रथके अध्ययनसे जैनागमके साथ परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

पदसग्रहमे विविध प्रवृत्तियोका विश्लेषण किया गया है। कवि कहता है कि मनकी बुरी आदत पड़ गयी है, जिससे अनादिकालसे विषयोकी ओर दौड़ता रहता है। कवि कहता है

हे मन, तेरी कुटेव यह, करन-विषयमे धावै है॥ टेक॥
इन्हीके वश तू अनादि तैं, निज स्वरूप न लखावै है।
पराधीन छिन-छिन समाकुल, दुरगति-विपत्ति चखावै है॥ हे० मन०॥१॥

फरस-विषयके कारण वारन, गरत परत दु:ख पावै है।
रसना इन्द्रीवश झख जलमें, कंटक कठ छिदावै है॥ हे० मन०॥२॥

इनके पद विषयकी दृष्टिसे १. रक्षाकी भावना, २ आत्म भर्त्सना, ३. भयदर्शन, ४ आश्वासन, ५ चेतावनी, ६ प्रभुस्मरणके प्रति आग्रह, ७. आत्मदर्शन होनेपर अस्फुट वचन, ८ सहज समाधिकी आकाक्षा ९ स्वपदकी अकाक्षा, १०. संसार विश्लेषण, ११. परसत्पबोधक और १२ आत्मानन्द श्रेणीमे विभक्त किये जा सकते हैं।

भर्त्सना विपयक पदोमे कविने विषय-वासनाके कारण मलिन हुए मनको फटकारा है तथा कवि अपने विकार और कषायोका कच्चा चिट्ठा प्रकटकर अपनी आत्माका परिष्कार करना चाहता है। भयदर्शन सम्बन्धी पदोमे मनको भय दिखलाकर आत्मोन्मुख किया गया है। कवि आत्मानुभूतिकी ओर झुकता हुआ कहता है

मान ले या सिख मोरी, झुकै मत भोगन ओरी॥
भोग भुजंग भोग सम जानो, जिन इनसे रति जोरी।
ते अनन्त भव-भीम भरे दुख, परे अधोगति खोरी,
बँधे दृढ पातक डोरी॥ मान ले०॥

इस प्रकार कवि दौलतरामके पदोमे भावावेग, उन्मुक्त प्रवाह, आन्तरिक सगीत, कल्पनाकी तूलिका द्वारा भावचित्रोकी कमनीयता, आनन्द विह्वलता, रसानुभूतिकी गम्भीरता एव रमणीयताका पूरा समन्वय विद्यमान है।

पण्डित जयचन्द छावड़ा

हिन्दी जैन साहित्यके गद्य-पद्य लेखक विद्वानोमे पण्डित जयचन्दजी छावडाका नाम उल्लेखनीय है। इन्होने पूज्यपादकी सर्वार्थसिद्धिकी हिन्दी टीका समाप्त करते हुए अन्तिम प्रशस्तिमे अपना परिचय अकित किया है

काल अनादि भ्रमत ससार, पायो नरभव मै सुखकार।
जन्म फागई लयौ सुथानि, मोतीराम पिताकै आनि॥
पायो नाम तहाँ जयचन्द, यह परजाल तणू मकरद।
द्रव्य दृष्टि मैं देखूँ जबै, मेरा नाम आतमा कबै॥
गोत छावडा श्रावक धर्म, जामे भली क्रिया शुभकर्म।
ग्यारह वर्ष अवस्था भई, तब जिन मारगको सुधि लही॥
× × × ×

निमित्त पाय जयपुरमे आय, बडी जु शैली देखी भाय ॥
गुणी लोक साधर्मी भले, ज्ञानी पडित बहुत मिले ।
पहले थे वशीधर नाम, धरै प्रभाव भाव शुभ ठाम ॥
टोडरमल पडित मति खरी, गोमटसार वचनिका करी ।
ताकी महिमा सब जन करैं, वाचैं पढै बुद्धि विस्तरैं ॥
दौलतराम गुणी अधिकाय, पडितराय राजमे जाय ।
ताकी बुद्धि लसै सब खरी, तीन प्रमाण वचनिका करी ॥
रायमल्ल त्यागी गृह वास, महाराम व्रत शोल निवास ।
मैं हूँ इनकी संगति ठानि, बुधसारू जिनवाणी जानि ॥

अर्थात् कविका जन्म फागी नामक ग्राममे हुआ था । यह ग्राम जयपुरसे डिग्गीमालपुरा रोडपर ३० मीलकी दूरीपर वसा हुआ है । यहाँ आपके पिता मोतीरामजी पटवारीका काम करते थे । इसीसे आपका वश पटवारी नामसे प्रसिद्ध रहा है ।

११ वर्षकी अवस्था व्यतीत हो जानेपर कविका ध्यान जैनधर्मकी ओर गया और उसीमे अपने हितको निहित समझकर आपने अपनी श्रद्धाको सुदृढ बनानेका प्रयत्न किया । फलत जयचन्दजीने जैनदर्शन और तत्त्वज्ञानके अध्ययनका प्रयास किया । वि० स० १८२१मे जयपुरमे इन्द्रध्वज पूजा महोत्सवका विशाल आयोजन किया गया था । इस उत्सवमे आचार्यकल्प पडित टोडरमलजीके आध्यात्मिक प्रवचन होते थे । इन प्रवचनोका लाभ उठानेके लिए दूर-दूरके व्यक्ति वहाँ आये थे । पण्डित जयचन्द भी यहाँ पधारे और जैनधर्मकी ओर इनका पूर्ण झुकाव हुआ । फलत' ३-४ वर्षके पश्चात् ये जयपुरमे ही आकर रहने लगे । जयचन्दजीने जयपुरमे सैद्धान्तिक ग्रन्थोका गम्भीर अध्ययन किया ।

जयचन्दजीका स्वभाव सरल और उदार था । उनका रहन-सहन और वेश-भूषा सीधी-सादी थी । ये श्रावकोचित क्रियाओका पालन करते थे और बडे अच्छे विद्याव्यसनी थे । अध्ययनार्थियोकी भीड इनके पास सदा लगी रहती थी । इनके पुत्रका नाम नन्दलाल था, जो बहुत ही सुयोग्य विद्वान् था और पण्डितजीके पठन-पाठनादि कार्योंमे सहयोग देता था । मन्नालाल, उदयचन्द और माणिकचन्द इनके प्रमुख शिष्य थे ।

एक दिन जयपुरमे एक विदेशी विद्वान शास्त्रार्थ करनेके लिए आया । नगरके अधिकांश विद्वान उससे पराजित हो चुके थे । अत राज्य कर्मचारियो और विद्वान पचोने पण्डित जयचन्दजीसे, उक्त विद्वान्से शास्त्रार्थ करनेकी

प्रार्थना की। पर उन्होने कहा कि आप मेरे स्थानपर मेरे पुत्र नन्दलालको ले जाइये। यही उस विद्वानको शास्त्रार्थमे परास्त कर देगा। हुआ भी यही। नन्दलालने अपनी युक्तियोंसे उस विद्वान्को परास्त कर दिया। इससे नन्दलालका बडा यश व्याप्त हुआ और उसे नगरकी ओरसे उपाधि दी गयी। नन्दलालने जयचन्दजीको सभी टीकाग्रन्थोमे सहायता दी है। सर्वार्थसिद्धिकी प्रशस्तिमे लिखा है

लिखी यहै जयचन्दने सोधी सुत नन्दलाल।
बुधलखि भूलि जु शुद्ध करी वाचो सिखै वो बाल॥
नन्दलाल मेरा सुत गुनी बालपने तैं विद्यासुनी।
पण्डित भयौ बडी परवीन ताहूने यह प्रेरणकीन॥

पण्डित जयचन्दजीका समय वि० स०की १९वी शती है। इन्होने निम्नलिखित ग्रंथोकी भाषा वचनिकाएँ लिखी हैं

१ सर्वार्थसिद्धि वचनिका (वि० स० १८६१ चैत्र शुक्ला पञ्चमी)
२ तत्त्वार्थसूत्र भाषा
३. प्रमेयरत्नमाला टीका (वि० सं० १८६३ आषाढ शुक्ला चतुर्थी बुधवार)
४. स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा (वि० सं० १८६३ श्रावण कृष्णा तृतीया)
५ द्रव्यसग्रह टीका (वि० सं० १८६३ श्रावण कृष्णा चतुर्दशी और दोहामय पद्यानुवाद)
६. समयसार टीका (वि० स० १८६४ कार्तिक कृष्णा दशमी)
७ देवागमस्तोत्र टीका (वि० स० १८६६)
८ अष्टपाहुड भाषा (वि० स० १८६७ भाद्र शुक्ला त्रयोदशी)
९ ज्ञानार्णव भाषा (वि० सं० १८६९)
१० भक्तामर स्तोत्र (वि० स० १८७०)
११ पद सग्रह
१२ चन्द्रप्रभचरित्र (न्यायविषयिक) भाषा। वि० स० १८७४
१३ धन्यकुमारचरित्र

पण्डित जयचन्दकी वचनिकाओकी भाषा ढूढारी है। क्रियापदोके परिवर्तित करनेपर उनकी भाषा आधुनिक खडी बोलीका रूप ले सकती है। उदाहरणार्थ यहाँ दो एक उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं

"बहुरि वचन दोय प्रकार हैं, द्रव्यवचन, भाववचन। तहाँ वीर्यान्तराय मतिश्रुतज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम होतै अगोपागनामा नामकर्मके उदयतैं आत्माके बोलनेकी सामर्थ्य होय, सो तौ भाववचन है। सो पुद्गलकर्मकेनिमित्त-

तैं भया तातैं पुद्गलका कहिये बहुरि तिस बोलनेका सामर्थ्य सहित आत्माकरि कंठ तालुवा जीभ आदि स्थाननिकरि प्रेरे जे पुद्गल, ते वचनरूप परिणये ते पुद्गल ही है। ते श्रोत्र इन्द्रियके विषय हैं, और इन्द्रियके ग्रहण योग्य नाही हैं। जैसे घ्राणइन्द्रियका विषय गधद्रव्य है, तिस घ्राण कै रसादिक ग्रहण योग्य नही है तैसे।" सर्वार्थसिद्धि ५-१९।

"जैसे इस लोकविषैं सुवर्ण अर रूपाकू गालि एक किये एक पिंडका व्यवहार होता है, तैसे आत्माके अर शरीरकै परस्पर एक क्षेत्रावगाहकी अवस्था होतैं, एक पणाका व्यवहार है, ऐसैं व्यवहार मात्र ही करि आत्मा अर शरीरका एकपणा है। बहुरि निश्चयतैं एकपणा नाही है, जातैं पीला अर पांडुर है स्वभाव जिनका ऐसा सुवर्ण अर रूपा है, तिनकै जैसे निश्चय विचारिये तब अत्यन्त भिन्नपणा करि एक-एक पदार्थपणाकी अनुपपत्ति है, तातै नानापना ही है। तैसे ही आत्मा अर शरीर उपयोग स्वभाव हैं। तिनिकैं अत्यन्त भिन्नपणातैं एक पदार्थपेणाकी प्राप्ति नाही तातैं नानापणा ही है। ऐसा प्रगट नय विभाग है।" समयसार २८

दीपचन्दशाह

दीपचन्दशाह वि०के १८वी शताब्दीके प्रतिभावान विद्वान् और कवि हैं। ये सागानेरके रहनेवाले थे और बादमे आकर आमेरमे रहने लगे। इन्होने अपने ग्रन्थोकी प्रशस्तिमे अपना जीवन परिचय, माता-पिता या गुरुपरम्परा आदिके सम्बन्धमे कुछ नही लिखा है। कविकी वेश-भूषा अत्यन्त सादी थी। ये आत्मानुभूतिके पुजारी थे। तेरह पथी सम्प्रदायके अनुयायी भी इन्हे बताया गया है। कवि दीपचन्दका गोत्र काशलीवाल था। इनकी रचनाओके अध्ययनसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि इनके पावन हृदयमे ससारी जीवोको विपरीताभिनवेशमय परिणतिको देखकर, इन्हे अत्यन्त दुख होता था। ये चाहते थे कि संसारके सभी प्राणी स्त्री, पुत्र, मित्र, धन, धान्यादि बाह्य पदार्थोमे आत्मबुद्धि न करे, उन्हे भ्रमवश अपने न माने। उन्हे कर्मोदयसे प्राप्त समझे तथा उनमे कर्तृत्व बुद्धिसे सम्पन्न अहकार, ममकार रूप परिणतिको न होने दे।

कवि दीपचन्द मेधावी कवि हैं, इन्होने 'चिद्विलास' नामक ग्रन्थ वि० स० १७७९मे समाप्त किया है। इनका गद्य अपरिमार्जित और आरम्भिक अवस्थामे है। इनकी भाषा ढूढारी और व्रजमिश्रित है। रचनाएँ निम्नलिखित हैं

१ चिद्विलास

२ अनुभवप्रकाश

३. गुणस्थानभेद

४ आत्मावलोकन

५ भावदीपिका

६ परमार्थपुराण

ये रचनाएँ गद्यमे लिखी गयी है।

७. अध्यात्म पच्चीसी

८ द्वादशानुप्रेक्षा

९ ज्ञानदर्पण

१० स्वरूपानन्द

११ उपदेशसिद्धान्त

कविने गद्य रचनाओमे अपने भावोको पूर्णतया स्पष्ट करनेका प्रयास किया है। पद्यमे भी इन्होने सहजरूपमे अपने भावोको अभिव्यक्त किया है। यहाँ उदाहरणार्थ ज्ञानार्णव और उपदेशरत्नमालासे दो एक पद्य उद्धृत किये जाते है

अलख अरूपी अजआतम अमित तेज, एक अविकार सारपद त्रिभुवनमे।
चिरलौ सुभाव जाको समै हू सम्हारो नाहि, परपद आपो मानि भम्यो भववनमे॥
करम कलोलनिमे मिल्यो है निशङ्कमहा, पद-पद प्रतिरागी भयो तन-तनमे।
ऐसी चिरकालकी बहु विपति विलाय जाय नैकहू निहार देखो आप निजधनमे॥

ज्ञानदर्पण, पद्य ४६

× × × ×

मानि पर आपो प्रेम करत शरीरसेती, कामिनी कनकमाहि करै मोह भावना।
लोकलाज लागि मूढ आपनौं अकाज करै, जानै नही जे जे दुख परगति पावना॥
परिवार प्यार करि बाँधै भव-भार महा, बिनु ही विवेक करै कालका गमावना।
कहै गुरुज्ञान नाव बैठ भव सिन्धुतरि, शिवथान पाय सदा अचल रहावना॥

उपदेशरत्नमाला, पद्य ६

कविकी प्रतिभाका प्रवेश आध्यात्मिक रचनाओके लिखनेमे विशेषरूपसे हुआ है।

सदासुख काशलीवाल

वि०की १९ वी शतीके विद्वानोमे पण्डित सदासुख काशलीवालका महत्व-

पूर्ण स्थान है। इनका जन्म वि० स० १८५२ मे जयपुरनगरमे हुआ था। इनके पिताका नाम दुलीचन्द और गोत्र काशलीवाल था। इनका जन्म डेडराजवशमे हुआ था। अर्थप्रकाशिकाकी वचनिकामे अपना परिचय देते हुए लिखा है

डेडराजके वश माँहि इक किंचित् ज्ञाता।
दुलीचन्दका पुत्र काशलीवाल विख्याता॥
नाम सदासुख कहे आत्मसुखका बहु इच्छुक।
सो जिनवाणी प्रसाद विषयतैं भये निरिच्छुक॥

पण्डित सदासुखजी बडे अध्ययनशील थे। ये सदाचारी, आत्मनिर्भय, अध्यात्मरसिक और धार्मिक लगनके व्यक्ति थे। ये परम संतोषी थे। आजीविकाके लिए थोडा-सा कार्य कर लेनेके पश्चात् अध्ययन और चिन्तनमें रत रहते थे। इनके गुरु पण्डित पन्नालालजी और प्रगुरु पण्डित जयचन्दजी छावडा थे। इनका ज्ञान भी अनुभवके साथ-साथ वृद्धिगत होता गया था। बीसपथी आम्नायके अनुयायी होनेपर भी तेरहपथी आम्नायके प्रति किसी भी प्रकारका विद्वेष नही था। इनके शिष्योमे पण्डित पन्नालाल सगी, नाथूराम दोषी और पण्डित पारसदास निगोत्या प्रधान हैं। पारसदासने 'ज्ञानसूर्योदय'नाटककी टीकामे इनका परिचय देते हुए इनके स्वभाव और गुणोपर प्रकाश डाला है

लौकिक प्रवीना तेरापथ माँहि लीना,
मिथ्याबुद्धि करि छीना जिन आतमगुण चीना है।
पढै औ पढावैं मिथ्या अलटकूँ कढवै,
ज्ञानदान देय जिन मारग बढावै हैं।
दीसैं घरवासी रहे घरहूतैं उदासी,
जिनमारग प्रकाशी जग कीरत जगमासी है।
कहाँ लौ कहीजे गुणसागर सुखदास जूके,
ज्ञानामृत पीय बहु मिथ्याबुद्धि नासी है।

पण्डित सदासुखजीके गार्हस्थ्यजीवनके सम्बन्धमे विशेष जानकारी प्राप्त नही है, फिर भी इतना तो कहा जा सकता है कि पण्डितजीको एक पुत्र था, जिसका नाम गणेशीलाल था। यह पुत्र भी पिताके अनुरूप होनहार और विद्वान् था, पर दुर्भाग्यवश २० वर्षकी अवस्थामे ही इकलौते पुत्रका वियोग हो जानेसे पण्डिजीपर विपत्तिका पहाड़ टूट पडा। ससारी होनेके कारण पण्डितजी भी इस आघातसे विचलितसे हो गये। फलत अजमेर निवासी स्वनामधन्य सेठ मूलचन्दजी सोनीने इन्हे जयपुरसे अजमेर बुला लिया। यहाँ आनेपर इनके दुखका उफान कुछ शान्त हुआ। इनका समाधिमरण वि० सं० १९२३मे हुआ। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं

१ भगवती आराधना वचनिका
२. सूत्रजीकी लघुवचनिका
३ अर्थ प्रकाशिकाका स्वतन्त्र ग्रन्थ
४. अकलकाष्टक वचनिका
५ रत्नकरडश्रावकाचार वचनिका
६ मृत्युमहोत्सव वचनिका
७ नित्यनियम पूजा
८ समयसार नाटकपर भाषा वचनिका
९ न्यायदीपिका वचनिका
१० ऋषिमडलपूजा वचनिका

पण्डित सदासुखजीकी भाषा ढूँढारी होनेपर भी, पण्डित टोडरमलजी और पण्डित जयचन्दजीकी अपेक्षा अधिक परिष्कृत और खड़ी बोलीके अधिक निकट है। भगवती आराधनाकी प्रशस्तिकी निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं

मेरा हित होनेको और, दीखे नाहि जगतमे ठौर।
यातैं भगवति शरण जु गही, मरण आराधन पाऊँ सही॥
हे भगवति तेरे परसाद, मरणसमै मति होहु विषाद।
पच परमगुरु पदकरि ढोक, सयम सहित लहू परलोक॥

पण्डित भागचन्द

१९वी शताब्दीके अन्तिम पाद और २०वी शताब्दीके प्रथम पादके प्रमुख विद्वानोमे पण्डित भागचन्दजीकी गणना है। ये सस्कृत और प्राकृत भाषाके साथ हिन्दी भाषाके भी मर्मज्ञ विद्वान् थे। ग्वालियरके अन्तर्गत ईसागढके निवासी थे। इनकी जाति ओसवाल और धर्म दिगम्बर जैन था। दर्शनशास्त्रके विशिष्ट अभ्यासी थे। सस्कृत और हिन्दी दोनो ही भाषाओमे कविता करनेकी अपूर्व क्षमता थी। शास्त्रप्रवचन और तत्वचर्चामे इनको विशेष रस आता था। ये सोनागिरि क्षेत्रपर वार्षिक मेलेमे प्रतिवर्ष सम्मिलित होते थे और शास्त्र-प्रवचन द्वारा जनताको लाभान्वित करते थे। कविका अन्तिम समय आर्थिक कठिनाईमे व्यतीत हुआ है। इनकी 'प्रमाणपरीक्षा'की टीकाका रचनाकाल स० १९१३ है। अत. कविका समय २० वी शताब्दीका प्रारम्भिक भाग है।

कवि द्वारा रचित पदोसे उनके जीवन और व्यक्तित्वके सम्बन्धमे अनेक जानकारीकी बातें प्राप्त होती है। जिनभक्त होनेके साथ कवि आत्मसाधक भी

हैं, प्रतिदिन सामायिक करना तथा सासारिक भोगोको निस्सार समझना और साहित्यसेवा तथा सरस्वती आराधनको जीवनका प्रमुख तत्त्व मानना कविकी विशेषताओके अन्तर्गत है। कविकी निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध होती हैं

१. महावीराष्टक (सस्कृत)
२. अमितगतिश्रावकाचार वचनिका
३ उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला वचनिका
४ प्रमाणपरीक्षा वचनिका
५ नेमिनाथपुराण
६. ज्ञानसूर्योदय नाटक वचनिका
७. पद सग्रह

कवि भागचन्दकी प्रतिभाका परिचय उनके पदसाहित्यसे प्राप्त होता है। इनके पदोमे तर्कविचार और चिन्तनकी प्रधानता है। निम्नलिखित पदमे दार्शनिक तत्वोका सुन्दर विश्लेषण हुआ है

जे दिन तुम विवेक बिन खोये ॥टेक॥

मोह वारुणो पी अनादि तैं, परपदमे चिर सोये।
सुख करड चितपिड आपपद, गुन अनन्त नहिं जोये ॥ जे दिन०॥
होहि वहिर्मुख हानि राग रुख, कर्मवीज वहु बोये।
तसु फल सुख-दु ख सामग्री लखि, चितमे हरखे रोये ॥ जे दिन० ॥
धवल ध्यान शुचि सलिल पूरतैं, आस्रव मल नहिं धोये।
परद्रव्यनिकी चाह न रोकी, विविध परिग्रह ढोये ॥ जे दिन० ॥
अब निजमे निज जान नियत तहाँ, निज परिनाम समोये।
यह शिव-मारग समरस सागर, 'भागचद' हित तो ये ॥ जे दिन० ॥

विशुद्ध दार्शनिकके समान कविने तत्त्वार्थ श्रद्धानी और ज्ञानीकी प्रशसा की है। यद्यपि वर्णनमे कविने रूपक, उत्प्रेक्षा अलकारोका आलम्बन लिया है, किन्तु शुष्क सैद्धान्तिकता रहनेसे भाव और रसकी कमी रह गयी है। ज्ञानी जीव किस प्रकार ससारमे निर्भय होकर विचरण करता है तथा उन्हे अपना आचार-व्यवहार किस प्रकार रखना चाहिये, इत्यादि विषयका विश्लेषण करनेवाले पदोमे कविका चिन्तन विद्यमान है, पर भावुकता नही है। हाँ प्रार्थनापरक पदोमे मूर्त-अमूर्तको आलम्बन लेकर कविने अपने अन्तर्जगतकी अभिव्यक्ति अनूठे ढगसे की है। कविके पदोमे विराट कल्पना, अगाध दार्शनिकता और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ हैं।

"निज कारज काहे न सारे रे भूले प्रानी", "जीव तू भ्रमत सदैव अकेला

सगसाथी कोई नही तेरा", एव "मोसम कौन कुटिल खल कामी। तुम सम कलिमल दलन न नामी" पदोमे कविने अपनी भावनाओका निविड रूप प्रदर्शित किया है। इस प्रकार कवि भागचन्द अपने क्षेत्रके प्रसिद्ध कवि है।

बुधजन

इनका पूरा नाम वृद्धिचन्द था। ये जयपुरके निवासी और खण्डेलवाल जैन थे। इनका समय अनुमानत १९वी शताब्दीका मध्यभाग है।

बुधजन नीतिसाहित्य निर्माताके रूपमे प्रतिष्ठाप्राप्त हैं। इनकी रचनाओमे कई रचनाएँ नीतिसे सम्बन्धित हैं। ग्रन्थोकी रचना स० १८७१ से १८९२ तक पायी जाती है। अभी तक इनकी निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं

१ तत्त्वार्थबोध (वि० सं० १८७१)
२ योगसार भाषा
३. पञ्चास्तिकाय (वि० स० १८९१)
४ बुधजनसतसई (वि० स० १८७९)
५ बुधजनविलास (वि० सं० १८९२)
६. पद सग्रह

बुधजनसतसईमे देवानुरागशतक, सुभाषित नीति, उपदेशाधिकार और विराग भावना ये चार विभाग हैं और ६९५ दोहे हैं। बुधजनने दया, मित्र, विद्या, सतोष, धैर्य, कर्मफल, मद, समता, लोभ, धन, धनव्यय, वचन, द्यूत, मास, मद्य, परनारीगमन, वेश्यागमन, शोक आदि विषयोपर नीतिपरक उक्तियाँ लिखी हैं। इन उक्तियोपर वसुनन्दि, हारीत, शुक्र, गुरु, पुत्रक आदि प्राचीन नीतिकारोका पूर्णप्रभाव है। कविताकी दृष्टिसे बुधजनसतसईके दोहे उतने महत्त्वपूर्ण नही हैं, जितने नीतिकी दृष्टिसे। कविने एक-एक दोहेमे जीवनको गतिशील बनानेवाले अमूल्य सन्देश भरे हैं। कवि कहता है

एक चरन हूँ नित पढै, तो काटै अज्ञान।
पनिहारीकी लेज सो, सहज कटै पाषान॥
महाराज महावृक्षकी, सुखदा शीतल छाय।
सेवत फल भासे न तौ, छाया तो रह जाय॥
पर उपदेश करन निपुन, ते तौ लखे अनेक।
करै समिक बोलै समिक, ते हजारमे एक॥
विपताकौ धन राखिये, धन दीजै रखि दार।
आतम हितकौ छाड़िए, धन, दारा, परिवार॥

कतिपय दोहे तो तुलसी, कबीर और रहीमके दोहोंसे अनुप्राणित दिखलायी पड़ते हैं। विरागभावना खण्डमें कविने ससारकी असारताका बहुत ही सुन्दर और सजीव चित्रण किया है। इस खण्डके सभी दोहे रोचक और मनोहर हैं। दृष्टान्तो द्वारा ससारकी वास्तविकताका चित्रण करनेमे कविको अपूर्व सफलता मिली है। वस्तुका चित्र नेत्रोंके सामने मूर्तिमान होकर उपस्थित होता है

को है सुत को है तिया, काको धन परिवार।
आके मिले सरायमे, बिछुरेंगे निरधार॥
आया सो नाही रह्या, दशरथ लछमन राम।
तू कैसे रह जायगा, झूठ पापका धाम॥

बुधजनका पदसग्रह भी विभिन्न राग-रागनियोसे युक्त है। इस सग्रहमे २४३ पद हैं। इन पदोमे अनुभूतिकी तीव्रता, लयात्मक सवेदनशीलता और समाहित भावनाका पूरा अस्तित्व विद्यमान है। आत्मशोधनके प्रति जो जागरूकता इनमें है, वह बहुत कम कवियोमे उपलब्ध है। इनकी विचारोंकी कल्पना और आत्मानुभूतिका प्रेरणा पाठकोके समक्ष ऐसा सुन्दर चित्र उपस्थित करती है, जिससे पाठक आत्मानुभूतिमे लीन हुए विना नही रह सकता

मैं देखा आतम रामा॥ टेक०॥
रूप, फरस, रस, गध तै न्यारा, दरस-ज्ञान-गुन धामा।
नित्य निरजन जाकै नाही, क्रोध, लोभ-मद कामा॥ मैं देखा०॥

× × × ×

भजन बिन यौं ही जनम गमायो।
पानी पै ल्या पाल न बाधी, फिर पीछे पछतायो॥ भजन०॥
रामा-मोह भये दिन खोवत, आशापाश बंधायो।
जप-तप सजम दान न दीनौं, मानुष जनम हरायो॥ भजन०॥

स्पष्ट है कि बुधजनकी भाषापर राजस्थानीका प्रभाव है। पदोमे राजस्थानी प्रवाह और प्रभाव दोनो ही विद्यमान है।

वृन्दावनदास

कवि वृन्दावनका जन्म शाहाबाद जिलेके बारा नामक गाँवमे स० १८४२ मे हुआ था। ये गोयल गोत्रीय अग्रवाल थे। कविके वशधर बारा छोड़कर काशीमे आकर रहने लगे। कविके पिताका नाम धर्मचन्द्र था। बारह वर्षकी अवस्थामें वृन्दावन अपने पिताके साथ काशी आये थे। काशीमे लोग बावर गहीदकी गलीमे रहते थे।

वृन्दावनकी माताका नाम सिताबी और स्त्रीका नाम रुक्मिणि था। इनकी पत्नी बडी धर्मात्मा और पतिव्रता थी। इनकी ससुराल भी काशीके ठठेरी बाजारमे थी। इनके श्वसुर एक बड़े भारी धनिक थे। इनके यहाँ उस समय टकसालाका काम होता था। एक दिन एक किरानी अंग्रेज इनके श्वसुरको टकसाला देखने आया। वृन्दावन भी उस समय वही उपस्थित थे। उस समय किरानी अंग्रेजने इनके श्वसुरसे कहा "हम तुम्हारा कारखाना देखना चाहते हैं कि उसमे कैसे सिक्के तैयार होते हैं।" वृन्दावनने उस अंग्रेज किरानीको फटकार दिया और उसे टकसाला नही दिखलायी। वह अंग्रेज नाराज होता हुआ वहाँसे चला गया।

सयोगसे कुछ दिनोके उपरान्त वही अंग्रेज किरानी काशीका कलक्टर होकर आया। उस समय वृन्दावन सरकारी खजांचीके पदपर आसीन थे। साहब बहादुरने प्रथम साक्षात्कारके अनन्तर ही इन्हे पहचान लिया और मनमे बदला लेनेकी बलवती भावना जागृत हुई। यद्यपि कविवर अपना काम ईमानदारी, सच्चाई और कुशलतासे सम्पन्न करते थे, पर जब अफसर ही विरोधी बन जाये तब कितने दिनो तक कोई बच सकता है। आखिरकार एक जाल बनाकर साहबने इन्हे तीन वर्षकी जेलकी सजा दे दी और इन्होने शान्ति पूर्वक उस अंग्रेजके अत्याचारोको सहा।

कुछ दिनके उपरान्त एक दिन प्रातःकाल ही कलक्टर साहब जेलका निरीक्षण करने गये। वहाँ उन्होने कविको जेलकी एक कोठरीमे पद्मासन लगाये निम्न स्तुति पढ़ते हुए देखा।

हे दीनबन्धु श्रीपति करुणानिधानजी,
अब मेरी व्यथा क्यो न हरो बार क्या लगी।

इस स्तुतिको बनाते जाते थे और भैरवीमे गाते जाते थे। कविता करनेकी इनमे अपूर्व शक्ति थी। जिनेन्द्रदेवके ध्यानमे मग्न होकर धारा प्रवाह कविता कर सकते थे। इनके साथ दो लेखक रहते थे, जो इनकी कविताएँ लिपिबद्ध किया करते थे, परन्तु जेलकी कोठरीमे अकेले ही ध्यान मग्न होकर भगवानका चिन्तन करते हुए गानेमे लीन थे। इनकी आँखोसे आँसुओकी धारा प्रवाहित हो रही थी। साहब बहुत देर तक इनकी इस दशाको देखता रहा। उसने 'खजाची बाबू' 'खजाची बाबू' कहकर कई बार पुकारा, पर कविका ध्यान नही टूटा। निदान कलक्टर साहब अपने आफिसको लौट गये और थोडी देरमे एक सिपाहीके द्वारा उनको बुलवाया और पूछा "तुम क्या गाटा और रोटा था"? वृन्दावनने उत्तर दिया "अपने भगवान्से तुम्हारे अत्या-

चारकी प्रार्थना करता था। साहबके अनुरोधसे वृन्दावनने पुन "हे दीनबन्धु करुणानिधानजी" विनती उन्हे सुनायी और उसका अर्थ भी समझाया। साहब बहुत प्रसन्न हुआ और इस घटनाके तीन दिन बाद ही कारागृहसे उन्हे मुक्त कर दिया गया। तभीसे उक्त विनती सकटमोचन स्तोत्रके नामसे प्रसिद्ध हो गयी है। इनके कारागृहकी घटनाका समर्थन इनकी निम्नलिखित कवितासे भी होता है

"श्रीपति मोहि जान जन अपनो,
हरो विघन दुख दारिद जेल।"

कहा जाता है कि राजघाटपर फुटही कोठीमें एक गार्डन साहब सौदागर रहते थे। इनकी बडी भारी दुकान थी। कविने कुछ दिनो तक इस दुकानकी मैनेजरीका कार्य भी किया था। यह अनवरत कविता रचनेमे लीन रहते थे। जब ये जिन मन्दिरमे दर्शन करने जाते, तो प्रतिदिन एक विनती या स्तुति रचकर भगवान्‌के दर्शन करते। इनके साथ देवीदास नामक व्यक्ति रहते थे। इन्हे पद्मावती देवीका इष्ट था। यह शरीरसे बडे बली थे। बडे-बडे पहलवान भी इनसे भयभीत रहते थे। इनके जीवनमे अनेक चमत्कारी घटनाएँ घटी हैं। इनके दो पुत्र थे अजितदास और शिखरचन्द। अजितदासका विवाह आरामे बाबू मुन्नीलालजीकी सुपुत्रीसे हुआ था। अत अजितदास आरामे ही आकर बस गये थे। यह भी पिताके समान कवि थे।

कवि वृन्दावनकी निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त हैं

१ प्रवचनसार
२ तीस चौबीसी पाठ
३ चौबीसी पाठ
४. छन्द शतक
५. अर्हत्पाशाकेवली
६. वृन्दावनविलास

कवि वृन्दावनकी रचनाओमे भक्तिकी ऊँची भावना, धार्मिक सजगता और आत्मनिवेदन विद्यमान है। आत्मपरितोषके साथ लोकहित सम्पन्न करना ही इनके काव्यका उद्देश्य है। भक्ति विह्वलता और विनम्र आत्म समर्पणके कारण अभिव्यञ्जना शक्ति सबल है। सुकुमार भावनायें, लयात्मक सगीतके साथ प्रस्फुटित हो पाठकके हृदयमे अपूर्व आशाका सचार करती हैं। कवि जिनेन्द्रकी आराधना करता हुआ कहता है

निशदिन श्रीजिन मोहि अधार ॥टेक॥

जिनके चरन-कमलके सेवत, संकट कटत अपार ॥ निशदिन० ॥

जिनको वचन सुधारस-गर्भित, मेटत कुमति विकार ॥ निशदिन० ॥

भव आताप बुझावत को है, महामेघ जलधार ॥ निशदिन० ॥

जिनको भगति सहित नित सुरपत, पूजत अष्ट प्रकार ॥ निशदिन० ॥

जिनको विरद वेद विद वरनत, दारुण दुख-हरतार ॥ निशदिन० ॥

भविक वृन्दकी विथा निवारो, अपनी ओर निहार ॥ निशदिन० ॥

× × × ×

धन धन श्री दीनदयाल ॥ टेक० ॥

परम दिगम्बर सेवाधारी, जगजीवन प्रतिपाल ।

मूल अठाइस चौरासी लख, उत्तर गुण मनिमाल ॥ धन० ॥

महाकवि वृन्दावनदासके चौबीसी पाठसे हर व्यक्ति परिचित है। आज उत्तर भारतमे ही नही दक्षिण भारतमे भी इस पाठका पूरा प्रचार है। निश्चयत कवि वृन्दावनदास जन सामान्यके कवि है।

हिन्दीके अन्य चर्चित कवि

हिन्दीमे शताधिक छोटे-बडे कवि हुए हैं। हमने पूर्वमें प्रसिद्ध कवियोका ही इतिवृत्त उपस्थित किया है। इनके अतिरिक्त लब्धप्रतिष्ठ अनेक कवि और लेखक भी विद्यमान हैं, पर उनके सम्बन्धमे विस्तृत परिचय देनेका अवसर नही है। अतएव सक्षेपमे हिन्दीके कुछ कवि और लेखकोके सम्बन्धमे इतिवृत्त उपस्थित किया जाता है।

जयसागर

जयसागर नामके दिगम्बर सम्प्रदायमे दो कवि हुए हैं। एक काष्ठा संघके नन्दी तटके गच्छसे सम्बन्धित हैं। इनकी गुरुपरम्परामे सोमकीर्त्ति, विजयसेन यश कीर्त्ति, उदयसेन, त्रिभुवनकीर्त्ति और रत्नभूषणके नाम आये हैं। रत्नभूषण ही जयसागरके गुरु हैं। इनका समय वि० स० १६७४ है। जयसागर हिन्दी और संस्कृत दोनोही भाषाओमें काव्यरचना करते थे। सस्कृतमे इनकी पार्श्वपञ्चकल्याणक और हिन्दीमे ज्येष्ठजिनवरपूजा, विमलपुराण, रत्नभूषणस्तुति और तीर्थं जयमाला नामकी रचनाएँ हैं।

दूसरे जयसागर ब्रह्म जयसागर हैं। इनका समय वि० स० की १८वी शतीका प्रथम पाद है। ये मूलसघ सरस्वतीगच्छ बलात्कारगणकी सूरत शाखामे

हुए हैं। इनकी गुरु परम्परामे देवेन्द्रकीर्त्ति, विद्यानन्दि, मल्लिभूषण, लक्ष्मीचन्द्र, वीरचन्द्र, ज्ञानभूषण, प्रभाचन्द्र, वादिचन्द्र और महीचन्द्रके नाम आये हैं। महीचन्द्रके पश्चात् मेरुचन्द्र भट्टारक पदपर आसीन हुए है। ये ब्रह्म जयसागरके गुरुभाई थे। मेरुचन्द्रका समय वि० स० १७२२-१७३२ सिद्ध है। ब्रह्म जयसागरकी तीन रचनाएँ उपलब्ध है

१ सीताहरण
२ अनिरुद्धहरण
३ सगरचरित

खुशालचंद काला

यह कवि देहलीके निवासी थे। कभी-कभी ये साँगानेर भी आकर रहा करते थे। इनके पिताका नाम सुन्दर और माताका नाम अभिधा था। इन्होने भट्टारक लक्ष्मीदासके पास विद्याध्ययन किया था। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध है-

१ हरिवंशपुराण (सं० १७८०)
२. पद्मपुराण (सं० १७८५)
३ धन्यकुमारचरित
४. जम्बूचरित
५ व्रतकथाकोश

शिरोमणिदास

यह कवि पण्डित गंगादासके शिष्य थे। भट्टारक सकलकीर्तिके उपदेशसे सं० १६३२ मे धर्मसार नामक दोहा-चौपाईबद्ध ग्रन्थ सिहरोन नगरमे रचा है। इस नगरके शासक उस समय राजा देवीसिंह थे। इस ग्रन्थमे कुल ७५५ दोहा-चौपाई है। रचना स्वतन्त्र है, किसीका अनुवाद नही।

जोधराज गोदीका

ये सागानेरके निवासी हैं। इनके पिताका नाम अमरराज था। हरिनाम मिश्रके पास रहकर इन्होने प्रीतिकरचरित, कथाकोश, धर्मसरोवर, सम्यक्त्वकौमुदी, प्रवचनसार, भावदीपिका आदि रचनाएँ लिखी हैं।

लोहट

कवि लोहटके पिताका नाम धर्म था। ये बघेरवाल जातिके थे। हीग और

सुन्दर इनके बड़े भाई थे। पहले ये साँभरमे रहते थे, फिर बूँदीमे आकर रहने लगे। कविके समयमे रावभावसिंहका राज्य था। इन्होंने बूँदीनगर एवं वहाँके राजवंशका वर्णन किया है। इन्होंने यशोधरचरितका पद्यानुवाद वि० सं० १७२१ मे समाप्त किया है।

लक्ष्मीदास

पण्डित लक्ष्मीदास भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिके शिष्य थे। सांगानेरके रहनेवाले थे। इन दिनों महाराज जयसिंहका राज्य था। इन्होंने यशोधरचरितकी रचना भट्टारक सकलकीर्ति और पद्मनाभकी रचनाके आधारपर की है। यशोधरचरित वि० सं० १७८१ मे पूर्ण हुआ है।

गद्यकार राजमल्ल

हिन्दी जैन गद्यलेखकोमे सबसे प्राचीन गद्यलेखक राजमल्ल हैं। इन्होंने वि० स० १६०० के आस-पास समयसारकी हिन्दी टीका लिखी है। महाकवि बनारसीदासने इन्हीकी टीकाके आधारपर 'नाटक समयसार'की रचना की है।

पाण्डे जिनदास

ब्रह्म शान्तिदासके पास इन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी। ये मथुराके रहनेवाले थे। यही रहते हुए वि० स० १६४२ मे 'जम्बूस्वामीचरित'की रचना की है। इनकी अन्य रचना 'जोगीरासो' भी बतायी जाती है।

ब्रह्म गुलाल

ये पद्मावती पुरवाल जातिके थे और चन्दवारके पास टापू नामक ग्रामके निवासी थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कृपणजगावनचरित' है। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिसे अवगत होता है कि कविवर ब्रह्मगुलालजी भट्टारक जगभूषणके शिष्य थे। उस समय टापू गाँवके राजा कीरतसिंह थे। यहीपर धरमदासजीके कुलमे मथुरामल्ल हुए थे। इन्ही मथुरामल्लके उपदेशसे सगुणमार्गका निरूपण करनेके लिए स० १६७१ मे इस ग्रन्थकी रचना की है। कविकी एक अन्य कृतिके 'त्रेपनक्रिया' भी उपलब्ध है, जो वि० स० १६५५ मे लिखी गयी है।

भारामल

कवि भारामल फर्रुखाबादके निवासी सिंघई परशुरामके पुत्र थे और

इनकी जाति खरीवा थी। इन्होंने भिण्डनगरमें रहकर स० १८१३ में 'चारु-चरित'की रचना की थी। सप्तव्यसनचरित, दानकथा, शीलकथा और रात्रि-भोजनकथा भी इनके छन्दोबद्ध ग्रन्थ है।

बखतराम

कवि बखतराम जयपुर लश्करके निवासी थे। इनके चार पुत्र थे जीवन-राम, सेवाराम, खुशालचन्द और गुमानीराम। इनका समय १९वी शताब्दी-का द्वितीय पाद है। इन्होने मिथ्यात्वखण्डन और बुद्धिविलास नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं। बुद्धिविलासके आरम्भमे कविने जयपुरके राजवशका इतिहास लिखा है। स० ११९१ मे मुसलमानोने जयपुरमे राज्य किया। इसके पूर्वके कई हिन्दू राजवशोकी नामावली दी है। इस ग्रन्थका वर्ण्यविषय विविध धार्मिक विषय, सघ, दिगम्बर पट्टावली, भट्टारको तथा खण्डेलवाल जातिकी उत्पत्ति आदि है। इस ग्रन्थकी समाप्ति कविवरने मार्गशीर्षशुक्ला द्वादशी स० १८२७ मे की है।

टेकचंद

हिन्दी वचनिकाकारोमे इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। टीकाकार होनेके साथ ये कवि भी हैं। कथाकोशछन्दोबद्ध, बुधप्रकाशछन्दोबद्ध तथा कई पूजाएँ पद्यबद्ध हैं। वचनिकाओमे तत्त्वार्थकी श्रुतसागरी टीकाकी वचनिका, स० १८३७ मे और सुदृष्टि तरगिणीकी वचनिका स० १८३८ मे लिखी है। 'षटपाहुड'की वचनिका भी इनकी उपलब्ध है।

पण्डित जगमोहनदास और पण्डित परमेष्ठी सहाय

आरानिवासी पण्डित परमेष्ठी सहाय और पण्डित जगमोहनदासको हिन्दी जैनसाहित्यके इतिहाससे पृथक् नही किया जा सकता है। श्री पण्डित परमेष्ठी सहायने 'अर्थप्रकाशिका' नामक एक टीका जगमोहनदासकी तत्त्वार्थविषयक जिज्ञासाकी शान्तिके लिए लिखी है। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमे बताया है

पूरब इक गंगातट धाम, अति सुन्दर आरा तिस नाम।
तामै जिन चैत्यालय लसैं, अग्रवाल जैनी बहु बसैं॥
बहु ज्ञाता जिनके जु रहाय, नाम तासु परमेष्ठी सहाय।
जैनग्रन्थ रुचि बहु केरे, मिथ्या धरम न चित्तमे धेरे॥

प्रशस्तिसे स्पष्ट है कि पण्डित परमेष्ठी सहायके पिताका नाम कीर्तिचन्द्र था। उन्हीके पास इन्होने आगमशास्त्रका अध्ययन किया था तथा अपनी कृति

अर्थप्रकाशिकाको जयपुर निवासी प्रसिद्ध वचनिकार पण्डित सदासुखजीके पास संशोधनार्थ भेजी थी।

पण्डित जगमोहनदास भी अच्छे कवि है। इनकी कविताओका एक सग्रह 'धर्मरत्नोद्योत' नामसे स्व० पण्डित पन्नालालजी बाँकलीवालके सम्पादकत्वमे प्रकाशित हो चुका है। पण्डित सदासुखजीके समकालीन होनेसे कविका जन्म सं० १८६५के लगभग है।

मनरंगलाल

मनरगलाल कन्नौजके निवासी थे, जातिके पल्लीवाल थे। इनके पिताका नाम कन्नौजीलाल और माताका नाम देवकी था। कन्नौजमे गोपालदासजी नामक एक धर्मात्मा सज्जन निवास करते थे। इनके अनुरोधसे ही कविने चौवीसी पाठकी रचना की है। इस प्रसिद्ध पाठका रचनाकाल वि० स० १८५७ है। इसके अतिरिक्त इनके निम्नलिखित ग्रथ भी उपलब्ध हैं नेमिचन्द्रिका, सप्तव्यसन चरित, सप्तऋषिपूजा एव शिखिर सम्मेदाचल माहात्म्य। शिखिर सम्मेदाचल माहात्म्यका रचनाकाल वि० सं० १८८९ है।

माधवपुर राज निवासी पण्डित डालूराम, आगरा निवासी पण्डित भूधर मिश्र भी अच्छे कवि हैं। डालूरामने गुरुपदेश श्रावकाचार और सम्यकत्व प्रकाश तथा भूधर मिश्रने पुरुषार्थसिद्ध्युपायपर विशद टीका लिखी है।

उपर्युक्त कवियोके अतिरिक्त आदिकालमे भी कुछ जैन कवियोने काव्य ग्रन्थोकी रचना की है। कवि सधारूका प्रद्युम्नचरित और कवि राजसिहका जिनदत्तचरित प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। राजसिहका अपरनाम रल्ह भी बताया गया है। जिनदत्तचरितकी प्रशस्तिमे लिखा है कि रल्ह कविने इस काव्यको वि० स० १३५४ भाद्रपद शुक्ला पचमी गुरुवारके दिन समाप्त किया। उन दिनो भारतपर अल्लाउद्दीन खिलजी शासन कर रहा था। इस प्रकार वि० स० की १४वी १५वी शतीमे भी जैन कवियो द्वारा अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की गयी हैं।

कन्नड़ जैन कवि

दक्षिण भारतमे कन्नड़, तमिल, तेलगू, मलयालम एव तुलु ये पाँच भाषाएँ प्रचलित है। इनमेसे कन्नड और तमिल भाषामे पर्याप्त जैन साहित्य लिखा गया है। कन्नड साहित्यमे गम्भीर चिन्तन, समुन्नत हार्दिक विचार एव हृदय-

की गहनतम भावनाओंकी अभिव्यक्ति विद्यमान है। इस साहित्यकी व्यापकता-की परिधिकी रेखाएँ कावेरीसे गोदावरीके सुरम्य अचलको समेटती हैं। इस साहित्यमें कन्नड़ प्रदेशकी धरतीकी धड़कनें समाहित हैं। कन्नड़ साहित्यकी अभिवृद्धिमे जैन कवियोंका योगदान कम महत्त्वपूर्ण नही है।

आदिपम्प

कन्नड साहित्यका सर्वश्रेष्ठ कवि पम्प है। इसका समय ई० सन् ९४१ है। इन्होने 'आदिपुराण' और 'भारत' ग्रथोंकी रचना की है। ये दोनो ग्रन्थ चम्पू काव्य हैं। पम्पने स्वय अपने सम्बन्धमे लिखा है "मेरे विख्यात चिर नूतन समुद्रवत गम्भीर काव्य मेरे परवर्ती कवियोंके लिए प्रमोदप्रद हैं।" पम्पके वशज वैदिक धर्मानुयायी थे। इसके पिता अविराम देवरायने जैनधर्म स्वीकार किया था।

पम्पने आदिपुराणमे काव्यके अमृतानन्दके साथ धार्मिक सिद्धान्तोंका भी निरूपण किया है। कवि पम्पमे कल्पना शक्तिका भी प्राचुर्य है। उनका दूसरा ग्रन्थ 'विक्रमार्जुन विजय' अर्थात् 'भारत' है। कविने इस ग्रन्थमे काव्य तत्त्वों-का निर्वाह सम्यक् प्रकार किया है। नारीके नख-शिख चित्रणमे तो कवि संस्कृतके कवियोंसे भी बढा-चढा है। चरित्र-चित्रणमे भी कविको अपूर्व सफलता मिली है।

कवि पोन्न

'शान्तिपुराण जिनाक्षरमाले' के रचयिता पोन्न कविका समय ई० सन् ९५०के लगभग है। पोन्न प्रतिभाशाली कवि हैं। इसने शान्तिनाथपुराणमे विलक्षण उपमाओं और उत्प्रेक्षाओंका प्रयोग किया है।

कवि रन्न

रन्न कविने 'अजितनाथपुराण'की रचना कर कन्नड़ साहित्यको समृद्ध बनाया है। कविके इस पुराणका रचनाकाल ई० सन् ९९३ है। कविने अपनी इस रचनामे काव्यकला, कोमल कल्पना और निविड भावोंकी अभिव्यक्तिके साथ पौराणिक तथ्योंका भी समावेश किया है। कन्नड़के पोन्न कवि यदि संस्कृतके बाणभट्ट हैं, तो रन्न वसुबन्धु। शृङ्गार और शान्तरसका सम्मिश्रण सुन्दर रूपमे पाया जाता है। चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे भी रन्नका यह काव्य महत्त्व-

पूर्ण है। कविका दूसरा ग्रन्थ 'साहसभीम विजय' या 'गदायुद्ध' है। इस ग्रन्थमे दश आश्वास हैं। चम्पू काव्य है। कविने महाभारतकी कथाका सिंहावलोकन कर चालुक्य नरेश आहवमल्लका चरित्र अंकित किया है। कविका जन्म ई० सन् ९४९मे हुआ है।

नागचन्द्र या अभिनव पम्प

इनका समय ई० सन् ११०० है। नागचन्द्रकी उपाधि अभिनव पम्प थी। ये अत्यन्त प्रतिभाशाली हैं। अभिनव पम्पने 'मल्लिनाथपुराण'की रचना की। यह उपासनाप्रिय कवि हैं। इसने संस्कृत भाषासे बहुमूल्य अलकार और पद ग्रहणकर अपनी कविताको भूषित करनेका प्रयास किया है। अभिनव पम्पकी काव्य प्रतिभा कई दृष्टियोसे महत्त्वपूर्ण है। कवि अभिनव पम्पके समयमे कन्ति देवी नामकी उत्कृष्ट कवयित्री भी हुई हैं। कविने इस कवयित्रीके सम्बन्धमे महत्त्वपूर्ण उद्गार व्यक्त किये हैं। अभिनव पम्पकी 'साहित्य भारतीय' 'कर्ण-पूर' 'साहित्य विद्याधर' और 'साहित्य सर्वज्ञ' आदि उपाधियाँ थी।

ओड्डय्य

इनका समय ई० सन् ११७०के लगभग है। इन्होने कब्बगर काव्यकी रचना की है। भाषा और विषयके क्षेत्रमे क्रान्तिकारी कवि हैं। इन्होने अपने काव्य ग्रन्थोको केवल धर्म विशेषके प्रचारके लिए ही नही लिखा, प्रत्युत् काव्य रस-का आस्वादन लेनेके लिए ही काव्यका सृजन किया है। इतिवृत्त, वस्तुव्यापार वर्णन, सवाद और भावाभिव्यञ्जनकी दृष्टिसे इनके काव्यका परीक्षण किया जाये, तो निश्चय ही इनका काव्य खरा उतरेगा।

नयसेन

नयसेनका समय ई० सन् ११२५ है। इन्होने धर्मामृत, समयपरीक्षा और धर्मपरीक्षा ग्रन्थोंकी रचना की है। इन्होंने धारवाड़ जिलेके मूलगुन्दा नामक स्थानको अपने जन्मसे सुशोभित किया था। उत्तरवर्ती कवियोंने इन्हे 'सुकवि-निकरपिकमाकन्द', 'सुकविजनमनसरोजराजहंस' और 'वात्सल्यरत्नाकर' आदि विशेषणोसे विभूषित किया है। इनके गुरु नरेन्द्रसेन थे। इनके द्वारा रचित धर्मामृत श्रावकधर्मका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कविने इसमे धर्मोद्बोधनके हेतु कथाएँ भी लिखी हैं। इनकी भाषा संस्कृत मिश्रित कन्नड़ है। इनका परिचय विस्तारपूर्वक पहले लिखा जा चुका है।

कवि जन्न

कन्नड़ साहित्यमे जन्न, रन्न, पोन्नको रत्नत्रय कहा जाता है। जन्नने ई० सन् ११७०से १२२५के बीच अनेक ग्रन्थोकी रचना की है। यह होयसल राजाओका आस्थान कवि था। इसे कवि चक्रवर्तीकी उपाधि प्राप्त थी। पम्पकी तरह जन्न भी शूर-वीर और लेखनीके धनी हैं। उत्तरवर्ती कवियोने इसकी मुक्त कण्ठसे प्रशसा की है। इसके 'यशोधरचरित' और 'अनन्तनाथपुराण' प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

कर्णपार्य

ई० सन् ११४०के लगभग इन्होने 'नेमिनाथपुराण'की रचना की है। इसमे समुद्र, पहाड, नगर, सूर्योदय, चन्द्रोदय, वनक्रीड़ा, जलक्रीड़ा, रति, चिन्ता, विवाह, पुत्रोत्पत्ति, युद्ध, जयप्राप्ति इत्यादिका सविस्तार वर्णन आया है। विप्रलम्भ शृङ्गारके वर्णनमे तो कविने अपूर्व क्षमता प्रकट की है।

नेमिचन्द्र

'अर्धनेमिपुराण'के रचयिता कवि नेमिचन्द्र भी १३वी शताब्दीके कवियोमे प्रमुख स्थान रखते है। इन्होने सस्कृत मिश्रित कन्नड़मे सस्कृत छन्द लेकर अपने काव्यकी रचना की है। 'चम्पकशार्दूलवृत्त'मे प्राय· समस्त ग्रन्थ लिखा गया है। अनुप्रासकी छटा तो इतनी अधिक दिखलाई पडती है, जिससे इसके समक्ष कन्नड़का अन्य कोई कवि नही ठहर सकता है।

गुणवर्म

गुणवर्मका समय ई० सन् १२२५के लगभग है। इस कविने 'पुष्पदन्तपुराण'-की रचना की है। यह ग्रन्थ इतिवृत्तात्मक होते हुए भी मर्मस्पर्शी सन्दर्भोसे युक्त, है। कविने अपना भाषा विषयक पाण्डित्य तो दिखलाया ही है, साथ ही वर्णनात्मक शैलीका अद्‌भुत रूप भी प्रदर्शित किया है।

रत्नाकर वर्णी

आध्यात्मिक साहित्यके निर्माताओमे कवि रत्नाकर वर्णीका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्होने भरतेशवैभव, रत्नाकर शतक, अपराजितशतक, आदि ग्रन्थोकी रचना की है। भरतेशवैभवका माधुर्य, तो सस्कृतके गीत गोविन्दसे भी

बढकर है। यह ग्रन्थ आज भी कन्नड प्रान्तमे लोगोंका कण्ठहार बना हुआ है। तुलसीदासके 'रामचरितमानस'के समान इसके भी दो चार पद निरक्षर भट्टाचार्योको याद है। सगीतकी दृष्टिसे इस ग्रन्थका अत्यधिक महत्त्व है। इस ग्रन्थका रचनाकाल ई० सन् १५५१ है। महाकाव्य और गीतिकाव्यका आनन्द इस एक ही ग्रन्थसे लिया जा सकता है।

मंगरस

मगरसका गीतिकाव्य और प्रबन्धकाव्य निर्माताओमे महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनका समय ई० सन् १५०८ है। कविने 'नेमिजिनेश्वर सगीत' और 'सम्यक्त्व-कौमुदी' ग्रन्थोकी रचना की है। नेमिजिनेश्वर सगीतमे सगीतकी अपूर्व छटा उपलब्ध होती है। सभी राग रागनियाँ उनके चरणोपर लोटती हैं।

नागवर्म

इनका समय ९९० ई० है। इन्होने छन्दोम्बुधि नामक छन्दशास्त्रकी रचना की है। यह ग्रन्थ सस्कृतके पिंगलछन्दशास्त्रके आधारपर लिखा गया है। आनुपूर्वी और वृत्तके नामोमे पिंगलकी अपेक्षा इसमे पर्याप्त अन्तर है। इसमे छह सन्धियाँ है। कन्नड़के मात्रिक छन्द और सस्कृतके छन्दोका सुन्दर विवेचन किया है।

द्वितीय नागवर्माने ११४५ ई० के लगभग 'वस्तुकोश' नामक एक ग्रन्थ लिखा है। इसमे सस्कृत पदोका अर्थ कन्नड़ पदोमे बताया गया है। रीतिपर भी नागवर्माने प्रकाश डाला है और इसे काव्यके लिए आवश्यक धर्म माना है। अलकारके अभावमे भी रीतिके रहनेसे माधुर्य और सौन्दर्य सघटित होते हैं। इन नागवर्माका 'काव्यालोचन' नामक लक्षण ग्रन्थ भी है। नागवर्मने कर्नाटक भाषाभूषण लिखकर कन्नड़के व्याकरणका भी परिचय दिया है। इस ग्रन्थमे सज्ञा, सन्धि, विभक्ति, कारक, शब्दरीति, समास, तद्धित, आख्यात नियम, अन्वय निरूपण और निपात निरूपण ये दश परिच्छेद हैं। कुल मिलाकर २८० सूत्र हैं।

केशवराज

व्याकरण ग्रन्थके निर्माताओमे केशवराजका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनका समय ११५० ई० है। इन्होने 'शब्द मणिदर्पण' नामक व्याकरण ग्रन्थ लिखा है। इसमे कन्धरूपसे सूत्र लिखे गये है। व्याकरण नियमोके स्पष्टीकरणके लिए उदाहरण प्राचीन कवियोके गद्य-पद्य ग्रन्थोसे लिये गये हैं।

अग्गल (ई० सन् ११८९)का 'चन्द्रप्रभपुराण', आचण्ण (ई० सन् ११९५) का वर्द्धमानपुराण, बन्धुवर्मा (ई० सन् १२००) का हरिवंशपुराण, पार्श्वपण्डित (ई० सन् १२०५)का पार्श्वनाथपुराण, कमलभव (ई० सन् १२३५)का शान्तिश्वरपुराण, मधुर (ई० सन् १३८५)का धर्मनाथपुराण, शान्तिकीर्ति (ई० सन् १५१९)का शान्तिनाथपुराण, दोड्डैय्य (ई० सन् १५५०)का चन्द्रप्रभपुराण, कुमुदेन्दु (ई० सन् १२७५)का रामायण, भास्कर (ई० सन् १४२४)का जीवन्धरचरित, कल्याणकीर्ति (ई० सन् १४३९)का ज्ञानचन्द्राभ्युदय, बोम्मरस (ई० सन् १४८५) का सनत्कुमारचरित, कोटेश्वर (ई० सन् १५००) का जीवन्धरषटपादि पद्मनाभ (ई० सन् १५८०)का रामपुराण, चन्द्रम (ई० सन् १६०५)का गोमटेश्वरचरित और बाहुबली (ई० सन् १५६०)का नागकुमारचरित, भट्टाकलंक (ई० सन् १६०४)का शब्दानुशासन, नृपतुंग (ई० सन् ८१४)का कविराजमार्ग, उदयादित्य (ई० सन् ११५०)का उदयादित्यालंकार, और साल्व (ई० सन् १५५०)के रसरत्नाकर आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

जैनवैद्यक ग्रन्थोंमे सोमनाथ (ई० सन् ११५०)का कल्याणकारक, मंगराज (ई० सन् १५५०)का खगेन्द्रमणिदर्पण, श्रीधरदेव (ई० सन् १५००)का वैद्यामृत, साल्व (ई० सन् १५५०)का वैद्यसांगत्य, देवेन्द्रमुनि (ई० सन् १२००)का बालग्रहचिकित्सा, कीर्तिवर्मा (ई० सन् ११२५)का गोवैद्यग्रन्थ उपलब्ध है। ज्योतिषमे श्रीधराचार्य (ई० सन् १०४६)का जातकतिलक, शुभचन्द्र (ई० सन् १२००)का नरपिंगल और राजादित्य (ई० सन् ११२०)के व्यवहारगणित, क्षेत्रगणित, व्यवहाररत्न लीलावती, चित्रहसुवे और जैनगणितटीकोदाहरण आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ[1] है।

कर्नाटककविचरितेके सम्पादक नरसिंहाचार्यने कन्नड़ जैन वाङ्मयका मूल्यांकन करते हुए लिखा "जैन ही कन्नड़ भाषाके कवि हैं। आज तककी उपलब्ध सभी प्राचीन एवं श्रेष्ठ कृतियां जैन कवियोकी ही हैं। ग्रन्थरचनामे जैनोके प्राबल्यका काल ही कन्नड साहित्यकी उन्नत स्थितिका काल मानना होगा। प्राचीन जैन कवि ही कन्नड भाषाके सौन्दर्य एवं कान्तिके विशेषतः कारणभूत हैं। उन्होने शुद्ध और गम्भीर शैलीमे ग्रन्थ रचकर ग्रन्थरचना कौशलको उन्नत स्तरपर पहुँचाया है। प्रारम्भिक कन्नड साहित्य उन्हीकी लेखनी द्वारा लिखा गया है। कन्नड़ साहित्यके अध्ययनके सहायभूत छन्द,

१ कन्नड जैनसाहित्य, आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ, जैन श्वेताम्बर तेरहपंथी महासभा, तीन पोर्चुगीज, चर्चस्ट्रीट, कलकत्ता १, द्वितीय खण्ड, पृ० १२९-१३०।

अलकार, व्याकरण और कोश आदि ग्रन्थ विशेषत जैनोके द्वारा ही रचे गये है।[1]

उपर्युक्त उद्धरणसे यह स्पष्ट है कि जैनसाहित्यकारोंने कन्नड़ साहित्यकी महती सेवा की है। काव्य, अलकार, व्याकरण, छन्द, आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित आदि विभिन्न क्षेत्रोमे जैनकवियोने अमूल्य ग्रन्थरत्न प्रदान कर कन्नड वाङ्मय को समृद्ध किया है।

तमिलके जैन कवि और लेखक

तमिल साहित्यके महाकाव्य और लघुकाव्योके लेखक प्रमुख रूपसे जैन कवि है। तमिल साहित्य सस्कृत साहित्यके समान ही प्राचीन है। व्याकरण, अलकार, छन्द आदि विषयक ग्रन्थोके निर्माता जैन विद्वान हैं। हम यहाँ विस्तारसे विचार न कर सक्षेपमे ही तमिलभाषामे लिखित जैन साहित्यपर प्रकाश डालनेका यत्न करेंगे। तमिलभाषाका सबसे पुराना काव्य 'कुरल्' है। इसकी गणना तमिलभाषाके आचार और नीति सम्बन्धी धर्मग्रथोमे की जाती है। इसे पञ्चम वेद कहा गया है। इसके रचयिता एलाचार्य माने जाते हैं। इस ग्रन्थकी रचना ई० सन्की प्रथम शताब्दीमे पादिरीपुलीयूर अथवा दक्षिण पाटलीपुत्र नामक स्थानमे सम्पन्न हुई है। इसमे धर्म, अर्थ और कामका विवेचन किया गया है। प्रथम अध्यायमे गृहस्थ और साधुओके आचरण करने योग्य नियमोका विस्तृत वर्णन आया है।

द्वितीय अध्यायमे जीवनकी आवश्यकताओ, राज्य सचालन एव राजनीतिका वर्णन है। तृतीय अध्यायमे वास्तविक और अवास्तविक प्रेमका बड़ा ही सजीव चित्रण है। इन तीन मुख्य विषय निरूपक अध्यायोके अतिरिक्त इस ग्रन्थमे १३३ प्रकरण और १३३० कुरल् हैं। कुरल्का अर्थ छोटा पद्य है। इस ग्रन्थपर दश प्राचीन टीकाएँ पायी जाती है, जिनमे सर्वाधिक प्राचीन टीका धरुमर् अथवा धर्मसेन द्वारा लिखी गयी है। ये धर्मसेन जैन विद्वान थे। कुरल् काव्यके अन्तर्गत ऐसे अनेक सिद्धान्त वर्णित है, जिनके आधारपर इस ग्रन्थको जैन कहा जा सकता है।

नालडियार ग्रन्थ पाण्डिराज निवासी भिन्न-भिन्न सन्तो द्वारा निर्मित हुआ है। इस ही नामके छन्दोमे यह ग्रन्थ लिखा होनेके कारण इस ग्रन्थका नाम 'नालडियर' रक्खा गया है। इस ग्रन्थमे ४०० पद्य हैं और इनका सग्रह कुरल्

१. कर्नाटककविचरिते, भाग १ और २की प्रस्तावना।

की भाँति एक निश्चित नीतिके अनुसार किया गया है। इस ग्रन्थमे भी धर्म, अर्थ और कामका वर्णन आया है। इस ग्रन्थपर भी पदुमनार द्वारा लिखित एक बडी ही सुन्दर जैन टीका है। 'कुरल' और 'नालडियार' ये दोनो ही ग्रन्थ तमिल जनताके धर्मशास्त्र हैं।

तिरुतक्कतेवर

इन्होने 'जीवकचिन्तामणि' नामक महाकाव्यकी रचना ई० सन्‌की ७वी शतीमे की है। यह कवि जैनधर्मावलम्बी था। कहा जाता है कि यह चोल राजाकी वश परम्परामे हुआ है। कुछ विद्वान् इस काव्यको तमिल काव्योंका पिता मानते हैं। डॉ० जी० यू० पोपके शब्दो मे-

"This is on the whole the greatest existing Tamil literary monument The great romantic epic which is at once the iliad and the Odyssey of the Tamil language, is one of the great epics of the world"

अर्थात् यह काव्य वर्त्तमान तमिल साहित्यका एक महान स्मारक है। यह अद्भुत महाकाव्य तमिलभाषाका एलियड और ओडेसी कहा जा सकता है। यह ससारके महान् काव्योमे से एक है। इसकी रचनाके सम्बन्धमे एक आख्यान प्रचलित है। एक दिन किसीने तिरुतक्कतेवरको लक्ष्यकर कहा "महाराज! श्रमणोको इस ससारके देखनेसे घृणा हो गयी। वे केवल वैराग्यपूर्ण सन्यासी जीवनकी ही प्रशसा गाते हैं। सासारिक सुखोको रुचिकर ढगसे वर्णन करनेका सामर्थ्य श्रमणोमे दिखलायी नही देता।" तिरुतक्कतेवरने उत्तर दिया "तुम्हारा कथन सारहीन है। सासारिक आनन्दोको वर्णन करनेके सामर्थ्यका अभाव श्रमणोमे नही है। किन्तु कुछ दिन रहनेवाले अनेक रोगोसे ग्रस्त तथा अल्पज्ञानसे युक्त इस जीवनको व्यर्थ किये बिना लोग मुनिमार्ग द्वारा हित सम्पन्न करे, इसी उद्देश्यसे श्रमणोने मुनिधर्मकी प्रशसा की है। सासारिक आनन्दोका वर्णन भी काव्यमे सहज सम्भाव्य है। मै इसके लिए प्रयास करूँगा।"

तदनन्तर तिरुक्कतेवर अपने आचार्यके पास पहुँचकर जीवन भोगोका वर्णन करनेवाले काव्यका सृजन करनेके लिये प्रार्थना करने लगा। गुरुने 'नरीविरुत्तम' एक प्राचीन कथा देकर काव्यरचना करनेका आदेश दिया। तिरुतक्कतेवरने इस नीरस कथाको मनोरंजक काव्यका रूप देकर प्रस्तुत किया, जिससे आचार्य बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने आशीर्वाद देकर 'जीवकचिन्तामणि' काव्य लिखनेका आदेश दिया।

इस काव्यका नायक जीवकन् है। इसके पिताका नाम सत्यसन्ध है। सत्यसन्धने अपना राज्य कट्टियगारन नामक मन्त्रीको सौंप कुछ दिनो के लिए विश्राम ले लिया। अवसर प्राप्तकर कट्टीयगारनने सेनाको अपने अधीन कर राज्य हड़प लिया। सत्यसन्धकी पत्नी विजयाने एक मयूर उड़नखटोलेपर चढकर अपनी रक्षाकी और श्मशान भूमिमे पुत्रको जन्म दिया। कन्दूकडन नामक व्यक्तिने उस पुत्रको ले जाकर उसका नाम जीवकन् रक्खा और उसका पालन-पोषण करने लगा। जीवकन्नेे विद्याध्ययन और युद्धकलामे शीघ्र ही निष्णात होकर राजा होनेके योग्य अर्हताओको प्राप्त किया। जीवकन्ने अपनी योग्यता प्रदर्शित कर पृथक-पृथक समयमे ८ कन्याओसे विवाह किया। उसने वचक कट्टियगारनको जीतकर अपने पिताके खोये हुए राज्यको पुन हस्तगत किया। उसने बहुत दिनों तक सांसारिक सुख भोगते हुए राज्य शासन चलाया और अन्तमे सन्यास ग्रहण कर मोक्ष प्राप्त किया।

इस काव्यमे विचारोकी महत्ता; साहित्यिक मुहावरोंके सुन्दर प्रयोग और प्रकृतिके सजीव चित्रण विद्यमान हैं। उत्तरवर्ती कवियोने इस ग्रन्थका पूरा अनुसरण किया है। इस काव्यमे १३ अध्याय और ३१४५ पद्य हैं। निस्सन्देह वर्णन शैलीके गाम्भीर्य और सशक्त अभिव्यञ्जनाके कारण यह काव्य महाकाव्यकी श्रेणीमे परिगणित है।

इलगोवडिगल

'शिलप्पडिकार' काव्यकी रचना प्रथम शताब्दीमे होनेवाले चेर राजा सिगुट्टुवनके भाई इलगोवडिगलने की है। शिलप्पडिकार शब्दका अर्थ 'नुपूरका महाकाव्य' है। इस ग्रन्थका यह नामकरण इस महाकाव्यकी नायिका कण्णकी के नुपूरके कारण हुआ है। काव्यका कथावस्तु निम्नप्रकार है

नायक कोवलन चोल साम्राज्यकी राजधानी कावेरी पूमपट्टिनके एक जैन वणिकका पुत्र है। उसका विवाह कण्णकी नामकी एक अन्य धनाढ्य सेठकी कन्यासे हुआ है। कुछ दिन तक दम्पति प्रसन्नतापूर्वक एक विशाल अट्टालिकामे सुख भोगते हैं। कालान्तरमे कोवलन माधवी नामक एक नर्तकीके सौन्दर्यपर मुग्ध हो जाता है और उसके साथ रहने लगता है। नर्तकीकी प्रसन्नताके लिये वह अपनी अतुल धनराशि व्यय करता जाता है और अन्तमे इतना निर्धन हो जाता है कि माधवीको देनेके लिये उसके पास कुछ भी शेष नही रह जाता। जब माधवीको यह ज्ञात हुआ कि अब कोवलनके पास धन नही है, तो वह उसका तिरस्कार करने लगी। उसके इस व्यवहार परिवर्तनने कोवलनकी

आँखें खोल दी और उसे अपनी मूर्खताका आभास होने लगा। उसे अपनी सती-साध्वी पत्नीका ध्यान आया और घर लौट आया। कण्णकीने अपने निर्धन पतिको बहुत सांत्वना दी और कहा- "ये मेरे सोनेके नुपूर हैं, तुम इन्हे बेच सकते हो और इनसे जो धन प्राप्त हो, उससे व्यवसाय कर अपनी आर्थिक स्थितिको सुदृढ बना सकते हो। कोवलन और उसकी पत्नी कण्णकी प्रच्छन्न रूपसे नगर त्यागकर आर्यिका कम्बुदीके मार्गदर्शनमे मदुरा पहुँच गये। आर्यिका कम्बुदीने कोवलन और उसकी स्त्री कण्णकीको एक ग्वालिनके सरक्षणमे छोड़ दिया।"

प्रातःकाल होनेपर कोवलन अपनी स्त्रीका नुपूर लेकर नगरीकी ओर रवाना हुआ। मार्गमे उसे एक सुनार मिला, जो राजमहलोमे नौकर था। उसने वह नुपूर उसे दिखलाया और पूछा क्या आप इसे उचित मूल्यमे बिकवा सकते हैं? सुनार धूर्त था, उसने पहले ही रानीका एक नुपूर चुरा लिया था। उसे यह आशका थी कि कही राज्याधिकारी मुझे बन्दी न बना लें। अत वह कोवलनको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और बोला "आप कृपया यहाँ प्रतीक्षा कीजिये। मैं एक अच्छा ग्राहक लेकर आता हूँ।" सुनार सीधा महलोमे गया और राजाको सूचित किया "मैंने रानीके नुपूरको चुराकर ले जानेवालेका पता लगा लिया है और नुपूर उसके पास है। राजाने सैनिकोको आदेश दिया कि चोरको मार डालो और रानीका नुपूर ले आओ। सैनिक धूर्त सुनारके साथ कोलनके पास पहुँचे और उसे प्रहार कर मार डाला।

इधर कण्णकी व्यग्रतापूर्वक अपने पतिके आगमनकी बाट जोह रही थी। उसके हृदयमे विचित्र अनुभूति हो रही थी। दिन ढलता जा रहा था और कोवलन लौटा नही। वह उद्विग्न होने लगी। उसने लोगोसे सुना "कावेरी-पूमपट्टिनमसे जो आदमी आया था वह बाजारमे मार डाला गया।" वह सुनते ही बाजारकी तरफ झपटी। वहाँ उसने अपने प्रिय पतिको मृत पाया। उसने लोगोको यह कहते हुए सुना कि यह परदेशी राजाज्ञासे मारा गया है। वह राजभवनकी ओर दौड़ी गयी और उसने राजाके दर्शन करनेकी अनुमति माँगी, जो तत्काल स्वीकृत हो गयी। उसने राजासे कहा कि आपने मेरे पतिको मार कर बडा अन्याय किया है। राजाके सामने ही उसने प्रमाणित कर दिया कि उसका पति चोर नही था और उसके पास जो नुपूर था, वह रानीका नही बल्कि उसका था। राजाने दोनो नुपूरोको तुडवाया और देखा कि रानीके नुपूरमे मोती भरे हुए हैं, जबकि कण्णकीके नुपूरमे रत्न। इस घटनासे राजाको बडा धक्का लगा और वह सिंहासनसे गिरकर मर गया। कण्णकी उत्तेजित होकर

राजभवनसे बाहर हुई और अग्निदेवका आह्वान कर बोली "यदि मैं यथार्थ में शीलवती हूं, तो मेरी प्रार्थना पूर्ण हो स्त्रियो, बच्चो, धर्मात्माओ और रुग्ण पुरुषोको छोड़कर यह शैतान नगर भस्म हो जाये और सम्पूर्ण दुष्ट समाप्त हो जाये।" इस प्रकार कहकर उसने अपना वाम स्तन झटका मारकर उखाड डाला और नगरकी ओर फेंक दिया। आश्चर्य! नगर जल उठा और शीघ्र ही भस्म हो गया। मदुराकी देवी कण्णकीके सम्मुख प्रकट होकर बोली तुम्हारे पतिकी मृत्यु और तुम्हारी ये यातनाएँ पूर्वोपार्जित कर्मोका फल हैं। तुम शीघ्र ही साधना द्वारा स्वर्गमे अपने पतिसे मिलोगी।

नगरको जलता हुआ छोड़कर वह पश्चिमकी ओर चेरदेशमे चली गयी और वहाँ एक पहाडीपर १५ दिनकी तपश्चर्या द्वारा उसने स्वर्गलाभ किया।

काव्यसिद्धान्तोकी दृष्टिसे भी यह ग्रन्थ महनीय है। कविने रुचिर कथानकके साथ प्रौढ़ शैलीका प्रयोग किया है। रस, अलकार, गुण आदि सभी दृष्टियोसे यह काव्य समृद्ध है। पात्रोका चरित्र बहुत ही सुन्दररूपमे उपस्थित किया है।

तोलामुलितेवर

तोलामुलितेवरने 'चूलामणि' लघुकाव्य लिखा है। ग्रन्थकार विजयनगर साम्राज्यमे कारवेट नगरके राजा विजयके दरबारमे राजकवि था। इस कविका समय जीवक चिन्तामणिके रचयिता तिरुक्कतेवरसे भी पूर्व है। इस काव्यमे १२ सर्ग हैं २१३१ पद्य हैं। इस ग्रन्थमे भगवान् महावीरके पूर्वभवके जीव त्रिपिष्ठ वासुदेवके जीवन और उसके साहसपूर्ण कार्योका निर्देश है। इसके वर्णन प्रसग जीवक चिन्तामणिके समान हैं। काव्य अत्यन्त ही सरस और जीवन मूल्योसे सम्पृक्त है।

वामनमुनि

वामनमुनिके समयके सम्बन्धमे निश्चित जानकारी नही है। रचनाशैली और भाषाकी दृष्टिसे इनका समय ई० सन् १२ वी १३ वी शती अनुमानित होता है। इन्होने मेमन्दरपुराण नामक ग्रन्थकी रचना की है। इस काव्यमे विमलनाथ तीर्थंकरके दो गणधर मेरु और मन्दरके पूर्वभवोका वर्णन है। इस ग्रन्थमे जैनदर्शन, आचार और लोकानुयोगका सुन्दर विवेचन आया है। पूर्व-जन्मोकी वर्णन पद्धति प्रभावक और शिक्षाप्रद है। इसमे सस्कृत और प्राकृतकी शब्दावली भी प्रचुर परिमाणमे प्राप्त हैं।

कुंगवेल

कुंगवेल मौलिक साहित्य सर्जक होनेके साथ अनुवादक भी हैं। इन्होने गुणाढ्यकी वृहद्कथामे वर्णित कौशाम्बी नरेश उदयनकी जीवनी और उसके पराक्रमपूर्ण कार्योंका तमिलमे अनुवाद किया है। यह ग्रन्थ साहित्यिक सौन्दर्य और काव्यप्रतिभाका खजाना है। तमिल टीकाकारोने व्याकरण सम्बन्धी एव मुहावरेदार भाषाका उदाहरण इसी काव्यसे प्रस्तुत किया है।

तमिल साहित्यमे जीवक चिन्तामणि, शिल्प्पडिकारं, मणिमेखलै, वलैयापति और कुण्डलकेशी ये पाँच महाकाव्य माने जाते हैं। इनमे जीवकचिन्तामणि, शिल्प्पडिकार और वलैयापति ये तीन जैनकवियो द्वारा रचित महाकाव्य हैं और शेष दो बौद्ध कवियो द्वारा रचित हैं। इन पाँच महाकाव्योमेंसे इस समय तीन ही महाकाव्य उपलब्ध हैं। वलैयापति और कुण्डलकेशी दोनो अप्राप्त हैं।

तमिल साहित्यमे चूडामणि, नीलकेशी, यशोधरकाव्य, उदयनकुमार काव्य और नागकुमार काव्य ये पाँच लघुकाव्य हैं। ये पाँचो ही लघुकाव्य जैनाचार्यो द्वारा निर्मित है। नीलकेशीके रचयिता दार्शनिक जैन कवि हैं। इसमें १० सर्ग और ८९४ पद्य हैं। कथाको नायिका नीलकेशी एक देवी है, जो एक स्थानसे दूसरे स्थानमे भ्रमण करती रहती है और धार्मिक उपदेशकोसे मिलकर उन्हे दार्शनिक चर्चाओमे सलग्न रखती है और अन्तमे उन्हे शास्त्रार्थमे परास्त करती है। प्रथमसर्गमे मुनिचन्द्र नामक जैनसाधु द्वारा नीलकेशीको दी गयी जैनधर्मकी शिक्षाओका वर्णन है। द्वितीय सर्गसे पञ्चम सर्गतक बौद्ध-दर्शनके विभिन्न व्याख्याताओके साथ नीलकेशीके वाद-विवादका वर्णन आया है। शेष पाँच सर्गोमे नीलकेशीका आजीवको, साख्यो, वैशेषिको, वैदिक धर्मानुयायियों और प्रकृतवादियोके साथ शास्त्रार्थका कथन आया है। यह एक तार्किक ग्रन्थ है। इसमे भौतिकवादके विरुद्ध आध्यात्मवादकी प्रतिष्ठा की गयी है। इस ग्रन्थपर वामनमुनि द्वारा विरचित समयदिवाकर नामकी एक सुन्दर टीका है।

यशोधरकाव्यके रचयिताका नाम अज्ञात है। इसमे अहिंसाधर्मका विशद-निरूपण तो है ही साथ ही वैदिक क्रियाकाण्डका समालोचन भी किया गया है।

उदयनकुमार काव्यके रचयिता भी अज्ञात है। नागकुमारकाव्य अभीतक अप्रकाशित है।

जैनकवियोंने कुछ कविता सग्रह भी लिखे हैं। इनमे पत्तुपाट्टु, पुरनानूरु, अहनानूरु, नट्रीणाई, कुरुत्तोगाई आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त जिनेन्द्रमालई

ज्योतिष ग्रन्थ और तिरुनुट्रन्धादि स्तोत्र ग्रन्थ प्रसिद्ध है। तिरूवकलम्बकम् जिनेन्द्रभगवान्‌की भक्ति और प्रशंसामें लिखा गया है। इन प्रधान रचनाओंके अतिरिक्त सस्कृत और तमिल मिश्रित पद्योमे मणिप्रवाल शैलीमें निर्मित श्री पुराण, पदार्थसार, अष्टपदार्थ जीवसम्बोधनै आदि प्रधान है।

पच्चइयप्पाकॉलेज काचीपुरम्‌के प्रोफेसर श्री सी० एस० श्री निवासाचारी एम० ए० ने लिखा है

"प्राचीन तमिल और कर्नाटक प्रातोमे तमिल और कन्नड साहित्यकी अभिवृद्धिमे जैनविद्वानोका महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। उनके द्वारा लिखित एव सग्रहीतकोष, व्याकरण एवं अन्य विषयोपर अपरिमित सर्वाधिक मूल्यवान एव उच्चकोटिके ग्रन्थ हैं। वर्त्तमानमे केवल उनका कुछ अश ही शेष हैं, किन्तु जितना भी शेष है वह अपनी श्रेणीका अद्भुत, अत्यधिक सन्तोषप्रद है और वह शताब्दियो तक तमिल भाषाके क्रमिक विकासका आधारभूत तत्त्व रहा[1] है।

इस प्रकार जैन कवियोने तमिल साहित्यकी श्रीवृद्धिमे अमूल्य सहयोग प्रदान किया है।

मराठी जैन कवि

मराठी भाषामे भी जैनकवियोने प्रभूत साहित्यकी रचना की है। मराठी भाषामे श्रवणवेलगोलाके गोम्मटेश्वरकी मूर्तिके नीचे शक सवत् ८८३ का छोटा-सा अभिलेख खुदा है, पर शक सवत् १४०० तक मराठी ग्रन्थकर्त्ताओका नामोल्लेख प्राप्त नही होता है। जैनकवियोकी रचनाएँ ई० सन्‌की १७ वी शतीसे प्रचुररूपमे मिलने लगती हैं। मराठी भाषामे लिखित जैनसाहित्यका अल्पाश ही उपलब्ध हो सका है। अभीतक बहुत-सा साहित्य अप्रकाशित पड़ा है। हम यहाँ मराठीके प्रमुख कवि और लेखकोका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करेंगे।

जिनदास

मराठी साहित्यका सबसे पहला ज्ञात कवि जिनदास है। इनके गुरुका नाम भट्टारक भुवनकीर्ति था। भुवनकीर्तिका समय शक संवत् १६४३ से १६६२ तक है। अतएव जिनदासका समय शक सवत्‌की १७ वी शती है। इन्होने हरिवंश-पुराण नामक ग्रन्थकी रचना देवगिरि (मराठवाड़ा) नामक स्थानमे की है।

१. श्री सी० एस० मल्लिनाथन, तमिल भाषाका जैनसाहित्य, प्रकाशक श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी, महावीर पार्क रोड, जयपुर, पृ० २१।

इस ग्रन्थका पूर्वार्द्ध लिखकर ही कवि परलोकगामी हो गया। इसके पूर्वार्द्धमें ४० अध्याय हैं और महाभारतकी कथा सक्षेपमे[1] वर्णित है।

गुणदास या गुणकीर्त्ति

गुणदासका अपरनाम गुणकीर्ति भी उपलब्ध होता है। गृहस्थ अवस्थामें इनका नाम गुणदास था और त्यागी होनेपर यही गुणकीर्तिके नामसे प्रसिद्ध हुए। इन्होने श्रेणिकपुराण, धर्मामृत, रुक्मिणीहरण, पद्मपुराण (अपूर्ण) और एक स्फुट रचना रामचन्द्रहलदुलि लिखी है। श्रेणिकपुराण भाषाकी दृष्टिसे अपूर्व रचना है। इसमे मराठीका स्वच्छ और प्रवाहमय रूप विद्यमान है। भगवान् महावीरके समकालीन सम्राट् श्रेणिककी अद्भुत कथा वर्णित है।

धर्मामृत गद्य ग्रन्थ है, जो उपलब्ध गद्य ग्रन्थोमे प्राचीनतम है। इसमे गृहस्थोंके आचारका सागोपाग वर्णन है। लेखकने ९६ पाखण्डोकी गणनाकर सरागी, देव-देवियोका निरसन किया है। विभिन्न सम्प्रदायोंके आचार-विचारोका अध्ययन करनेके लिए यह ग्रन्थ उपादेय है। अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत और सल्लेखनाका अतिचार सहित निरूपण किया है।

'रुक्मिणीहरण' काव्यमे श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणीके हरणकी कथा वर्णित है। वसुदेव, बलराम, श्रीकृष्ण, नेमिनाथ, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये यदुवंशके प्रसिद्ध महापुरुष थे। रुक्मिणीहरण काव्यमे कविने कृष्णके बलपौरुषके साथ उनकी राजनीतिका भी चित्रण किया है।

'पद्मपुराण'मे रामकी कथा रविषेणके 'पद्मपुराण'के आधारपर गुम्फित की गयी है। इस ग्रन्थको कवि २८ अध्याय तक ही लिख सका। इस ग्रन्थमे कविने द्वादश अनुप्रेक्षाओका वर्णन सुन्दर रूपमे किया है।

'रामचन्द्रहलदुलि'मे रामके विवाहका वर्णन आया है। यह रचना गीतिबद्ध है।

मेघराज

ये ब्रह्मजिनदासके प्रशिष्य और ब्रह्म शान्तिदासके शिष्य थे। मेघराज गुजप्रदेशसे आये थे। इनको उभयभाषा कवि चक्रवर्ती भी कहा गया है। ये गुजराती और मराठी दोनो भाषाओमे रचना करनेकी क्षमता रखते थे। इनकी

१ मराठी जैनसाहित्य, आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ, जैनश्वेताम्बर तेरहपन्थी महासभा, ३, पोर्चगीजचर्च स्ट्रीट, कलकत्ता १, द्वितीय खण्ड, पृ० १३७-१४०।

तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं १. यशोधरचरित २ गिरिनारयात्रा ३. और पार्श्वनाथभवान्तर।

यशोधरकी कथा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, गुजराती हिन्दी और कन्नड़ आदि भाषाओंमे लिखित उपलब्ध है। मेघराजने मराठीमे इस काव्यकी रचना कर एक नयी परम्पराका सूत्रपात किया है।

गिरिनार यात्रामे यात्रावर्णन है। इस कृतिका प्रथम चरण मराठीमे और द्वितीय चरण गुजरातीमे लिखा गया उपलब्ध होता है। पार्श्वनाथ भवान्तर कृतिमे पार्श्वनाथके पूर्वभवके सम्बन्धमें कथा वर्णितकी गयी है। इसमें उनके ९ भवोकी कथा काव्य शैलीमे गुम्फित है।

वीरदास या पासकीर्ति

इनका गृहस्थ नाम वीरदास है और ये त्यागी होनेके पश्चात् पासकीर्तिके नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। ये कारजाके बलात्कारगणके भट्टारक धर्मचन्द्र द्वितीयके शिष्य हैं। इनका जन्म सोहित वाल जातिमे हुआ था। इन्होने शक संवत् १५४९मे 'सुदर्शनचरित' की रचना की है और शक संवत् १६४५मे आवियाँकी। 'सुदर्शनचरित' मे सेठ सुदर्शनकी कथा अकित है। इसमे शीलव्रत और पंच-नमस्कार मन्त्रका माहात्म्य बतलाया गया है। इसमे २५ प्रसग हैं। ओवियाँमें ७५ ओवियोका सग्रह है। इसे बहत्तरी भी कहा गया है। इस ग्रन्थमें अकारादि क्रमसे धर्म विषयक स्फुट विचारोका संकलन किया गया है।

महितसागर

महितसागरका जन्म शक संवत् १६९४में और मृत्यु शक सवत् १७५४में हुई है। इन्होने शक सवत १७२३में रविवार कथा लिखी तथा शक संवत १७३२मे बालापुरमे आदिनाथ पञ्चकल्याणिक कथा लिखी है। इनकी अवतक निम्नलिखित कृतियाँ प्राप्त हो चुकी है

१ दशलक्षण
२ षोडषकारण
३ रत्नत्रय
४. पञ्चपरमेष्ठीगुणवर्णन
५ सम्बोघ सहस्रपदी
६ देवेन्द्रकीर्तिकीत्रावणी
७. तीर्थंकरोके भजन
८. आरती संग्रह

देवेन्द्रकीर्ति

देवेन्द्रकीर्तिने कालिकापुराणकी रचना की है। देवेन्द्रकीर्ति मराठी-साहित्यके ऐसे कवि हैं, जिन्होंने धर्म, दर्शन और काव्यकी त्रिवेणीको एकसाथ प्रवाहित किया है। इनकी रचनाका मूलाधार प्राचीन वाङ्मय है। कवि देवेन्द्रकीर्ति सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश आदि भाषाओके विद्वान् होनेके साथ गुजराती भाषाके भी विद्वान् थे।

मराठीके अन्य कवि और लेखक

मराठी-भाषामे लगभग २० अच्छे कवि और लेखक हुए है तथा दश ऐसे कवि हैं, जिन्होने स्फुट रचनाएँ लिखकर वाङ्मयकी समृद्धिमे योगदान दिया है।

मेघराजके गुरुबन्धु कामराजने 'सुदर्शनपुराण' और 'चैतन्यफाग'की रचना की है। 'चैतन्यफाग' गीतात्मक रचना है और इसमे देहकी ममता त्यागनेसे आत्माको मुक्ति होने का सन्देश वर्णित है। कामराज और मेघराजके गुरुबन्धु सूरिजनने 'परमहस' नामक रूपककाव्य लिखा है। इनकी दूसरी कृति 'दानशीलतपभावनारास' भी उल्लेखनीय है।

नागोआया कारञ्जा-गद्दीके सेनगणके भट्टारक माणिक्यसेनके शिष्य थे। इन्होने यशोधरचरित लिखा है। अमयकीर्ति लातूरकी प्रथमशाखाके भट्टारक अजितकीर्तिके शिष्य थे। इन्होने शक सवत् १५३८ मे अनन्तव्रतकथा लिखी है। इनकी एक दूसरी कृति आदित्यव्रतकथा भी उपलब्ध है।

भट्टारक अजयकीर्तिके शिष्योमे चिमणाका नाम भी उल्लेख्य है। इन्होने पैठनके चन्द्रप्रभ चैत्यालयमे अनन्तव्रतकथाकी रचना की है। एक आरतीसग्रह ग्रन्थ भी इनके द्वारा लिखित उपलब्ध है।

जिनदासकी अपूर्ण कृति 'हरिवशपुराण'को पुण्यसागरने १८ अध्याय और लिखकर पूर्ण किया है। जिनदास ४० अध्याय ही लिख सके थे। पुण्यसागर द्वारा यह ग्रन्थ पूर्ण होकर जैन महाभारतकी सज्ञाको प्राप्त हुआ है। पुण्यसागरकी एक अन्य कृति आदित्यवारकथा भी है। शक सवत् १५८७मे सावाजीने 'सुगन्धदशमी' नामक कथा लिखी है। महीचन्द्रने शक सवत् १६१८मे आशापुरमे आदिपुराणकी रचना की है। अन्य कृतियोमे अठाईव्रतकथा, गरुड़पञ्चमीकथा, बारहमासी गीत, अर्हन्तकी आरती, नेमिनाथभवान्तर और कतिपय स्तोत्र परिगणित हैं। महाकीर्तिने शीलपताका नामक ग्रन्थ रचा है। इसमे ५५२ ओवियाँ हैं। सीताकी अग्निपरीक्षा गुम्फित है। शक सवत् १६५०में लक्ष्मीचन्द्रने माननगर के चन्द्रप्रभचैत्यालयमे मेघमालाकी कथा लिखी है। यह

कृति ८६ श्लोक प्रमाण है। इस कृतिमे सगीततत्त्वकी प्रधानता है और सार्व-जनिक सभाओमे इसका गायन किया जाता है।

जनार्दनने शक सवत् १६९०मे 'श्रेणिकचरित' नामक काव्यग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थमे ४० अध्याय हैं। नगेन्द्रकीर्त्तिने पद्यसग्रह, दयासागरने जम्बूस्वामी-चरित, सम्यक्त्वकौमुदी और भविष्यदत्तबन्धुकथा एव विशालकीर्तिने शक स० १७२९मे धर्मपरीक्षा नामक ग्रन्थकी रचना की है। गंगादासने पारिखनाथ-भवान्तर और आदित्यवारकथा ग्रन्थ लिखे है। चिन्तामणिने गुणकीर्ति द्वारा रचित अपूर्ण पद्मपुराणको पूर्ण करनेका प्रयास किया है, पर वे इसके केवल सात ही अध्याय लिख पाये हैं। जिनसागरने जीवन्धरपुराण, व्रतकथासंग्रह, भक्तामरका मराठी अनुवाद आदि रचनाएँ लिखी हैं। रत्नकीर्तिने शक स० १७३४मे ४० अध्यायोमे उपदेशसिद्धान्तरत्नमालाकी रचना की है। दयासागरने शक सवत् १७३५मे हनुमानपुराण, जिनसेनने शक स० १७४३में जम्बूस्वामी-पुराण, ठकाप्पाने शक स० १७७२मे पाण्डवपुराण, सहवाने शक सवत् १६३९मे नेमिनाथभवान्तर और रघुने शक स० १७१०मे सेठिमाहात्म्य नामक ऐति-हासिक कविता लिखी है।



उपसंहार

अंग और पूर्व-साहित्यको आचार्योंकी देन

तीर्थंकर महावीरकी आचार्यपरम्परा गौतम गणधरसे आरम्भ होती है, और यह परम्परा अंगसाहित्य और पूर्वसाहित्यका निर्माण, संवर्द्धन एवं पोषण करती चली आ रही है। यों तो अंग और पूर्व-साहित्यकी परम्परा आदितीर्थंकर भगवान ऋषभदेवके समयसे लेकर अन्तिम तीर्थंकर महावीरके काल तक अनवच्छिन्नरूपसे चली आयी है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि अंग-साहित्यका विषय-प्रथन प्रत्येक तीर्थंकरके समयमे सिद्धान्तोके समान रहनेपर भी अपने युगानुसार होता है। स्पष्टीकरणके लिए यों कहा जा सकता है कि उपासकाध्ययनमे प्रत्येक तीर्थंकरके समयमे उपासकोकी ऋद्धिविशेष, बोधि-लाभ, सम्यक्त्वशुद्धि, सल्लेखना, स्वर्गगमन, मनुष्यजन्म, संयम-धारण, मोक्ष-प्राप्ति आदिका निरूपण किया जाता है। पर प्रत्येक तीर्थंकरके कालमे उपा-सकोकी ऋद्धि, स्वर्गगमन आदि विषयोमे परिवर्तन होना स्वाभाविक है। यत उपासकोकी जैसी ऋद्धि, व्रतोवास एवं बोधिलाभकी स्थिति ऋषभदेव-के समयमे थी, वैसी महावीरके समयमे नही रही होगी। इसी प्रकार अन्त-कृतदशांगमे प्रत्येक तीर्थंकरके समयमे होनेवाले अन्तःकृतकेवलियोका जीवन-

वृत्त, तपश्चरण, केवलज्ञान आदिका वर्णन रहता है। निश्चयत तीर्थंकर ऋषभदेवके समयके अन्तकृतदशकेवली महावीरके अन्तकृतदशकेवलियोंसे भिन्न हैं। अत स्पष्ट है कि अगसाहित्यका विषय प्रत्येक तीर्थंकरके समयमे युगानुसार कुछ परिवर्तित होता है।

पूर्वसाहित्यका विषय परम्परानुसार एक-सा ही चलता रहता है। ज्ञान, सत्य, आत्मा, कर्म और अस्तिनास्तिवादरूप विचार-धाराएँ प्रत्येक तीर्थंकरके तीर्थकालमे समान ही रहती हैं। अत. पूर्वसाहित्य समस्त तीर्थंकरोंके समयमे एकरूपमे वर्त्तमान रहता है। उसमे विषयका परिवर्त्तन नही होता है। जो शाश्वतिक सत्य हैं और जिन मूल्योंमें त्रैकालिक स्थायित्व हैं, उन मूल्योमे कभी परिवर्तन नही होता। वे अनादि हैं। उनमे किसी भी तीर्थंकरके तीर्थकालमे किञ्चित् परिवर्त्तन दिखलाई नही पड़ता।

श्रुतधराचार्योंने अग और पूर्व साहित्यकी परम्पराको जीवन्त बनाये रखनेमे अपूर्व योगदान दिया है। गुणधर, धरसेन, पुष्पदन्त, भूतबलि, आर्यमक्षु, नागहस्ति, वज्रयश, चिरन्तनाचार्य, यतिवृषभ, उच्चारणाचार्य, वप्पदेव, कुन्दकुन्द, वट्टकेर, शिवार्य, स्वामीकुमार एवं गृद्धपिच्छाचार्य आदिने कर्मप्राभृत-साहित्यका सम्वर्द्धन एव प्रणयन किया है।

इन आचार्योंने कर्म और आत्माके सम्बन्धसे जन्य विभिन्न क्रिया-प्रतिक्रियाओके विवेचनके लिए 'पेज्जदोसपाहुड', 'षट्खण्डागम', 'चूर्णिसूत्र', 'व्याख्यानसूत्र', 'उच्चारणवृत्ति' आदिका प्रणयन कर सिद्धान्त-साहित्यको समृद्ध किया है। यहाँ यह स्मरणीय है कि कर्मसाहित्यका मूल उद्गमस्थान कर्मप्रवाद नामक अष्टम पूर्व है और इस पूर्वका कथन वर्त्तमान कल्पमे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवसे अन्तिम तीर्थंकर महावीर तक समानरूपसे होता आया है। कर्मका स्वरूप, कर्मद्रव्य, कर्म और आत्माका सम्बन्ध, तज्जन्य अशुद्धि एव आत्माकी विभिन्न अवस्थाओका विवेचन कर्मसिद्धान्तका प्रधान वर्ण्य विषय है। आचार्योंने कर्म एव आत्माके सम्बन्धको अनादि स्वीकार कर भी कर्मको विभिन्न अवस्थाओ एव स्वरूपोका प्रतिपादन किया है।

गुणधर और धरसेनने कर्म-सिद्धान्तका विवेचन सूत्ररूपमे किया है। पुष्पदन्त और भूतबलिने 'षट्खण्डागम'के रूपमे सूत्रोका अवतारकर जीवट्ठाण, खुद्दाबन्ध, बधसामित्तविचय, वेदना, वग्गणा और महाबन्ध, इन छह खण्डरूपोमे सूत्रोका प्रणयन कर कर्मसिद्धान्तका विस्तारपूर्वक निरूपण किया। अनन्तर वीरसेनाचार्य और जिनसेनाचार्यने 'धवला' एव 'जयधवला' टीकाओ द्वारा उसकी विस्तृत व्याख्याएँ प्रस्तुत की है।

उद्गमस्थानमे जिस प्रकार नदीका स्रोत बहुत ही छोटा होता है और उसकी पतली धाराकी गति भी मन्द ही रहती है। पर जैसे-जैसे नदीका यह स्रोत उत्तरोत्तर आगे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसकी धारा बृहद् और तीव्र होती जाती है। समतल भूमिपर पहुँचकर इस धाराका आयाम स्वत. विस्तृत हो जाता है। इसी प्रकार कर्म-साहित्यकी यह धारा तीर्थंकर महावीरके मुखसे नि.सृत हो गणधर-श्रुतकेवलियो एवं अन्य आचार्योंको प्राप्तकर विकसित एव समृद्ध हुई है।

यह सार्वजनीन सत्य है कि युगके अनुकूल जीवन और जगत् सम्बन्धी आवश्यकताएँ उत्पन्न होती हैं। विचारक आचार्य इन आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए नये चिन्तन और नये आयाम उपस्थित करते हैं। अत. किसी भी प्रकारके साहित्यमे विषय विस्तृत होना ध्रुव नियम है। जब किसी भी विचार-को साहित्यकी तकनीकमे ग्रथित किया जाता है, तो वह छोटा-सा विचार भी एक सिद्धान्त या ग्रन्थका रूप धारण कर लेता है। 'कर्मप्रवाद'मे कर्मके बन्ध, उदय, उपशम, निर्जरा आदि अवस्थाओका, अनुभागबन्ध एवं प्रदेशबन्धके आधारो तथा कर्मोंकी जघन्य, मध्य, उत्कृष्ट स्थितियोका कथन किया गया है। 'कर्मप्रवाद'का यह विषय आगमसाहित्यमे गुणस्थान और मार्गणाओंके भेदक्रमानुसार विस्तृत और स्पष्ट रूपमे अकित है।

आचार्यपरम्परा और कर्मसाहित्य

पौद्गलिक कर्मके कारण जीवमे उत्पन्न होनेवाले रागद्वेषादि भाव एव कषाय आदि विकारोका विवेचन भी आगमसाहित्यके अन्तर्गत है। कर्मबन्धके कारण ही आत्माने अनेक प्रकारके विभाव उत्पन्न होते हैं और इन विभावोसे जीवका ससार चलता है। कर्म और आत्माका बन्ध दो स्वतन्त्र द्रव्योका बन्ध है, अत यह टूट सकता है और आत्मा इस कर्मबन्धसे नि सग या निर्लिप्त हो सकती है। कर्मबन्धके कारण ही इस अशुद्ध आत्माकी दशा अर्द्ध भौतिक जैसी है। यदि इन्द्रियोका समुचित विकास न हो तो देखने और सुननेकी शक्तिके रहनेपर भी वह शक्ति जैसी-की-तैसी रह जाती है और देखना-सुनना नही हो पाता। इसी प्रकार विचारशक्तिके रहनेपर भी यदि मस्तिष्क यथार्थ रूपसे कार्य नही करता, तो विचार एव चिन्तनका कार्य नही हो पाता। अतएव इस कथनके आलोकमे यह स्पष्ट है कि अशुद्ध आत्माकी दशा और उसका समस्त उत्कर्ष-अपकर्ष पौद्गलिक कर्मोंके अधीन है। इन कर्मोके उपशम एवं क्षयोपशमके निमित्तसे ही जीवमे ज्ञानशक्ति उद्बुद्ध होती है। कर्मके क्षयो-पशमकी तारतम्यता ही ज्ञानशक्तिकी तारतम्यताका कारण बनती है। इस

प्रकार श्रुतधराचार्योने कर्मसिद्धान्तके आलोकमे आत्माको कथञ्चित् मूर्त्तिक एव अमूर्त्तिक रूपमे स्वीकार किया है। अपने स्वाभाविक गुणोके कारण यह आत्मा चैतन्य ज्ञान-दर्शन-सुखमय है और है अमूर्तिक। पर व्यवहारनयकी दृष्टिसे कर्मबद्ध आत्मा मुर्त्तिक है। अनादिसे यह शरीर आत्माके साथ सम्बद्ध मिलता है। स्थूल शरीरको छोडनेपर भी सूक्ष्म कर्म शरीर इसके साथ रहता है। इसी सूक्ष्म कर्मशरीरके नाशका नाम मुक्ति है। आत्माकी स्वतन्त्र-सत्ता होनेपर भी इसका विकास अशुद्ध दशामे अर्थात् कर्मबन्धकी दशामे देहनिमित्तक है।

यह कर्मबद्ध आत्मा रागद्वेषादिसे जब उत्तप्त होती है; तब शरीरमे एक अद्भुत हलनचलन हो जाता है। देखा जाता है कि क्रोधावेगके आते ही नेत्र लाल हो जाते हैं, रक्तकी गति तीव्र हो जाती है, मुख सूखने लगता है और नथुने फडकने लगते हैं। जब कामवासना जागृत होती है तो शरीरमे एक विशेष प्रकारका मन्थन आरम्भ हो जाता है। जब तक ये विकार या कषाय शान्त नही होते, तब तक उद्वेग बना रहता है। आत्माके विचारो, चिन्तनो, आवेगो और क्रियाओके अनुसार पुद्‌गलद्रव्योमे भी परिणमन होता है और उन विचारो एवं आवेगोसे उत्तेजित हो पुद्‌गल परमाणु आत्माके वासनामय सूक्ष्म कर्मशरीरमे सम्मिलित हो जाते हैं। उदाहरणार्थ यह समझा जा सकता है कि अग्निसे तप्त लोहेके गोलेको पानीमे छोड़ा जाय, तो वह तप्त गोला जलके बहुत-से परमाणुओको अपने भीतर सोख लेता है। जब तक वह गरम रहता है, तब तक पानीमे उथलपुथल होती रहती है। कुछ परमाणुओको खीचता है एवं कुछको निकालता है और कुछको भाप बनाकर बाहर फेंक देता है। आशय यह है कि लौहपिण्ड अपने पार्श्ववर्ती वातावरणमें एक अजीब स्थिति उत्पन्न करता है। इसी प्रकार रागद्वेषाविष्ट आत्मामे भी स्पन्दन होता है और इस स्पन्दनसे पुद्‌गलपरमाणु आत्माके साथ सम्बद्ध होते हैं।

संचित कर्मोके कारण रागद्वेषादि भाव उत्पन्न होते हैं और इन रागादि भावोसे कर्मपुद्‌गलोका आगमन होता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक कि श्रद्धा, विवेक और चारित्रसे रागादि भावोको नष्ट नही किया जाता। तात्पर्य यह कि जीवकी रागद्वेषादिवासनाये और पुद्‌गलकर्मबन्धकी धाराएँ बीज-वृक्षकी सततिके समान अनादिकालसे प्रचलित हैं। पूर्वसचित कर्मके उदयसे वर्त्तमान समयमे रागद्वेषादि उत्पन्न होते हैं और तत्कालमे जीवकी जो लगन एव आसक्ति होती है, वही नूतन बन्धका कारण बनती है। अतएव रागादिकी उत्पत्ति और कर्मबन्धकी यह प्रक्रिया अनादि है।

सम्यग्दृष्टि जीव पूर्वकर्मोके उदयसे होनेवाले रागादि भावोको अपने

विवेकसे शान्त करता है। वह कर्मफलोमे आसक्ति नही रखता इस प्रकार पुरातन सचित कर्म अपना फल देकर नष्ट हो जाते है और किसी नये कमका स्थिति-अनुभागवन्ध नही होता है। आत्म-सत्ताकी श्रद्धा करनेवाला निष्ठावान् व्यक्ति सयम, विवेक, तपश्चरणके कारण कर्मवन्धकी प्रक्रियासे छुटकारा प्राप्त करता है। पर मिथ्यादृष्टि देहात्मवादी नित्य नई वासना और आसक्तिके कारण तीव्र स्थिति और अनुभागवन्ध करता है। जो जीव पुरुषार्थी, विवेकी और आत्मनिष्ठावान् है, वह निर्जरा, उत्कर्ष, अपकर्ष, सक्रमण आदि कर्म-करणोंको प्राप्त करता है, जिससे प्रतिक्षण वन्धनेवाले अच्छे या बुरे कर्मोंमे शुभभावोसे शुभकर्मोंमे रसप्रकर्ष स्थित होकर अशुभकर्मोंमें रसहीनता एव स्थितिच्छेद उत्पन्न होता है।

श्रुतधराचार्योंने कर्मसिद्धान्तके अन्तर्गत प्रतिसमय होनेवाले अच्छे-बुरे भावोके अनुसार तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दन्तर और मन्दतम रूपोंमें कर्मकी विपाक-स्थितिका वर्णन किया है। ससारी आत्मा कर्मोके इस विपाकके कारण ही सुख-दुखका अनुभव करती है। यह भौतिक जगत पुद्गल एव आत्मा दोनोसे प्रभावित होता है। जब कर्मका एक भौतिक पिण्ड अपनी विशिष्ट शक्तिके कारण आत्मासे सम्बद्ध होता है तो उसकी सूक्ष्म एवं तीव्र शक्तिके अनुसार बाह्य पदार्थ भी प्रभावित होते हैं और प्राप्त सामग्रीके अनुसार उस सचित कर्मका तीव्र, मन्द और मध्यम फल मिलता है।

कर्म और आत्माके वन्धनका यह चक्र अनादि कालसे चला आ रहा है और तव तक चलता रहेगा, जब तक बन्धहेतु रागादिवासनाओका विनाश नही होता। श्रुतधर आचार्य कुन्दकुन्दने बताया है

जो खलु ससारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्म कम्मादो होदि गदिसु गदी॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायते।
तेहिं दु विसयग्गहण तत्तो रागो व दोसो वा॥
जायदि जीवस्सेव भावो संसारचक्कवालम्मि।
इदि जिणवरेंहि भणिदो अणादिणिघणो सणिधणो वा॥[1]

श्रुतधराचार्योंने स्पष्टरूपसे बताया है कि आत्मा अनादिकालसे अशुद्ध है, पर प्रयोग द्वारा इसे शुद्ध किया जा सकता है। एकबार शुद्ध होनेपर फिर इसका अशुद्ध होना संभव नही, यत बाधक कारणोके नष्ट होनेसे पुन. अशुद्धि आत्मामे

1 पञ्चास्तिकाय, कुन्दकुन्द, भारती श्रुतमण्डल ग्रथ-प्रकाशन समिति, फल्टन सन् १९७०, गाथा १२८ से १३० तक।

उत्पन्न नहीं हो सकती। आत्माके प्रदेशोंमे संकोच और विस्तार भी कर्मके निमित्तसे होता है। कर्म निमित्तके हटते ही आत्मा अपने अन्तिम आकारमे रह जाती है और उर्ध्वलोकके अग्रभागमे स्थित हो अपने अनन्तचैतन्यमे प्रतिष्ठित हो जाती है।

श्रुतधराचार्योंने कर्मसिद्धान्तके इस प्रसगमे अध्यात्मवाद, तत्त्वज्ञान, अनेकान्तवाद, आचार आदिका भी विवेचन किया है। गुणस्थान, जीवसमास, मार्गणा आदिकी अपेक्षासे कर्मबन्ध, जीवके भाव, उनकी शुद्धि-अशुद्धि, योग-ध्यान आदिका विवेचन किया है।

नय-वादकी अपेक्षासे आत्माका निरूपण करते हुए निश्चयनयकी अपेक्षा आत्माको शुद्ध चैतन्यभावोका कर्त्ता और भोक्ता माना है। पर व्यवहार-नयकी अपेक्षासे यह आत्मा कर्मबन्धके कारण अशुद्ध है और राग-द्वेष-मोहादि की कर्त्ता और तज्जन्य कर्मफलोंकी भोक्ता है। अतएव सक्षेपमे यही कहा जा सकता है कि श्रुतधराचार्योंने सिद्धान्त-साहित्यका प्रणयन कर तीर्थंकर महावीर-की ज्ञानज्योतिको अखण्ड और अक्षुण्ण बनाये रखनेका प्रयास किया है।

द्वितीय परिच्छेदमे सारस्वताचार्यों द्वारा की गयी श्रुतसेवाका प्रतिपादन किया गया है। सारस्वताचार्योंमे सर्वप्रमुख आचार्य समन्तभद्र हैं। इनके पश्चात् सिद्धसेन, पूज्यपाद, पात्रकेसरी, जोइन्दु, विमलसूरि, ऋषिपुत्र, मानतुग, रविषेण, जटासिंहनन्दि, एलाचार्य, वीरसेन, अकलक, जिनसेन द्वितीय, विद्यानन्द, देवसेन, अमितगति प्रथम, अमितगति द्वितीय, अमृतचन्द्र, नेमिचन्द्र आदि आचार्योंने प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग और चरणानुयोगकी रचना कर वाङ्मयको पल्लवित किया है। इन सारस्वताचार्योंने उत्पादादि-त्रिलक्षण-परिमाणवाद, अनेकान्तदृष्टि, स्याद्वाद-भाषा और आत्मद्रव्यकी स्वतन्त्र सत्ता इन चार मूल विषयोपर विचार किया है।

दार्शनिक युग और स्याद्वाद

दार्शनिक युगके सर्वप्रथम आचार्य समन्तभद्रने सैद्धान्तिक एव आगमिक परिभाषाओं और शब्दोंको दार्शनिक रूप प्रदान किया है। इन्होंने एकान्तवादोंकी आलोचनाके साथ-साथ अनेकान्तका स्थापन, स्याद्वादका लक्षण, सुनय-दुर्नयकी व्याख्या और अनेकान्तमें अनेकान्त लगानेकी प्रक्रिया बतलायी है। प्रमाणका लक्षण 'स्वपरावभासक बुद्धि' को बतलाया है। समन्तभद्रने बतलाया है कि तत्त्व अनेकान्तरूप है और अनेकान्त विरोधी दो धर्मोके युगलके आश्रयसे प्रकाशमें आनेवाले वस्तुगत सात धर्मोका समुच्चय है और ऐसे-ऐसे

अनन्त धर्मसमुच्चय विराट अनेकान्तात्मकतत्त्व-सागरमे अनन्त लहरोंके समान तरंगित हो रहे है और उसमे अनन्त सप्तभगियाँसमाहित है। वक्ता किसी धर्मविशेषको विवक्षावश मुख्य या गौणरूपमे ग्रहण करता है। इस प्रकार समन्तभद्रने सप्तभगीका परिष्कृत प्रयोग कर अनेकान्तकी व्यवस्था प्रदर्शित की है। यथा

१ स्यात् सद्रूप ही तत्त्व है।
२ स्यात् असद्रूप ही तत्त्व है।
३ स्यात् उभयरूप ही तत्त्व है।
४ स्यात् अनुभय (अवक्तव्य) रूप ही तत्त्व है।
५ स्यात् सद् और अवक्तव्य रूप ही तत्त्व है।
६ स्यात् असद् और अवक्तव्य रूप ही तत्त्व है।
७ स्यात् सद् और असद् तथा अवक्तरूप ही तत्त्व है।[१]

इन सप्तभङ्गोमे प्रथम भंग स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षासे, द्वितीय पर-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षासे, तृतीय दोनोकी सम्मिलित अपेक्षाओसे, चतुर्थ दोनो सत्त्व-असत्त्वको एक साथ कह न सकनेसे, पचम प्रथम-चतुर्थके सयोगसे, षष्ठ द्वितीय-चतुर्थके मेलसे, सप्तम तृतीय-चतुर्थके सम्मिलित रूपसे विवक्षित है। प्रत्येक भगका प्रयोजन पृथक्-पृथक् रूपमे अभीष्ट है।

समन्तभद्रने सदसद्के स्याद्वादके समान अद्वैत-द्वैतवाद, शाश्वत-अशाश्वतवाद, वक्तव्य-अवक्तव्यवाद, अन्यता-अनन्यतावाद, अपेक्षा-अनपेक्षावाद, हेतु-अहेतुवाद, विज्ञान-बहिरर्थवाद, दैव-पुरुषार्थवाद, पाप-पुण्यवाद और बन्ध-मोक्षकारणवाद-पर भी विचार किया है। तथा सप्तभगीकी योजना कर स्याद्वादकी स्थापना की है। इस प्रकार समन्तभद्रने तत्त्वविचारको स्याद्वाददृष्टि प्रदान कर विचारसघर्षको समाप्त किया है। समन्तभद्रका अभिमत है कि तात्त्विक विचारणा अथवा आचार-व्यवहार, जो कुछ भी हो, सब अनेकान्तदृष्टिके आधारपर किया जाना चाहिए। अत समस्त आचार और विचारकी नीव अनेकान्तदृष्टि ही है। यही दृष्टि वैयक्तिक और सामष्टिक समस्याओके समाधानके लिए कुञ्जी है।

समन्तभद्रको सप्तभंगीका स्वरूप आचार्य कुन्द-कुन्दसे विरासतके रूपमे प्राप्त हुआ था। उन्होने इस रूपको पर्याप्त विकसित और सुव्यवस्थित किया है। विचारसहिष्णुता और समता लानेका उनका यह प्रयत्न श्लाघनीय है।

१ देवागम, वीर-सेवा-मन्दिरट्रस्ट प्रकाशन, डॉ० दरबारीलाल कोठिया द्वारा लिखित प्रस्तावना पृ० ४४।

समन्तभद्रके पश्चात् सिद्धसेनने नय और अनेकान्तका गभीर, विशद एव मौलिक विवेचन किया है। समन्तभद्रके प्रमाणके 'स्वपरावभासक लक्षण'मे 'बाधविवर्जित'[1] विशेषण देकर उसे विशेष समृद्ध किया। ज्ञानकी प्रमाणता और अप्रमाणताका आधार 'मेयनिश्चय'को माना।

पात्रकेसरी और श्रीदत्तने क्रमश 'त्रिलक्षणकदर्थन' एव 'जल्पनिर्णय' ग्रन्थोकी रचना कर 'अन्यथानुपपन्नत्व' रूप हेतुलक्षण प्रतिष्ठित किया तथा वादका सागोपाग निरूपण कर पर-समयमीमासा प्रस्तुत की।

आचार्य अकलकदेवने जैन न्यायशास्त्रकी सुदृढ प्रतिष्ठा कर प्रमाणके प्रत्यक्ष और परोक्ष ये दो भेद बतलाये तथा प्रत्यक्षके मुख्यप्रत्यक्ष, सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष ये दो भेद किये है। परोक्षप्रमाणके भेदोमे स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगमको बतलाया है। उत्तरकालिन आचार्योने अकलकद्वारा प्रतिष्ठापित प्रमाणपद्धतिको पल्लवित और पुष्पित किया है। अकलकदेवने लघीयस्त्रयसवृत्ति, न्यायविनिश्चयसवृत्ति, सिद्धिविनिश्चयसवृत्ति और प्रमाणसग्रहसवृत्ति इन मौलिक ग्रन्थोकी रचना की है। तत्पार्यवार्तिक और अष्टशती इनके टीकाग्रन्थ हैं। अकलकने इन ग्रन्थोमे प्रमाण और प्रमेयकी व्यवस्यामे पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। द्रव्यपर्यायात्मक वस्तुका प्रमाणविपयत्व तथा अर्थक्रियाकारित्वके विवेचनके पश्चात् नित्यैकान्त आदिका निरसन किया है। सुनय, दुर्नय, द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक आदिका स्वरूपविवेचन भी कम महत्त्वपूर्ण नही है। अकलकके पश्चात् आचार्य विद्यानन्दने तत्पार्थश्लोकवार्तिक, अष्टसहस्री, आप्तपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, सत्यशासनपरीक्षा जैसे जैन न्यायके मूर्धन्य ग्रन्थोका प्रणयन कर जैनदर्शनको सुव्यवस्थित बनाया है। ज्ञेयको जानने-देखने, समझने और समझानेकी दृष्टियोका नय और सप्तभगी द्वारा स्पष्टीकरण किया गया है। विद्यानन्दने विभिन्न दार्शनकारो द्वारा स्वीकृत आप्तोकी समीक्षा कर आप्तत्व एव सर्वज्ञत्वको प्रतिष्ठा की है। इन्होने सविकल्पक एव निर्विकल्पक ज्ञानकी प्रामाणिकताका भी विचार किया है। अभ्यास, प्रकरण, बुद्धिपाटव आदिसे निर्विकल्पको प्रमाण नही माना जा सकता। स्वलक्षणरूप परमाणुपदार्थ ज्ञानका विषय तभी बन सकता है जब स्थूल बाह्य पदार्थोका अस्तित्व स्वीकार किया जाय। विद्यानन्दने

१ प्रमाण स्वपराभासि ज्ञान, बाधविवर्जितम्।
प्रत्यक्ष च परोक्ष च द्विधा, मेयविनिश्चयात्॥
न्यायावतार, सम्पादक डॉ० पी० एल० वैद्य, प्रकाशक जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस, बम्बई, सन् १९२८ कारिका १।

पुरुषाद्वैत, शब्दाद्वैत, विज्ञानाद्वैत, चित्राद्वैत, चार्वाक, बौद्ध, सेश्वरसाख्य, निरीश्वरसाख्य, नैयायिक, वैशेषिक, भाट्ट आदिके मतव्योकी समीक्षा की हैं। प्रमेयोका स्पष्टीकरण बहुत ही सुन्दर रूपमे किया गया है।

द्रव्यगुण-पर्यायविषयक देन

द्रव्यविवेचनके क्षेत्रमे श्रुतधराचार्य कुन्दकुन्दने जो मान्यताएँ प्रतिष्ठित की थी, उनका विस्तार एलाचार्य, अमृतचन्द्र, अमितगति, वीरसेन, जोइन्दु आदि आचार्योने किया है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्यो और उनके गुण-पर्यायोका निरूपण किया गया है। जीवका चैतन्य आसाधारण गुण है। बाह्य और अभ्यन्तर कारणोसे इस चैतन्यके ज्ञान और दर्शन रूपसे दो प्रकारके परिणमन होते हैं। जिस समय चैतन्य 'स्व'से भिन्न किसी ज्ञेयको जानता है, उस समय वह ज्ञान कहलाता है। और जब चैतन्यमात्र चैतन्याकार रहता है तब वह दर्शन कहलाता है। जीवमे ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि गुण पाये जाते हैं।

पुद्गलद्रव्यमे रूप, रस, गन्ध और स्पर्श गुण रहते है। जो द्रव्य स्कन्ध अवस्थामे पूरण अर्थात् अन्य-अन्य परमाणुओसे मिलन और गलन अर्थात् कुछ परमाणुओका बिछुडना, इस तरह उपचय और अपचयको प्राप्त होता है वह पुद्गल कहलाता है। समस्त दृश्य जगत इस पुद्गलका ही विस्तार है। मूल दृष्टिसे पुद्गलद्रव्य परमाणुरूप ही है। अनेक परमाणुओसे मिलकर जो स्कन्ध बनता है वह सयुक्तद्रव्य है। स्कन्धोका बनाव और मिटाव परमाणुओकी बन्धशक्ति और भेदशक्तिके करण होता है।

प्रत्येक परमाणुमे स्वभावसे एक रस, एक रूप, एक गन्ध और दो स्पर्श होते हैं। परमाणु अवस्था ही पुद्गलकी स्वाभाविक पर्याय और स्कन्ध अवस्था विभाव पर्याय है। परमाणु परमातिसूक्ष्म है, अविभागी है, शब्दका कारण होकर भी स्वय अशब्द है। शाश्वत होकर भी उत्पाद और व्यय युक्त है।

स्कन्ध अपने परिणमनकी अपेक्षासे छह प्रकारका है- १ बादर-बादर जो स्कन्ध छिन्न-भिन्न होने पर स्वय न मिल सकें, वे लकडी, पत्थर, पर्वत्त, पृथ्वी आदि बादर-बादर स्कन्ध कहलाते हैं। २ बादर जो स्कन्ध छिन्न-भिन्न होने पर स्वय आपसमे मिल जायँ, वे बादर स्कन्ध है, जैसे दूध, घी, तैल, पानी आदि। ३ बादर-सूक्ष्म जो स्कन्ध दिखनेमे तो स्थूल हो, लेकिन छेदने-भेदने और ग्रहण करनेमे न आवें, वे छाया, प्रकाश, अन्धकार, चाँदनी आदि बादर-सूक्ष्म स्कन्ध हैं। ४. सूक्ष्म-बादर जो सूक्ष्म होकरके भी स्थूलरूपमे दिखें, वें पाँचो इन्द्रियोके विषय स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द सूक्ष्म-बादर स्कन्ध हैं।

५ सूक्ष्म जो सूक्ष्म होनेके कारण इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण न किये जा सकते हों, वे कर्मवर्गणा आदि सूक्ष्म स्कन्ध हैं। ६ अतिसूक्ष्म कर्मवर्गणासे भी छोटे द्वयणुक स्कन्ध तक अतिसूक्ष्म हैं।

समान्यत पुद्गलके स्कन्ध, स्कन्धदेश, स्कन्धप्रदेश और परमाणु ये चार विभाग हैं। अनन्तानन्त परमाणुओसे स्कन्ध बनता है। उससे आधा स्कन्धदेश और स्कन्धदेशका आधा स्कन्धप्रदेश कहलाता है। परमाणु सर्वत अविभागी होता है। शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, सस्थान, भेद, अन्धकार, छाया, प्रकाश, उद्योत और गर्मी आदि पुद्गलद्रव्यके ही पर्याय हैं।

अनन्त आकाशमे जीव और पुद्गलोका गमन जिस द्रव्यके कारण होता है वह धर्मद्रव्य है। यहाँ धर्मद्रव्य पुण्यका पर्यायवाची नहीं। यह असख्यातप्रदेशी द्रव्य है। जीव और पुद्गल स्वय गतिस्वभाववाले हैं। अत इनके गमन करनेमे जो साधारण कारण होता है वह धर्मद्रव्य है। यह किसी जीव या पुद्गलको प्रेरणा करके नहीं चलाता, किन्तु जो स्वयं गति कर रहा है उसे माध्यम बनकर सहारा देता है। इसका अस्तित्व लोकके भीतर तो है ही, पर लोकसीमाओपर नियत्रकके रूपमे है। धर्मद्रव्यके कारण ही समस्त जीव और पुद्गल अपनी यात्रा उसी सीमा तक समाप्त करनेको विवश हैं। उससे आगे नही जा सकते।

जिस प्रकार गतिके लिए एक साधारण कारण धर्मद्रव्य अपेक्षित है, उसी तरह जीव एवं पुद्गलोकी स्थितिके लिए एक साधारण कारण अधर्मद्रव्य अपेक्षित है। यह लोकाकाशके बराबर है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्दसे रहित, अमूर्तिक, निष्क्रिय और उत्पाद-व्ययके परिणमनसे युक्त नित्य है। अपने स्वाभाविक सतुलन रखनेवाले अनन्त अगुरुलघुगुणोसे उत्पाद-व्यय करता हुआ यह स्थितशील जीव-पुद्गलोकी स्थितिमे साधारण कारण होता है। धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य लोक और अलोक विभागके सद्भावसूचक प्रमाण है।

समस्त जीव, अजीव आदि द्रव्योको जो अवगाह देता है अर्थात् जिसमे ये समस्त द्रव्य युगपत् अवकाश पाते है, वह आकाशद्रव्य है। आकाश अनन्त-प्रदेशी है। इसके मध्य भागमे चौदह राजू ऊँचा पुरुषाकार लोक स्थित है, जिसके कारण आकाश लोकाकाश और अलोकाकाशके रूपमें विभाजित हो जाता है। लोकाकाश असख्यातप्रदेशोमे है। शेष अनन्त प्रदेशोमे अलोक है, जहाँ केवल आकाश ही आकाश है। यह निष्क्रिय है और रूप, रस, गन्ध, स्पर्श एव शब्द आदिसे रहित होनेके कारण अमूर्तिक है।

समस्त द्रव्योके उत्पादादिरूप परिणमनमे सहकारी कालद्रव्य होता है। इसका स्वरूप 'वर्त्तना' लक्षण है। यह स्वय परिणमन करते हुए अन्य द्रव्योके परिणमनमे सहकारी होता है। यह भी अन्य द्रव्यो के समान उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्त है। प्रत्येक लोकाकाशके प्रदेशपर एक-एक कालाणुद्रव्य अपनी स्वतत्र सत्ता रखता है। धर्म और अधर्म द्रव्यके समान यह कालद्रव्य एक नही है, यत प्रत्येक लोकाकाशके प्रदेशपर समय-भेद स्थित रहनेसे यह अनेक रत्नोकी राशिके समान पिण्डद्रव्य है। द्रव्योमे परत्व, अपरत्व, पुरातनत्व, नूतनत्व, अतीत, वर्त्तमान और अनागतत्वका व्यवहार कालद्रव्यके कारण ही होता है।

प्रत्येक द्रव्यमे सामान्य और विशेष गुण पाये जाते है। प्रत्येक गुणका भी प्रतिसमय परिणमन होता है। गुण और द्रव्यका कथञ्चित् तदात्म्यसम्बन्ध है। द्रव्यसे गुणको पृथक नही किया जा सकता। इसलिए वह अभिन्न है और सज्ञा, सख्या, प्रयोजन आदिके भेदसे उसका विभिन्न रूपसे निरूपण किया जाता है, अत वह भिन्न है। इस दृष्टिसे द्रव्यमे जितने गुण है उतने उत्पाद और व्यय प्रतिसमय होते है। प्रत्येक गुण अपने पूर्व पर्यायको त्यागकर उत्तरपर्यायको धारण करता है। पर उन सबकी द्रव्यसे भिन्न सत्ता नही रहती है। सूक्ष्मतया देखनेपर पर्याय और गुणको छोडकर द्रव्यका कोई पृथक अस्तित्व नही है, गुण और पर्याय ही द्रव्य है। पर्यायोमे परिवर्त्तन होनेपर भी जो एक अनच्छिन्नताका नियामक अश है, वही तो गुण है। गुणोको सहभावी एव अन्वयी तथा पर्यायोको व्यतिरेकी और क्रमभावी माना जाता है। पर्याय, गुणोका परिणाम या विकार होती है।

द्रव्य, गुण और पर्यायके विवेचनके साथ जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वोका निरूपण भी किया गया है। आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा और मोक्ष तत्त्व दो-दो प्रकारके होते है द्रव्य और भावरूप। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योगरूप आत्मपरिणामोसे कर्मपुद्गलोका आगमन, जिन भावोसे होता है वे भावास्रव कहलाते है। और पुद्गलोका आना द्रव्यास्रव है। भावास्रव जीवगत पर्याय है और द्रव्यास्रव पुद्गलगत। जिन कषायोसे कर्म बन्धते हैं, वे जीवगत कषायादि भावभावबन्ध हैं और पुद्गलकर्मका आत्मसे सम्बन्ध हो जाना द्रव्यबन्ध है। भावबन्ध जीवरूप है और द्रव्यबन्ध पुद्गलरूप। व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा और परिषहजयरूप भावोसे कर्मोके आनेको रोकना भावसवर है। और कर्मोका रुक जाना द्रव्यसवर है। इसी प्रकार पूर्व सचित कर्मोका निर्जरण जिन तपादिभावोसे होता है वे भावनिर्जरा है और कर्मोका झडना द्रव्य-

निर्जरा है। जिन ध्यान आदि साधनोंसे मुक्ति प्राप्ति होती है वे भाव भावमोक्ष है और कर्मपुद्गलोंका आत्मासे छूट जाना द्रव्यमोक्ष है। इस प्रकार आस्रव, बन्ध, संवर निर्जरा और मोक्ष ये पाँच तत्त्व भावरूपमें जीवके पर्याय हैं और द्रव्यरूपमें पुद्गलके। जिनके भेदविज्ञानसे कैवल्यकी प्राप्ति होती है, उन आत्मा और परमें ये सातों तत्त्व समाहित हो जाते हैं। वस्तुतः जिस 'पर' की परतन्त्रताको दूर करना है और जिस 'स्व'को स्वतन्त्र होना है, उस 'स्व' और 'पर'के ज्ञानमें तत्त्वज्ञानकी पूर्णता हो जाती है।

अध्यात्मविषयक देन

जोइन्दुने आत्मद्रव्यके विशेष विवेचनक्रममें आत्माके तीन प्रकार बतलाये हैं- बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। जो शरीर आदि परद्रव्योंको अपना रूप मानकर उनकी ही प्रिय भोग-सामग्रीमें आसक्त रहता है वह बहिर्मुख जीव बहिरात्मा है। जिन्हें स्वपरविवेक या भेदविज्ञान उत्पन्न हो गया है, जिनकी शरीर आदि बाह्य पदार्थोंसे आत्मदृष्टि हट गयी है वे सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा हैं। जो समस्त कर्ममलकलंकोंसे रहित होकर शुद्ध चिन्मात्रस्वरूपमें मग्न हैं वे परमात्मा हैं। यह संसारी आत्मा अपने स्वरूपका यथार्थ परिज्ञान कर अन्तर्दृष्टि हो क्रमशः परमात्मा बन जाता है।

आचार्योंने चारित्र-साधनाका मुख्याधार जीवतत्वके स्वरूप और उसके समान अधिकारकी मर्यादाका तत्त्वज्ञान ही माना है। जब हम यह अनुभव करते हैं कि जगतमें वर्तमान सभी आत्माएँ अखण्ड और मूलतः एक-एक स्वतंत्र समान शक्तिवाले द्रव्य हैं। जिस प्रकार हमें अपनी हिंसा रुचिकर नहीं है, उसी प्रकार अन्य आत्माओंको भी नहीं है। अतएव सर्वात्मसमत्वकी भावना ही अहिंसाकी साधनाका मुख्य आधार है। आत्मसमानाधिकरणका ज्ञान और उसको जीवनमें उतारनेकी दृढ निष्ठा ही सर्वोदयकी भूमिका है और इसी भूमिकासे चारित्रका विकास होता है।

अहिंसा, संयम, तपकी साधनाएँ आत्मशोधनका कारण बनती हैं। सम्यक्-श्रद्धा, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ही आत्मस्वातंत्र्यकी प्राप्तिमें कारण है।

प्रबुद्धाचार्योंने तत्त्वज्ञान, प्रमाणवाद, पुराण, काव्य, व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि विषयोंका संवर्द्धन किया है। यह सत्य है कि जैसी मौलिक प्रतिभा श्रुतधर और सारस्वताचार्योंमें प्राप्त होती है, वैसी प्रबुद्धाचार्योंमें नहीं। तो भी जिनसेन प्रथम, गुणभद्र, पाल्यकीर्ति, वीरनन्दि, माणिक्यनन्दि, प्रभाचन्द्र, महासेन, हरिषेण, सोमदेव, वसुनन्दि, रामसेन, नयसेन, माघनन्दि, आदि आचार्योंने श्रुतकी अपूर्व साधना की है। इन्होंने चारों अनुयोगोंके विषयोंका

नये रूपमे ग्रथन, सम्पादन एव नयी व्याख्याएँ प्रस्तुत कर तीर्थंकरवाणीको समृद्ध बनाया है।

अध्यात्मके क्षेत्रमें आचार्य कुन्दकुन्दने जिस सरिताको प्रवाहित किया, उसे स्थिर बनाये रखनेका प्रयास सारस्वत और प्रबुद्धाचार्योंने किया है। इन्होने व्यक्तित्वके विकासके लिए आध्यात्मिक और नैतिक जीवनके यापनपर जोर दिया है। जब तक मनुष्य भौतिकवादमे भटकता रहेगा, तब तक उसे सुख, शान्ति और सतोषकी प्राप्ति नही हो सकती। जैन सस्कृतिका लक्ष्य भोग नही, त्याग है, सघर्ष नही, शान्ति है; विषाद नही, आनन्द है। जीवनके शोधनका कार्य आध्यात्मिकता द्वारा ही सभव होता है। भोगवादी दृष्टिकोण मानव-जीवनमे निराशा, अतृप्ति और कुण्ठाओको उत्पन्न करता है। जिससे अविश्वास, अविकार और स्वत्वकी लालसा अहर्निश बढती जाती है। प्रतिशोध एव विद्वेषके दावानलसे झुलसती मानवताका त्राण अध्यात्मवाद ही कर सकता है। यह अध्यात्मवाद कही बाहरसे आनेवाला नही, हमारी आत्माका धर्म है, हमारी चेतनाका धर्म है और है हमारी संस्कृतिका प्राणभूत तत्त्व।

मनुष्यजीवनमे दो प्रधान तत्त्व हैं दृष्टि और सृष्टि। दृष्टिका अर्थ है बोध, विवेक, विश्वास और विचार। सृष्टिका अर्थ है क्रिया, कृति, सयम और आचार। मनुष्यके आचारको परखनेकी कसौटी उसका विचार और विश्वास होता है। वास्तवमे मनुष्य अपने विश्वास, विचार और आचारका प्रतिफल है। दृष्टिकी विमलतासे जीवन अमल और धवल बन सकता है। यही कारण है कि आचार्योंने विचार और आचारके पहले दृष्टिकी विशुद्धिपर विशेष जोर दिया, क्योकि विश्वास और विचारको समझनेका प्रयत्न ही अपने स्वरूपको समझनेका प्रयत्न है।

अपने विशुद्ध स्वरूपको समझनेके लिए निश्चयदृष्टिकी आवश्यकता है। यह सत्य है कि व्यवहारको छोडना एक बडी भूल हो सकती है। पर निश्चय-को छोडना उससे भी अधिक भयकर भूल है। अनन्त जन्मोमे अनन्त बार इस जीवने व्यवहारको ग्रहण करनेका प्रयत्न किया है, किन्तु निश्चयदृष्टिको पकड़ने और समझनेका प्रयत्न एक बार भी नही किया है। यही कारण है कि शुद्ध आत्माकी उपलब्धि इस जीवको नही हो सकी और यह तब तक प्राप्त नही हो सकेगी, जब तक आत्माके विभावके द्वारको पारकर उसके स्वभावके मध्यद्वारमे प्रवेश नही किया जायेगा।

दु ख एव क्लेशप्रद परिणाम होनेसे पाप त्याज्य है। प्राणियोको दु खरूप होनेसे ही पाप रुचिकर नही है। पुण्य आत्माको अच्छा लगता है, क्योकि

उसका परिणाम सुख एवं समृद्धि है। इस प्रकार सुख एवं दुःख प्राप्तिकी दृष्टिसे संसारी आत्मा पापको छोड़ता है और पुण्यको ग्रहण करता है, किन्तु विवेकशील ज्ञानी आत्मा विचार करता है कि जिस प्रकार पाप बन्धन है, उसी प्रकार पुण्य भी एक प्रकारका बन्धन है। यह सत्य है कि पुण्य हमारे जीवन-विकासमे उपयोगी है, सहायक है। यह सब होते हुए भी पुण्य उपादेय नही है, अन्ततः वह हेय ही है। जो हेय है, वह अपनी वस्तु कैसे हो सकती है? आस्रव होनेके कारण पुण्य भी आत्माका विकार है, वह विभाव है, आत्माका स्वभाव नही। निश्चयदृष्टिसम्पन्न आत्मा विचार करता है कि संसारमें जितने पदार्थ हैं, वे अपने-अपने भावके कर्त्ता हैं, परभावका कर्त्ता कोई पदार्थ नही। जैसे कुम्भकार घट बनानेरूप अपनी क्रियाका कर्त्ता व्यवहार या उपचार मात्रसे है। वास्तवमे घट बननेरूप क्रियाका कर्त्ता घट है। घट बननेरूप क्रियामे कुम्भकार सहायक निमित्त है, इस सहायक निमित्तको ही उपचारसे कर्त्ता कहते है। तथ्य यह है कि कर्त्ताके दो भेद है परमार्थ कर्त्ता और उपचरित कर्त्ता। क्रियाका उपादान कारण ही परमार्थ कर्त्ता है, अतः कोई भी क्रिया परमार्थ कर्त्ताके बिना नही होती है। अतएव आत्मा अपने ज्ञान, दर्शन आदि चेतनभावोका ही कर्त्ता है, राग-द्वेष-मोहादिका नही। आचार्य नेमिचन्द्रने बताया है

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥[1]

व्यवहारनयसे आत्मा पुद्गलकर्म आदिका कर्त्ता है, निश्चयसे चेतन-कर्मका, और शुद्धनयकी अपेक्षा शुद्ध भावोका कर्त्ता है।

तथ्य यह है कि जब एक द्रव्य दूसरे द्रव्यके साथ बन्धको प्राप्त होता है, उस समय उसका अशुद्ध परिणमन होता है। उस अशुद्ध परिणमनमे दोनो द्रव्योंके गुण अपने स्वरूपसे च्युत होकर विकृत भावको प्राप्त होते हैं। जीवद्रव्यके गुण भी अशुद्ध अवस्थामे इसी प्रकार विकारको प्राप्त होते रहते है। जीवद्रव्यके अशुद्ध परिणमनका मुख्य कारण वैभाविकी शक्ति है और सहायकनिमित्त जीवके गुणोका विकृत परिणमन है। अतएव जीवका पुद्गलके साथ अशुद्ध अवस्थामे ही बन्ध होता है, शुद्ध अवस्था होनेपर विकृत परिणमन नही होता। विकृत परिणमन ही बन्धका सहायकनिमित्त है।

प्रमाण और अप्रमाण विषयक देन

प्रमाणके क्षेत्रमे सारस्वताचार्य और प्रबुद्धाचार्योंने विशेष कार्य किया है।

१. द्रव्यसंग्रह, गाथा ८।

ज्ञान, प्रमाण और प्रमाणाभासकी व्यवस्था बाह्य अर्थके प्रतिभास होने और प्रतिभासके अनुसार उसके प्राप्त होने और न होनेपर निर्भर है। इन आचार्योंने आगमिक क्षेत्रमें तत्वज्ञानसम्बन्धी प्रमाणकी परिभापाको दार्शनिक चिन्तनक्षेत्रमे उपस्थित कर प्रमाणसम्बन्धी सूक्ष्म चर्चाएँ निवद्ध की हैं। प्रमाणता और अप्रमाणताका निर्धारण बाह्य अर्थकी प्राप्ति और अप्राप्तिसे सम्बन्ध रखता है। आचार्य अकलकदेवने अविसवादको प्रमाणताका आधार मानकर एक विशेष बात यह बतलाई है कि हमारे ज्ञानोमे प्रमाणता और अप्रमाणताकी सकीर्ण स्थिति है। कोई भी ज्ञान एकान्तसे प्रमाण या अप्रमाण नही कहा जा सकता। इन्द्रियदोपसे होनेवाला द्विचन्द्रज्ञान भी चन्द्राशमे अविसवादी होनेके कारण प्रमाण है, पर द्वित्व अशमे विसवादी होनेके कारण अप्रमाण। इस प्रकार अकलकने ज्ञानकी एकातिक प्रमाणता या अप्रमाणताका निर्णय नही किया है, यत इन्द्रियजन्य क्षायोपशमिक ज्ञानोकी स्थिति पूर्ण विश्वसनीय नही मानी जा सकती। स्वल्पशक्तिक इन्द्रियोकी विचित्र रचनाके कारण इन्द्रियोंके द्वारा प्रतिभासित पदार्थ अन्यथा भी होता है। यही कारण है कि आगमिक परम्परामें इन्द्रिय और मनोजन्य मतिज्ञान और श्रुतज्ञानको प्रत्यक्ष न कहकर परोक्ष ही कहा गया है।

प्रामाण्य और अप्रामाण्यकी उत्पत्ति परसे ही होती है, ज्ञप्ति अभ्यासदशामे स्वत और अनभ्यासदशामें परत हुआ करती है। जिन स्थानोका हमे परिचय है उन जलाशयादिमे होनेवाला ज्ञान या मरीचि-ज्ञान अपने आप अपनी प्रमाणता और अप्रमाणता बता देता है, किन्तु अनिश्चित स्थानमे होनेवाले जलज्ञानकी प्रमाणताका ज्ञान अन्य अविनाभावी स्वत प्रमाणभूत ज्ञानोसे होता है। इस प्रकार प्रमाण और प्रामाण्यका विचार कर तदुत्पत्ति, तदाकारता, इन्द्रियसन्निकर्ष, कारकसाकल्य आदिकी विस्तारपूर्वक समीक्षा की है। प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाणोके भेदोका प्रतिपादन कर अन्य दार्शनिको द्वारा स्वीकृत प्रमाण-भेदोकी समीक्षा की गयी है।

अकलकदेवने प्रमाणसग्रहमे श्रुतके प्रत्यक्षनिमित्तक, अनुमाननिमित्तक और आगमनिमित्तक ये तीन भेद किये है।[1] परोपदेशसे सहायता लेकर उत्पन्न होनेवाला श्रुत प्रत्यक्षपूर्वक श्रुत है, परोपदेश सहित हेतुसे उत्पन्न होनेवाला श्रुत अनुमानपूर्वक श्रुत और केवल परोपदेशसे उत्पन्न होनेवाला श्रुत आगमनिमित्तक श्रुत है। प्रमाणचिन्तनके पश्चात् प्रमाणाभासोका विचार किया

१ श्रुतमविप्लव प्रत्यक्षानुमानागमनिमित्तम् प्रमाणसग्रह, पृ० १।

गया है। द्वैत-अद्वैतसमीक्षाके अनन्तर सर्वज्ञ-सिद्धि, स्याद्वादसिद्धि, सप्तभंगी आदिका विचार किया गया है। निश्चयतः जैन लेखकोंकी प्रमाणमीमांसा भारतीय प्रमाणमीमांसामें अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

व्याकरणविषयक देन

जैनाचार्योंने भाषाको सुव्यवस्थित रूप देनेके लिए व्याकरणग्रन्थोंकी रचना की है। आचार्य देवनन्दिने अपने शब्दानुशासनमें श्रीदत्त, यशोभद्र, भूतबलि, प्रभाचन्द्र, सिद्धसेन और समन्तभद्र इन छः वैयाकरणोंके नाम निर्दिष्ट किये हैं। देवनन्दिने जैनेन्द्रव्याकरणकी रचना कर कुछ ऐसी मौलिक बातें बतलायी हैं, जो अन्यत्र प्राप्त नहीं होतीं। उन्होंने लिखा है "स्वाभाविकत्वादभिधानस्यैकशेषानारम्भः" (१।१।९९) शब्द स्वभावसे ही एकशेषकी अपेक्षा न कर एकत्व, द्वित्व और बहुत्वमें प्रवृत्त होता है। अतः एकशेष मानना निरर्थक है। यही कारण है कि इनका व्याकरण 'अनेकशेष' कहलाता है। इन्होंने शब्दोंकी सिद्धि अनेकान्त द्वारा प्रदर्शित की है "सिद्धिरनेकान्तात्" (१।१।१) अर्थात् नित्यत्व, अनित्यत्व, उभयत्व, अनुभयत्व प्रभृति नाना धर्मोंसे विशिष्ट धर्मी रूप शब्दकी सिद्धि अनेकान्तसे ही संभव है। इस प्रकार देवनन्दिने अपने मौलिक विचार प्रस्तुत कर अनेक धर्मविशिष्ट शब्दोंका साधुत्व बतलाया है।

जैनेन्द्र व्याकरणपर अभयनन्दिकृत महावृत्ति, प्रभाचन्द्रकृत शब्दाम्भोजभास्करन्यास, श्रुतकीर्तिकृत पंचवस्तुप्रक्रिया और पण्डित महाचन्द्रकृत वृत्ति, ये चार टीकाएँ प्रसिद्ध हैं।

यापनीय संघके आचार्य पाल्यकीर्तिने शाकटायनव्याकरणकी रचना की। इस व्याकरणपर सात टीकाएँ उपलब्ध हैं। अमोघवृत्ति, शाकटायनन्यास, चिन्तामणि, मणिप्रकाशिका, प्रक्रियासंग्रह, शाकटायनटीका और रूपसिद्धि। ये सभी टीकाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। चिन्तामणिके रचयिता यक्षवर्मा हैं और शाकटायनन्यासके प्रभाचन्द्र। प्रक्रिया-संग्रहको अभयचन्द्रने सिद्धान्तकौमुदीकी पद्धतिपर लिखा है। दयापाल मुनिने लघुसिद्धान्तकौमुदीकी शैलीपर रूपसिद्धिकी रचना की है। कातन्त्ररूपमालाके रचयिता भावसेन त्रैविद्य हैं। शुभचन्द्रने चिन्तामणिनामक प्राकृतव्याकरण लिखा है। श्रुतसागरसूरिका भी एक प्राकृतव्याकरण उपलब्ध है।

कोषविषयक देन

कोषविषयक साहित्यमें धनञ्जयकी नाममाला ही सबसे प्राचीन है। इसके अतिरिक्त अनेकार्थनाममाला और अनेकार्थनिघटु भी इन्हींके द्वारा रचित

है। श्रीधरसेनने विश्वलोचन कोषकी रचना की है, इसका दूसरा नाम मुक्तावलीकोष है। धनमित्रने एक निघटु-रचना लिखी है। मदनपराजयके कर्त्ता धनदेवने अनेकार्थनामक एक कोष लिखा है। आशाधरद्वारा विरचित अमरकोषकी क्रिया-कलापटीका भी ज्ञात होती है। इस प्रकार दिगम्बर परम्पराके आचार्योंने कोष-साहित्यकी अभिवृद्धि की है।

पुराण और काव्यविषयक देन

दिगम्बराचार्योंने कर्मके फलभोक्ताओंका उदाहरण उपस्थित करनेके लिए काव्य, नाटक, कथा और पुराणोंका सृजन किया है। जिस प्रकार आजका वैज्ञानिक अपने किसी सिद्धान्तको प्रमाणित करनेके लिए प्रयोगका आश्रय ग्रहण करता है और प्रयोगविधि द्वारा उसकी सत्यता प्रमाणित कर देता है, उसी प्रकार कर्मसिद्धान्तके व्यावहारिक पक्षको प्रयोगरूपमे ज्ञात करनेके लिए आख्यानात्मक साहित्यका सृजन किया जाता है। पुराण, कथा और काव्योमे कर्मके शुभाशुभ फलकी व्यञ्जना करनेके लिए त्रेसठ शालाकापुरुषो, अन्य पुण्य पुरुषो एव व्रताराधक पुरुषोके जीवनवृत्त अकित किये गये हैं। जिन व्यक्तियोने धर्मकी आराधनाद्वारा अपने जीवनमे पुण्यका अर्जन कर स्वर्गादि सुखोको प्राप्त किया है, उनके जीवन-वृत्त साधारणव्यक्तियोको भी प्रभावित करते हैं। इनका विषय स्मृत्यनुमोदित वर्णाश्रम धर्मका पोषक नही है। इसमे जातिवादके प्रति क्रान्ति प्रदर्शित की गयी है। आश्रम-व्यवस्था भी मान्य नही है। समाज सागार और अनागार इन दो वर्गोमे विभक्त है। तप, त्याग, सयम अहिंसाकी साधना द्वारा मानव-मात्र समानरूपसे आत्मोत्थान करनेका अधिकारी है। आत्मोत्थानके लिए किसी परोक्ष शक्तिकी सहायता अपेक्षित नही है। अपने पुरुषार्थ द्वारा कोई भी व्यक्ति सर्वांगीण विकास कर सकता है।

जैन वाङ्मयमे त्रेसठ शलाकापुरुष उपाधि या पदविशेष है। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र आदिके 'जीवनमान' निर्धारित हैं। जो भी तीर्थंकर या चक्रवर्ती होगा, उसमे निर्धारित जीवनमूल्योका रहना परमावश्यक है। तीर्थंकरोके पञ्चकल्याणक और चक्रवर्तियोकी विशिष्ट सम्पत्ति परम्परा द्वारा पठित है। अत त्रेसठ शलाकापुरुषोंके जीवनवृत्त अकनमे परम्परानुमोदित जीवनमूल्योका समावेश परमावश्यक है।

जैन पुराण और काव्योमे आत्माका अमरत्व एव जन्म-जन्मान्तरोंके सस्कारोकी अपरिहार्यता दिखलानेके लिए पूर्व जन्मके आख्यानोका सयोजन किया जाता है। प्रसगवश चार्वाक, तत्त्वोपप्लववाद प्रभृति नास्तिकवादोका निरसन कर आत्माका अमरत्व और कर्मसस्कारका वैशिष्ट्य निरूपित किया है। पूर्वजन्म-

के सभी आख्यान नायकोंके जीवनमें कलात्मक शैलीमें गुम्फित किये गये हैं। पुनर्जन्म, आत्माका अमरत्व, कर्मसंस्कारोंका प्रभाव, आत्म-साधना आदिका भी चित्रण किया गया है।

इस प्रकार तृतीय खण्डमें आचार्यों द्वारा पुराण और काव्योंका गुम्फन भी हुआ है। वास्तवमें प्रबुद्धाचार्योंने प्राचीन आगमोंसे आख्यानतत्त्व ग्रहण कर प्रथमानुयोगसम्बन्धी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ लिखी है।

परम्परापोषक आचार्योंमें भट्टारकोंकी गणना की गयी है। इन्होंने मन्दिर-मूर्ति-प्रतिष्ठा, साहित्य-संरक्षण और साहित्यप्रणयन द्वारा जैन संस्कृतिका प्रचार-प्रसार करनेमें अद्वितीय प्रयास किया है। वृहत् प्रभाचन्द्र, भास्करनन्दि, ब्रह्मदेव, रविचन्द्र, अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, पद्मनन्दि, सकलकीर्ति, भुवनकीर्ति, ब्रह्म जिनदास, सोमकीर्ति, ज्ञानभूषण, अभिनव धर्मभूषण, विजयकीर्ति, शुभ-चन्द्र, विद्यानन्दि, मल्लिभूषण, सुमतिकीर्ति, श्रुतसागर, ब्रह्मनेमिदत्त, श्रुतकीर्ति, मलयकीर्ति प्रभृति भट्टारकोंने मन्त्र-तन्त्र, आचारशास्त्र, काव्य, पुराण विषयक रचनाएँ लिखकर तत्कालीन राजाओं और शासकोंको प्रभावित किया है। इसमें सन्देह नहीं कि परम्परापोषक आचार्योंने वाङ्मयके प्रणयनमें अभूतपूर्व कार्य किया है। ह्रासोन्मुखी प्रतिभाके होनेपर भी सकलकीर्ति, ब्रह्म जिनदास, श्रुत-सागरसूरि, रत्नकीर्ति आदि ऐसे भट्टारक हैं, जिन्होंने विपुल ग्रन्थराशिका निर्माण कर वाङ्मयकी अभिवृद्धिमें अपूर्व योगदान किया है।

इस तृतीय खण्डमें भट्टारकीय परम्परा द्वारा प्राप्त सामग्रीका सर्वांगीण विवेचन करनेका प्रयास किया गया।

चतुर्थ खण्डमें संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तमिल और मराठी भाषाके जैन कवियों द्वारा लिखित साहित्यका लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। इन भाषाओंके शतार्धिक कवियोंने रस, गुण समन्वित काव्योंकी रचना की है। यह खण्ड कवियोंके इतिवृत्तको अवगत करनेकी दृष्टिसे उपादेय है। इस प्रकार प्रस्तुत 'तीर्थंकर महावीरको आचार्यपरम्परा' ग्रन्थमें ऐसे आचार्यों और लेखकोंके इतिवृत्तोंपर प्रकाश डाला गया है, जिन्होंने वाङ्मयकी सेवा की है।

आचार्यों द्वारा प्रभावित राजवंश और सामन्त

दिगम्बर जैनाचार्योंने विभिन्न राजवंशों और राजाओंको प्रभावित कर जैन शासनका उद्योत किया है। राजाओंके अतिरिक्त अमात्य, सामन्त एवं सेना-पतियोंने भी शासनके प्रचार एवं प्रसारमें योगदान किया है।

आचार्य भद्रबाहुके शिष्य मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्तने उज्जयिनीमें श्रमण-

दीक्षा ग्रहणकर दक्षिणकी ओर विहार किया। भद्रबाहुस्वामीने अपना अन्तिम समय जानकर श्रमणबेलगोलाके कटवप्र पर्वतपर समाधिमरण ग्रहण किया। चन्द्रगुप्तने भद्रबाहुस्वामीके साथ रहकर उनकी अन्तिम अवस्था तक सेवा की और वर्षो तक मुनिसघका सचालन किया। मौर्यवशके अहिंसक होनेका एक कारण चन्द्रगुप्तका जैन दीक्षा ग्रहण करना भी है। अशोक अपने जीवनके पूर्वार्द्धमे जैन था और उत्तरार्द्धमे वह बौद्धधर्ममे दीक्षित हुआ। सम्राट सम्प्रति ने तो जैन शासनके अभ्युत्थानके हेतु अनेक स्तम्भ, स्तूप एव स्मारकोका निर्माण कराया।

चेदिवशके सम्राट एल खारवेलने जैन शासनकी उन्नतिके लिए अनेक कार्य किये। उसने मगधपर आक्रमण कर बहुमूल्य रत्नादिकके साथ कलिंग जिनकी वह प्रसिद्ध मूर्ति भी उपलब्ध की, जिसे नन्दराज कलिंगसे ले आये थे। खारवेलने कुमारीपर्वतपर जैन मुनि और पण्डितगणोका सम्मेलन बुलाया तथा जैनागमको सशोधित कर नये रूपमे निबद्ध करनेका प्रयास किया। जैनसघने उसे भिक्षुराज, धर्मराज और खेमराजकी उपाधियोसे विभूषित किया। उसने अपना अन्तिम जीवन कुमारीपर्वतपर स्थित अर्हत् मन्दिरमे भक्ति और धर्म ध्यानमे सलग्न किया। उसने जैन मुनियोके लिए गुफाएँ एव चैत्य बनवाये। खारवेल द्वारा उत्कीर्णित एक अभिलेख उदयगिरि पर्वतकी गुफामे ई० पू० १७० का मिलता है। खारवेलका स्वर्गवास ई० पू० १५२मे हुआ है।

ई० सन्की द्वितीय शतीसे पचमी शती तक गगवशके राजाओने जैन शासनकी उन्नतिमे योगदान दिया है। ई० सन्की दूसरी शताब्दीके लगभग इस वशके दो राजकुमार दक्षिण आये। उनके नाम ददिग और माधव थे। पेरूर नामक स्थानमे इनकी भेंट आचार्य सिंहनन्दिसे हुई। सिंहनन्दिने उन-दोनोको शासन-कार्यकी शिक्षा दी। एक पाषाण स्तम्भ साम्राज्यदेवीके प्रवेशको रोक रहा था। अत सिंहनन्दिकी आज्ञासे माधवने उसे काट डाला। आचार्य सिंहनन्दिने उन्हे राज्यका शासक बनाते हुए उपदेश दिया "यदि तुम अपने वचनको पूरा न करोगे, या जिन शासनको साहाय्य दोगे, दूसरोकी स्त्रियोका अपहरण करोगे, मद्य-मासका सेवन करोगे, या नीचोकी सगतिमे रहोगे, आवश्यक होनेपर भी दूसरोको अपना धन नही दोगे और यदि युद्धके मैदानमे पीठ दिखाओगे, तो तुम्हारा वश नष्ट हो जायेगा"।[1]

१ बन्तु समस्त-राज्यमं 'किडुगु कुलक्रमम्। जैन शिलालेखसंग्रह, द्वितीय भाग, अभिलेखस० २७७, कल्लूगुड्डका लेख, पृ० ४१३।

कल्लुगुड्डके इस अभिलेखमे सिंहनन्दि द्वारा दिये गये राज्यका विस्तार भी अंकित है। दडिगने राज्य प्राप्त कर जैनधर्म और जैनसंस्कृतिके लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। इसने मण्डलिनामक प्रमुख स्थानपर एक भव्य जिनालयका निर्माण कराया, जो काष्ठ द्वारा निर्मित था। दडिगका पुत्र लघुमाधव और लघुमाधवका पुत्र हरिवर्मा हुआ। हरिवर्माने जैनशासनकी उन्नतिके लिए अनेक कार्य किये। इसी वंशमे राजा तडङ्गाल माधवका उत्तराधिकारी उसका पुत्र अविनीत हुआ। 'नोड़ मंगल-दानपत्र'से, जो उसने अपने राज्यके प्रथम वर्षमे अंकित कराया था, ज्ञात होता है कि उसने अपने परमगुरु अर्हत् विजयकीर्तिके उपदेशसे मूलसंघके चन्द्रनन्दि आदि द्वारा प्रतिष्ठापित उर्नूर जिनालयको वेन्नेलकरणि गाँव और पेरूर एवानि अडिगल जिनालयको बाहरी चुंगीका चौथाई कार्षापण दिया। श्री लुईस राइसने इस ताम्रपत्रका समय ४२५ ई० निश्चित किया है।

मर्कराके ताम्रपत्रसे अवगत होता है कि अविनीत जैनधर्मका अनुयायी था। अविनीतके पुत्र दुर्विनीतने भी जैन शासनके विकासमे सहयोग प्रदान किया। इसने कोगलि नामक स्थानपर चेन्नपार्श्ववस्ति नामक जिनालयका निर्माण कराया[1] था। दुर्विनीतके पुत्र मुक्कर या मोक्कारने मोक्करवसित नामक जिनालयका निर्माण कराया था। मोक्करके पश्चात् श्रीविक्रम राजा हुआ और उसके भूविक्रम और शिवमार ये दो पुत्र हुए। शिवमारने श्रीचन्द्रसेनाचार्यको जिनमन्दिरके लिये एक गाँव प्रदान किया था।

श्रीपुरुषके पुत्र शिवमार द्वितीयने श्रवणबेलगोलाकी छोटी पहाडीपर चन्द्रनाथवसतिका निर्माण कराया था। मैसूर जिलेके हैगड़े देवन ताल्लुकेके हेब्बल गुप्पेके आञ्जनेय मन्दिरके निकटसे प्राप्त अभिलेखमे लिखा है कि श्री नरसिंगेरे अप्पर दुग्गमारने कोयलवसतिको भूमि प्रदान की। गंगवंशमे मरुलका सौतेला भाई मारसिंह भी शासनप्रभावनाकी दृष्टिसे उल्लेखनीय है। इसका राज्यकाल ई० सन् ९६१–९७४ है।

श्रवणबेलगोलाके अभिलेखसंख्या ३८से विदित होता है कि मारसिंहने जैनधर्मका अनुपम उद्योत किया और भक्तिके अनेक कार्य करते हुए मृत्युसे एक वर्ष पूर्व उसने राज्यका परित्याग किया और उदासीन श्रावकके रूपमे जीवन व्यतीत किया। अन्तमे तीन दिनके सल्लेखनाव्रत द्वारा बंकापुरके अपने गुरु अजितसेन भट्टारकके चरणोमे समाधिमरण ग्रहण किया। मारसिंहने अनेक जैन विद्वानोका संरक्षण किया।

१ संक्षिप्त जैन इतिहास, भाग ३, खण्ड २, पृ० ४७।

गंगवंशके राजाओंके अतिरिक्त कदम्बवंशके राजाओंमें काकुस्थवर्माके पौत्र मृगेश वर्माने ५वीं शताब्दीमें राज्य किया। राज्यके तीसरे वर्षमें अंकित किये गये ताम्रपत्रसे ज्ञात होता है कि इसने अभिषेक, उपलेपन, पूजन, भग्न-संस्कार (मरम्मत) और प्रभावनाके लिये भूमि दान दी। एक अन्य ताम्रपत्रसे विदित है कि मृगेशवर्माने अपने राज्यके ८वें वर्षमें अपने स्वर्गीय पिताकी स्मृति-में पलाशिका नगरमें एक जिनालय बनवाया था और उसकी व्यवस्थाके लिये भूमि दानमें दी थी। यह दान उसने यापनियों तथा कूर्चक सम्प्रदायके नग्न साधुओंके निमित्त दिया था। इस दानके मुख्य ग्रहीता जैनगुरु दानकीर्ति और सेनापति जयन्त[1] थे। मृगेशवर्माके उत्तराधिकारी रविवर्मा और उसके भाई भानुवर्माने भी जैन शासनकी उन्नति की है। राजा रविवर्माके पुत्र हरिवर्माने अपने राज्यकालके चतुर्थ वर्ष में एक दानपत्र प्रचलित किया था, जिससे ज्ञात होता है कि उसने अपने चाचा शिवरथके उपदेशसे कूर्चक सम्प्रदायके वारिषे-णाचार्यको वसन्तवाटक ग्राम दानमें दिया था। इस दानका उद्देश्य पलाशिकामें भारद्वाजवंशी सेनापतिसिंहके पुत्र मृगेशवर्मा द्वारा निर्मित जिनालयमें वार्षिक अष्टाह्निक पूजाके अवसरपर कृताभिषेकके हेतु धन दिये जानेका उल्लेख है। इसी राजाने अपने राज्यके ५वें वर्षमें सेन्द्रकवंशके राजा भानुशक्तिकी प्रार्थनासे धर्मात्मा पुरुषोंके उपयोगके लिए तथा मन्दिरकी पूजाके लिए 'मरदे' नामक गाँव दानमें दिया था। इस दानके संरक्षक धर्मनन्दि नामके आचार्य थे।

जैनाचार्योंने राष्ट्रकूट वंशको भी प्रभावित किया है। इस वंशका गोविन्द तृतीयका पुत्र अमोघवर्ष जैनधर्मका महान् उन्नायक, संरक्षक और आश्रयदाता था। इसका समय ई० सन् ८१४-८७८ है। अमोघवर्षने अपनी राजधानी मान्यखेटको सुन्दर प्रासाद, भवन और सरोवरोंसे अलंकृत किया। वीरसेन-स्वामीके पट्टशिष्य आचार्य जिनसेनस्वामी इसके धर्मगुरु थे। महावीराचार्यने अपने गणितसारसंग्रहमें अमोघवर्षकी प्रशंसा की है।

आर्यनन्दिने तमिल देशमें जैनधर्मके प्रचारके लिये अनेक कार्य किये। मूर्तिनिर्माण, गुफानिर्माण, मन्दिरनिर्माणका कार्य ई० सन् की ८वीं, ९वीं शतीमें जोर-शोरके साथ चलता रहा। चितराल नामक स्थानके निकट तिरुचानट्टु नामकी पहाडीपर उकेरी गयी मूर्तियाँ कलाकी दृष्टिसे कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

होयसल राजवंशके कई राजाओंने जैनकला और जैनधर्मकी उन्नतिके लिए

१ जैन शिलालेखसंग्रह, द्वितीय भाग, अभि० सं० ९९, पृ० ७३।

अनेक कार्य किये हैं। अगडीसे प्राप्त अभिलेखमे विनयादित्य होयसलके कार्यो-का ज्ञान प्राप्त होता है। श्रवणबेलगोलाके गधवारण वसतिके अभिलेखसे अवगत होता है कि विनयादित्यने सरोवरो और मन्दिरोका निर्माण कराया था। यह विनयादित्य चालुक्यवशके विक्रमादित्य षष्ठका सामन्त था। इसकी उपाधि 'सम्यक्त्वचूडामणि' थी। इसने जीर्णोद्धारके साथ अनेक मन्दिरोका निर्माण कराया था।

होयसल नरेशोमे विष्णुवर्द्धन भी जैन शासनका प्रभावक हुआ है। शासनकी उन्नति करनेवाले सामन्तोमे राष्ट्रकूट सामन्त लोकादित्यका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका समय शक सवत्की ८वी शताब्दी है। यह वकेयरसका पुत्र था और राष्ट्रकूटनरेश कृष्ण द्वितीय अकालवर्षके शासनके अन्तर्गत वनवास देशके वकापुरका शासक था।

दक्षिण भारतमे जैनधर्मको सुदृढ बनानेमे जिनदत्तरायका भी हाथ है। इसने जिनदेवके अभिषेकके लिए कुम्मसिकेपुर गाँव प्रदान किया था। तोला-पुरुष विक्रम शान्तरने सन् ८९७ ई०मे कुन्दकुन्दान्वयके मौनीसिद्धान्त भट्टारकके लिए वसतिका निर्माण कराया था। यह वही विक्रम शान्तर है, जिसने हुम्मच-मे गुड्डद वसतिका निर्माण कराया था और उसे बाहुबलिको भेंट कर दिया था। भुजबल शान्तरने अपनी राजधानी पोम्बुर्चमे भुजबल शान्तर जिनालय-का निर्माण कराया था और अपने गुरु कनकनन्दिदेवको हरवरि ग्राम प्रदान किया था। उसका भाई नन्नि शान्तर भी जिनचरणोका पूजक था। वीर शान्तरके मन्त्री नगुलरसने भी अजितसेन पण्डितदेवके नामपर एक वसतिका शिलान्यास कराया था। यह नयी वसति राजधानी पोम्बुर्चमे पचवसतिके सामने बनवायी गयी थी। भुजबल गग पेरम्माडि वर्मदेव (सन् १११५ ई०) मुनिचन्द्रका शिष्य था और उसका पुत्र नन्नियगग (सन् ११२२ ई०) प्रभाचन्द्र सिद्धान्तका शिष्य था।

११वी शतीमे कोगाल्वोने जैनधर्मकी सुरक्षा और अभिवृद्धिके लिए अनेक कार्य किये हैं। सन् १०५८ ई०मे राजेन्द्र कोगाल्वने अपने पिताके द्वारा निर्मा-पित वसतिको भूमि प्रदान की थी। राजेन्द्र कोगाल्वका गुरु मूलसघ काणूरगण और तगरिगणगच्छका गण्डविमुक्त सिद्धान्तदेव था। राजेन्द्रने अपने गुरुको भूमि प्रदान की थी। इस वशके राजाओने सत्यवाक्य जिनालयका निर्माण कराया था और उसके लिए प्रभाचन्द्र सिद्धान्तको गाँव प्रदान किया था। कालनने नेमिस्वर वसतिका निर्माण कराकर उसके निमित्त अपने गुरु कुमार-कीर्ति त्रैविद्यके शिष्य पुन्नागवृक्ष मूलगणके महामण्डलाचार्य विजयकीर्तिको

भूमि प्रदान की थी। इस भूमिकी आयसे साधुओं तथा धार्मिकोंको भोजन एवं आवास दिया जाता था।

नगरखण्डके सामन्त लोकगावुण्डने सन् ११७१ ई०में एक जैन मन्दिरका निर्माण कराया था और उसकी अष्टप्रकारी पूजाके लिए मूलसंघ काणूरगण, तिन्तिणीगच्छके मुनिचन्द्रदेवके शिष्य भानुकीर्ति सिद्धान्तदेवको भूमि प्रदान की थी। १३वीं शताब्दीके अन्तिम चरणमें होनेवाला कुचीराजाका नाम भी उल्लेखनीय है। यह पद्मसेन भट्टारकका शिष्य था।

जैनधर्मके संरक्षक और उन्नतिकारकोंमें वीरमार्तण्ड चामुण्डरायका नाम भी उल्लेखनीय है। विष्णुवर्द्धनके सेनापति बोप्पने भी जैन शासनके उत्थानमें योगदान दिया है। ई० सन् की १२वीं शताब्दीमें सेनापति हुल्लने भी मन्दिर और मूर्तियोंका निर्माण कराया है। राजा नरसिंहके सेनापति शान्तियण्ण और इनके पुत्र बल्लाल द्वितीयके सेनापति रेचमय्यकी गणना भी जैनसंस्कृतिके आश्रयदाताओंमें की जाती है। रेचमय्यने आरसीयकेरेमें सहस्रकूट चैत्यालयका निर्माण कराया था। बल्लाल द्वितीयके मन्त्री नागदेवने श्रवणबेलगोलाके पार्श्वदेवके सामने एक रंगशाला तथा पाषाणका चबूतरा बनवाया था।

इस प्रकार दिगम्बराचार्योंने दक्षिण भारतमें सभी राजवंशोंको प्रभावित किया और अनेक राजवंशोंको जैनधर्मका अनुयायी बनाया। उत्तरमें मौर्य, लिच्छवि, ज्ञातृवंश, चेदिवंश आदिके साथ गुर्जरेश्वर कुमारपाल आदि भी उल्लेख्य हैं।

चतुर्थ परिच्छेद

पट्टावलियाँ

नन्दीसङ्घ-बलात्कारगण-सरस्वतीगच्छकी प्राकृत-पट्टावली

श्रीत्रैलोक्याधिपं नत्वा स्मृत्वा सद्गुरु-भारतीम् ।
वक्ष्ये पट्टावली रम्या मूलसंघगणाधिपाम् ॥१॥
श्रीमूलसंघप्रवरे नन्द्याम्नाये मनोहरे ।
बलात्कारगणोत्तंसे गच्छे सारस्वतीयके ॥२॥
कुन्दकुन्दान्वये श्रेष्ठ उत्पन्न श्रीगणाधिपम् ।
तमेवात्र प्रवक्ष्यामि श्रूयतां सज्जना जना. ॥३॥

मै तीनो लोकके स्वामी श्रीजिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर तथा सद्गुरु-की वाणीका स्मरण कर मूलसंघगणकी पट्टावलीको कहता हूँ। श्रीमूलसङ्घके नन्दीनामक सुन्दर आम्नायमे बलात्कारगणके सरस्वतीगच्छके कुन्दकुन्दनामक वंशमे जो गणोंके अधिपति उत्पन्न हुए, उनका वर्णन करता हूँ, सज्जन लोग सुनें।

अन्तिम-जिण-णिव्वाणे केवलणाणी य गोयम-मुणिदो
वारह-वासे य गये सुधम्मसामी य सजादो ॥१॥
तह बारह-वासे पुण सजादो जम्बुसामि मुणिणाहो ।
अठतीस-वास रहियो केवलणाणी य उक्किट्ठो ॥२॥
वासठि-केवल-वासे त्तिण्हि मुणी गोयम-सुधम्म-जम्बू य ।
बारह बारह दो-जण तिय दुगहीण च चालीस ॥३॥

अन्तिम श्रीमहावीरस्वामीके निर्वाणके बाद गौतमस्वामी केवलज्ञानी हुए, जो बारह वर्ष तक रहे। इसके बाद बारह वर्ष तक सुधर्माचार्य केवलज्ञानी हुए। इसके बाद जम्बूस्वामी ३८ वर्षो तक केवली रहे। इस प्रकार ६२ वर्षो तक तीन केवली गौतम, सुधर्माचार्य और जम्बूस्वामी हुए।

सुयकेवलि पच जणा बासठि-वासे गये सुसजादा ।
पढम चउदह वास विण्हुकुमार मुणेयव्व ॥४॥
नन्दिमित्त वास सोलह तिय अपराजिय वास वावीस ।
इग-हीण-वीस वास गोवद्धन भद्दबाहु गुणतीस ॥५॥
सद सुयकेवलणाणी पच जणा विण्हु नन्दिमित्तो य ।
अपराजिय गोवद्धण तह भद्दबाहु य सजादा ॥६॥

श्रीमहावीर स्वामीके ६२ वर्ष बाद पाँच श्रुतकेवली हुए। प्रथम विष्णुकुमार चौदह वर्ष तक श्रुतकेवली रहे, इसके बाद सोलह वर्ष नन्दिमित्र, बाईस वर्ष अपराजित, उन्नीस वर्ष गोवर्द्धन और उनतीस वर्ष तक महातमा भद्रबाहु श्रुतकेवली हुए। इस प्रकार सौ वर्षोमे पाँच श्रुतकेवली हुए विष्णुकुमार, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु।

सद-वासट्ठि सुवासे गएसु उप्पण दह सुपुव्वधरा ।
सद-तिरासि वासाणि य एगादह मुणिवरा जादा ॥७॥
आयरिय विशाख पोट्ठल खत्तिय जयसेण नागसेण मुणी ।
सिद्धत्थ धित्ति विजय वुहिलिङ्ग देव धमसेण ॥८॥
दह उगणीस य सत्तर इकवीस अट्ठारह सत्तर ।
अट्ठारह तेरह वीस चउदह चोदय कमेणेय ॥९॥

श्रीमहावीर स्वामीके १६२ वर्ष बाद १८३ वर्ष तक दस पूर्वके धारी ग्यारह मुनिवर हुए १० वर्षो तक विशाखाचार्य, १९ वर्षो तक प्रोष्ठिलाचार्य, १७ वर्षो तक क्षत्रियाचार्य, २१ वर्षो तक जयसेनाचार्य, १८ वर्षों तक नागसेनाचार्य, १७ वर्षों तक सिद्धार्थाचार्य, १८ वर्षो तक धृतसेनाचार्य, १३ वर्षो तक विजया-

चार्य, २० वर्षों तक बुद्धिलिंगाचार्य, १४ वर्षों तक देवाचार्य और चौदह वर्षों तक धर्मसेनाचार्य हुए।

अन्तिम-जिण-णिव्वाणे तिय-सय-पणचाल-वास जादेसु।
एगादहंगधारिय पंच जणा मुणिवरा जादा ॥१०॥
णक्खत्तो जयपालग पंडव धुवसेन कंस आयरिया।
अठारह वीस-वास गुणचाल चोद वत्तीस ॥११॥
सद तेवीस वासे एगादह अङ्गधरा जादा ॥

श्रीवीरस्वामीके निर्वाणके ३४५ वर्ष बाद १२३ वर्षों तक ग्यारह अंगके धारी पाँच मुनिवर हुए १८ वर्षों तक नक्षत्राचार्य, बीस वर्षों तक जयपाल-चार्य, ३९ वर्षो तक पाण्डवाचार्य, १४ वर्षो तक ध्रुवसेनाचार्य और ३२ वर्षों तक कंसाचार्य। इस प्रकार १२३ वर्षोंमें पाँच ग्यारह अंगके धारी हुए।

वास सत्तावणदिय दसंग नव-अंग अट्ठ-धरा ॥१२॥
सुभद्द च जसोभद्द भद्दबाहु कमेण च।
लोहाचय्य मुणीस च कहिय च जिणागमे ॥१३॥
छह अट्ठारहवासे तेवीस बावण (पणास) वास मुणिणाह।
दस-नव-अट्ठग-धरा वास दुसदवीस सधेसु ॥१४॥

इसके बाद ९७ वर्षों तक दस अंग, नव अंग तथा आठ अंगोंके धारी क्रमशः ६ वर्षों तक सुभद्राचार्य, १८ वर्षों तक यशोभद्राचार्य, २३ वर्षों तक भद्रबाहु और ५० वर्षों तक लोहाचार्य मुनि हुए। इसके बाद ११८ वर्षों तक एकाङ्गधारी रहे।

पंचसये पणसठे अन्तिम-जिण-समय-जादेसु।
उप्पण्णा पंच जणा इयंगधारी मुणेयव्वा ॥१५॥
अहिवल्लि माघनन्दि य धरसेण पुप्फयंत भूदवली।
अडवीसं इगवीस उगणीस तीस वीस वास पुणो ॥१६॥

श्रीवीरनिर्वाणसे ५६५ वर्ष बाद एक अंगके धारी पाँच मुनि हुए। २८ वर्षों तक अहिवल्याचार्य, २१ वर्षों तक माघनन्द्याचार्य, उन्नीस वर्ष तक धरसेनाचार्य तीस वर्ष तक पुष्पदन्ताचार्य और २० वर्षों तक भूतवली आचार्य हुए।

इग-सय-अठारवासे इयंग-धारी य मुणिवरा जादा।
छ-सय-तिरासिय वासे णिव्वणा अंगद्दित्ति कहिय जिणे ॥१७॥

एक सौ अठारह वर्षों तक एक अंगके धारी मुनि हुए। इस प्रकार ६८३ वर्षों तक अंगके धारी मुनि हुए।

अब मूलसंघका पाठ वर्णित होता है।

श्रीमहावीरके निर्वाणके ४७० वर्ष बाद विक्रमादित्यका जन्म हुआ। विक्रम-जन्मके दो वर्ष पूर्व सुभद्राचार्य और विक्रम राज्यके ४ वर्ष बाद भद्रबाहुस्वामी पट्टपर बैठे। भद्रबाहु स्वामीके शिष्य गुप्तिगुप्त हुए। इनके तीन नाम हैं गुप्तिगुप्त, अर्हद्बली और विशाखाचार्य। इनके द्वारा निम्नलिखित चार संघ स्थापित हुए।

नन्दीवृक्षके मूलसे वर्षायोग धारण करनेसे नन्दिसङ्घ हुए। इनके नेता माघनन्दी हुए अर्थात् इन्होंने ही नन्दीसंघ स्थापित किया। जिनसेननामक तृणतलमें वर्षायोग करनेसे एक ऋषिका नाम वृषभ पड़ा। इन्होंने ही वृषभ-संघ स्थापित किया। जिन्होंने सिंहकी गुफामें वर्षायोगको धारण किया, उनने सिंहसंघ स्थापित किया और जिसने देवदत्तानामकी वेश्याके नगरमें वर्षायोग धारण किया, उसने देवसंघ स्थापित किया।

इसी प्रकार नन्दीसंघ पारिजातगच्छ बलात्कारगणमें नन्दी, चन्द्रकीर्ति और भूषण नामके मुनि हुए।

उनमें श्रीवीरसे ४९२ वर्ष बाद, सुभद्राचार्यसे २४ वर्ष बाद, विक्रम-जन्मसे बाईस वर्ष बाद और विक्रम-राज्यसे ४ वर्ष बाद द्वितीय भद्रबाहु हुए।

सत्तरि-चउ-सद-युत्तो तिणकाला विक्कमो हवई जम्मो।
अठ-वरस बाललीला सोडस-वासेहि भम्मिए देसे ॥१८॥
पणरस-वासे रज्ज कुणन्ति मिच्छोवदेससंयुत्तो।
चालीस-वरस जिणवर-धम्म पालीय सुरपय लहिय ॥१९॥

अर्थात् श्री वीरनिर्वाणके ४७० वर्ष बाद विक्रमका जन्म हुआ। आठ वर्षों तक इन्होंने बाललीला की, सोलह वर्षों तक देश भ्रमण किया और ५६ वर्षों तक अन्यान्य धर्मोंसे निवृत्त होकर जिनधर्मका पालन किया।

श्रुतधर-पट्टावली

शक सं० ५२२

अथ खलु सकलजगदुदय-करणोदित-निरतिशय-गुणास्पदीभूत-परमजिन-शासन-सरस्समभिवर्द्धित-भव्यजन-कमलविकसन-वितिमिर-गुण-किरण-सहस्रमहोति-महावीर-सवितरि- परिनिर्वृते भगवत्परमर्षि-गौतम-गणधर-साक्षाच्छिष्य लोहार्य्य-जम्बु- विष्णुदेवापराजित- गोवर्द्धन-भद्रबाहु-विशाख- प्रोष्ठिल-कृत्तिकार्य्य जयनागसिद्धार्थधृतिषेणवुद्धिलादि - गुरुपरम्परीणक्कमाभ्यागत- महापुरुषसन्तति-समवद्योतितान्वय-भद्रबाहु-स्वामिना उज्जयन्यामष्टाङ्गमहानिमित्त-तत्त्वज्ञेन

त्रकाल्य-दर्शिना निमित्तेन द्वादश-संवत्सर-काल-वैषम्यमुपलभ्य कथिते सर्व्वस्सङ्घ उत्तरापथाद्दक्षिणापथम्प्रस्थितः क्रमेणैव जनपदमनेकग्राम-शत-सङ्ख्यं मुदितजन-धन-कनक-सस्य-गो-महिषा-जावि-कुल-समाकीर्ण्णम्प्राप्तवान्'[1] अतः आचार्य्यः प्रभाचन्द्रो नामावनितल-ललामभूतेऽथास्मिन् कटवप्र - नामकोपलक्षिते विविध-तरुवर-कुसुम- दलावलि- विरचना- शबल-विपुल- सजल- जलद- निवह-नीलोपल-तलेवराह-द्वीपि-व्याघ्रर्क्ष-तरक्षु-व्याल- मृगकुलोपचितोपत्यक- कन्दरदरी-महागुहा-गहनाभोगवति समुत्तुङ्ग-शृङ्गे शिखरिणि जीवितशेषमल्पतर-कालमववुध्यात्मनः सुचरित-तपस्समाधिमाराधयितुमापृच्छ्य निरवशेषेण सङ्घ विसृज्य शिष्येणैकेन पृथुलतरास्तीर्ण्ण-तलासु शिलासु शीतलासु स्वदेह सन्यस्याराधितवान् क्रमेण सप्त-शतमृषीणामाराधितमिति जयतु जिन-शासनमिति ।

इस अभिलेखमे तीर्थङ्कर महावीरके निर्वाणके वाद गौतम गणधर, लोहा-चार्य, जम्बुस्वामि ये तीन केवली और विष्णुदेव, अपराजित, गोवर्द्धन, भद्रवाहु ये श्रुतकेवली तथा विशाख, प्रोष्ठिल, कृत्तिकार्य, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, वुद्धिल ये आठ आचार्य दशपूर्वके धारी हुए हैं। श्रुतकेवली भद्र-वाहुस्वामिने अपने अष्टाङ्गनिमित्तज्ञानसे उज्जयिनीमे यह अवगत कर लिया कि वारह वर्षका उत्तरापथमे दुष्काल होने वाला है। अतएव वे धन-धान्यसे सम्पन्न अपने सघके साथ दक्षिणापथको चले गये। इस परम्परामें प्रभाचन्द्र नामक एक वहुज्ञ आचार्य हुए।

इस अभिलेखमे इन्द्रभूति, गौतम गणधर, सुधर्म या लोहाचार्य और जम्बुस्वामि इन तीन केवलियोका उल्लेख है। इन केवलियोंके पश्चात् विष्णु, अपराजित, नन्दिमित्र, गोवर्द्धन और भद्रवाहु श्रुतकेवली हुए हैं। पर प्रस्तुत अभिलेखमे विष्णुदेव, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रवाहु इन चार ही श्रुत-केवलियोंके नाम आए हैं। अन्य अभिलेखो तथा हरिवशपुराणादि ग्रन्थोमे दशपूर्वी ग्यारह वतलाए हैं। पर इस अभिलेखमे आठ ही दशपूर्वियोका उल्लेख आया है। हरिवशपुराणमे तृतीय दशपूर्वीका नाम क्षत्रिय लिखा हुआ है जवकि इस अभिलेखमे कृत्तिकार्य वताया है। विजय, नागदेव और धर्मसेन इन तीन दशपूर्वियोके नाम छूटे हुए हैं। अतः स्पष्ट है कि इस अभिलेखकी आचार्य-परम्परा अपूर्ण है। इसमे ख्यातिप्राप्त आचार्योका ही उल्लेख किया गया है।

गणधरादिपट्टावली

इन्द्रभूतिरग्निभूतिर्वायुभूतिः सुधर्मकः
मौर्यमौड्यौ पुत्रमित्रावकम्पनसुनामधृक् ॥१॥

१ जैनशिलालेखसग्रह, प्रथमभाग, अभिलेखसख्या १।

अन्ववेल प्रभासश्च रुद्रसख्यान् मुनीन् यजे ।
गौतमं च सुधर्मञ्च जम्बूस्वामिनमूर्ध्वगम् ॥२॥
श्रुतकेवलिनोऽन्याश्च विष्णुनन्द्यपराजितान् ।
गोवर्धनं भद्रबाहुं दशपूर्शधरं यजे ॥३॥
विशाखप्रौष्ठिलनक्षत्रजयनागपुरस्सरान् ।
सिद्धार्थधृतिषेणाह्वौ विजयं बुद्धिवलं तथा ॥४॥
गंगदेवं धर्मसेनमेकादश तु सुश्रुतान् ।
नक्षत्रं जयपालाख्यं पाण्डुं च ध्रुवसेनकम् ॥५॥
कसाचार्यपुरोऽगीयज्ञातार प्रयजेऽन्वहम् ।
सुभद्रं च यशोभद्रं भद्रबाहुं मुनीश्वरम् ॥६॥
लोहाचार्यं पुरापूर्वज्ञान चक्रधरं नम ।
अर्हद्बलिं भूतवलिं माघनन्दिनमुत्तमम् ॥७॥
धरसेनं मुनीन्द्रञ्च पुष्पदन्तसमाह्वयम् ।
जिनचन्द्रं कुन्दकुन्दमुमास्वामिनमर्चये ॥८॥
समन्तभद्रस्वाम्यार्यं शिवकोटिं शिवायनम् ।
पूज्यपादं चैलाचार्यं वीरसेनं श्रुतेक्षणम् ॥९॥
जिनसेनं नेमिचन्द्रं रामसेनं सुतार्किकान् ।
अकलकानन्त-विद्यानन्द-मणिक्यनन्दिन ॥
प्रभाचन्द्रं रामचन्द्रं वासुवेन्दुमवासिनम् ।
गुणभद्रादिकानन्यानपि श्रुततप पारगान् ॥
वीरागदा तानर्घ्येण सर्वान् सम्भावयाम्यहम् ॥[1]

इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, सुधर्मक, मौर्य, मौड्य, पुत्र, मित्र, अकपन नामवाले तथा अन्वबेल, प्रभास इन ग्यारह गणधरोकी मैं पूजा करता हूँ। मोक्षमार्गी गौतम, सुधर्म, जम्बूस्वामीकी पूजा करता हूँ । विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु श्रुतकेवलियोकी पूजा करता हूँ । दशपूर्वधर श्रीविशाखाचार्य, प्रौष्ठिल, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल्ल, गंगदेव, धर्मसेनाचार्यकी मैं पूजा करता हूँ। नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन, कसाचार्य, सुभद्र, यशोभद्र, भद्रबाहु, लोहाचार्यमे ये पूर्वधर आचार्य हुए हैं। अर्हद्बलि, भूतबलि, माघनन्दि, धरसेन, पुष्पदन्त, जिनचन्द्र- कुन्दकुन्द, उमास्वामी इन आचार्योकी पूजा करता हूँ। समन्तभद्र, शिवकोटयाचार्य, शिवायन, पूज्यपाद, ऐलाचार्य, वीरसेन, जिनसेन, नेमिचद्र,

१. जयसेन-प्रतिष्ठापाठ ।

इनके कालका प्रमाण पिण्डरूपसे दोसौ वीस वर्ष है। इनके स्वर्गस्थ होनेपर फिर भरतक्षेत्रमे कोई ग्यारह अगोंके धारक नही रहे ॥१४८९॥

सुभद्र, यशोभद्र, यशोवाहु और लोहार्य ये चार आचारागके धारक हुए ॥१४९०॥

उक्त चारो आचार्य आचारागके सिवाय शेष ग्यारह अग और चौदह पूर्वोके एकदेशके धारक थे। इनके कालका प्रमाण एकसौ अठारह ११८ वर्ष है ॥१४९१॥

इनके स्वर्गस्थ होनेपर भरतक्षेत्रमे फिर कोई आचारागके धारक नही हुए। गौतममुनि प्रभृतिके कालका प्रमाण छहसौ तेरासी वर्ष होता है ॥१४९२॥

धवलामें निबद्ध श्रुतपरम्परा

को होदि त्ति सोहम्मिदचालणादो जादसदेहेण पच-पचसयतेवासि-सहियभादुत्तिदयपरिवुदेण माणत्थभदसणेणेव पणट्ठमाणेण वड्ढमाणविसोहिणा वड्ढमाणजिणिददसणे पणट्ठासखेज्जभवज्जियगरुवकम्मेण जिणिदस्स तिपदाहिण करिय पचमुट्ठीय वदिय हियएण जिण झाइय पडिवण्णसजमेण विसोहिवलेण अतोमुहुत्तस्स उप्पण्णासेसगणिदलक्खणेण उवलद्धजिणवयणविणिग्गयवीजपदेण गोदमगोत्तेण वह्मणेण इदमूदिणा आयार-सूदयद-ट्ठाण-समवाय-वियाहपण्णत्तिणाहधम्मकहोवासयज्झयणतयडदस-अणुत्तरोववादियदस - मण्णवायरण-विवायसुत्त-दिट्ठिवादाण सामाइय-चउवीसत्थय-वदणा-पडिक्कमण-वइणइय-किदियम्मदसवेयालि-उत्तरज्झयण -कप्पववहार-कप्पाकप्प- महाकप्प- पुडरीय- महापुंडरीयणिसिहियाण चोद्दसपइण्णयाणमगवज्झाण च सावणमास-वहुल-पक्ख-जुगादिपडिवयपुव्वदिवसे जेण रयणा कदा। तेणिदमूदिभडारओ वड्ढमाणजिणतित्थगंयकत्तारो। उत्त च

वासस्स पढममासे पढमे पक्खम्मि सावणे वहुले।
पाडिवदपुव्वदिवसे तित्थुप्पत्ती दु अभिजिम्मि ॥४०॥
एव उत्तरततकत्तारपरूवणा कदा।

सपहि उत्तरोत्तरततकत्तारपरूवण कस्सामो। त जहा कत्तियमासकिण्णपक्खचोद्दस-रत्तीए पच्छिमभाए महदि महावीरे णिव्वुदे सते केवलणाणसताणहरो गोदमसामी जादो। वारहवरसाणि केवलविहारेण विहरिय गोदमसामिम्हि णिव्वुदे सते लोहज्जाइरिओ केवलणाणसताणहरो जादो। वारहवासाणि केवलविहारेण विहरिय लोहज्जभडारए णिव्वुदे सते जवूभडारओ केवलणाणसताणहरो जादो। अट्ठत्तीसवस्साणि केवलविहारेण विहरिय जवूभडारए परिणिव्वुदे संते केवलणाणसताणस्स वोच्छेदो जादो भरहक्खेत्तम्मि अत्थमिदि। एव महावीरे

णिव्वाण गदे वासट्ठिवरसेहि केवलणाणदिवायरो भरहम्मि ।६२।३।णवरि तक्काले-सयलसुदणाणसत्ताणहरो विण्णुआइरियो जादो। अतुट्टसताणरूवेण णदिआइरिओ अवराइदो गोवद्धणो भद्दवाहु त्ति एदे सकलसुदधारया जादा। एदेसिं पचण्ह पि सुदकेवलीण कालसमासो वस्ससद ।१००।५। तदो भद्दबाहुभडारए सग्ग गदे सते भरहक्खत्तम्मि अत्थमिओ सुदणाणसपुण्णमियको, भरहखेत्तमावूरियमण्णाणं-धयारेण । णवरि एक्कारसण्णमगाण विज्जाणुपवादपेरतदिट्ठिवादस्स य धारओ विसाहाइरिओ जादो। णवरि उवरिमचत्तारि वि पुव्वाणि वोच्छिण्णाणि तदे-गदेसधारणादो। पुणो त्त विगलसुदणाण पोट्ठिल्ल-खत्तिय-जय-णाग-सिद्धत्थ-धिदि-सेण-विजय-बुद्धिल्ल-गगदेव-धम्मसेणाइरियपरपराए तेयासीदिवरिससयाइमाग-तूण वोच्छिण्ण ।१८३।११। तदो धम्मसेणभडारए सग्ग गदे णट्ठे दिट्ठिवादुज्जोए एक्कारसण्णमगाण दिट्ठिवादेगदेसस्स य धारयो णक्खत्ताइरियो जादो। तदो तमेक्कारसंगं सुदणाण जयपाल-पांडु-ध्रुवसेण-कसो त्ति आइरियपरपराए वीसु-त्तरवेसदवासाइमागतूण वोच्छिण्ण। २२०।५। तदो कसाइरिए सग्ग गदे वोच्छिण्णे एक्कारसगुज्जोए सुभद्दाइरियो आयारगस्स सेसग-पुव्वाणमेगदेसस्स य धारओ जादो। तदो तमायारग पि जसभद्द-जसबाहु-लोहाइरियपरपराए अट्ठा-रहोत्तरवरिससयमागतूण वोच्छिण्ण ।११८-४। सव्वकालसमासो तेयासीदीए अहिय छस्सदमेत्तो ।६८३। पुणो एत्थ सत्तमासाहियसत्तहत्तरिवासेसु । -७७ । अवणिदेसु पचमासाहियपचुत्तरछस्सदवासाणि हवंति। एसो वीरजिणिंदणिव्वाण-गददिवसादो जाव सगकालस्स आदी होदि तावदियकालो। धव० ४. १ ४४, पृ० १२९-१३२

'उक्त पांच अस्तिकायादिक क्या है?' ऐसे सौधर्मेन्द्रके प्रश्नसे सदेहको प्राप्त हुए, पाँचसौ, पांच सौ शिष्योसे सहित तीन भ्राताओसे वेष्टित, मानस्त-म्भके देखनेसे ही मानसे रहित हुए, वृद्धिको प्राप्त होनेवाली विशुद्धिसे सयुक्त, वर्धमान भगवान्के दर्शन करनेपर असख्यात भवोमे अर्जित महान् कर्मोको नष्ट करने वाले, जिनेन्द्रदेवकी तीन प्रदक्षिणा करके, पँचमुष्टियोसे अर्थात् पाँच अगोद्वारा भूमिस्पर्शपूर्वक वँदना करके एव हृदयसे जिनभगवानका ध्यानकर सयमको प्राप्त हुए, विशुद्धिके बलसे अन्तर्मुहुर्त्तके भीतर उत्पन्न हुए समस्त गणधरके लक्षणोंसे सयुक्त तथा जिनमुखसे निकले हुए बीजपदोंके ज्ञान-से सहित ऐसे गौतमगोत्रवाले इन्द्रभूति ब्राह्मणद्वारा चूँकि आचाराग, सूत्र-कृताग, स्थानाग, समवायाग, व्याख्याप्रज्ञप्तिअग, ज्ञातृधर्मकथाग, उपासका-ध्ययनाग, अन्तकृतदशाग, अनुत्तरोपपादिक दशाग, प्रश्नव्याकरणाग, विपाक-सूत्राग व दृष्टिवादाग इन बारह अगो तथा सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वदना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार,

रामसेन, अकलक, अनन्त, विद्यानन्द, मणिक्यनन्दि, प्रभाचन्द्र, वासवेन्दु, गुण-भद्र, वीरागद आदि आचार्योंकी पूजा करता हूँ।

तिलोयपण्णत्तीके आधारपर आचार्य-परम्परा

जादो सिद्धो वीरो तद्दिवसे गोदमो परमणाणी।
जादो तस्सि सिद्धे सुधम्मसामी तदो जादो ॥१४७६॥
तम्मि कद-कम्म-णासे जबूसामि त्ति केवली जादो।
तत्थ वि सिद्धि-पवण्णे केवलिणो णत्थि अणुबद्धा ॥१४७७॥
वासट्ठी वासाणि गोदमपहुदीण णाणवताण।
धम्मपयट्टणकाले परिमाण पिंडरूवेण ॥१४७८॥
कुण्डलगिरिम्मि चरिमो केवलणाणीसु सिरिधरो सिद्धो।
चारणरिसीसु चरिमो सुपासचदाभिधाणो य ॥१४७९॥
पण्णसमणेसु चरिमो वइरजसो णाम ओहिणाणीसु।
चरिमो सिरिणामो सुदविणयसुसीलादिसपण्णो ॥१४८०॥
मउडधरेसु चरिमो जिणदिक्ख धरदि चदगुत्तो य ॥१४८१॥
तत्तो मउडधरा दु प्पव्वज्ज णेव गेण्हंति ॥१४८१॥
णदी य णदिमित्तो विदियो अवराजिदो तइज्जो य।
गोवद्धणो चउत्थो पचमओ भद्दबाहु त्ति ॥१४८२॥
पच इमे पुरिसवरा चउदसपुव्वी जगम्मि विक्खादा।
ते वारसअगधरा तित्थे सिरिवड्ढमाणस्स ॥१४८३॥
पचाण मेलिदाण कालपमाण हवेदि वाससद।
वीदम्मि य पचमए भरहे सुदकेवली णत्थि ॥१४८४॥
पढमो विसाहणामो पुट्ठिल्लो खत्तिओ जओ णागो।
सिद्धत्थो धिदिसेणो विजओ बुद्धिल्लगगदेवा य ॥१४८५॥
एक्करसो य सुधम्मो दस पुव्वधरा इमे सुविक्खदा।
पारपरिओवगदो तेसीदि सद च ताण वासाणि ॥१४८६॥
सव्वेसु वि कालवसा तेसु अदीदेसु भरह-खेत्तम्मि।
वियसतभव्वकमला ण सति दसपुव्विदिवसयरा ॥१४८७॥
णक्खत्तो जयपालो पडुय-धुवसेण-कसआइरिया।
एक्कारसगधारी पच इमे वीरतित्थम्मि ॥१४८८॥
दोण्णि सया वीसजुदा वासाणं ताण पिंडपरिमाण।
तेसु अतीदे णत्थि हु भरहे एक्कारसङ्गधरा ॥१४८९॥
पढमो सुभद्दणामो जसभद्दो तह य होदि जसबाहू।
तुरिमो य लोहणामो एदे आयार-अगधरा ॥१४९०॥

सेसेक्करसंगाण चोद्दसपुव्वाणमेक्कदेसधरा।
एक्कसयं अट्ठारसवासजुद ताण परिमाण ॥१४९१॥
तेसु अदीदेसु तदा आचारधरा ण होंति भरहम्मि।
गोदममुणिपहुदीण वासाण छस्सदाणि तेसीदी[1] ॥१४९२॥

जिस दिन भगवान् महावीर सिद्ध हुए, उसी दिन गौतम गणधर केवलज्ञानको प्राप्त हुए। पुन गौतमके सिद्ध होनेपर उनके पश्चात् सुधर्मस्वामी केवली हुए ॥१४७६॥

सुधर्मस्वामीके कर्म नाश करके अर्थात् मुक्त होनेपर जम्बूस्वामी केवली हुए। पश्चात् जम्बूस्वामीके भी सिद्धिको प्राप्त होनेपर फिर कोई अनुबद्धकेवली नही रहे ॥१४७७॥

गौतमादिक केवलियोंके धर्मप्रवर्तन-कालका प्रमाण पिण्डरूपसे बासठ वर्ष है ॥१४७८॥

केवलज्ञानियोंमे अन्तिम श्रीधर कुण्डलगिरिसे सिद्ध हुए और चारणऋषियोमे अन्तिम सुपार्श्वचन्द्र नामक ऋषि हुए ॥१४७९॥

प्रज्ञाश्रमणोमे अन्तिम वज्रयश और अवधिज्ञानियोमे अन्तिम श्रुत, विनय एवं सुशीलादिसे सम्पन्न श्रीनामक ऋषि हुए ॥१४८०॥

मुकुटधरोमे अन्तिम चन्द्रगुप्तने जिनदीक्षा धारण की। इसके पश्चात् मुकुटधारी प्रव्रज्याको ग्रहण नही करते ॥१४८१॥

प्रथम नन्दी, द्वितीय नन्दिमित्र, तृतीय अपराजित, चतुर्थ गोवर्द्धन और पंचम भद्रबाहु इस प्रकार ये पाँच पुरुषोत्तम जगमे 'चौदहपूर्वी' इस नामसे विख्यात हुए। ये बारह अगोके धारक पाँचो श्रुतकेवली श्रीवर्धमान स्वामीके तीर्थमे हुए ॥१४८२, १४८३॥

इन पाँचो श्रुतकेवलियोका काल मिलाकर सौ वर्ष होता है। पाँचवे श्रुतकेवलीके पश्चात् फिर भरतक्षेत्रमे कोई श्रुतकेवली नही हुआ ॥१४८४॥

विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, गगदेव और सुधर्म ये ग्यारह आचार्य दश पूर्वके धारी विख्यात हुए हैं। परम्परासे प्राप्त इन सबका काल एकसौ तेरासी १८३ वर्ष है ॥१४८५, १४८६–

कालके वश इन सब श्रुतकेवलियोंके अतीत होनेपर भरतक्षेत्रमे भव्यरूपी कमलोको विकसित करनेवाले दशपूर्वधररूप सूर्य फिर नही हुए ॥१४८७॥

नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कस ये पाँच आचार्य वीर भगवान्के तीर्थमे ग्यारह अगके धारी हुए ॥१४८८॥

१ तिलोयपण्णत्ती शोलापुर-सस्करण, गाथा ४–१४७६-१४९२।

कल्पाकल्प, महाकल्प, पुण्डरीक, महापुण्डरीक व निषिद्धका इन चौदह अंगबाह्य प्रकीर्णकोंकी श्रावण मासके कृष्णपक्षमें युगके आदिम प्रतिपदा दिनके पूर्वाह्नमें रचना की गयी थी, अतएव इन्द्रभूति भट्टारकवर्धमानजिनके तीर्थमें ग्रन्थकर्ता हुए। कहा भी है

वर्षके प्रथम मास व प्रथम पक्ष श्रावणकृष्णकी प्रतिपदाके पूर्व दिनमें अभिजित् नक्षत्रमें तीर्थकी उत्पत्ति हुई ॥ ४० ॥

इस प्रकार उत्तरतंत्रकर्त्ताकी प्ररूपणा की।

अब उत्तरोत्तर तंत्रकर्त्ताओंकी प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है- कार्त्तिक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीकी रात्रिके पिछले भागमें अतिशय महान् महावीर भगवान्‌के मुक्त होनेपर केवलज्ञानकी सन्तानको धारण करने वाले गौतम स्वामी हुए। बारह वर्ष तक केवलविहारसे विहार करके गौतमस्वामीके मुक्त हो जानेपर लोहार्य आचार्य केवलज्ञानपरम्पराके धारक हुए। बारह वर्ष केवलविहारसे विहार करके लोहार्य भट्टारकके मुक्त हो जानेपर जम्बूभट्टारक केवलज्ञानकी परम्पराके धारक हुए। अड़तीस वर्ष केवलविहारसे विहार करके जम्बूभट्टारकके मुक्त हो जानेपर भरतक्षेत्रमें केवलज्ञानपरम्पराका विच्छेद हो गया। इस प्रकार भगवान् महावीरके निर्वाणको प्राप्त होने पर बासठ वर्षोंसे केवलज्ञानरूपी सूर्य भरतक्षेत्रमें अस्त हुआ [६२ वर्षमें ३ के०]। विशेष यह है कि उस कालमें सकलश्रुतज्ञानकी परम्पराको धारण करने वाले विष्णु आचार्य हुए। पश्चात् अविछिन्न सन्तानस्वरूपसे नन्दि आचार्य, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये सकलश्रुतज्ञानके धारक हुए। इन पाँच श्रुतकेवलियोंके कालका योग सौ वर्ष है [१०० वर्षमें ५ श्रु० के०] पश्चात् भद्रबाहु भट्टारकके स्वर्गको प्राप्त होनेपर भरतक्षेत्रमें श्रुतज्ञानरूपी पूर्ण चन्द्र अस्तमित हो गया। अब भरतक्षेत्र अज्ञान अन्धकारसे परिपूर्ण हुआ। विशेष इतना है कि उस समय ग्यारह अंगों और विद्यानुवादपर्यन्त दृष्टिवाद अंगके भी धारक विशाखाचार्य हुए। विशेषता यह है कि इसके आगेके चार पूर्व उनका एक देश धारण करनेसे व्युच्छिन्न हो गये। पुन वह त्रिकल श्रुतज्ञान प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल्ल, गंगदेव और धर्मसेन इन आचार्योंकी परम्परासे एकसौ तेरासी वर्ष आकर व्युच्छिन्न हो गया [१८३ वर्षमें ११ एकादशांग-दशपूर्वधर]। पश्चात् धर्मसेन भट्टारकके स्वर्गको प्राप्त होनेपर दृष्टिवाद-प्रकाशके नष्ट हो जानेसे ग्यारह अंगों और दृष्टिवादके एकदेश धारक नक्षत्राचार्य हुए। तदनन्तर वह एकादशांग श्रुतज्ञान जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कंस इन आचार्योंकी परम्परासे दोसौ बीस वर्ष आकर व्युच्छिन्न हो गया [२२० वर्षमें ५ एकादशांगधर]। तत्पश्चात् कंसाचार्यके स्वर्गको प्राप्त होने

पर ग्यारह अगरूप प्रकाशके व्युच्छिन्न हो जानेपर सुभद्राचार्य आचारांगके और शेप अगो एव पूर्वोके एकदेशके धारक हुए। तत्पश्चात् वह आचाराग भी यशोभद्र, यशोबाहु और लोहाचार्य्यकी परम्परासे एकसौ अठारह वर्ष आकार व्युच्छिन्न हो गया [११८ वर्षमे ४ आचारागधर]। इस सब कालका योग छह सौ तेरासी वर्ष होता है। [६२ + १०० + १८३ + २२० + ११८ = ६८३]। पुन. इसमे सात मास अधिक सतत्तर वर्षोको [७७ वर्ष ७ मास] कम करनेपर पाँच मास अधिक छहसौ पाँच वर्ष होते है। यह, वीर जिनेन्द्रके निर्वाण प्राप्त होनेके दिनसे लेकर जबतक शककालका प्रारम्भ होता है, उतना काल है।

तित्थयरादो सुद-पज्जाएण गोदमो परिणदो त्ति दव्व-सुदस्स गोदमो कत्ता। तत्तो गथ-रयणा जादेत्ति। तेण गोदमेण दुविहमवि सुदणाण लोहज्जस्स सचारिद। तेण वि जबूसामिस्स सचारिद। परिवाडिमस्सिदूण एदे तिण्णि वि सयल-सुद-धारया भणिया। अपरिवाडीए पुण सयल-सुद-पारगा सखेज्ज-सहस्सा। गोदमदेवो लोहज्जाइरियो जबूसामी य एदे तिण्णि वि सत्त-विह-लद्धिसपण्णा सयल-सुय-सायर-पारया होऊण केवलणाणमुप्पाइय णिव्वुइ पत्ता। तदो विण्हू णदिमित्तो अवराइदो गोवद्धणो भद्दबाहु त्ति एदे पुरिसोली-कमेण पच वि चोद्दस-पुव्व-हरा। तदो विसाहइरियो पोट्ठिलो खत्तियो जयाइरियो णागाइरियो सिद्धत्थदेवो धिदिसेणो विजयाइरियो बुद्धिलो गगदेवो धम्मसेणो त्ति एदे पुरिसोली-कमेण एक्कारस वि आइरिया एक्कारसण्हमगाण उप्पायपुव्वादि-दसण्ह पुव्वाण च पारया जादा, सेसुवरिम-चदुण्ह पुव्वाणमेग-देश-धरा य। तदो णक्खत्ताइरियो जयपालो पाडुसामी धुवसेणो कसाइरियो त्ति एदे पुरिसोलीकमेण पच वि आइरिया एक्कारसग-धारया जादा, चोद्दसण्ह पुव्वाणमेग-देस-धारया। तदो सुभद्दो जसभद्दो जसबाहू लोहज्जो त्ति एदे चत्तारि वि आइरिया आयारग-धरा सेसग-पुव्वाणमेग-देग-धारया। तदो सव्वेसिमग-पुव्वाणमेग-देसो आइरिय-परपराए आगच्छमाणो धरसेणाइरिय सपत्तो। धव० १ १. १, पृ० ६५–६७

वर्धमान तीर्थङ्करके निमित्तसे गौतम गणधर श्रुतपर्यायसे परिणत हुए, इसलिए द्रव्यश्रुतके कर्त्ता गौतम गणधर है। इस तरह गौतम गणधरसे ग्रन्थरचना हुई। उन गौतम गणधरने दोनो प्रकारका श्रुतज्ञान लोहाचार्यको दिया। लोहाचार्यने जम्बूस्वामीको दिया। परिपाटीक्रमसे ये तीनो ही सकलश्रुतके धारण करने वाले कहे गये है। और यदि परिपाटीक्रमकी अपेक्षा न की जाय, तो सख्यात हजार सकलश्रुतके धारी हुए।

गौतमस्वामी, लोहाचार्य और जम्बूस्वामी ये तीनो ही सात प्रकारकी ऋद्धियोसे युक्त और सकलश्रुतरूपी सागरके पारगामी होकर अन्तमे केवलज्ञान-

को उत्पन्न कर निर्वाणको प्राप्त हुए। इसके बाद विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये पाँचो ही आचार्यपरिपाटीक्रमसे चौदह पूर्वके पाठी हुए।

तदनन्तर विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयाचार्य, नागाचार्य, सिद्धार्थदेव, धृतिसेन, विजयाचार्य, बुद्धिल, गगदेव और धर्मसेन ये ग्यारह ही महापुरुष परिपाटी-क्रमसे ग्यारह अग और उत्पादपूर्व आदि दश पूर्वोके धारक हुए।

इसके बाद नक्षत्राचार्य, जयपाल, पाण्डुस्वामी, ध्रुवसेन, कसाचार्य ये पाँचो ही आचार्य परिपाटीक्रमसे सम्पूर्ण ग्यारह अगोके और चौदह पूर्वोके एकदेशके धारक हुए। तदनन्तर सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहाचार्य ये चारो ही आचार्य सम्पूर्ण आचारागके धारक और शेष अग तथा पूर्वोके एकदेशके धारक हुए। इसके बाद सभी अग और पूर्वोका एकदेश आचार्य परम्परासे आता हुआ धरसेन आचार्यको प्राप्त हुआ।

काष्ठासंघकी उत्पत्ति

जैनाम्नायमे देश-कालानुसार कई सघ प्रचलित हुए। किन्तु भिन्न-भिन्न पट्टावलियाँ, धर्म्मग्रन्थ सैद्धान्तिग्रन्थ, और पुराणोका मगलाचरण तथा प्रशस्ति देखनेसे यह निश्चित होता है कि सब सघोका आदि संघ "मूल सघ" ही है। शायद इसी सकेतसे इस सघके आदिमे "मूल" शब्द जोड दिया गया है। हमारे इस कथनकी पुष्टि इन्द्रनन्दि सिद्धान्तीकृत "नीतिसार" ग्रन्थके निम्नलिखित श्लोकोंसे भी होती है।

"पूर्वं श्रीमूलसघस्तदनु सितपट काष्ठसघस्ततो हि
तावाभूद्भाविगच्छाः पुनरजनि ततो यापुनीसघ एक ।
तस्मिन् श्रीमूलसघे मुनिजनविमले सेनन्नन्दी च सघौ
स्याता सिंहाख्यसघोऽभवदुरुमहिमा देवसघश्चतुर्थ ॥

अर्थात् पहले मूलसघमे श्वेतपट गच्छ हुआ, पीछे कष्ठासघ हुआ। इसके कुछ ही समयके बाद यापनीय गच्छ हुआ। तत्पश्चात् क्रमश सेनसघ, नन्दीसघ, सिहसघ और देवसघ हुआ। अर्थात् मूलसघसे ही काष्ठासघ, सेनसघ, सिंहसंघ और देवसघ हुए।

"अर्हद्वलीगुरुश्चक्रे सघसघटन परम्।
सिहसघो नन्दिसघ सेनसघस्तथापर ॥
देवसघ इति स्पष्ट स्थान-स्थितिविशेषत.।

अर्थात् अर्हद्बल्याचार्यने देशकालानुसार सिंह, नन्दी, सेन और देवसंघकी स्थापना की।

इससे यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि मूलसंघ पूर्वोक्त संघोका स्थापक है। पीछे लोहाचार्यजीने काष्ठासंघकी स्थापना की। यह काष्ठासंघ खास करके 'अग्रोहे' नगरके अग्रवालोके ही सम्बोधार्थ स्थापित किया गया।

इसके कई लेख दिल्लीकी भट्टारकगद्दियोमे अब तक मौजूद हैं। उन्हीके आधारपर यह संक्षिप्त परिचय लिखा जाता है।

दिगम्बराचार्य लोहाचार्यजी दक्षिण देश भद्दलपुरमे विराजमान थे। विहार करते-करते अग्रोहेके निकटवर्त्ती हिसारमे पहुँचे। वहाँ उन्हे कोई असाध्य रोग हुआ था, जिससे वे मूर्च्छित हो गये। वहाँके श्रावकोने उन्हे सन्यास-मरण-स्वीकार कराया। इसके बाद कार्तिसे स्वत लघन होनेके कारण त्रिदोष पाक होनेसे अपने आप निरोगी हो गये। निरोगी होनेपर जब इन्हे होश हुआ, तो इन्होने भ्रामरी वृत्ति (भिक्षावृत्ति)से आहार करना विचारा। पीछे "श्रीसंघ"-ने उनसे कहा कि महाराज! हम लोगोने आपकी रुग्णावस्था तथा मूर्च्छितावस्थामे यावज्जीवन आपसे सन्यास-मरणकी प्रतिज्ञा करवाई है और आहारका भी परित्याग करवाया है। अत यह संघ आपको आहार नही दे सकता है। यदि आप नवीन संघ स्थापित कर कुछ जैनी बनावें, तो आप वहाँ आहार कर सकते हैं तथा वे दान दे सकते है। तत्पश्चात् प्रायश्चित्तादि शास्त्रोंके प्रमाणसे उक्त वृत्तान्त सत्य जान लोहाचार्यजी वहाँसे विहार कर अग्रोहे नगरके बाह्य स्थानमें पहुँचे। वहा एक बडा पुराना ऊँचा ईंटका पयाजा था। उसीके ऊपर बैठकर ध्यान-निमग्न हुए। अनभिज्ञ लोग अद्वितीय साधुको वहाँ आये हुए देखकर दूरसे ही बडे आदरके साथ प्रणाम करने लगे। मुनि महाराजके आने-की धूम सारे नगरमे फैल गयी। हजारो स्त्री-पुरुष इकट्ठे हो गये। कारण-विशेष-से एक वृद्धा श्राविका भी किसी दूसरे नगरसे आई थी। यह भी नगरमे महात्मा आये हुए सुन उनके दर्शनोके लिए वहाँ आई। यह बुढिया दिगम्बराचार्यके वृत्तान्तको जानती थी, इसलिए ज्यो ही इसने महात्माको देखा, त्यो ही समझ गई कि ये तो हमारे श्री दिगम्बर गुरु है। बस, अब देर क्या थी। धीरे-धीरे वह पयाजेपर चढ गई और मुनि महाराजके निकट जाकर बडी विनयके साथ "नमोस्तु-नमोस्तु" कहकर यथास्थान बैठ गई। मुनिराज लोहाचार्यजीने भी 'धर्म्मवृद्धि' कहकर धर्म्मोपदेश दिया। यह घटना देख सबोको बडा ही आश्चर्य हुआ कि अहोभाग्य इस बुढियाका कि ऐसे महात्मा इससे बोले। अब सब मुनि महाराजके निकट उपस्थित हुए। मुनि महाराजने सबोको श्रावकधर्म-

का उपदेश दिया। व्याख्यान सुननेके साथ ही सबका चित्त व्रत ग्रहण करनेके लिए उतारू हो गया। पहले अग्रवंशीय राजा दिवाकरने अपने कुटुम्बियोंके साथ श्रावकधर्मको स्वीकार किया और पीछे इनकी देखा-देखी सवालाख अग्रवालोंके घर जैनी हो गये।

पहले छानकर पानी पीना, रात्रिमें भोजन नहीं करना और देवदर्शन कर भोजन करना, ये तीन मुख्य व्रत जैनियोंके बतलाये गये। उसी समय सवालाख अग्रवालोंके घरोंमें छन्ने रखे गये, रात्रिभोजनका त्याग कराया गया और दर्शनके लिए एक काष्ठकी प्रतिमा बनाकर स्थापित की गई। उसी समयसे अग्रोहेके अग्रवालश्रावकोंकी संज्ञा काष्ठासङ्घी पड़ी। इनका काष्ठासङ्घ, माथुरगच्छ, पुष्करगण, हिसारपट्ट और लोहाचार्य्याम्नाय प्रचलित हुई। यह नवीन काष्ठासङ्घ जब स्थापित किया गया, तो इस सङ्घसे लोहाचार्यजीके आहारका लाभ हुआ और जैनधर्मकी वृद्धि हुई। इस संघकी पट्टावली अन्यत्र प्रकाशित है। इस सङ्घके पट्टपर उस समयसे लेकर आज तक बराबर अग्रवाल जातिके ही भट्टारक अभिषिक्त होते आते हैं।

काष्ठासंघस्य गुर्वावली

संप्राप्तसंसारसमुद्रतीरं जिनेन्द्रचन्द्रं प्रणिपत्य वीरम्।
समीहिताप्त्यै सुमनस्तरूणां नामावली वच्मितमां गुरूणाम् ॥१॥
श्रीवर्द्धमानस्य जिनेश्वरस्य शिष्यास्त्रयः केवलिनो बभूवुः।
जम्बूस्वकम्बूज्ज्वलकीर्त्तिपूरः श्रीगौतमः साधुवरः सुधर्म्मा ॥२॥
विष्णुस्ततोऽभूद्गणभृत्सहिष्णुः श्रीनन्दिमित्रोऽजनि नन्दिमित्रः।
गणिश्च तस्मादपराजिताख्यो गोवर्द्धनः साधुसुभद्रबाहुः ॥३॥
पञ्चापि वाचं यममौलिरत्नान्येतेन केषां मुनयो नमस्याः।
यत्कण्ठपीठेषु चतुर्दशापि पूर्वाणि सर्वे सुखमामजन्ति ॥४॥
ततो विशाखोऽन्वतगच्छशाखः वन्दे मुनिं प्रोष्ठिलनामकञ्च।
गणेश्वरो क्षत्रियनागसेनौ जयाभिधानं मुनिपुंगवञ्च ॥५॥
सिद्धार्थसंज्ञो व्यजनिष्ट शिष्टस्तस्मात्प्रकृष्टो धृतषेणनामा।
अभून्मुनीशो विजयः सुधीमान् श्रीगङ्गदेवोऽपि च धर्मसेनः ॥६॥
अभूवन्मुनयस्त्वेते दशपूर्वधरा इमे।
भव्याम्भोजवनोद्बोधानन्यमार्त्तण्डमण्डलाः ॥७॥
ततः सनक्षत्रमुनिस्तपस्वी जयोदितोभूज्जयपालसंज्ञः।
अमी समीहां परिपूरयन्तु ममोऽपि पाण्डु-ध्रुवसेन-कंसाः ॥८॥

एते एकादशाङ्गानां पारं गमयति प्रथा ।
काष्ठसंघे श्रियाहारा माथुरे पुष्करे गणे ॥९॥
सुभद्रो थयशोभद्रो भद्रबाहुर्गणाग्रणी ।
लोहाचार्य्येति विख्याता प्रथमाङ्गाब्धिपारगा ॥१०॥
जगत्प्रियोऽभूज्जयसेनसाधु श्रीवीरसेनो हतकर्म्मवीर ।
स ब्रह्मसेनोऽपि च रुद्रसेनस्ततोऽप्यभूतां मुनिकुञ्जरौ तौ ॥११॥
श्रीभद्रसेनो मुनिकीर्त्तिसेनस्तपोनिवान जयकीर्त्तिसाधु ।
सद्दिग्वकीर्त्तिर्मूर्तविश्वकीर्ति यस्य त्रिसन्ध्य स भवेन्नमस्य ॥१२॥
ततोप्यभयकीर्त्याख्यो भूतिसेनो महामुनि ।
भावकीर्ति लसद्भावो विश्वचन्द्राभिध सुधी ॥१३॥
अभूत्ततोऽसावभयादिचन्द्र. श्रीमाघचन्द्रो मुनिवृन्दवन्द्य ।
त नेमिचन्द्र विनयादिचन्द्र श्रीबालचन्द्र प्रणत प्रणौमि ॥१४॥
यशे त्रिभुवनचन्द्र त्रिभुवनभवनोपगूढविमलयशा ।
गणिरामचन्द्रनामा गणत्तिगण पण्डितैरेव ॥१५॥
त्रिविधविद्याविशदाशयो य सिद्धान्ततत्त्वामृतपानलीन ।
धन्यो मुनि श्रीविजयेन्दुनामा ततोऽभवद्भावितपुण्यमार्ग ॥१६॥
मुनि यश कीर्त्तिरभूद्यशस्वी विश्वाभयाद्योभयकीर्त्तिरासीत् ।
ततो महासेनमुनि सकुन्दकीर्त्तिश्च कुन्दोपमकीर्त्तिभार ॥१७॥
त्रिभुवनचन्द्रमुनिन्द्रमुदार रामसेनमपि दलितविकार ।
हर्षषेणनवकल्पविहार वन्दे संयमलक्ष्मीधारम् ॥१८॥
तस्मादजायत सदायतचित्तवृत्तिरुत्पन्नमुन्नतमनोरथवल्लरीक ।
संसारवारिनिधिपारगबुद्धिभारो
गच्छाधिपो गुणखनिर्गुणसेननामा ॥१९॥
ततस्तप श्रीभरभाविताङ्ग कन्दर्पदर्पापहचिन्तचार ।
कुमारवच्छीलकलाविशाल कुमारसेनो मुनिरस्तदुष्ट ॥२०॥
प्रतापसेन स्वतप प्रतापी सन्तापित शिष्टतमान्तराशि. ।
तत्पट्टश्रृङ्गारस्ववर्णभूपा बभूव भूय प्रसरत्प्रभाव ॥२१॥
श्रीमन्माहवसेनसाधुममह ज्ञानप्रकाशोल्लसत् ।
स्वात्मालोकनिलीयमात्मपरमानन्दोर्म्मि सर्वम्मिनम् ॥२२॥
ध्यायामि स्फुरदुग्रकर्मनिगणोच्छेदाय विश्वम्भवा ।
वर्ते गुप्तिगृहे वसन्नहरहर्मुक्त्यै स्पृहावानिव ॥२२॥
मम जनिजनताश क्षिप्तदुष्कर्मपाश ।
कृतशुभगतिवास प्रोद्गतात्मप्रकाश ।

जयति विजयसेन. प्रास्तकन्दर्पसेन.
तदनु मनुजवन्द्य सर्वभावैरनिन्द्य ॥२३॥
अधिगताखिलशास्त्ररहस्यदृक् ममतजान मनागपि सेवित· ।
बहुतपश्चरणो मलधारिणो विजयसेनमुनि परिवर्ण्यते ॥२४॥
तत्पट्टपूर्वाचलचण्डरश्मिमु नीश्वरोऽभून्नयसेननामा ।
तपो यदीय जगता त्रयेऽपि जेगीयते साधुजनैरजस्रम् ॥२५॥
यद्यस्ति शक्तिर्गु णवर्णनाया मुनीगतु श्रीनयसेनसूरे· ।
तदा विहायान्यकथां समस्ता मासोपवास परिवर्णयन्तु ॥२६॥
शिष्यस्तदोऽस्ति निरस्तदोष श्रेयाससेनो मुनिपुण्डरीक ।
अध्यात्ममार्गे खलु येन चित्त निवेशित सर्वमपास्य कृत्य ॥२७॥
श्रेयाससेनस्य मुनेर्महीयस्तप प्रभावा परित स्फुरन्ति ।
यद्दर्शनाद्दर्पखिल (?) प्रयाति दारिद्र्यमाशु प्रणतस्य (?) गेहात् ॥२८॥
तत्पट्टधारी सुकृतानुसारी सन्मार्गचारी निजकृत्यकारी ।
अनन्तकीर्तिमु निपुगवोऽत्र जीयाज्जगल्लोकहितप्रदाता ॥२९॥
अनन्तकीर्त्ति स्फुरितोरुकीर्त्ति· शिष्यस्तदीयो जयतीह लोके ।
यस्याशये मानसवारितुल्ये श्रीजैनधर्म्मोऽम्बुजवत्प्रफुल्ल. ॥३०॥
प्रसमरवरकीर्ते सर्वतोऽनन्तकीर्ते
गगनवसनपट्टे राजते तस्य पट्टे ।
सकलजनहितोक्ति· जैनतत्वार्थवेदी
जगति कमलकीर्त्ति· विश्वविख्यातकीर्त्ति ॥३१॥
जयति कमलकीर्त्ति विश्वविख्यातकीर्त्ति ।
प्रकटितयतिमूर्त्ति सर्वसघस्य पूर्ति ।
यदुदयमहिमान प्राप्य सर्वेऽप्यमानं
दधति भविकलोका प्रीतिमुत्तानयोगा ॥३२॥
अध्यात्मनिष्ठ. प्रसरत्प्रतिष्ठ कृपावरिष्ठ. प्रतिमावरिष्ठ ।
पट्टे स्थितस्य त्रिजगत्प्रशस्य श्रीक्षेमकीर्ति कुमुदेन्दुकीर्त्ति ॥३३॥
तत्पट्टोदयभूधरेऽतिमहति प्राप्तोदयादुर्ज्जय ।
रागद्वेषमदान्धकारपटल सञ्चिर्त्कर्रैदारुपान् ।
श्रीमान् राजितहेमकीर्त्तितरणि स्फीता विकासश्रिय
भव्याम्भोजचये दिगम्बरपयालङ्कारभूता दधत् ॥३४॥
कुमुदविशदकीर्त्तिर्हेमकीर्त्ति (!) सुपट्टे
विजितमदनमाय शीलसम्पत्सहाय ।

मुनिवरगणवन्द्यो विश्वलोकैरनिन्द्यो
जयति कमलकीर्ति' जैनसिद्धान्तवादी ॥३५॥

महामुनिपुरन्दर' शमितरागद्वेषाङ्कुर
स्फुरत्परमचिन्तन स्थितिरशेषशास्त्रार्थवित् ।
यश प्रसरमासुरो जयति हेमकीर्तीश्वर.
समस्तगुणमण्डित कमलकीर्तिसूरिर्महान् ॥३६॥

एव पूज्यगुरुक्रमोत्तमलसन्नामावली पद्धतौ ।
यज्जिह्वाधिगता दधाति परमानन्दामृतोत्कण्ठुलाम् ।
सोऽवश्य भवसमव परिभव त्यक्त्वा विवादाशयम् ।
प्राप्नोत्याशु पद पर विलमते चानन्तकीर्तिश्रियम् ॥३७॥

श्रीमत्काष्ठोदयगिरिहरिर्वादिमामगसिन्धु ।
मिथ्यात्वागाशनिरिव गतोशेषजीवादितत्व' ।
कामक्रोधावुदयमएत श्रीकुमारादिसेन
स्यात् श्रीमान् जयति सुपदो हेमचन्द्रो मुनीन्द्र ॥३८॥

शास्त्रप्रवीणो मुनिहेमचन्द्र.
तत्वार्थवेत्ता यतिमण्डनोऽभूत् ।
तत्पट्टचन्द्रो मुनिपद्मनन्दि
जीयात्तनौ सेवितपादपद्म ॥३९॥

ब्राह्मी-सिन्धु कुमुद्वतिपतिरमौ जैनाम्बुजाऽहस्कर
स्याद्वादामृतवर्द्धक शशधर रत्नत्रयालिङ्गित'
जीयाछ्रीमुनिपद्मनन्दिसगुरो पट्टोदयाद्रौ हरि
शान्तिकीर्त्तिमृतां वरो गुणनिधि सूरिर्यश कीर्तिराट् ॥४०॥

यश कीर्त्तिमुनीन्द्रपट्टाब्जभानु
शुभे काष्ठसंघान्वये शोभमान ।
शरच्चन्द्रकुन्दस्फुरत्कान्तकीर्त्ति
जयी स्फीतसूरीश्वर क्षेमकीर्त्ति ॥४१॥

विद्वान् साधुशिरोमणिर्गुणनिधि सौजन्यरत्नाकरो
मिथ्यात्वाचलछेदनैककुलिशो विख्यातकीर्त्तिर्भुवि ।
श्रीमच्छ्रीयशकीर्त्तिसूरिसुगुरो पट्टाम्बुजाहस्कर
श्रीसघस्य सदाकरोनुकुशल 'श्रीक्षेमकीर्त्ति गुरु ॥४२॥

श्रीमच्छ्रीक्षेमकीर्त्ति सकलगुणनिधिर्विष्टपे भूरिपूज्य. ।
तेषा पट्टे समोद समजनमुनिभि स्थापितो शास्त्रविद्भि. ।

श्रीरे हिसारे सुयतिततिवरा. सत्क्रियोद्योतपुञ्जे
सोऽनन्द तासु सेव्यस्त्रिभुवनपुरत कीर्तिप सूरिराज ॥४३॥
श्रीमन्मायुरगच्छभालतिलक स्फुर्य्यत्सतामग्रणी
सद्वोधादिगुणैरतुच्छसुखदै युक्त श्रियालङ्कृत ।
पाताले दिवि भूतले च भविकैरासेव्यमानोऽनिशम्
जीयाच्छ्रीत्रिभुवनकीर्त्तिसुरगुरुर्वन्द्यो वुधैरार्वदा ॥४४॥

धात्रीमण्डलमडनस्तु जयतात् श्रीसहस्रकीर्त्तिगुरु ।
राजद्राजकयातिसाहिविदितो भट्टारकाभूपण. ।
वर्पे वह्नि नगाकचन्द्रकमिते गुर्व्वार्यनग्ने दिने ।
पट्टे भूत्सचयस्य वै त्रिभुवनाद्याकीर्त्तिपट्टे स्थिते ॥४५॥
सहस्रवत्कातुलपक्षभावा सहस्ररश्मिस्तु चकास्ति नित्य ।
सहस्रकीर्त्तिस्सगतैकमूर्त्तिर्गरूपमाभ खलुरत्नपूर्त्ति ॥४६॥
यत्पाण्डित्यमवेत्य मण्डितमहीखण्डप्रचण्डोद्भटम् ।
सद्रव्यव्यवहारनिर्गणविद ज्ञानैकगम्याशयम् ।
सर्वै सौगतिकै समेत्य विविवत् भट्टारकाख्ये वरे
पट्टे पण्डितमण्डलीनुतमय पूज्य. प्रपूज्यैरपि ॥४७॥

महीचन्द्रश्चन्द्र सुहृदयहृदान्ते हि सुधिया
स्वकान्तेवासिभ्योऽविरतमनघ दानविहितम् ।
निजे दीप्यनज्ञाने सुगतिविदुषा पुण्यपरिधि
यशोराशि लोकेष्ववहितमना पूर्णमकरोत् ॥४८॥
पट्टस्यास्य महीचन्द्रशिष्यो देवेन्द्रकीर्त्तिराट् ।
ख्यातिमुद्दीपयामास जगत्यद्भुतसद्गुणै ॥४९॥

विदितसुकृतकीर्तेर्दिव्यदेवेन्द्रकीर्ते
मुनिवरगुमपट्ट धर्मसत्कान्तिखण्डम् ।
तदनु भविकपूज्य: श्रीजगत्कीर्त्तिपूज्य.
शुभसदनमकार्षीद्दिव्यसद्राशिरासीत् ॥५०॥
अनन्तस्याद्वादारविषु कलकण्ठ पिकवर.
प्रसाद पुण्याना गुणसरसिजाना मधुकर. ।
जगत्कीर्तेश्शिष्यो ललितसत्कीर्त्तिवुधवर
समापत्तत्पट्ट सुकृतनिजपट्ट सुयतिवर ॥५१॥

जिनमतगुमहृदवीचिष्वनिश मज्जनप्रमाणनयवेदी ।
तदनु च पट्टेऽध्यासच्छ्रीमान् राजेन्द्रकीर्त्तिसुधिरेष ॥५२॥

एषो निजगुरुपट्टं प्राप्याध्यासीन्मुनीन्द्रशुभकीर्त्तिः ।
युगयुगरववेद्विकवर्षे वीरस्याहो गतो हि सुरलोकं ॥५३॥

काष्ठासङ्घकी पट्टावलीका भाषानुवाद

संसाररूपी समुद्रका पार जिन्होंने पाया है, ऐसे जिनेन्द्र श्रीवीरनाथ स्वामी-को नमस्कारकर मैं अपने अर्थकी सिद्धिके लिये अपने गुरुओंका नाम कहता हूँ ॥१॥

श्री वर्द्धमान भगवानके तीन शिष्य केवली हुए। जम्बूस्वामी, गौतमस्वामी और सुधर्माचार्य ॥२॥

इनके बाद नमस्कार करने योग्य श्रीविष्णुमुनि, श्रीनन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये पाँच समस्त चौदह पूर्वके वेत्ता हुए अर्थात् श्रुतकेवली हुए ॥३॥४॥

इनके विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रियाचार्य, नागसेन, जयसेन, धृतिषेण, विजय, गङ्गदेव, धर्मषेण ये सब मुनि दश पूर्वके धारी और भव्य-कमल-प्रकाशन सूर्य्य हुए ॥५॥६॥७॥

नक्षत्राचार्य, जयपालाचार्य, मुनीन्द्र पाण्डुनामाचार्य्य, ध्रुवसेनाचार्य्य, कंसाचार्य्य ये मुनि एकादशांग अर्थात् ग्यारह अङ्गके धारी हुए ॥८॥९॥

सुभद्राचार्य्य, यशोभद्र, भद्रबाहु और लोहाचार्य्य ये एक अङ्गके धारी हुए ॥१०॥

इन लोहाचार्य्य स्वामीके (१) जयसेन, (२) श्रीवीरसेन, (३) ब्रह्मसेन, (४) रुद्रसेन, (५) भद्रसेन, (६) कीर्त्तिसेन, (७) जयकीर्त्ति, (८) विश्वकीर्त्ति, (९) अभयसेन, (१०) भूतसेन, (११) भावकीर्त्ति, (१२) विश्वचन्द्र, (१३) अभयचन्द्र, (१४) माघचन्द्र, (१५) नेमिचन्द्र, (१६) विनयचन्द्र, (१७) बालचन्द्र, (१८) त्रिभुवनचन्द्र, (१९) रामचन्द्र, (२०) विजयचन्द्र ॥११॥१२॥१३॥॥१४॥१५॥१६॥

इनके (२१) यश कीर्त्ति, (२२)अभयकीर्त्ति, (२३)महासेन, (२४) कुन्दकीर्त्ति, (२५) त्रिभुवनचन्द्र, (२६) रामसेन, (२७) हर्षषेण, (२८) गुणसेन हुए ॥१७॥१८॥१९॥

इनके कामदर्पदलन (२९)श्रीकुमारसेन, (३०) प्रतापसेन, हुए। ॥२०॥२१॥

इनके पट्टपर महातपस्वी, परमोत्कृष्ट आत्मध्यानके ध्याता (३१) श्री माहवसेन हुए ॥२२॥

इनके पट्टपर(३२)विजयसेन, (३३) नयसेन, (३४)श्रेयाससेन, (३५) अनन्त-कीर्ति इन दिगम्बर मुनियोके पट्टपर सर्वलोकहितकारी जैन सिद्धान्तके अपूर्व ज्ञाता

विस्तरित है कीर्त्ति जिनकी, ऐसे (३६) श्रीकमलकीर्त्ति हुए। ॥२३॥२४॥२५॥२६॥२७॥२८॥२९॥३०॥३१॥

यह कमलकीर्त्ति सर्व सङ्घकी रक्षा करनेवाले और इनकी महिमा पाकर बड़े-बडे मानियोने भी मान छोड दिया और भव्योको प्रीति उत्पन्न करने वाले हुए। इनकी जय हो ॥३२॥

इनके पट्टपर (३७) क्षेमकीर्त्ति, इनके अति महान् पट्टरूपी पर्वतपर उदय होकर दुर्जय मोहान्धकारका नाश करनेवाले (३८) श्रीहेमकीर्त्ति हुए ॥३३॥३४॥

इनके (३९) कमलकीर्त्ति, (४०) कुमारसेन, (४१) हेमचन्द्र, (४२) पद्मनन्दि, (४३) यश कीर्त्ति, (४४) क्षेमकीर्त्ति, (४५) त्रिभुवनकीर्त्ति, (४६) सहस्रकीर्त्ति, (४७) महीचन्द्र, (४८) देवेन्द्रकीर्त्ति, (४९) जगत्कीर्त्ति, (५०) ललितकीर्त्ति, (५१) राजेन्द्रकीर्त्ति, (५२) मुनीन्द्रशुभकीर्त्ति हुए ॥३५ से ५३ ॥

इस पट्टावलीके भावानुवादमे जिन आचार्योंके विशेषणोंसे कुछ ऐतिहासिक महत्व है, उनका वर्णन किया है। शेष आचार्योंकी केवल नामावली ही अङ्कित की गयी है।

श्रुतधर-पट्टावली

णमिऊण वड्ढमाण ससुरासुरवदिद विगयमोह ।[1]
वरसुदगुरुपरिवाडि वोच्छामि जहाणुपुव्वीए ॥१॥
विउलगिरितुगसिहरे जिणिदइदेण वढ्माणेण ।
गोदममुणिररा कहिद पमाणणयसजुद अत्थं ॥२॥

तेण वि लोहज्जस्स य लोहज्जेण य सुधम्मणामेण ।
गणधरसुधम्मणा खलु जवूणामररा णिद्दिट्ठ ॥३॥
चदुरमलबुद्धिसहिदे तिण्णेदे गणधरे गुणसमग्गे ।
केवलणाणपईवे सिद्धि पत्ते णमसामि ॥४॥

णंदी य णदिमित्तो अवराजिदमुणिवरो महातेओ ।
गोवड्ढणो महप्पा महागुणो भद्दबाहू य ॥५॥
पचेदे पुरिसवरा चउदसपुव्वी हवति णायव्वा ।
बारसअंगधरा खलु वीरजिणिदररा णायव्वा ॥६॥

1 जवूदीवपण्णत्ती १।८-१७।

तह य विसाखायरिओ पोट्ठिल्लो खत्तिओ यजयणामो ।
णागो सिद्धत्थो वि य धिदिसेणो विजियणामो य ॥७॥
बुद्धिल्ल गंगदेवो धम्मस्सेणो य होइ पच्छिमओ ।
पारंपरेण एदे दसपुव्वधरा समक्खादा ॥८॥
णक्खत्तो जसपालो पडू धुवसेण कंसआयरिओ ।
एयारसंगधारी पंच जणा होंति णिद्दिट्ठा ॥९॥
णामेण सुभद्द जसभद्दो तह य होइ जसबाहू ।
आयारधरा णेया अपच्छिमो लोहणामो य ॥१०॥
आइरियपरंपरया सायर दीवाण तह य पण्णत्ती ।
संखेवेण समत्थ वोच्छामि जहाणुपुव्वीए ॥११॥

सुर एवं असुरोसे वंदित्त और मोहसे रहित वर्धमान जिनेन्द्रको नमस्कार करके उत्तम श्रुतके धारक गुरुओंकी परंपराको अनुक्रमसे कहता हूँ ॥१॥

विपुलाचल पर्वतके उन्नत शिखरपर जिनेन्द्र भगवान् वर्धमान स्वामीने प्रमाण और नयसे संयुक्त अर्थका गौतममुनिको उपदेश दिया । उन्होने (गौतम-गणधरने) लोहार्यको, और लोहार्य अपरनाम सुधर्मगणधरने जम्बूस्वामीको उपदेश दिया ॥२-३॥

चार निर्मल बुद्धियों (कोष्ठबुद्धि, बीजबुद्धि, संभिन्नश्रोत्रबुद्धि, और पदानुसारिणी बुद्धि) से सहित, गुणोंसे परिपूर्ण, केवलज्ञानरूप उत्कृष्ट द्वीपकसे संयुक्त और सिद्धिको प्राप्त इन तीनो गणधरोंको नमस्कार करता हूँ ॥४॥

नन्दि, नन्दिमित्र, महातेजस्वी अपराजित मुनीन्द्र, महात्मा गोवर्धन और महागुणोंसे युक्त भद्रबाहु, ये पाँच श्रेष्ठ पुरुष चौदह पूर्वोके धारक अर्थात् श्रुतकेवली थे, ऐसा जानना चाहिये । वीर जिनेन्द्रके (तीर्थमे) इन्हे बारह अंगोंके धारक जानना चाहिये ॥५-६॥

तथा विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल्ल, गंगदेव और अन्तिम धर्मसेन ये परम्परासे दस पूर्वोंके धारक कहे गये हैं ॥७-८॥

नक्षत्र, यशपाल, पाण्डु, ध्रुवषेण और कंसाचार्य ये पाँच जन ग्यारह अंगो-के धारक निर्दिष्ट किये गये हैं ॥९॥

सुभद्र मुनी, यशोभद्र, यशोबाहु और अन्तिम लोहाचार्य ये चार आचार्य आचारांगके धारी जानना चाहिये ॥१०॥

आनुपूर्वीके अनुसार आचार्यपरम्परासे प्राप्त सागर-द्वीपोकी समस्त प्रज्ञप्ति-को संक्षेपमे कहता हूँ ॥११॥

सेवचन्द्र-प्रशस्ति[1]

(शक सं० १०३७)

(दक्षिणमुख)

भद्र भूयाज्जिनेन्द्राणां शासनायाघनाशिने ।
कुतीर्थ-ध्वान्तसङ्घातप्रभिन्नघनभानवे ॥१॥
श्रीमन्नामेयनाथाद्यमलजिनवरानीकसौधोरुवार्द्धि
प्रध्वस्ताघ-प्रमेय-प्रचय-विषय-कैवल्यबोधोरु-वेदि ।
शस्तस्यात्कारमुद्राशवलितजनतानन्दनादोरुघोप
स्थेयादाचन्द्रतारं परमसुखमहावीर्य्यवीचीनिकाय ॥२॥
श्रीमन्मुनीन्द्रोत्तमरत्नवर्ग्गा श्रीगौतमाद्या प्रभविष्णवस्ते
तत्राम्बुधौ सप्तमहर्द्धियुक्तास्तत्सन्ततौ नन्दिगणे बभूव ॥३॥
श्रीपद्मनन्दीत्यनवद्यनामा ह्याचार्यशब्दोत्तरकोण्डकुन्द ।
द्वितीयमासीदभिधानमुद्यच्चरित्रसञ्जातसुचारणर्द्धि ॥४॥
अभूदुमास्वातिमुनीश्वरोऽसावाचार्य्यशब्दोत्तरगृद्धपिञ्छ ।
तदन्वये तत्सदृशोऽस्ति नान्यस्तात्कालिकाशेषपदार्थवेदी ॥५॥
श्रीगृद्धपिञ्छमुनिपस्य बलाकपिञ्छ
शिष्योऽजनिष्ट भुवनत्रयवर्त्तिकीर्त्ति ।
चारित्रचुञ्चुरखिलावनिपालमौलि-
मालाशिलीमुखविराजितपादपद्म ॥६॥
तच्छिष्यो गुणनन्दिपण्डित-यतिश्चारित्रचक्रेश्वर-
स्तर्क्कव्याकरणादिशास्त्रनिपुणस्साहित्यविद्यापति ।
मिथ्यावादिमदान्धसिन्धुरघटासङ्घट्टकण्ठीरवो
भव्याम्भोजदिवाकरो विजयतां कन्दर्प्पदर्प्पापह ॥७॥
तच्छिष्यास्त्रिशता विवेकनिधयश्शास्त्राब्धिपारङ्गता-
स्तेषूत्कृष्टतमा द्विसप्ततिमितास्सिद्धान्तशास्त्रार्थक-
व्याख्याने पटवो विचित्रचरितास्तेषु प्रसिद्धो मुनि
नानानूननयप्रमाणनिपुणो देवेन्द्रसैद्धान्तिक ॥८॥
अजनि महिपचूडारत्नराराजिताङ्घ्रि-
र्व्विजितमकरकेतूद्दण्डदोर्द्दण्डगर्व्व ।
कुनयनिकरभूध्रानीकदम्भोलिदण्ड-
स्स जयतु विबुधेन्द्रो भारतीभालपट्ट ॥९॥

१ जैन शिलालेखसंग्रह, प्रथम भाग, मा० दि० ग्र०, अभिलेख सख्या—४७ ।

तच्छिष्य: कलधौतनन्दिमुनिपस्सिद्धान्तचक्रेश्वर
पारावारपरीतधारिणिकुलव्याप्तोरुकीर्तीश्वर ।
पञ्चाक्षोन्मदकुम्भिकुम्भदलनप्रोन्मुक्तामुक्ताफल-
प्राशुप्राञ्चितकेसरी बुधनुतो वाक्कामिनीवल्लभ ॥१०॥
तत्पुत्रको महेन्द्रादिकीर्त्तिर्म्मदनशङ्कर: ।
यस्य वाग्देवता शक्ता श्रौती मालामयूयुजत् ॥११॥
तच्छिष्यो वीरनन्दी कविनामक-महावादि वाग्मित्वयुक्तो
यस्य श्रीनाकसिन्धुत्रिदशपतिगजाकाशसङ्काशकीर्त्तिं ।
गायन्त्युच्चैर्दिग्दिगन्ते त्रिदशयुवतय: प्रीतिरागानुबन्धात्
सोऽय जीयात्प्रमादप्रकरमहिधरामीलदम्भोलिदण्ड ॥१२॥
श्रीगोल्लाचार्य्यनामा समजनि मुनिपश्शुद्धरत्नत्रयात्मा
सिद्धात्माद्यर्त्थ-सार्त्थ-प्रकटनपटु-सिद्धान्त-शास्त्राब्धि-वीची
सङ्घातक्षालिताह प्रमदमदकलालीढबुद्धिप्रभाव
जीयाद् भूपाल-मौलि-द्युमणि-विदलिताङ्घ्रिपञ्जलक्ष्मीविलास ॥
पेर्ग्गडे चावराजे बरेदमङ्गल ॥

(पश्चिममुख)

वीरणन्दिविबुधेन्द्रसन्ततौ नूत्नचन्दिलनरेन्द्रवश-
चूडामणि प्रथितगोल्लदेशभूपालक किमपि कारणेन स: ॥१४॥
श्रीमत्त्रैकाल्ययोगी समजनि महिकाकायलग्नातनुत्र
यस्याभूद्वृष्टिधारा निशित-शरगणा ग्रीष्ममार्त्तण्डबिम्ब ।
चक्र सद्वृत्तचापाकलितयतिवरस्याघशत्रून्विजेतु
गोल्लाचार्य्यस्य शिष्यस्स जयतु भुवने भव्यसत्कैरवेन्दु: ॥१५॥
तपस्सामर्थ्यतो यस्य छात्रोऽभूद्ब्रह्मराक्षस ।
यस्य स्मरणमात्रेण मुञ्चन्ति च महाग्रहा ॥१६॥
प्राज्याज्यता गत लोके करञ्जस्य हि तैलक
तपस्सामर्थ्यतस्तस्य तप. कि वर्ण्णितु क्षम ॥१७॥
त्रैकाल्य-योगि-यतिपाग्र-विनेयरत्न-
स्सिद्धान्तवार्द्धिपरिवर्द्धनपूर्णचन्द्र ।
दिग्नागकुम्भलिखितोज्ज्वलकीर्त्तिकान्तो
जीयादसावभयनन्दिमुनिर्ज्जगत्या ॥१८॥
येनाशेषपरीषहादिरिपवस्सम्यग्जिता प्रोद्धता.
येनाप्ता दशलक्षणोत्तममहाधर्म्माख्यकल्पद्रुमा.

येनाशेष-भवोपताप-हननस्वाध्यात्मसवेदन
प्राप्त स्यादभयादिनन्दिमुनिपश्शोऽय कृतार्थो भुवि ॥१९॥
तच्छिष्यश्शकलागमार्थनिपुणो लोकज्ञतासयुत-
श्श-चारित्रविचित्रचारुचरितश्शौजन्यकन्दाङ्कुर·
मिथ्यात्वाब्जवनप्रतापहननश्रीसोमदेवप्रमु-
र्ज्जीयात्सत्सकलेन्दुनाममुनिप कर्माटवीपावक ॥२०॥
अपि च सकलचन्द्रो विश्वविश्वम्भरेश-
प्रणुतपदपयोज कुन्दहारेन्दुरोचि. ।
त्रिदशगजसुवज्रव्योमसिन्धुप्रकाश-
प्रतिभविशदकीर्त्तिर्व्वाग्वधूकर्ण्णपूर ॥२१॥
शिष्यस्तस्य दृढव्रतश्शमनिधिस्सत्संयमाम्भोनिधि·
शीलाना विपुलालयश्शमितिमिथ्युर्क्तिास्त्रिगुप्तिश्रित ।
नानासद्गुणरत्नरोहणगि प्रोद्यत्तपोजन्मभू
प्रख्यातो भुवि मेघचन्द्रमुनिपस्त्रैविद्यचक्राधिप ॥२२॥
त्रैविद्ययोगीश्वर-मेघचन्द्रस्याभूत्प्रभाचन्द्रमुनिश्शुशिष्य ।
शुम्भद्व्रताम्भोनिधिपूर्ण्णचन्द्रो निर्द्धूतदण्डत्रितयो विशल्य ॥२३॥
पुष्पास्त्रानून-दानोत्कट-कट-करटिच्छेदछेद-दृप्यन्मृगेन्द्र
नानाभव्याब्जषण्डप्रतति-विकसन-श्रीविधानैकभानु ।
ससाराम्भोधिभव्योत्तरणकरणतौयानरत्नत्रयेश
सम्यग्जैनागमार्थान्वितविमलमति श्रीप्रभाचन्द्रयोगी ॥२४॥
(उत्तरमुख)
श्रीभूपालकमौलिलालितपदश्शज्ञानलक्ष्मीपति-
श्चारित्रोत्करवाहनश्शितयशश्शुभ्रातपत्राञ्चित ॥
त्रैलोक्याद्भुतमन्मथारिविजयश्शद्धर्म्मचक्राधिप.
पृथ्वीसस्तवतूर्य्यघोषनिनदस्त्रैविद्यचक्रेश्वर· ॥२५॥
सैद्धान्तेद्धशिरोमणि प्रशमवद्व्रातस्य चूडामणि ।
शब्दौघस्य शिरोमणि प्रविलसत्तर्क्कज्ञचूडामणि
प्रोद्यत्सयमिना शिरोमणिरुदञ्चद्भव्यरक्षामणि-
र्ज्जीयात्सन्नुतमेघचन्द्रमुनिपस्त्रैविद्यचूडामणि ॥२६॥
त्रैविद्योत्तममेघचन्द्रयमिन प्रत्युर्म्मभासि प्रिया
वाग्देवी दिसहावहित्यहृदया तद्वाश्यकर्म्मार्त्यिनी ।
कीर्त्तिर्व्वारिविदिक् कुलाचलकुले स्वादात्मा प्रष्टुम-
प्यन्वेष्टु मणिमन्त्रतन्त्रनिचय सा सम्भ्रमा भ्राम्यति ॥२७॥

सर्क्कान्यायसुवज्रवेदिरमलार्हत्सूक्तितन्मौक्तिक
शब्दग्रन्थविशुद्धशङ्खकलितरस्याद्वादसद्विद्रुमः
व्याख्यानोर्ज्जितघोषणः प्रविपुलप्रज्ञोद्धवीचीचयो
जीयाद्विश्रुतमेघचन्द्रमुनिपस्त्रैविद्यरत्नाकरः ॥२८॥
श्रीमूलसंघ-कृत-पुस्तकगच्छ-देशी
प्रोद्यद्गणाधिपसुतार्किकचक्रवर्ती ।
सैद्धान्तिकेश्वरशिखामणिमेघचन्द्र-
स्त्रैविद्यदेव इति सद्विबुधाः ( ) स्तुवन्ति ॥२९॥

सिद्धान्ते जिन-वीरसेन-सदृशः शास्त्राब्ज-भा-भास्करः
षट्तर्क्केष्वकलङ्कदेव विबुधः साक्षादयं भूतले ।
सर्व्व-व्याकरणे विपश्चिदधिपः श्रीपूज्यपादस्स्वयं
त्रैविद्योत्तममेघचन्द्रमुनिपो वादीभपञ्चाननः ॥३०॥
रुद्राणीशस्य कण्ठं धवलयति हिमज्योतिषो जातमङ्कं
पीतं सौवर्ण्णशैलं शिशुदिनपतनुं राहुदेहं नितान्तं ।
श्रीकान्तावल्लभाङ्गं कमलभववपुर्म्मेघचन्द्रव्रतीन्द्र
त्रैविद्यस्याखिलाशावलयनिलयसत्कीर्त्तिचन्द्रातपोऽसौ ॥३१॥

मुनिनाथं दशधर्म्मधारिदळषट्-त्रिंशद्गुणं दिव्य-वा-
र्णनिधानं निजगिक्षुचापमलिनीज्यासूत्रमोरेन्दे पू-
विन बाणङ्गळुमय्दे हीननधिकङ्गाक्षेपममाप्पुदा-
व नय दर्प्पक मेघचन्द्रमुनियोळ् माण्निन्नदोर्द्दर्प्पम ॥३२॥
मृदुरेखाविलास चावराज-वलहदल् वरेदुद बिरुदरूवारिमुख-
तिलकगङ्गाचारि कण्डरिसिद शुभचन्द्र सिद्धान्तदेवरगुड्ड ।

(पूर्वमुख) -

श्रवणीयं शब्दविद्यापरिणतिं महनीयं महातर्क्कविद्या-
प्रवणत्वं श्लाघनीयं जिननिगदित-सशुद्धसिद्धान्तविद्या-
प्रवणप्रागल्भ्यमेन्देन्दुपचितपुलकं कीर्त्तिसल् कूर्त्तु-विद्व-
न्निवहं त्रैविद्यनाम-प्रविदितनेसेदं मेघचन्द्रव्रतीन्द्रं ॥३३॥
क्षमेगीगल् जीवनं तीविदुदतुलतपःश्रीगे लावण्यमीगल्
समसन्दिद्दर्दत्तु तर्न्नि श्रुतवधुगधिकं प्रौढियायत्तीगळेन्द-
न्दे महाविख्यातिय ताल्दिदर्दनमलचरित्रोत्तमं भव्यचेतो-
रमणं त्रैविद्यविद्योदितविशदयशं मेघचन्द्रव्रतीन्द्रं ॥३४॥
इदे हंसीवृन्दमीण्टल् वगेदपुदु चकोरीचयं चञ्चुविन्दं

कटुकल् सादर्द्दप्पुदीशं जडेयोलिरिसलेन्दिदर्द्दपं सेज्जेगरल्
पदेदप्प कृष्णनेम्बन्तेसेदु विसन्नसत्कन्दलीकन्दकान्त
पुदिदत्ती मेघचन्द्रव्रतितिलकजगद्वर्त्तिकीर्त्तिप्रकाश ॥३५॥

पूजितविदग्धविवुधस-
माज त्रैविद्य-मेघचन्द्र-व्रति-रा-
राजिसिद विनमितमुनि-
राजं वृषभगणभगणतारा राज ॥३६॥

सक वर्ष १०३७ नेय मन्मथसर्वत्सरद मार्ग्गसिर सुद्ध १४ वृहवार धनुर्लग्नद पूर्वाह्णदारुधलिगेयप्पागलु श्रीमूलसङ्घद देसिगगणद पुस्तकगच्छद श्रीमेघचन्द्र-त्रैविद्यदेवर्त्तम्मवशानकालमनरिदु पल्यङ्कागनदोलिद्दु आत्ममावनेय भाविसुत्तु देवलोकक्के सन्दरामावर्नेयेन्तप्पुदेन्दोडे ॥

अनन्त-बोधात्मकमात्मतत्त्व निधाय चेतस्यपहाय हेयं ।
त्रैविद्यनामा मुनिमेघचन्द्रो दिव गतो बोधनिधिर्व्विशिष्टाम् ॥३७॥

अवरग्रशिष्यरशेष-पद-पदार्थन्तत्त्व-विदरु सकलशास्त्रपारावारपारगरु गुरु-कुलसमुद्धरणरुमप्प श्रीप्रमाचन्द्र-सिद्धान्त देवर्त्तम्म गुरुगलो परोक्षविनेय कारण-मागि-श्रीकव्वप्पु-तीर्थदल् तम्म गुड्डु ॥

समधिगतपञ्चमहाशब्द महासामन्ताधिपति महाप्रचण्डदण्डनायक वैरिभय-दायक गोत्रपवित्र बुधजनमित्र स्वामिद्रोहगोधूमघरट्टसंग्रामजत्तलट्ट विष्णुवर्द्धन-भूपालहोय्सलमहाराज राज्यसमुद्धरण कलिगलाभरण श्रीजैनधर्म्मामृताम्बुधि-प्रवर्द्धन-सुधाकर सम्यक्त्वरत्नाकर श्रीमन्महाप्रधान दण्डनायकगङ्गराजनुमातन मनस्सरोवरराजहंसे भव्यजनप्रससे गोत्र-निधाने रुक्मिणीसमाने लक्ष्मीमति-दण्डनायकितियुमन्तवरिन्दमतिशय महाविभूतियिं सुभलग्नदोलु प्रतिष्ठेय माडि-सिदर् आमुनीन्द्रोत्तमर् ईनिसिधिगेयन् अवर तप प्रभावमेन्तप्पुदेन्दोडे ॥

समदोद्यन्मारनाग-द्विरद-दलन १-कण्ठीरव क्रोध-लोभ
द्रुम-मूलच्छेदन दुर्द्धरविषय शिलामेद-वज्र-प्रपात ।
कामनीय श्रीजिनेन्द्रागमजलनिधिपार प्रभाचन्द्र-सिद्धान्तमु-
नीन्द्रं मोहविध्वसनकरनेसेद धात्रियोल् योगिनाथ ॥३८॥

चावराज बरेद ॥

मत्तिन मातवन्तिरलि जीर्ण्णजिनाश्रयकोटिय क्रम
वेत्तिरे मुन्निनन्तिरतितूर्ग्गलोल नेरे माडिसुत्तम-
त्युत्तमपात्रदानदोदव मेरेवुत्तिरे गगवाडितो-
म्बत्तरु सासिर कोपणमादुद गगणदण्डनाथनिं ॥३९॥

सोमयनें कंकोण्डुदो
सौभाग्यद्-कणियेनिप्प लक्ष्मीमतियि-
न्दीभुवनतलदोला हा-
रामयमैसज्यशास्त्र-दान-विधान ॥४०॥

इस प्रशस्तिमे कुन्दकुन्दाचार्य, गृद्ध्रपिच्छ, बलाकपिच्छ, गुणनन्दि, देवेन्द्र सैद्धान्तिक और कलधौतनन्दिका उल्लेख आया है। कलधौतनन्दिके पुत्र महेन्द्र-कीर्त्ति हुए, जिनकी आचार्यपरम्परामे क्रमसे वीरनन्दि, गोल्लाचार्य, त्रैकाल्य-योगि, अभयनन्दि और सकलचन्द्र मुनि हुए। इस अभिलेखमे आचार्योंके तप एव प्रभावका भी सुन्दर चित्रण हुआ है। त्रैकाल्ययोगीके विषयमे कहा जाता है कि इनके तपके प्रभावसे एक ब्रह्मराक्षस इनका शिष्य बन गया था। इनके स्मरणमात्रसे बडे-बडे भूत भागते थे, और इनके प्रतापसे करञ्जका तेल घृतमे परिवर्त्तित हो गया था। सकलचन्द्रमुनिके शिष्य मेघचन्द्र त्रैविद्य हुए, जो सिद्धान्तमे वीरसेन, तर्कमे अकलक और व्याकरणमे पूज्यपादके तुल्य विद्वान थे। शक स० १०३७ मार्गशीर्ष, शुक्ला चतुर्दशी, गुरुवार, मन्यतसम्वत्सरको धनुलग्न पूर्वाह्न समयमे इन्होने सध्यानपूर्वक शरीरका त्याग किया। मेघचन्द्र देशीगण, पुस्तकगच्छके आचार्य थे। इनके प्रमुख शिष्य प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेव थे, जो विभिन्न विषयोंके ज्ञाता, वादियोके मदको चूर करनेवाले प्रतापी और मोह-अन्धकारको ध्वस करनेवाले थे। इन्होने महाप्रधान दण्डनायक गगराज द्वारा माघचन्द्र त्रैवेद्यकी निषधा तैयार करायी। इस अभिलेखमे नन्दिगणका उल्लेख आया है और इसी गणके अन्तर्गत पद्मनन्दि, कुन्दकुन्द आदिका निर्देश किया है।

मल्लिषेण-प्रशस्ति

(शक सं० १०५० ई०, सन् ११२८)

इस पट्टावलिमे मूलरूपसे मल्लिषेण मलधारिदेवके समाधिमरणका निर्देश आया है। चन्द्रगिरि पर्वत (कटवप्र) के पार्श्वनाथमन्दिर (वसति) के नवरगमे यह प्रशस्ति अङ्कित की गई है। आचार्योंके इतिहासकी दृष्टिसे इस प्रशस्तिका मूल्य अधिक है। ७२ पद्योमे दिगम्बर परम्पराके समस्त प्रसिद्ध आचार्योंका नाम आया है। प्रशस्ति निम्न प्रकार है

(उत्तरमुख)

श्रीमन्नायकुलेन्दुरिन्द्र-परिषद्वन्द्यश्श्रुत-श्री-सुधा-
धारा-धौत-जगत्तमोऽपह-महः-पिण्ड-प्रकाण्ड महत् ।

यस्यान्तिर्म्मल-धर्म्म-वार्द्धि-विपुलश्रीर्व्वर्द्धमाना सता
भर्त्तुर्भव्य-चकोर-चक्रमवतु श्रीवर्द्धमानो जिन ॥१॥

जीयादर्त्थयुतेन्द्रभूतिविदिताभिख्यो गणी गौतम
स्वामी सप्तमहर्द्धिभिस्त्रिजगतीमापादयन्पादयो ।

यद्बोधाम्बुधिमेत्य वीर-हिमवत्कुत्कीलकण्ठाद्बुधा
म्भोदात्ता भुवन पुनाति वचनस्वच्छन्दमन्दाकिनी ॥२॥

तीर्थेश-दर्शनभवन्नय-हक्सहस्र-विस्रब्ध-बोध-वपुषश्श्रुतकेवलीन्द्रा ।
निर्भिन्नदता विबुध-वृन्द-शिरोभिवन्द्यास्फूर्ज्जद्वच: कुलिशत. कुमताद्रि-
मुद्रा ॥३॥

वर्ण्य कथन्नु महिमा भण भद्रवाहो र्म्मोहोरुमल्ल-मद-मर्द्दन-वृत्तबाहो. ।
यच्छिष्यताप्तसुकृतेन स चन्द्रगुप्त श्शुश्रूष्यतेरा सुचिर वनदेवताभि. ॥४॥

वन्द्योविभुर्भुवि न कैरिह कौण्डकुन्द
कुन्द-प्रभा-प्रणयि-कीर्त्ति-विभूषिताश ।
यश्चारुचारण-कराम्बुजचञ्चरीक-
श्चक्रे श्रुतस्य भरते प्रयत प्रतिष्ठाम् ॥५॥

वन्द्यो भस्मक-भस्म-सात्कृति-पटु: पद्मावती-देवता-
दत्तोदात्त-पदस्व-मन्त्र-वचन-व्याहूत-चन्द्रप्रभ. ।
आचार्य्यस्स समन्तभद्रगणभृद्येनेह काले कलौ
जैन वर्त्म समन्तभद्रमभवद्भद्रं समन्तान्मुहु ॥६॥

चूर्णि ॥ यस्यैवविधा वादारम्भसरम्भविजृम्भिताभिव्यक्तयस्सूक्तय ॥
वृत्त ॥ पूर्व्वं पाटलिपुत्र-मध्य-नगरे भेरी मया ताडिता
पश्चान्मालव-सिन्धु-ठक्क-विषये काञ्चीपुरे वैदिशे ।
प्राप्तोऽहं करहाटक बहु-भट-विद्योत्कट सङ्कट
वादार्थी विचराम्यहन्नरपते शार्दूल-विक्रीडित ॥७॥
अवटु-तटमटति झटिति स्फुट-पटु-वाचाटधूर्ज्जटेरपि जिह्वा
वादिनि समन्तभद्रे स्थितवति तव सदसि भूप कथान्येषा ॥८॥

योऽसौ घाति-मल-द्विषद्वल-शिला-स्तम्भावली-खण्डन-
ध्यानासि पटुरर्हतो भगवतस्सोऽस्य प्रसादीकृत ।

१. जैनशिलालेखसंग्रह, प्रथम भाग, अभिलेखसख्या ५४ ।

छात्रस्यापि स सिंहनन्दि-मुनिना नोचेत्कथ वा शिला-
स्तम्भोराज्यरमागमाध्व-परिघस्तेनासिखण्डो घन ॥९॥
वक्रग्रीव-महामुनेर्दश-शतग्रीवोऽप्यहीन्द्रो यथा-
जात स्तोतुमलं वचोबलमसौ कि भग्न-वाग्मि-व्रज ।
योऽसौ शासन-देवता-बहुमतो ह्री-वक्त्र-वादि-ग्रह-
ग्रीवोऽरिगन्नथ-शब्द-वाच्यमवदद् मासान्समासेन षट् ॥१०॥
नवस्त्रोत्र तत्र प्रसरति कवीन्द्रा कथमपि
प्रणाम वज्रादौ रचयत परन्नन्दिनि मुनौ ।
नवस्तोत्र येन व्यरचि सकलार्हत्प्रवचन-
प्रपञ्चान्तर्भाव-प्रवण-वर-सन्दर्भ्भसुभग ॥११॥
महिमा स पात्रकेसरिगुरो. पर भवति यस्य भक्त्याचासीत्
पद्मावती सहाया त्रिलक्षण-कदर्थनं कर्त्तुं ॥१२॥
सुमति-देवममु स्तुतयेन वस्सुमति-सप्तकमाप्ततया कृत ।
परिहृतापथ-तत्त्वपथार्थिना सुमति-कोटि-विवर्त्तिमवार्त्तिहृत् ॥१३॥
उदेत्य सम्यग्दिशि दक्षिणस्या कुमारसेनो मुनिरस्तमापत् ।
तत्रैव चित्र जगदेक-भानोस्तिष्ठत्यसौ तस्य तथा प्रकाश ॥१४॥
धर्म्मार्थकामपरिनिर्वृतिचारुचिन्तश्चिन्तामणि. प्रतिनिकेतमकारि येन ।
स स्तूयते सरससौख्यभुजा-सुजातश्चिन्तामणिर्म्मुनिवृषा
न कथ जनेन ॥१५॥
चूडामणि कवीना चूडामणि-नाम-सेव्य-काव्य-कवि ।
श्रीवर्द्धदेव एव हि कृतपुण्य कीर्त्तिमाहर्त्तुं ॥१६॥
चूर्णि ॥ य एवमुपश्लोकितो दण्डिना ॥
जह्नो कन्या जटाग्रेण बभार परमेश्वर ।
श्रीवर्द्धदेव सन्धत्से जिह्वाग्रेण सरस्वती ॥१७॥
पुष्पास्त्रस्य जयो गणस्य चरणम्भूमृच्छिखा-घट्टन
पद्भ्यामस्तु महेश्वरस्तदपि न प्राप्तु तुलामीश्वर ।
यस्याखण्ड-कलावतोऽष्ट-विलसद्दिक्पाल-मौलि-स्खलत्-
कीर्त्तिस्वस्सरितो महेश्वर इह स्तुत्यस्स कैररयान्मुनि ॥१८॥
यस्सप्तति-महा-वादान् जिगायान्यानयामितान् ।
ब्रह्मरक्षोऽर्चितस्सोऽर्च्यो महेश्वर-मुनीश्वर ॥१९॥
तारा येन विनिर्ज्जिता घट-कुटी-गूढावतारा सम
बौद्धैर्य्यो धृत-पीठ-पीडित-कुदृग्देवात्त-सेवाञ्जलि ।

प्रायश्चित्तमिवाङ्घ्रि-वारिज-रज-स्नान च यस्याचरत्
दोषाणां सुगतस्स कस्य विषयो देवाकलङ्क कृती ॥२०॥
चूर्णि ॥ यस्येदमात्मनोऽनन्य-सामान्य-निरवद्य-विद्या-विभवोप-
वर्णनमाकर्ण्यते ॥

राजन्साहसतुङ्ग सन्ति बहव श्वेतातपत्रा नृपा
किन्तु त्वत्सदृशा रणे विजयिनस्त्यागोन्नता दुर्ल्लभा ।
त्वद्वत्सन्ति बुधा न सन्ति कवयो वादीश्वरा वाग्मिनो
नाना-शास्त्र-विचारचातुरधिय काले कलौ मद्विधा ॥२१॥
नमो मल्लिषेण-मलधारि-देवाय ॥

(पूर्वमुख)

राजन्सर्व्वारि-दर्प्प-प्रविदलन-पटुस्त्व यथात्र प्रसिद्ध-
स्तद्वत्ख्यातोऽहमस्या भुवि निखिल-मदोत्पाटन पण्डिताना ।
नो चेदेषोऽहमेते तव सदसि सदा सन्ति सन्तो महान्तो
वक्तु यस्यास्ति शक्ति स वदतु विदिताशेष-शास्त्रो यदि स्यात् ॥२२॥
नाहङ्कार-वशीकृतेन मनसा न द्वेषिणा केवल
नैरात्म्य प्रतिपद्य नश्यति जने कारुण्य-बुद्धया मया ।
राज्ञः श्रीहिमशीतलस्य सदसि प्रायो विदग्धात्मनो
बौद्धोघान्सकलान्विजित्य सुगत पादेन विस्फोटित ॥२३॥
श्रीपुष्पसेन-मुनिरेव पदम्महिम्नो देवस्य यस्य सममूत्स भवान्सधर्म्मा ।
श्रीविभ्रमस्य भवनन्नु पद्मदेव पुष्पेषु मित्रमिह यस्य सहस्रधामा ॥२४॥
विमलचन्द्रमुनीन्द्र-गुरोर्गुरुप्रशमिताखिलवादिमद पद ।
यदि यथावदवैष्यत पण्डितैर्न्ननु तदान्ववदिष्यत वाग्विभो ॥२५॥
चूर्णि ॥ तथाहि । यस्यायमापादित-परवादि-हृदय-शोक पत्रा-
लम्बन-श्लोक ॥

पत्र शत्रु-भयङ्करोरु-भवनद्वारे सदा सञ्चरन्
नाना-राज-करीन्द्र-वृन्द-तुरग-व्राताकुले स्थापितम् ।
शैवान्पाशुपतास्तथागतसुतान्कापालिकान्कापिला-
नुद्दिश्योद्धत-चेतसा-विमलचन्द्राशाम्बरेणादरात् ॥२६॥
दुरित-ग्रह-निग्रहाद्भय यदि भो भूरि-नरेन्द्र-वन्दितम् ।
ननु तेन हि भव्यदेहिनो भजतश्श्रीमुनिमिन्द्रनन्दिनम् ॥२७॥
घट-वाद-घटा-कोटि-कोविद कोविदा प्रवाक् ।
परवादिमल्ल-देवो देव एव न सशय ॥२८॥

चूर्णि ॥ येनेयमात्म-नामधेय-निरुक्तिरुक्ता नाम पृष्टवन्त कृष्णराज प्रति ॥
गृहीत-पक्षादितर' पररगात्तद्वादिनस्ते परवादिनरश्यु' ।
तेषा हि मल्ल' परवादिमल्लस्तन्नाममन्नाम वदन्ति सन्तः ॥२९॥
आचार्यवर्यो यतिरार्यदेवो राद्धान्त-कर्त्ता ध्रियता स मूर्ध्नि ।
यरश्वर्ग्गान्यानोत्सव-सीम्नि कायोत्सर्गास्थित. कायमुदुत्ससर्ज्ज ॥३०॥
श्रवण-कृत-तृणोऽसौ सयम ज्ञातु-कामै
शयन-विहित-वेला-सुप्तलुप्तावधान ।
श्रुतिमरमसवृत्योन्मृज्य पिञ्छेन शिश्ये
किल मृदु-परिवृत्या दत्त-तत्कोटवर्त्मा ॥३१॥
विश्व यश्श्रुत-बिन्दुनावरुरुधे भाव कुशाग्रीयया
बुध्येवाति-महीयसा प्रवचसा वद्ध गणाधीश्वरै ।
शिष्यान्प्रत्यनुकम्पया कृशमतीनैद युगीनान्सुगी-
स्तं वाचा र्चत चन्द्रकीर्त्ति-गणिन चन्द्राभ-कीर्त्ति बुधा ॥३२॥
सद्धर्म्म-कर्म्म-प्रकृतिप्रणामाद्यस्योग्र-कर्म्मप्रकृतिप्रमोक्ष ।
तन्नानिकर्म्म-प्रकृतिन्नमामो भट्टारक दृष्ट-कृतान्त-पारम् ॥३३॥
अपि स्व-वाग्व्यस्त-समस्त-विद्यस्त्रैविद्यशब्देऽप्यनुमन्यमान ।
श्रीपालदेव प्रतिपालनीयस्सता यतस्तत्व-विवेचनी धी ॥३४॥
तीर्त्थं श्रीमतिसागरो गुरुरिला-चक्र चकार स्फुर-
ज्योति पीत-तमर्पय-प्रवितति पूत प्रभूताशय
यस्माद्‌मूरि-परार्द्धच-पावन-गुण-श्रीवर्द्धमानोल्लस-
द्रत्नोत्पत्तिरिला-तलाविप-शिरश्श्रृगारकारिण्यभूत् ॥३५॥
यत्राभियोक्तारि लघुर्ल्लघु-धाम-सोम-सौम्याग-भृत्स च भवत्यपि भूति-भूमि ।
विद्या-धनञ्जय-पद विशद दधानो जिष्णु स एव हि
महा-मुनि हेमसेन ॥३६॥
चूर्णि ॥ यस्यायमवनिपति-परिषद्-निग्रह-मही-निपात-भीति-
दुस्थ-दुर्गर्व-पर्वतारुढ-प्रतिवादिलोक प्रतिज्ञाश्लोक ॥
तर्के व्याकरणे कृत- श्रमतया धीमत्तयाप्युद्धतो
मध्यस्थेषु मनीषिषु क्षितिभृतामग्रे मया स्पर्द्धया ।
य कश्चित्प्रतिवक्ति तस्य विदुषो वाग्मेय-भग पर
कुर्वेऽवश्यमिति प्रतीहि नृपते हे हेमसेन मत ॥३७॥
हितैषिणा यस्य नृणामुदात्त-वाचा निबद्धा हित-रूप-सिद्धि' ।
वन्द्यो दयापाल-मुनि स वाचा सिद्धस्सताम्मूर्द्धनि य' प्रभावै ॥३८॥

यस्य श्रीमतिसागरो गुरुरसौ चञ्चद्यशश्चन्द्रभू.
श्रीमान्यस्य स वादिराजगणभृत्स ब्रह्मचारीविभो ।
एकोऽतीव कृती स एव हि दयापालव्रती यन्मन-
स्यास्तामन्यपरिग्रहग्रहकथा स्वे विग्रहे विग्रहः ॥३९॥
त्रैलोक्य-दीपिका वाणी द्वाभ्यामेवोदगादिह ।
जिनराजत एकरमादेकरमाद्वादिराजत ॥४०॥

आरुह्याम्बरमिन्दु-विम्ब-रचितौत्सुक्य सदा यद्यश-
श्छत्र वाक्चमरीज-राजि-रुचयोऽभ्यर्ण च यत्कर्णयो ।
सेव्य सिंहसमर्च्य-पीठ-विभव सर्व-प्रवादि-प्रजा-
दत्तोच्चैर्जयकार-सार-महिमा श्रीवादिराजो विदां ॥४१॥

चूर्णि ॥ यदीयगुणगोचरोऽय वचन-विलास-प्रसर कवीनां ।
नमोऽर्हते ॥

(दक्षिणमुख)

श्रीमच्चालुक्य-चक्रेश्वर-जयकटके वाग्वधू-जन्मभूमौ
निष्काण्डडिण्डिमः पर्यटति पटु-रटो वादिराजस्य जिष्णो ।
जह्युद्यद्वाद-दर्पो जहिहि गमकता गर्व-भूमा-जहाहि
व्याहारेर्ष्यो जहीहि स्फुट-मृदु-मधुर-श्रव्य-काव्यावलेप ॥४२॥
पाताले व्यालराजो वसति सुविदित यस्य जिह्वा-सहस्रं
निर्गन्ता स्वर्गतोऽसौ न भवति धिषणो वज्रभृद्यस्य शिष्य. ।
जीवेतान्तावदेतौ निलय-बल-वशाद्वादिनः केऽत्र नान्ये
गर्वं निर्मुच्य सर्वं जयिनमिन-समे वादिराजं नमन्ति ॥४३॥

वाग्देवी सुचिरप्रयोग-सुदृढ-प्रेमाणमप्यादरा-
दादत्ते मम पार्श्वतोऽयमधुना श्रीवादिराजो मुनि.
भो-भो पश्यत पश्यतैष यमिना किं धर्म इत्युच्चकै-
रब्रह्मण्य-परा पुरातनमुनेर्वाग्वृत्तय. पान्तु व. ॥४४॥
गंगावनिश्वर-शिरोमणि-बद्ध-सन्ध्या-रागोल्लसच्चरण-चारुनखेन्दुलक्ष्मी. ।
श्रीशब्दपूर्व-विजयान्त-विनूत-नामा धीमानमानुष-गुणोऽस्ततमः
प्रभाशु ॥४५॥

चूर्णि ॥ स्तुतो हि स भवानेष श्रीवादिराज-देवेन ॥
यद्विद्या-तपसो प्रशस्तमुभय श्रीहेमसेनमुनौ
प्रागासीत्सुचिराभियोग-बलतो नीत परामुन्नतिं ।

प्राय श्रीविजये तदेतदखिल तत्पीठिकाया स्यिते
सक्रान्त कथमन्यथानतिचिराद्विद्येदृगीदृक् तप ॥४६॥
विद्योदयोऽस्ति न मदोऽस्ति तपोऽस्ति भास्व-
न्नोग्रत्वमस्ति विभुतास्ति न चास्ति मान. ।
यस्य श्रये कमळभद्र-मुनीश्वरन्तं
य ख्यातिमापदिह-शाम्यदघैर्गुणौघै ॥४७॥
स्मरणमत्र पवित्रतम मनो भवति यस्य सतामिह तीर्थिना
तमत्तिनिर्मलमात्म-विशुद्धये कमलभद्रसरोवरमाश्रये ॥४८॥
सर्वाङ्गैर्यमिहालिलिङ्ग-सुमहभागं कलौ भारति
भास्वन्त गुण-रत्न-भूषणगणैरप्यग्रिम योगिनां ।
तं सन्तस्तुवतामलङ्कृत-दयापालाभिधान महा-
सूरि भूरिवियोऽत्र पण्डित-पद यत्रैव युक्ता स्मृता ॥४९॥
विजित-मदन-दर्प श्रीदयापालदेवो
विदित-सकल-शास्त्रो निर्जिताशेषवादी ।
विमलतर-यशोभिर्व्याप्त-दिक्-चक्रवालो
जयति नत-महीभृन्मौलिरत्नारुणाङ्घ्रि ॥५०॥
यस्योपास्य पवित्र-पाद-कमल-द्वन्द्वन्नृप पोय-सलो
लक्ष्मी सन्निविमानयत्स विनयादित्य कृताज्ञाभुव ।
कस्तस्यार्हति शान्तिदेव-यमिनस्सामर्थ्यमित्यं तथे-
त्याख्यातु विरला खलु स्फुरदुरु-ज्योतिर्दशास्तादृशा ॥५१॥
स्वामीति पाण्ड्य-पृथिवी-पतिना निसृष्ट-
नामाप्त-दृष्टि-विभवेन निज-प्रसादात् ।
धन्यस्स एव मुनिराहवमल्लभूभु-
गास्थायिका-प्रथित-शब्द-चतुमुखाख्य ॥५२॥
श्रीमुल्लूर-विदूर-सारवसुधा-रत्न स नाथो गुणे-
नाक्षूणेन महीक्षितामुरु-मह पिण्डशिरो-मण्डन ।
आराध्यो गुणसेन-पण्डित-पतिस्स स्वास्थ्यकामैर्जना
यत्सूक्तागदनान्वतोऽपि गलित-न्लानि गति लम्भिता ॥५३॥
वन्दे वन्दितमादरादहरहरस्याद्वाद-विद्या-विदा
स्वान्त-ध्वान्त-वितान-धूनन-विधौ भास्वन्तमन्य भुवि ।
भक्त्या त्वाजितसेन-मानतिकृता यत्सन्नियोगान्मन -
पद्म सद्म भवेद्विकास-विभवस्योन्मुक्त-निद्रा-भर ॥५४॥

मिथ्या-भाषण-भूषणं परिहरतौद्धत्य ... न्मुञ्चत
स्याद्वादं वदतानमेत विनयाद्वादीभ-कण्ठीरव ।
नो चेत्तद्गु गर्ज्जित-श्रुति-भय-भ्रान्ता स्थ यूय यत-
स्तूर्णं निग्रह-जीर्णकूप -कुहरे वादि-द्विपा पातिन. ॥५५॥

गुणा कुन्द-स्पन्दोड्डमर-समरा वागमृतवी -
प्लव-प्राय-प्रेय. प्रसर-सरसा कीर्त्तिरिव सा ।
नखेन्दु-ज्योत्स्नाड्ग्रेर्नृप-चय-चकोर-प्रणयिनी
न कासां श्लाघाना पदमजितसेनव्रतिपति ॥५६॥

सकल-भुवनपालानम्र-मूर्द्धावबद्ध-
स्फुरित-मुकुट-चूडालीढ-पादारविन्द ।
मदवखिल-वादीभेन्द्र-कुम्भ-प्रभेदी
गणभृदजितसेनो भाति वादीभसिंह. ॥५७॥

चूर्णि ॥ यस्य ससार-वैराग्य-वैभवमेवविधाररववाचरसूचयन्ति ।

प्राप्त श्रीजिनशासन त्रिभुवने यद्दुर्ल्लभ प्राणिना
यत्ससार-समुद्र-मग्न-जनता-हस्तावलम्बायित ।
यत्प्राप्ता परनिर्व्यपेक्ष-सकल-ज्ञान-श्रियालड्कृता-
स्तत्रगास्ति गहन कुतो भयकश कावात्र देहे रति ॥५८॥

आत्मैश्वर्यं विदितमधुनानन्त-बोधादि-रूप
तत्सम्प्राप्त्यै तदनु समय वर्त्ततेऽत्रैव चेत. ।
त्यक्तान्यचिन्तस्सुरपति-सुखे चक्रि-सौख्ये च तृष्णा
तत्तुच्छार्थैरलमलमधी-लोभनैर्ल्लोकवृत्तै ॥५९॥

अजानन्नात्मान सकल-विषय-ज्ञानवपुष
सदा शान्त स्वान्त करणमपि तत्साधनतया ।
वहो-रागद्वेषैः कलुषितमना. कोऽपि यतता
कथ जानन्नेन क्षणमपि ततोऽन्यत्र यतते ॥६०॥

(पश्चिममुख)

चूर्णि ॥ यस्य च शिष्ययो कवितांकान्त-वादिकोलाहलापरनामधेययो·
शान्तिनाथपद्मनाम-पण्डितयोरखण्डपाण्डित्यगुणोपवर्णनमिदमसम्पूर्णं ॥

त्वामासाद्य महाधिय परिगता या विश्व-विद्वज्जन-
ज्येष्ठाराध्य-गुणा चिरेण सरसा वैदग्ध्य-सम्पद्गिरा ।
कृत्स्नाशान्त-निरन्तरोदित-यशश्श्रीकान्तशान्तेन तां
ववतु सापि सरस्वती प्रभवति ब्रूम कथन्तद्वय ॥६१॥

व्यावृत्त-भूरि-मद-सन्तति विस्मृतेर्ष्या-
पारुष्यमात्त-करुणार्त्ति-कान्दिशीक ।
धावन्ति हन्ति परवादिगजास्त्रसन्त
श्रीपद्मनाम-बुध-गन्धगजस्य गन्धात् ॥६२॥
दीक्षा च शिक्षा च यतो यतीनां जैनं तपस्तापहरन्दधानात्
कुमारसेनोऽवतु यच्चरित्रं श्रेय पयोदाहरण पवित्रम् ॥६३॥

जगद्भूरिम-घस्मर स्मर-मदान्धगन्ध-द्विप-
द्विधाकरण-केसरी-चरण-भूष्य-भूमृन्छिख ।
द्वि-षड्गुण-वपुस्तपश्चरण-चण्ड-धामोदयो
दयेत मम मल्लिषेण-मलधारिदेवो गुरु ॥६४॥
वन्दे त मलधारिण मुनिपति मोह-द्विषद्-व्याहति-
व्यापार-व्यवसाय-सार-हृदयं सत्सयमोरु-श्रिय ।
यत्कायोपचयीभवन्मलमपि प्रव्यक्त-भक्ति-क्रमा-
न म्राकम्र-मनो-मिलन्मलमपि-प्रक्षालनैकक्षम ॥६५॥

अतुच्छ-तिमिर-च्छटा-जटिल-जन्म-जीर्णाटवी
दवानल-तुला-जुषा पृथु-तप -प्रभाव-त्विषां ।
पद पद-पयोरुह-भ्रमित-भव्य-भृङ्गावलि-
र्ममोल्लसतु मल्लिषेण-मुनिराण्मनो-मन्दिरे ॥६६॥
नैर्मल्याय मलाविलाङ्गमखिल-त्रैलोक्य-राज्यश्रिये
नैष्किञ्चन्यमतुच्छ-तापहृदयेन्यञ्चद्भुताशन्तप ।
यस्यासौ गुण-रत्न-रोहण-गिरि श्रीमल्लिषेणो गुरु-
र्वन्द्यो येन विचित्र-चारु-चरितैर्द्धात्री पवित्री-कृता ॥६७॥

यस्मिन्नप्रतिमा क्षमाभिरते यस्मिन्दया निर्दया-
श्लेषो यत्र-समत्वधी प्रणयिनी यत्रास्पृहा सस्पृहा ।
काम निर्वृत्ति-कामुकस्वयमथाप्यग्रेसरो योगिना-
माश्चर्याय कयत्र नाम चरितैश्श्रीमल्लिषेणो मुनि ॥६८॥
य पूज्य पृथिवीतले यमनिश सन्तरस्तुवन्त्यादरात्
येनानङ्ग-धनुर्जित मुनिजना यस्मै नमस्कुर्वते ।
यस्मादागम-निर्णयो यमभृता यस्यास्ति जीवे दया
यस्मिन्श्रीमलधारिणि व्रतिपतौ धर्मोऽस्ति तस्मै नम ॥६९॥
धवल-सरस-तीर्थे सेप सन्यास-धन्या
परिणतिमनुतिष्ठ नन्दिमा निष्ठितात्मा ।

व्यसृजदनिजमङ्गं भंगमंगोद्भवस्य
ग्रथितुमिव समूलं भावयन्भावनाभि ॥७०॥

चूर्णि ॥ तेन श्रीमदजितसेन-पण्डित-देव-दिव्य-श्रीपाद-
कमल-मधुकरीभूतभावेन महानुभावेन जैनागमप्रसिद्धसल्लेखना-
विधि-विसृज्यमान-देहेन समाधि-विधि-विलोकनोचित-करण-
कुतूहल-मिलित-सकल-संघ-सन्तोष-निमित्तमात्मान्तःकरण-
परिणति-प्रकाशनाय निरवद्य पद्यमिदमाशु विरचित ॥
आराध्य रत्नत्रयमागमोक्त विधाय निश्शल्यमशेषजन्तो
क्षमा च कृत्वा जिनपादमूले देहं परित्यज्य दिव विशाम ॥७१॥

शाके शून्य-शराम्बरावनिमिते संवत्सरे कीलके
मासे फाल्गुनके तृतीयदिवसे वारे सिते भास्करे ।
स्वातौ श्वेत-सरोवरे सुरपुरं यातो यतीना पति-
र्मध्याह्ने दिवसत्रयानशनत श्रीमल्लिषेणो मुनि ॥७२॥

श्रीमन्मलधारि-देवरगुड्डविरुद-लेखक-मदनमहेश्वर
मल्लिनाथ बरेद विरुद-रूवारि-मुख-तिलक गंगाचारि
कण्डरिसिद ॥

प्रशस्तिके प्रथम पद्यमे वर्धमानजिनका स्मरण किया है। अनन्तर सप्त-ऋद्धिधारी गौतम गणधर, मोहरूपी विशाल मल्लके विजेता भद्रबाहु और उनके शिष्य चन्द्रगुप्त, कुन्दपुष्पकी कान्तिके समान स्वच्छ कीर्त्तिरश्मियोसे विभूषित कुन्दकुन्दाचार्य, बादमे 'धूर्जटि' की जिह्वाको स्थगित करनेवाले समन्तभद्र, सिंहनन्दी, वादियोके समूहको परास्त करनेवाले एव छह मास तक 'अथ' शब्दका अर्थ करनेवाले वक्रग्रीव, नवीन स्तोत्रकी रचना करनेवाले वज्रनन्दी 'त्रिलक्षणकदर्थन' ग्रन्थके कर्ता पात्रकेसरी, 'सुमतिसप्तक'के कर्ता सुमतिदेव, महाप्रभावशाली कुमारसेनमुनि, पुरुषार्थचतुष्टयके निरूपक 'चिन्तामणि' ग्रन्थके कर्ता चिन्तामणि, कविचूडामणि श्रीवर्द्धदेव चूडामणि, सत्तर-वादि-विजेता तथा ब्रह्मराक्षसके द्वारा पूजित महेश्वरमुनि, साहसतुंग नरेशके सम्मुख हिमशीतल नरेशकी सभामे बौद्धोके विजेता अकलंकदेव, अकलंकके सधर्मा गुरुभाई पुष्पसेन, समस्त वादियोको प्रशमित करनेवाले विमलचन्द्रमुनि, अनेक राजाओ द्वारा वन्दित इन्द्रनन्दि, अन्वर्थ नामवाले परवादिमल्लदेव, कायोत्सर्ग-मुद्रामे तपस्या करनेवाले आर्यदेव, श्रुतबिन्दुके कर्ता चन्द्रकीर्त्ति, कर्मप्रकृति-भट्टारक, पार्श्वनाथचरितके रचयिता वादिराज, उनके गुरु मतिसागर और प्रगुरु श्रीपालदेव, विद्याधनंजय महामुनि हेमसेन, 'रूपसिद्धि' व्याकरणग्रन्थके

कर्ता दयापालमुनि, वादिराज द्वारा स्तुत्य श्रीविजय, कमलभद्रमुनि, महासूरि दयापालदेव, विनयादित्य होयसल नरेश द्वारा पूज्य शान्तिदेव, गुणसेन पण्डित-पति, स्याद्वादविद्याविद् अजितसेन, स्याद्वादके प्रतिपादक (स्याद्वादसिद्धिकार) वादीभ-सिंह तथा इनके शिष्य शान्तिनाथ अपरनाम कविताकान्त और पद्म-नाभ अपरनाम वादि-कोलाहल, यतियोके दीक्षा-शिक्षादाता कुमारसेन और अजितसेन पण्डितदेवके शिष्य महाप्रभावशाली मल्लिषेण मलधारिका उल्लेख है। प्रशस्तिमे आचार्योकी नामावली गुरु-शिष्यपरम्पराके अनुसार नही है। अत पूर्वापर सम्बन्ध और समय-निर्णयमे यथेष्ट सहायता इनसे नही मिल पाती है। इतना तो अवश्य सिद्ध है कि इस प्रशस्तिसे अनेक आचार्यो और लेखकोके सम्बन्धमे मौलिक तथ्य इस प्रकारके उपलब्ध होते हैं, जिनसे उनका प्रामाणिक इतिवृत्त तैयार किया जा सकता है।

देवकीर्ति-पट्टावलि[1]

(शक सवत् १०८५)

श्रीमन्मुनीन्द्रोत्तमरत्नवर्गा श्रीगौतमाद्या. प्रभविष्णवस्ते
तत्राम्बुधौ सप्तमहर्द्धियुक्तास्तत्सन्ततौ बोधनिधिर्बभूव ॥१॥
[श्री] भद्रस्ससर्वतो यो हि भद्रबाहुरिति श्रुत ।
श्रुतकेवलिनाथेषु चरमपरमो मुनि ॥२॥
चन्द्र-प्रकाशोज्वल-सान्द्र-कीर्त्ति श्रीचन्द्रगुप्तोऽजनि तस्य शिष्य ।
यस्य प्रभावाद्वनदेवताभिराराधित स्वस्य गणो मुनीना ॥३॥
तस्यान्वये भू-विदिते बभूव य. पद्मनन्दिप्रथमाभिधान ।
श्रीकोण्डकुन्दादि-मुनीश्वराख्यस्सत्सयमादुद्गत-चारणर्द्धि ॥४॥
अभूदुमास्वातिमुनीश्वरोऽसावाचार्य-शब्दोत्तरगृद्धपिच्छ ।
तदन्वये तत्सदृशोऽस्ति नान्यस्तात्कालिकाशेष-पदार्थ-वेदी ॥५॥
श्रीगृद्धपिच्छमुनिपस्य बलाकपिच्छ
शिष्योऽजनिष्ट भुवनत्रयवर्त्तिकीर्त्ति ।
चारित्रचञ्चुरखिलावनिपाल-मौलि-
माला-शिलीमुख-विराजितपादपद्म ॥६॥
एव महाचार्य-परम्पराया स्यात्कारमुद्राङ्कितत्त्वदीप ।
भद्रस्समन्ताद् गुणतो गणीशस्समन्तभद्रोऽजनि वादिसिंह ॥७॥
तत ॥

1 जैन शिलालेखसग्रह, अभिलेख सख्या ४०।

यो देवनन्दिप्रथमाभिधानो वुद्धया महत्या स जिनेन्द्रवुद्धि ।
श्रीपूज्यपादोऽजनि देवताभिर्यत्पूजित पाद-युग यदीय ॥८॥
जैनेन्द्र निज-शब्द-भोगमतुल सर्वार्थसिद्धि' परा
सिद्धान्ते निपुणत्वमुद्धकविता जैनाभिषेक स्वक ।
छन्दस्सूक्ष्मधिय समाधिशतकस्वास्थ्य यदीय विदा-
माख्यातीह स पूज्यपादमुनिप पूज्यो मुनीनां गणै ॥९॥
ततश्च ॥

(पश्चिममुख)

अजनिष्टाकलङ्क यज्जिनशासनमादित ।
अकलङ्कं बभौ येन सोऽकलङ्को महामति. ॥१०॥
इत्याद्युद्धमुनीन्द्रसन्ततिनिधौ श्रीमूलसघे ततो
जाते नन्दिगण-प्रभेदविलसद्देशीगणे विश्रुते ।
गोल्लाचार्य इति प्रसिद्ध-मुनिपोऽभूद्गोल्लदेशाधिप
पूर्व केन च हेतुना भवभिया दीक्षा गृहीतस्सुधी ॥११॥
श्रीमत्त्रैकाल्ययोगी समजनि महिका काय-लग्ना तनुत्रं
यस्याभूद्वृष्टि-धारा निशित-शरगणा ग्रीष्ममार्तण्डविम्व ।
चक्र सद्वृत्तचापाकलित-यति-वरस्याघशत्रून्विजेतु
गोल्लाचार्यस्य शिष्यस्स जयतु भुवने भव्यसत्कैरवेन्दु. ॥१४॥
तच्छिष्यस्य ॥
अविद्धकर्णादिकपद्मनन्दिसैद्धान्तिकाख्योऽजनि यस्य लोके ।
कौमारदेव-व्रतिताप्रसिद्धिर्जीयात्तु सो ज्ञान-निधिस्सुधीर ॥१५॥
तच्छिष्य. कुलभूषणाख्ययतिपश्चारित्रवारान्निधि-
स्सिद्धान्ताम्वुधिपारगो नतविनेयस्तत्सधर्म्मो महान् ।
शब्दाम्भोरुहभास्कर प्रथिततर्क्कग्रन्थकार प्रभा-
चन्द्राख्यो मुनिराजपण्डितवर श्रीकुण्डकुन्दान्वय ॥१६॥
तस्य श्रीकुलभूषणाख्यसुमुनेश्शिष्यो विनेयस्तुत-
स्सद्वृत्त कुलचन्द्रदेवमुनिपस्सिद्धान्तविद्यानिधि ।
तच्छिष्योऽजनि माघनन्दिमुनिप. कोल्लापुरे तीर्थकृ-
द्राद्धान्तार्णवपारगोऽचलधृतिश्चारित्रचक्रेश्वर ॥१७॥
एले मावि वनवज्जदि तिलिगोल माणिक्यदि मण्डना-
वलितारधिपर्नि नभ शुभदमा गिर्प्पन्तिरिद्दं तुनि-
र्म्मलवीगल् कुलचन्द्रदेवचरणाम्भोजातसेवाविनि-

हिमवत्कुत्कील-मुक्ताफल-तरलतरत्तारहारेन्दुकुन्दो-
पमकीर्त्ति-व्याप्तदिग्मण्डलनवनेत-भू-मण्डल भव्य-पद्मो-
ग्र-मरीचीमण्डल पण्डित-तति-विनत माधनन्द्याख्यवाचं
यमिराज वाग्वधूटीनिटिलतटहटन्नूत्नसद्रत्नप ·· ॥१९॥

त मद-रदनिकुलमं भरदि निर्भेदिसरके सरियेनिप
वरसयमाब्धिचन्द्र धरेयोळ् माधनन्दि-सैद्धान्तेश ॥२०॥

तच्छिष्यस्य

अवर गुड्डुगळु सामान्तकेदारनाकरस दानश्रेयास सामन्त निम्ब-
देव जगदोर्व्वगण्ड सामन्तकामदेव ॥

(उत्तरमुख)

गुरुसैद्धान्तिकमाधनन्दिमुनिप श्रीमप्पमूवल्लभ
भरतं छात्रनपारशास्त्रनिधिगळ् श्रीभानुकीर्त्तिप्रभा-
स्फुरितालङ्कृत-देवकीर्त्ति-मुनिपर्शिष्यर्ज्जगन्मण्डन-
र्देरिय गण्डविमुक्तदेवनिनगिन्नीनामसैद्धान्तिकर् ॥२१॥

क्षीरोदादिव चन्द्रमा मणिरिव प्रख्यात-रत्नाकरात्
सिद्धान्तेश्वरमाधनन्दियमिनो जातो जगन्मण्डन ।
चारित्रैकनिधानधामसुविनम्रो दीपवर्त्ती स्वय
श्रीमद्गण्डविमुक्तदेवयतिपस्सैद्धान्तचक्राधिपः ॥२२॥

अवर सधर्म्मर् ।

आवो वादिकथात्रयप्रवणदोळ् विद्वज्जनं मेप्पे वि-
द्यावष्टम्भमनप्पुकेय्दु परवादिक्षोणिभृत्पक्षम ।
देवेन्द्र कडिवन्ददि कडिदेले स्याद्वादविद्यास्त्रदि
त्रैविद्यश्रुतकीर्त्तिदिव्यमुनिवोळ् विख्यातिय ताल्दिदो ॥२३॥

श्रुतकीर्त्ति-त्रैविद्य

व्रति राघवपाण्डवीयम विभु (बु) धचम-
त्कृतियेनिसि गत प्रत्या-
गतदि पेल्दमलकीर्त्तिय प्रकटि सिद ॥२४॥

अवरग्रजरु ॥

यो वौद्धक्षितिभृत्करालकुलिशश्चार्व्वाकमेघान (नि) ली
मीमांसा-मत-वर्त्ति-वादि-मदवन्मातङ्ग-कण्ठीरव ॥
स्याद्वादाब्धि-शरत्समुद्गतसुधा-शोचिस्समस्तैरगु-
स्स श्रीमान्भुवि भासते कनकनन्दि-ख्यात-योगीश्वरः ॥२५॥

वेताली मुकुलीकृताञ्जलिपुटा ससेवते यत्पदे
ज्वोट्टिङ्ग प्रतिहारको निवसति द्वारे च यस्यान्तिके ।
येन क्रीडति सन्तत नुततपोलक्ष्मीर्यश (·) श्रीप्रिय-
स्सोऽय शुम्भति देवचन्द्रमुनिपो भट्टारकोघाग्रणी ॥२६॥

अवर सधर्म्माधिनन्दि त्रैविद्य-देवरु-विद्याचक्रवर्त्ति-श्रीमद्देवकीर्त्ति-पण्डित-देवर शिष्यरु श्रीशुभचन्द्रत्रैविद्यदेवरु गण्डविमुक्तवादि चतुर्मुख-रामचन्द्र-त्रैविद्यदेवरु वादिवज्राङ्कुश-श्रीमदकलङ्कत्रैविद्यदेवरुमापरमेश्वरनन्नुडुगलु माणिक्यभण्डारि मरियाने दण्डनायकरुं श्रीमन्महाप्रधान सर्व्वाधिकारिपिरिय-दण्डनायकभरतिमयङ्गलुं श्रीकरणद हेग्गडे बूचिमयङ्गलुं जगदेकदानि हेग्गडे कोरय्यनुं ॥

अकलङ्क-पितृ-वाजि-वश-तिलक-श्री-यक्षराज निजा-
म्बिके लोकाम्बिके लोक-वन्दिते सुशीलाचारे दैव दिवी-
श-कदम्ब-स्तुतु-पाद-पद्मनरुहं नाथ यदुक्षोणिपा-
लक-चूडामणि नारसिङ्गनेनलेन्नोम्पुल्लनोहुल्लप ॥२७॥

श्रीमन्महाप्रधानं सर्व्वाधिकारे हिरियभण्डारि अभिनवगङ्गदण्डनायक-श्री-हुल्लराज तम्म गुरुगलप्पश्रीकोण्डकुन्दान्वयद श्रीमूलसङ्घद देशियगणद पुस्तक-गच्छद श्रीकोल्लापुरद श्रीरुपनारायणन बसदिय प्रतिविद्धद श्रीमत्केल्लङ्गेरेय प्रतापपुरव पुनर्म्भरणव माडिसि जिननाथपुरदलु कल्ल दानशालेय माडिसिद श्रीमन्महामण्डलाचार्यदर्देवकीर्त्तिपण्डितदेवर्गे परोक्षविनयवागि निशिदिय माडि-सिद अवर शिष्यर्लक्खणन्दि-माघवत्रिभुवनदेवर्महादान-पूजाभिषेक-माडि प्रतिष्ठेय माडिदरु मङ्गलमहा श्री श्री श्री

इस अभिलेखमे गौतम गणधरसे लगाकर मुनिदेवकीर्त्ति पण्डितदेवतक आचार्य-परम्परा दी गई है। इस पट्टावलिमे गौतम स्वामी, भद्रबाहु, चन्द्रगुप्त, कोण्डकुन्द—पद्मनन्दि प्रथम, गृध्रपिच्छाचार्य, बलाक्पिच्छ, वादिसिंह समन्तभद्र, पूज्यपाद-देवनन्दि प्रथम, अकलङ्क, गोल्लाचार्य, त्रैकाल्ययोगी, अविद्धकर्ण-पद्म-नन्दि (कौमारदेव)। उनके दो शिष्य कुलभूषण और प्रभाचन्द्र, कुलभूषणकी परम्परामे कुलचन्द्रदेव, माघनन्दि मुनि (कोल्लापुरीय), गण्डविमुक्तदेव। गण्ड-विमुक्तदेवके दो शिष्य भानुकीर्त्ति और देवकीर्त्तिके नाम आये है। देवकीर्त्तिका समाधिमरण शक स० १०८५मे हुआ है। इस अभिलेखमे कनकनन्दि और देव-चन्द्रके भ्राता श्रुतकीर्त्ति त्रैवेद्य मुनिकी प्रशसा की गई है। इन्होने देवेन्द्र सदृश विपक्ष-वादियोको पराजित किया और एक चमत्कारी काव्य 'राघवपाण्डवीय' की रचना की। यह कृति आदिसे अन्त और अन्तसे आदिको ओर पढ़ी जा

सकती है। श्रुतकीर्त्तिकी प्रशसा नागचन्द्रकृत रामचन्द्रचरितपुराण (पम्प रामायणके प्रथम आश्वासमे चौबीसवेंसे-पीसवे पद्योमे) भी अङ्कित है। इस काव्यकी रचना शक स० १०२२के लगभग हुई है।

प्रतापपुरकी रूपनारायण वस्तिका जीर्णोद्धार और जिननायपुरमे एक दानशालाका निर्माण करनेवाले महामण्डलाचार्य देवकीर्त्ति पण्डितदेवके स्वर्गवास होने पर यादववशी नारसिंह नरेशके मत्री हुल्लप्पने निषद्याका निर्माण कराया, जिसकी प्रतिष्ठा देवकीर्त्ति आचार्यके शिष्य लक्खनन्दि, माधव और त्रिभुवनदेवने दानसहित की।

इस अभिलेखमे तीन बातें बड़ी ही महत्त्वपूर्ण हैं। पहली बात तो यह है कि इसमे गौतम गणधरकी परम्परामे भद्रबाहु और भद्रबाहुके अन्वयमे चन्द्रगुप्तका उल्लेख आया है। तथा चन्द्रगुप्तके अन्वयमे कोण्डकुन्द (कुन्दकुन्द) का कथन है। नन्दिसघकी पट्टावलिमे भद्रबाहु, गुप्तिगुप्त, माघनन्दि, जिनचन्द्र और इसके पश्चात् कोण्डकुन्दका नाम आया है। इन्द्रनन्दि श्रुतावतारके अनुसार कोण्डकुन्द आचार्योमे हुए हैं, जिन्होने अङ्गज्ञानके लोप होनेके पश्चात् आगमज्ञानको ग्रन्थबद्ध किया।

मूलसङ्घके अन्तर्गत नन्दिगणमे जो देशीगणप्रभेद हुआ, उसमे गोल्लदेशाधिपके आचार्य गोल्लाचार्य हुए है और इन्हीकी परम्परामे देवकीर्त्तिका जन्म हुआ है।

नयकीर्त्ति-पट्टावलि[1]

(शक सं० १०८९)

श्रीमन्मुनीन्द्रोत्तमरत्नवर्गा श्रीगौतमाद्या प्रभविष्णवस्ते।
तत्राम्बुधौ सप्तमहर्द्धियुक्तास्तत्सन्ततौ नन्दिगणे बभूव ॥३॥

श्रीपद्मनन्दीत्यनवद्यनामा ह्याचार्य्यशब्दोत्तरकोण्डकुन्द।
द्वितीयमासीदभिधानमुद्यच्चरित्रसञ्जातसुचारणर्द्धि ॥४॥
अभूदुमास्वातिमुनीश्वरोऽसावाचार्य्य-शब्दोत्तरगृद्धपिञ्छ।
तदन्वये तत्सदृशो (ऽ)ऽस्ति नान्यस्तात्कालिकाशेषपदार्थ-वेदी ॥५॥
श्रीगृद्धपिञ्छ-मुनिपस्य बलाकपिञ्छ
शिष्योऽप्यनिष्ट भुवनत्रय-वर्त्ति-कीर्त्ति।
चारित्रचञ्चुरखिलावनिपालमौलि-
माला-शिलीमुख-विराजित-पाद-पद्म ॥६॥

१ जैनशिलालेखसग्रह, प्रथम भाग, अभिलेखसख्या ४२।

तच्छिष्यो गुणनन्दि-पण्डितयतिश्चारित्रचक्रेश्वर-
स्तर्क-व्याकरणादि-शास्त्र-निपुणस्साहित्य-विद्यापतिः ।
मिथ्यावादिमदान्ध-सिन्धुर-घटासङ्घट्टकण्ठीरवो
भव्याम्भोज-दिवाकरो विजयता कन्दर्प-दर्प्पापहः ॥७॥
तच्छिष्यास्त्रिशता विवेक-निधयश्शास्त्राब्धिपारङ्गता-
स्तेषूत्कृष्टतमा. द्विसप्ततिमितास्सिद्धान्त-शास्त्रार्थक-
व्याख्याने पटवो विचित्र-चरितास्तेषु प्रसिद्धो मुनि-
र्न्नानानून-नय-प्रमाणनिपुणो देवेन्द्र-सैद्धान्तिक ॥८॥

अजनि महिपचूडा-रत्नरा राजिताङ्घ्रि-
र्व्विजित-मकरकेतूद्दण्ड-दोर्द्दण्डगर्व्वः ।
कुनय-निकर-भूध्रानीक-दम्भोलि-दण्ड-
स्स जयतु विबुधेन्द्रो भारती-भाल-पट्ट ॥९॥

तच्छिष्य: कलधौतनन्दिमुनिपस्सिद्धान्तचक्रेश्वर:
पारावार-परीत-धारिणि-कुलव्याप्तोरुकीर्त्तीश्वर: ।
पञ्चाक्षोन्मद-कुम्भि-कुम्भ-दलन-प्रोन्मुक्त-मुक्ताफल-
प्रांशु-प्राञ्चितकेसरी बुधनुतो वाक्कामिनी-वल्लभः ॥१०॥
अवर्गो रविचन्द्र-सिद्धान्तविदरसम्पूर्ण्णचन्द्रसिद्धान्तमुनि-
प्रवरखरवर्ग्गे शिष्यप्रवर श्रीदामनन्दि-सन्मुनि-पतिगल् ॥११॥
बोधित-भव्यरस्त-मदनम्मद-वर्ज्जित-शुद्ध-मानसर्
श्रीधरदेवरेम्बरस्र्गग्रन्तनूभवरादरा यश-
श्रीधरर्व्वद शिष्यरवरोल् नेगल्दर्गलवारिदेवरुं
श्रीधरदेवरु नतनरेन्द्र-ति (कि) रीट-तटार्च्चितक्रमर् ॥१२॥
आनम्रावनिपाल-जालकगिरो-रत्न-प्रभा-भासुर-
श्रीपादाम्बुरुहद्वयो वर-तपोलक्ष्मीमनोरञ्जन. ।
मोह-व्यूह-महीध्र-दुर्द्धर-पविः सच्छीलशालिर्ज्जग-
त्ख्यातश्रीधरदेव एष मुनिपो भाभाति भूमण्डले ॥१३॥
तच्छिष्यर् ॥
भव्याम्भोरुह-षण्ड-चण्ड-किरण. कर्पूर-हार-स्फुर-
त्कीर्त्तिश्रीधवलीकृताखिलदिशाचक्रश्चरित्रोन्नत: ।
(दक्षिणमुख)
भाति श्रीजिन-पुङ्गव-प्रवचनाम्भोराशि-राका-शशी
भूमौ विश्रुत-माघनन्दिमुनिपस्सिद्धान्तचक्रेश्वर ॥१४॥

तच्छिष्य र् ॥

सच्छीलग् शरदिन्दु-कुन्द-विशद-प्रोद्यद्यश-श्रीपति-
दृप्यंदृप्पंक-दर्प्प-दाव-दहन-ज्वालालि-कालाम्बुद. ।
श्रीजैनेन्द्र-वच पयोनिधि-शरत्सम्पूर्ण-चन्द्र क्षितौ
भाति श्रीगुणचन्द्र-देव-मुनियो राद्धान्त-चक्राधिप. ॥१५॥

तत्सधर्मर् ॥

उद्भूते नुत-मेघचन्द्र-शशिनि प्रोद्यद्यशश्चन्द्रिके
सवर्द्धत तदस्तु नाम नितरां राद्धान्त-रत्नाकर ।
चित्रं तावदिद पयोधि-परिधि-क्षोणी समुद्वीक्ष्यते
प्रायेणात्र विजृम्भते भरत-शास्त्राम्भोजिनी सन्ततं ॥१६॥

तत्सधर्म्मर् ॥

चन्द्र इव धवल-कीर्त्तिर्द्धवलीकुरुते समस्त-भुवनं यस्य
तच्चन्द्रकीर्त्तिसञ्ज्ञ-भट्टारक-चक्रवर्त्तिनोऽस्य विभाति ॥१७॥

तत्सधर्म्मर् ॥

नैयायिकेभ-सिंहो मीमांसकतिमिर-निकरनिरसन-तपन ।
वौद्ध-वन-दाव-दहनोजयति महानुदयचन्द्रपण्डितदेव. ॥१८॥
सिद्धान्त-चक्रवर्त्ती श्रीगुणचन्द्रव्रतीश्वरस्य वभूव
श्रीनयकीर्त्तिमुनीन्द्रो जिनपतिनादिताखिलार्थवेदी शिष्य ॥१९॥

स्वस्त्यनवरत-विनत-महिप-मुकुट-मौक्तिक-मयूख-माला-सरोमण्डनीभूत-चारु-चरणार-विन्दरु । भव्यजन-हृदयानन्दरु । कोण्डकुन्दान्वय-गगन-मार्त्तण्डरु । लीला-मात्र-विश्रितोच्चण्ड-कुसुमकाण्डरु । देशीयगण-गजेन्द्र-सान्द्र-मद-धाराव-भासरु । वितरणविलासरं । श्रीमद्गुणचन्द्र-सिद्धान्त-चक्रवर्त्ति-चारुतर-चरण सरसीरुह-षट्चरणरु । अशेष-दोषदूरीकरणपरिणतान्त करणरुमप्प श्रीमन्नय-कीर्त्ति-सिद्धान्त-चक्रवर्त्ति गले ळप्परेन्दडे ॥

साहित्य-प्रमदा-मुखाब्जमुकुरश्चारित्र-चूडामणि-
श्रीजैनागम-वार्द्धि-वर्द्धन-सुधाशोचिस्समुद्भासते ।
यश्शल्य-त्रयगारव-त्रय-लसद्दण्ड-त्रय-ध्वसक-
स्स श्रीमान्नयकीर्त्ति देवमुनिपरौद्धान्तिकाग्रेसरः ॥२०॥
माणिक्यनन्दिमुनिप. श्रीनयकीर्त्तिव्रतीश्वरस्य सधर्म्म. ।
गुणचन्द्रदेवतनयो राद्धान्त-पयोधि-पारगो-भुवि भाति ॥२१॥
हार-क्षीर-हराद्दहास-हलभृत्कुन्देन्दु-मन्दाकिनी
कर्प्पूर-स्फटिक-स्फुरद्वरयशो-धौतत्रिलोकोदरः ।

उच्चण्ड स्मर-भूरि-भूधरपवि' ख्यातो बभूव क्षितौ
स श्रीमान्नयकीर्त्ति देवमुनिपरिराद्धान्तचक्रेश्वर ॥२२॥

शाके रन्ध्रनवद्युचन्द्रमसिदुर्गाुर्ख्याच संवत्सरे
वैशाखे धवले चतुर्दशदिने वारे च सूर्य्यात्मजे।
पूर्व्वाह्णे प्रहरे गतेऽर्द्धसहिते स्वर्ग्गं जगामात्मवान्
विख्यातो नयकीर्त्ति-देव-मुनिपो राद्धान्तचक्राधिप ॥२३॥
श्रीमज्जैन-वचोब्धि-वर्द्धन-विधुरसाहित्यविद्यानिधिस्

(पश्चिम मुख)

सर्प्पद्दर्प्पक-हस्ति-मस्तक-लुठत्प्रोत्कण्ठ-कण्ठीरवः।
स श्रीमान् गुणचन्द्रदेवतनयस्सौजन्यजन्यावनि
स्थेयात् श्रीनयकीर्त्ति देवमुनिपरिराद्धान्तचक्रेश्वर ॥२४॥

गुरुवाद खचराधिपगे वलिगं दानक्के विण्पिगे तां
गुरुवाद सुर-भूधरक्के नेगल्दा कैलास-शैलक्के ता।
गुरुवाद विनुतगे राजिसुविरुद्धोलड्गे लोकक्के सद्
गुरुवाद नयकीर्त्ति देवमुनिप राद्धान्त-चक्राधिप ॥५॥

तच्छिष्यर् ॥

हिमकर-शरदभ्र-क्षीर-कल्लोल-जाल-स्फटिक-सित-यश-श्रीशुभ्र-दिक्-चक्रवाल।
मदन-मद-तिमिस्र-श्रेणितीव्रांशुमाली जयति निखिल-वन्द्यो मेघचन्द्र व्रतीन्द्र ॥२६॥

तत्सधर्म्मर् ॥

कन्दर्प्पाहवकर्पितोद्धुरतनुत्राणोपमोरस्थली
चञ्चद्भूरमला विनेय-जनता-नीरेजिनी-भानव।
त्यक्ताशेष-बहिर्व्विकल्प-निचयाश्चारित्र-चक्रेश्वर
शुम्मन्त्यण्णितटाक-वासि-मलवारि-स्वामिनो भूतले ॥२७॥

तत्सधर्म्मर् ॥

षट्-कर्म्म-विषय-मन्त्रे नानाविध-रोग-हारि-वैद्ये च।
जगदेकसूरिरेष श्रीधरदेवो बभूव जगति प्रवण ॥२८॥

तत्सधर्म्मर् ॥

तर्क्क-व्याकरणागम-साहित्य-प्रभृति-सकल-शास्त्रार्थज्ञ।
विख्यात-दामनन्दि-त्रैविद्य-मुनीश्वरो-धराग्रे जयति ॥२९॥

શ્રીમજ્જૈનમતાબ્જિનીદિનકરો નૈય્યાયિકાભ્રાનિલ-
શ્ચાર્વ્વાકાવનિભૃત્કરાલકુલિશો બૌદ્ધાબ્ધિકુમ્ભોદ્ભવ ।
યો મીમાંસકગન્ધસિન્ધુરશિરોનિર્ભેદકણ્ઠીરવ-
સ્ત્રૈવિદ્યોત્તમદામનન્દિમુનિપસ્સોઽય ભુવિ ભ્રાજતે ॥૩૦॥

તત્સધર્મ્મર ॥

દુગ્ધાબ્ધિ-સ્ફટિકેન્દુ-કુન્દ-કુમુદ-વ્યાભાસિ-કીર્ત્તિપ્રિય-
સ્સિદ્ધાન્તોદધિ-વર્દ્ધનામૃતકર પારાર્થ્ય-રત્નાકર ।
ખ્યાતશ્શ્રી-નયકીર્ત્તિદેવમુનિપશ્રીપાદ-પદ્મ-પ્રિયો
ભાત્યસ્યા ભુવિ ભાનુકીર્ત્તિ-મુનિપસ્સિદ્ધાન્તચક્રાધિપ ॥૩૧॥
ઉરગેન્દ્ર-ક્ષીર-નીરાકર-રજત-ગિરિ-શ્રીસિતચ્છત્ર-ગઙ્ગા-
હરહાસૈરાવતેભ-સ્ફટિક-વૃષભ-શુભ્રાભ્રનીહાર-હારા-
મર-રાજ-શ્વેત-પઙ્કેરુહ-હલધર-વાક્-શઙ્ખ-હંસેન્દુ-કુન્દો-
ત્કરચન્ચત્કીર્ત્તિકાન્ત ધેરયોલેસેદની ભાનુકીર્ત્તિ-વ્રતીન્દ્ર ॥૩૨॥

તત્સધર્મ્મર્ ॥

સદ્વૃત્તાકૃતિ-શોભિતાખિલકલા-પૂર્ણ સ્મર-ધ્વંસક
શશ્વદ્વિશ્વ-વિયોગિ-હૃત્સુખકર-શ્રીબાલચન્દ્રો મુનિ ।
વક્રેણોન-કલેન-કામ-સુહૃદા ચન્ચદ્વિયોગિદ્વિષા
લોકેસ્મિન્નુપમીયતે કથમસૌ તેનાય બાલેન્દુના ॥૩૩॥
ઉચ્ચણ્ડ-મદન-મદ-ગજ-નિર્ભેદ-પટુતર-પ્રતાપ-મૃગેન્દ્ર
ભવ્ય-કુમુદૌઘ-વિકસન-ચન્દ્રો ભુવિ ભાતિ બાલચન્દ્ર મુનીન્દ્ર. ॥૩૪॥
તારાદ્રિ-ક્ષીર-પૂર-સ્ફટિક-સુર-સરિત્તારહારેન્દુ-કુન્દ-
શ્વેતોદ્યત્કીર્ત્તિ-લક્ષ્મી-પ્રસર-ધવલિતાશેષદિક્-ચક્રવાલ. ।
શ્રીમત્સિદ્ધાન્ત-ચક્રેશ્વર-નુત-નયકીર્ત્તિ-વ્રતીશાઙ્ઘ્રિભક્ત

(ઉત્તરમુખ)

શ્રીમાન્ભટ્ટારકેશો જગતિ વિજયતે મેઘચન્દ્ર-વ્રતીન્દ્ર ॥૩૫॥
ગામ્ભીર્યે મકરાકરો વિતરણે કલ્પદ્રુમસ્તેજસિ
પ્રોચ્ચણ્ડ-દ્યુમણિ કલાસ્વપિ શશી ધૈર્ય્યે પુનર્મન્દર ।
સર્વ્વોર્વ્વી-પરિપૂર્ણ-નિર્મ્મલ-યશો-લક્ષ્મી-મનો-રઞ્જનો
ભાત્યસ્યાં ભુવિ માઘનન્દિમુનિપો ભટ્ટારકાગ્રેસર ॥૩૬॥
વસુપૂર્ણસમસ્તાશ ક્ષિતિચક્રે વિરાજતે ।
ચન્ચત્કુવલયાનન્દ-પ્રભાચન્દ્રો મુનીશ્વર ॥૩૭॥

तत्सधर्म्मे ॥

उग्रचण्डग्रहकोटयो नियमितास्तिष्ठन्ति येन क्षितौ
यद्वाग्जातसुधारसोऽखिलविषव्युच्छेदकश्शोभते ।
यत्तन्त्रोद्धविधि समस्तजनताराग्याय सवर्त्तते
सोऽयं गुम्मति पद्मनन्दिमुनिनायो मन्त्रवादीश्वर. ॥३८॥

तत्सधर्मा ॥

चञ्चच्चन्द्र-मरीचि-शारद-घन-क्षीराब्धि-ताराचल-
प्रोद्यत्कीर्ति-विकास-पाण्डुर-तर-ब्रह्माण्ड-भाण्डोदर ।
वाक्कान्ता-कठिन-स्तन-द्वय-तटी-हारो गभीरस्थिर
सोऽय सन्नुत-नेमिचन्द्र-मुनिपो विभ्राजते भूतले ॥३९॥
भण्डाराधिकृत. समस्त-सचिवाधीशो जगद्विश्रुत-
श्रीहुल्लो नयकीर्त्तिदेव-मुनि-पादाम्भोज-युग्मप्रिय ।
कीर्त्ति-श्री-निलय परार्थ्य-चरितो नित्य विभाति क्षितौ
सोऽय श्रीजिनधर्म्म-रक्षणकर. सम्यक्त्व-रत्नाकर ॥४०॥

श्रीमच्छ्रीकरणाधिपश्शचिवनायो विश्व-विद्वन्निधि-
श्चातुर्व्वर्ण्ण-महान्नदान-करणोत्साही क्षितौ शोभते ।
श्रीनीलो जिन-धर्म-निर्म्मल-मनास्साहित्य-विद्याप्रिय-
स्सौजन्यैक-निधिश्शशाङ्क-विशद-प्रोद्यद्यश-श्रीपति ॥४१॥
आराध्यो जिनपो गुरुश्च नयकीर्त्ति-ख्यात-योगीश्वरो
जोगाम्बा जननी तु यस्य जनक ( ) श्रीवम्मदेवो विभु ।
श्रीमत्कामलता-सुता-पुरपतिश्रीमल्लिनाथस्सुतो
भात्यस्यां भुवि नागदेव-सचिवश्चण्डाम्बिकावल्लभ ॥४२॥
सुरनाज-शरदिन्दु-प्रस्फुरत्कीर्त्तिशुभ्री
भवदखिल-दिगन्तो-वाग्वधू-चित्तकान्त ।
बुध-निधि-नयकीर्त्ति-ख्यात-योगीन्द्र-पादा-
म्बुज-युगकृत-सेव शोभते नागदेव. ॥४३॥
ख्यातश्रीनयकीर्त्तिदेवमुनिनाथानां पद प्रोल्लस-
त्कीर्त्तीनां परम परोक्ष-विनय कर्तुं निषद्यालय ।
भक्त्याकारयदाशशङ्क-दिनकृत्तार स्थिर स्थायिन
श्रीनागस्सचिवोत्तमो निजयशश्शीगुभ्रदिग्मण्डल. ॥४४॥

इस अभिलेखमे नागदेव मत्री द्वारा अपने गुरु श्रीनयकीर्त्ति श्रीयोगीन्द्रदेव-की निषद्या-निर्माण कराये जानेका उल्लेख है। नयकीर्त्ति मुनिका स्वर्गवास शक

सं० १०९९ वैशाख शुक्ला चतुर्दशीको हुआ था। इन नयकीर्त्ति योगीन्द्रदेवकी विस्तृत गुरुपरम्परा इस अभिलेखमे आयी है। बताया है

पद्मनन्दि अपर नाम कुन्दकुन्दाचार्य, उमास्वामि-गृध्रपिच्छाचार्य, बलाकपिच्छ, गुणनन्दि, देवेन्द्र सैद्धान्तिक, कलधौतनन्दि, रविचन्द्र अपरनाम सम्पूर्णचन्द्र, दामनन्दि मुनि, श्रीधरदेव, मलधारिदेव, श्रीधरदेव, माघनन्दिमुनि, गुणचन्द्रमुनि, मेघचन्द्र, चन्द्रकीर्त्ति भट्टारक और उदयचन्द्र पण्डितदेव हुए। नयकीर्त्ति गुणचन्द्र मुनिके शिष्य थे और उनके सधर्मा गुणचन्द्रमुनिके पुत्र माणिक्यनन्दि थे। उनकी शिष्यमण्डलीमे मेघचन्द्र व्रतीन्द्र, मलधारिस्वामि, श्रीधरदेव, दामनन्दि त्रैविद्य, भानुकीर्त्ति मुनि, बालचन्द्रमुनि, माघनन्दिमुनि, प्रभाचन्द्र मुनि, पद्मनन्दि मुनि और नेमिचन्द्र मुनि थे।

इस अभिलेखमे नन्दिगण कुन्दकुन्दान्वयकी परम्परा अङ्कित की गई है।

प्रथम शुभचन्द्रकी गुर्वावली

श्रीमानशेषनरनायक-वन्दिता-ङ्घ्री श्रीगुप्तिगुप्त (१) इति विश्रुत-नामधेय ।
यो भद्रबाहु (२) मुनिपुगव-पट्टपद्म सूर्य्य स वो दिशतु निर्म्मलसघवृद्धिम् ॥१॥
श्रीमूलसघेऽजनि नन्दिसघस्तस्मिन् बलात्कारगणोऽतिरम्य. ।
तत्राऽभवत्पूर्व-पदांशवेदी श्रीमाघनन्दी (३) नर-देव-वन्द्य ॥२॥

पट्टे तदीये मुनिमान्यवृत्तो जिनादिचन्द्र (४) रसमभूदतन्द्र
ततोऽभवत्पञ्चसुनामधाम श्रीपद्मनन्दी मुनिचक्रवर्ती ॥३॥

आचार्य्य कुन्दकुन्दाख्यो (५) वक्रग्रीवो महामुनि ।
एलाचार्य्यो गृद्धपिच्छ पद्मनन्दीति तन्नुति ॥४॥
तत्त्वार्थसूत्रकर्तृत्व-प्रकटीकृतसन्मना ।
उमास्वाति (६) पदाचार्यो मिथ्यात्वतिमिरांशुमान् ॥५॥

लोहाचार्य (७) स्ततो जातो जातरूपधरोऽमरै ।
सेवनीय समस्तार्थविबोधनविशारद. ॥६॥
तत: पट्टद्वयी जाता प्राच्युदीच्युपलक्षणात् ।
तेषा यतीश्वराणा स्युर्नामानीमानि तत्त्वत. ॥७॥
यश कीर्त्ति (८) यशोनन्दी (९) देवनन्दी (१०) महामति ।
पूज्यपाद. पराख्येयो गुणनन्दी (११) गुणाकर: ॥८॥
वज्रनन्दी (१२) वज्रवृत्तिस्तार्किकाणा महेश्वर ।
कुमारनन्दी (१३) लोकेन्दु. (१४) प्रभाचन्द्रो (१५) वचोनिधि ॥९॥

नेमिचन्द्रो (१६) भानुनन्दी (१७) सिंहनन्दी (१८) जटाधर ।
वसुनन्दी (१९) वीरनन्दी (२०) रत्ननन्दी (२१) रतीशमित् ॥१०॥
माणिक्यनन्दी (२२) मेघेन्दु. (२३) शान्तिकीर्त्ति (२४) र्महायशा: ।
मेरुकीर्त्ति (२५) र्महाकीर्ति (२६) र्विश्वनन्दी (२७) विदाम्बर ॥११॥

श्रीभूषण: (२८) शीलचन्द्र (२९) श्रीनन्दी (३०) देशभूषण. (३१) ।
अनन्तकीर्त्ति (३२) र्धर्मादिनन्दी (३३) नन्दीति शासन ॥१२॥
विद्यानन्दी (३४) रामचन्द्रो (३५) रामकीर्त्ति (३६) रनिन्द्यावाक् ।
अभयेन्दु (३७) र्नरचन्द्रो (३८) नागचन्द्र (३९) स्थिरव्रत ॥१३॥
नयनन्दी (४०) हरिश्चन्द्रो (४१) महीचन्द्रो (४२) मलोज्झित ।
माधवेन्दु (४३) र्लक्ष्मीचन्द्रो (४४) गुणकीर्त्ति (४५) गुणाश्रय. ॥१४॥

गुणचन्द्रो (४६) वासवेन्दु (४७) र्लोकचन्द्र (४८) स्वतत्त्ववित् ।
त्रैविद्य श्रुतकीर्त्याख्यो (४९) वैयाकरण भास्कर ॥१५॥
भानुचन्द्रो (५०) महाचन्द्रो (५१) माघचन्द्र (५२) क्रियागुणी ।
ब्रह्मनन्दी (५३) शिवनन्दी (५४) विश्वचन्द्र (५५) स्तपोधन: ॥१६॥
सैद्धान्तिको हरिनन्दी (५६) भावनन्दी (५७) मुनीश्वर: ।
सुरकीर्त्ति (५८) र्विद्याचन्द्र (५९) सुरचन्द्र (६०) श्रियानिधि ॥१७॥
माघनन्दी (६१) ज्ञाननन्दी (६२) गङ्गनन्दी (६३) महत्तम. ।
सिंहकीर्त्ति (६४) र्हेमकीर्त्ति (६५) श्चारुनन्दी (६६) मनोज्ञवी. ॥१८॥
नेमिनन्दी (६७) नाभिकीर्त्ति (६८) र्नरेन्द्रादि (६९) यश.परम् ।
श्रीचन्द्र (७०) पद्मकीर्त्तिश्च (७१) वर्द्धमानो (७२) मुनीश्वर ॥१९॥
अकलङ्क (७३) श्चन्द्रगुरुर्ललितकीर्ति (७४) रुत्तम ।
त्रैविद्य. केशवश्चन्द्र (७५) श्चारुकीर्त्ति (७६) सुधार्मिक. ॥२०॥

सैद्धान्तिकोऽभयकीर्त्ति (७७) र्वनवासी महातपा ।
वसन्तकीर्त्ति-(७८) र्व्याघ्राहिसेवित शीलसागर ॥२१॥
तस्य श्रीवनवासिनस्त्रिभुवन प्रख्यात(७९) कीर्तेरभूत् ।
शिष्योऽनेकगुणालय. समन्यम-ध्यानापगासागर ।
वादीन्द्र परवादिन्वारणगण-प्रागल्भविद्रावण ।
सिंह श्रीमति मण्डयेति विदितस्त्रैविद्यविद्यास्पदम् ॥२२॥

विशालकीर्त्ति (८०) र्वरवृत्तमूर्त्तिस्तपोमहात्मा शुभकीर्त्ति (८१) देव ।
एकान्तराद्युग्र तपोविधाना द्धातेव सन्मार्गविधेर्विधाने ॥२३॥
श्रीधर्म (८२) चन्द्रोऽजनि तस्य पट्टे हमीरभूपालसमर्चनीय. ।
सैद्धान्तिक सयमसिन्धुचन्द्र: प्रख्यातमाहात्म्यकृतावतार. ॥२४॥

तत्पट्टेऽजनि रत्नकीर्त्ति (७३) रनघ स्याद्वादविद्याबुधि' ।
नानादेश-विवृत्तशिष्यनिवह प्राच्याघ्रियुग्मो गुरु ॥
धर्माधर्मकथासुरवाधिषण पापप्रभाबाधको
बालब्रह्मतप प्रभावमहित कारुण्यपूर्णाशय ॥२५॥
अस्ति स्वस्तिसमस्तसङ्घतिलक श्रीनन्दिसघोऽतुलो
गच्छस्तत्र विशालकीर्त्तिकलित सारस्वतीय पर ॥
तत्र श्रीशुभकीर्त्तिमहिमा व्याप्ताम्बर सन्मति ।
जीयादिन्दुसमानकीर्त्तिरमल' श्रीरत्नकीर्त्तिगुरु ॥२६॥
पट्टे श्रीरत्नकीर्त्तिरनुपमतपस पूज्यपादीयशास्त्रः ।
व्याख्याविख्यातकीर्त्तिगु'णगणनिधिप. सत्क्रियाचारुचचु ॥
श्रीमानानन्दधामप्रतिबुधनुतमामानसदायिवादो ।
जीयादाचन्द्रतार नरपतिविदित श्रीप्रभाचन्द्र (८४) देव ॥२७॥
श्रीमत्प्रभाचन्द्रमुनीन्द्रपट्टे शश्वत् प्रतिष्ठाप्रतिभागरिष्ट ।
विशुद्धसिद्धान्तरहस्यरत्नरत्नाकरो नन्दतु पद्मनन्दी (८५) ॥२८॥
हसो ज्ञानमरालिकासमसमाश्लेषप्रभूताद्भूता
नन्दक्रीड़ति मानसेति विशदे यस्यानिश सर्वत ॥
स्याद्वादामृतसिन्धुवर्द्धनविधौ श्रीमत्प्रभेन्दुप्रभा
पट्टे सूरिमतमल्लिका स जयतात् श्रीपद्मनन्दी मुनि ॥२९॥

महाव्रतपुरन्दर प्रशमदग्धरागाङ्कुर
स्फुरत्परमपौरुष स्थितिरशेषशास्त्रार्थवित् ॥
यशोभरमनोहरीकृतसमस्तविश्वम्भर
परोपकृतितत्परो जयति पद्मनन्दीश्वर ॥३०॥
पद्मनन्दिमुनीन्द्रेण वश-वाणी-वसुन्धरा
सन्नयासपदवीन्यास पादन्यासै पवित्रिता ॥३१॥

श्रीपद्मनन्दिपदपङ्कज-भानुरुद्धो
जय्यो जिताद्भुतमदो विदितार्थबोध ॥
ध्वस्तान्धकारनिकटो जयतान्महात्मा
भट्टारक सकलकीर्त्तिरतिप्रसिद्ध (८६) ॥३२॥
सुयति-भुवनकीर्त्ति (८७) स्तत्पदाब्जार्कमूर्त्ति
परमतपसि निष्ठ प्राप्तसर्वप्रतिष्ठः ।
मुनिगणनुतपादो निर्जितानेकवाद
स्त्ववतु सकलसङ्घान् नाशिताऽनेकविघ्नान् ॥३३॥

प्रोद्यज्ज्ञानकरस्तपोभरधर सद्बोधतार्वो धुरो
नानान्यायवरो यतीश्वतरो वादीन्द्रभूभृत्वसरु ।
तत्पट्टोन्नतिकृन्निरस्तनि:कृति श्रीज्ञानभूषो (८८) यति.
पायाद्वो निहताहित परमसज्जैनावनीशै स्तुत: ॥३४॥

विजयकीर्त्ति (८९) यतिर्जितमत्सरो
विदितगोमट्टसारपरागम ।
जयति तत्पदमासितशासनो
निखिलतार्किकतर्कविचारक ॥३५॥

य पूज्यो नृपमल्लिसैरवमहादेवेन्द्रमुख्यैर्नृपै
षट्तर्कागमशास्त्रकोविदमतिश्रीग्रचशरचन्द्रमा. ।
भव्याम्भोरुहभास्कर: शुभकर: ससारविच्छेदक
सोऽव्याच्छ्रीविजयादिकीर्त्तिमुनिपो भट्टारकाधीश्वर ॥३६॥

तत्पट्टकैरवविकाशनपूर्णचन्द्र
स्याद्वादभाषितविबोधितभूमिपेन्द्र ।
अव्याद्गुणान् सुशुभचन्द्र (९०) इति प्रसिद्धो
रम्यान् बहून् गुणवतो हि सुतत्वबोध ॥३७॥

जायीत् षट्तर्कचचुप्रवणगुणनिधिस्तत्पदाम्भोजभृङ्ग
शुम्भद्वादीनकुम्भोद्भटविकटसटाकुण्ठकण्ठीरवेन्दु ।
श्रीमत्सु सौभचन्द्र स्फुटपटुविकटाटोपवैकुण्ठसुनु.
हन्ता चिद्रूपवेत्ता विदितसकल सच्छास्त्रसार कृपालु ॥३८॥

तत्पट्टचारुशतपत्रविकाशनेन
पुण्यप्रवालघनवर्द्धनमेघतुल्य. ।
व्याख्यामितावलिसुतोषित-भव्यलोको
भट्टारक सुमतिकीर्त्ति (९१) रतिप्रबुद्ध. ॥३९॥

ज्ञात्वा ससारभावं विहितवरतपो मोक्षलक्ष्मी सुकाक्षी
स्याद्वादी शान्तिमूर्त्तिर्मदनमदहरो विश्वतत्त्वैकवेत्ता ।
सुज्ञान दानमेतद्वित्तरति गुणनिधिर्मोहमातङ्गसिंहो
जीयाद्भट्टारकोऽसौ सकलयतिपति. श्रीसुमत्यादिकीर्त्ति ॥४०॥

तत्पट्टतामरसरजनभानुमूर्त्ति.
स्याद्वादवादकरणेन विशालकीर्त्ति ।
भाषासुधारससुपुष्टितभव्यवर्गो
भट्टारक. सुगुणकीर्त्ति (९२) गुरुर्गणार्च्य ॥४१॥

प्रीज्ञो वादीभसिंह सकलगुणनिधिर्ध्वस्तदोष' कृपालु' ।
शान्तो मोक्षाभिकाङ्क्षी विशदतरमति कस्तकान्ति' कलावान् ॥
क्षिप्ताशन्तर्कवेत्ता शुभतरवचन सर्वलोकस्थितिज्ञ ।
श्रीमानीष कृतज्ञो जयति जगति स' श्रीगुणाद्यन्तकीर्त्ति ॥४२॥

तत्पट्टपङ्कजविकाशनपद्मबन्धु -
र्जीयात्कुवादिमुखकैरवपद्मबन्धु ।
कान्त्या क्षमा तिमिरनाशनपद्मबन्धु
श्रीवादिभूषण (९३) गुरुर्जितपद्मबन्धु ॥४३॥

यो नानागमशब्दतर्कनिपुणो जैनैर्नृपैः पूजितः
कर्णाटे कलिकालगौतमसमो भट्टारकाधीश्वर' ॥
हेयाहेयविचारबुद्धिकलितो रत्नत्रयालंकृत'
स. श्रीमान् शुभचन्द्रवद्धि श्रयते श्रीवादिभूष्यो गुरु ॥४४॥

तत्पट्टपुष्पकरभासनमित्रमूर्त्तिः
कुज्ञानपङ्कपरिशोषणमित्रमूर्त्ति' ।
नि:शेषभव्यहृदयाम्बुजमित्रमूर्त्ति
भट्टारको जगति भाति सुरामकीर्त्ति' (९४) ॥४५॥

स्याद्वादन्यायवेदी हृतकुमतिमदस्त्यक्तदोषो गुणाब्धि ।
श्रीमच्चिद्रूपवेत्ता विमलतरसुवाक् दिव्यमूर्त्ति सुकीर्त्ति ॥
साक्षाच्छ्रीशारदाया गच्छपतिगरिमा भूपवन्द्यो गुणज्ञ
पायाद्भट्टारकोऽसौ सकलसुखकरो रामकीर्त्तिर्गणेन्द्र ॥४६॥

शास्त्राभ्यासनिवन्धनादिषु पटु रामादिकीर्त्तिस्तत-
स्तत्पट्टे यशकीर्त्तिनाम सतत विभ्राजते धर्म्मभाक् ।
ध्यानाभ्यासकर' सुनिर्मलमनास्तर्कादिकाव्यामृत
भव्याना प्रतिबोधनार्थनिपुण सर्वकलायां रत्त ॥४७॥

तत्पट्टपङ्कजविकाशनभानुमूर्त्ति-
र्विद्याविभूषित-समन्वित-बोधचन्द्र ।
स्याद्वाद-शास्त्र-परितोषित-सर्वभूपो
भट्टारक' समभवद्यशपूर्वकीर्त्ति (९५) ॥४८॥

तत्पट्टवारिजविकाशनतिग्मरश्मि
पापानवोघतिमिरक्षय-तिग्मरश्मि.
पायात्सुभव्य-भरपद्मसुतिग्मरश्मि.
श्रीपद्मनन्दिमुनिपो जिततिग्मरश्मिः ॥४९॥

नानाऽनेकान्तनीत्या जितकुमतशठो विश्वतत्त्वैकवेत्ता
शुद्धात्मध्यानलीनो विगतकलिमलो राजसेव्यक्रमाब्ज: ।
शास्त्राब्धिपोतप्रख्यो विमलगुणनिधी रामकीर्ते सुपट्टे
पायाद्व श्रीप्रसिद्धयै जगति यतिपति पद्मनन्दी (९६) गणीश ॥५०॥

तत्पट्टपद्मविकचीकरणैकमित्र
सद्बोधबोधितनृपो विलसच्चरित्र ।
भट्टारको भुवि विभात्यवबोधनेत्र
देवेन्द्रकीर्त्ति (९७) रतिशुद्धमति पवित्र ॥५१॥

श्रीसर्वज्ञोक्तशास्त्राऽध्ययनपटुमति सर्वथैकान्तभिन्न
चिद्रूपो भाति वेत्ता क्षितिपतिमहितो मोक्षमार्गस्य नेता ।
भव्याब्जोद्बोधभानु परहितनियत: पद्मनन्दीन्द्रपट्टे
जीयाद्भट्टारकेन्द्र: क्षितितलविदितो देवेन्द्रकीर्त्ति ॥५२॥

तत्पट्टनीरजविकाशनकर्मसाक्षी
पापान्धकारविनिवारणकर्मसाक्षी
दुर्वादिदुर्वनकैरवकर्मसाक्षी
श्रीक्षेमकीर्त्ति (९८) मुनिपो जितकर्मसाक्षी ॥५३॥

हेयाहेयविचारणाङ्कितमतिर्वादीन्द्रचूडामणि
स्फुर्य्यद्विश्वजनीनवृत्तिरनिश सम्यक्त्वताऽलङ्कृत ।
सद्वाक्यामृतरञ्जिताखिलनृपो देवेन्द्रकीर्ते: पदे
जीव्याद्वर्षपर शत क्षितितले श्रीक्षेमकीर्त्तिर्गुरु ॥५४॥

तत्पट्टकोकनद-मोदन-चित्रभानु
दु:कर्मदुस्तरसुनाशन-चित्रभानु ।
भव्यालितामरस-रजन-चित्रभानु
जीयान्नरेन्द्रवरकीर्त्ति (९९) सुचित्रभानु ॥५५॥

श्रीमत्स्याद्वादशास्त्रावगमवरमति शान्तमूर्त्तिर्मनोज्ञ
दिव्यतत्त्वात्मोपलब्धि प्रहतकलिमलो मोक्षमार्गस्य नेता ।
सर्वज्ञाभासवेदालिमकलमदरुत् क्षेमकीर्त्ते सुपट्टे
सूरि श्रीमन्नरेन्द्रो जयति पटुगुण: कीर्त्तिशब्दाभियुक्त ॥५६॥

तत्पट्टवारिधिविवर्द्धनपूर्णचन्द्र
पुण्यायुधेभहरिणाधिपतिर्वितेन्द्र ।
सद्बोधवारिजविकाशनवासरेन्द्र.
भट्टारको विजयकीर्त्ति (१००) रसौ मुनीन्द्र: ॥५७॥

स्याद्वादामृतवर्षणैकजलदो मिथ्यान्धकारांशुमान्
भास्वन्मूर्त्तिनरेन्द्रकीर्त्तिसुसरो पट्टावलीक्ष्माधिप ।
नानाशास्त्रविचारचारुचतुर. सन्मार्गसंवर्त्तको
जीयात् श्रीविजयादिकीर्त्तिरमलो दद्यात्स सन्मगल ॥५८॥

तत्पट्टपंकजविकाशनपकजेन्द्र
स्याद्वादसिन्धुवरवर्द्धनपूर्णचन्द्र ।
वादीन्द्रकुम्भमदवारणसन्मृगेन्द्र
भट्टारको जयति निर्मलनेमिचन्द्र (१०१) ॥५९॥

नानान्यायविचारचारुचतुरो वादीन्द्र-चूडामणि
षट्तर्कागमशब्दशास्त्रनिपुणो स्फुर्जद्यशश्चन्द्रमा. : ।
स्वात्मज्ञानविकाशनैकतरणि श्रीनेमिचन्द्रो गुरु.
सद्भट्टारकमौलिमण्डनमणिर्जीव्यात्सहस्र समा ॥६०॥

तत्पट्टपकज-विकाशन-सूर्य्यरूप
शास्त्रामृतेन परितोषित-सर्वभूप ।
सच्छास्त्रकैरव-विकाशन-चन्द्रमूर्त्ति
भट्टारक समभवत् वरचन्द्रकीर्त्ति (१०२) ॥६१॥

श्रीमान्नामिनरेन्द्रसुनुचरणाम्भोजद्वये भक्तिमान्
नानाशास्त्रकलाकलापकुशलो मान्य सदा भूमृता ।
नित्यं ध्यानपरो महाव्रतधरो दाता दयासागर
ब्रह्मज्ञान-परायणस्समभवत् श्रीचन्द्रकीर्त्ति प्रभु ॥६२॥

पद्मनन्दी गुरुर्जातो बलात्कारगणाग्रणी
पाषाणघटिता येन वादिता श्रीसरस्वती ।
उज्जयन्तगिरौ तेन गच्छ सारस्वतोऽभवत्
अतस्तस्मै मुनीन्द्राय नम श्रीपद्मनन्दिने ॥६३॥

समस्त राजाओंसे पूजित पादपद्मवाले, मुनिवर भद्रबाहु स्वामीके पट्ट-कमलको उद्योत करनेमे सूर्य्यके समान श्रीगुप्तिगुप्त मुनि आप लोगोको शुभ-सङ्गति दे ॥१॥

श्रीमूलसङ्घमे नन्दिसङ्घ हुआ, नन्दिसङ्घमे अतिरमणीय बलात्कारगण हुआ, और उस गणमे पूर्वके जाननेवाले मनुष्य और देवोंके वन्दनीय श्रीमाघनन्दि स्वामी हुए ॥२॥

उनके पट्टपर मुनिश्रेष्ठ जिनचन्द्र हुए और इनके पट्टपर पाँच नाम-धारक मुनिचक्रवर्त्ती श्रीपद्मनन्दि स्वामी हुए ॥३॥

कुन्दकुन्द, वक्रग्रीव, एलाचार्य्य, गृद्धपिच्छ और पद्मनन्दी उनके ये पाँच नाम हुए ॥४॥

उनके पट्टपर दशाध्यायीन्तत्त्वार्थसूत्रके प्रसिद्ध कर्त्ता मिथ्यात्व-तिमिरके लिए सूर्य्य समान उमास्वाति (उमास्वामी) आचार्य हुए ॥५॥

उनके पट्टपर देवोंसे पूजित समस्त अर्थके जानने वाले श्रीलोहाचार्य्य हुए ॥६॥

यहाँसे इस नन्दिसङ्घमे दो पट्ट हो गये, पूर्व और उत्तरभेदसे (अर्थात् यहाँसे लोहाचार्य्यकी पट्टवलीका क्रम काष्ठासङ्घमे चला गया और यह अनुक्रम नन्दिसंघका रहा) जिनके नाम क्रमसे यह हैं ॥७॥

यश कीर्त्ति, यशोनन्दी, देवनन्दी-पूज्यपाद, अपरनाम गुणनन्दी हुए ॥८॥

तार्किकशिरोमणि वज्रवृत्तिके धारक वज्रनन्दी, कुमारनन्दी, लोकचन्द्र और प्रभाचन्द्र हुए ॥९॥

नेमिचन्द्र, भानुनन्दी, सिंहनन्दी, वसुनन्दी, वीरनन्दी और रत्ननन्दी हुए ॥१०॥

माणिक्यनन्दी, मेघचन्द्र, शान्तिकीर्त्ति, मेरुकीर्त्ति, महाकीर्त्ति, विश्वनन्दी हुए ॥११॥

श्रीभूषण, शीलचन्द्र, श्रीनन्दी, देशभूषण, अनन्तकीर्त्ति, धर्म्मनन्दी, हुए ॥१२॥

विद्यानन्दी, रामचन्द्र, रामकीर्त्ति, अभयचन्द्र, नरचन्द्र, नागचन्द्र, हुए ॥१३॥

नयनन्दी, हरिश्चन्द्र (हरिनन्दी), महीचन्द्र, माधवचन्द्र, लक्ष्मीचन्द्र, गुणकीर्त्ति हुए ॥१४॥

गुणचन्द्र, वासवेन्दु (वासवचन्द्र), लोकचन्द्र और त्रैविध्यविद्याधीश्वर वैयाकरणभास्कर श्रुतकीर्त्ति हुए ॥१५॥

भानुचन्द्र, महाचन्द्र, माघचन्द्र, ब्रह्मनन्दी, शिवनन्दी, विश्वचन्द्र हुए ॥१६॥

सैद्धान्तिक हरनन्दी, भावनन्दी, सुरकीर्त्ति, विद्यानन्द, सूरचन्द्र हुए ॥१७॥

माघनन्दी, ज्ञाननन्दी, गगनन्दी, सिंहकीर्त्ति, हेमकीर्त्ति और चारुकीर्त्ति हूए ॥१८॥

नेमिनन्दी, नामकीर्त्ति, नरेन्द्रकीर्त्ति, श्रीचन्द्र, पद्मकीर्त्ति, वर्द्धमानकीर्त्ति हुए ॥१९॥

अकलकचन्द्र, ललितकीर्त्ति, त्रैविद्यविद्याधीश्वर केशवचन्द्र, चारुकीर्त्ति हुए ॥२०॥

सैद्धान्तिक महातपस्वी अभयकीर्त्ति और वनवासी महापूज्य वसन्तकीर्त्ति हुए ॥२१॥

जगत्प्रख्यातकीर्त्ति उन श्रीवनवासी वसन्तकीर्त्ति आचार्य्यके शिष्य अनेक गुणोके स्थान, यम, नियम, तपश्चरण, महाव्रतादि-नदियोके सागर, पर-वादिगजविदारण-सिंह और वादीन्द्र भुवनविख्यात विद्याधीश्वर श्रीविशाल-कीर्त्ति हुए और उनके पट्टधर श्रेष्ठ चरित्रमूर्त्ति एकान्तरादि-उग्रतपोविधानमे ब्रह्माके समान सन्मार्गप्रवर्त्तक श्रीशुभकीर्त्ति हुए ॥२३॥

इनके पट्टपर हमीरमहाराजसे पूजनीय सयमसमुद्रको बढ़ानेमे चन्द्रमासमान प्रसिद्ध सैद्धान्तिक श्री धर्मचन्द्र हुए ॥२४॥

उनके पट्टपर यतिपति स्याद्वादविद्यासागर रत्नकीर्त्ति हुए, जिनके शिष्य अनेक देशोमे विस्तरित हैं, वे धर्म्मकथाओके कर्त्ता बालब्रह्मचारी श्रीरत्नकीर्त्ति गुरु जयवन्त रहे ॥२५॥

समस्त सघोमे तिलक श्रीनन्दिसघमे शुभकीर्त्तिसे प्रसिद्ध निर्म्मल सार-स्वतीय गच्छमे चन्द्रमासमान दिगन्तविश्रामकीर्त्ति श्रीरत्नकीर्त्तिगुरु जयवन्त रहे ॥२६॥

इनके पट्टपर, श्रीपूज्यपादस्वामीके ग्रन्थोकी टीका करनेसे पायी है प्रसिद्धि जिन्होने, नानागुण विभूषित, वादविजेता, अनेक राजाओसे पूजित श्रीप्रभाचन्द्र-चन्द्रदेवतारास्थिति-पर्य्यन्त जयवन्त रहे ॥२७॥

श्रीप्रभाचन्द्रदेवके पट्टपर विशुद्ध सिद्धान्तरत्नाकर और अनेक जिनप्रति-माओकी प्रतिष्ठा करानेवाले श्रीपद्मनन्दी हुए ॥२८॥

जिनके शुद्ध हृदयमे अभेदभावसे आलिङ्गन करती हुई ज्ञानरूपी हँसी आनन्दपूर्वक क्रीडा करती है। जिन्होने जिनदीक्षा धारण कर जिनवाणी और पृथ्वीको पवित्र किया है, वह परमहस निर्ग्रन्थ पुरुषार्थशाली अशेषशास्त्रज्ञ सर्व-हितपरायण मुनिश्रेष्ठ श्रीपद्मनन्दी मुनि जयवन्त रहे ॥२९॥३०॥३१॥

श्रीपद्मनन्दीके शिष्य अनेक वादियोमे प्राप्तविजय, उपदेशसे अज्ञानतम-दलन करनेवाले जगत्प्रसिद्ध श्रीसकलकीर्त्ति भट्टारककी जय रहे ॥३२॥

श्रीमान् सकलकीर्त्ति आचार्य्यके पट्टधर श्रीभुवनकीर्त्तिमुनि, परमतपस्वी अनेक मुनिगणोसे सेवित, अनेक वादोमे जिनधर्म्मकी प्रभावना करनेवाले समस्त-सघोकी रक्षा करे ॥३३॥

उनके शिष्य ज्ञानशाली, तपोभूमि, नीतिज्ञ, अनेक जैन राजाओसे स्तुत, श्री ज्ञानभूषणयति सबकी रक्षा करें ॥३४॥

तत्पदसेवी, निखिल-तार्किकचूडामणि, श्रीगोमट्टसार आदि महाशास्त्रज्ञ विजयकीर्त्ति हुए ॥३५॥

मल्लिसेरव, महादेवेन्द्र प्रभृति मुख्य राजाओ द्वारा पूजित, तर्कादिषट् शास्त्रके ज्ञाता, यश शाली, भवदु खमञ्जन वह विजयकीर्त्ति मुनि हम सबकी रक्षा करें ॥३६॥

भव्योको आनन्द देनेमे पूर्णचन्द्र, स्याद्वादन्यायसे अनेक राजाओको जैन बनाने वाले, श्री विजयकीर्त्तिके शिष्य, जगत्प्रसिद्ध, भारतेन्दु, षट्तर्कवागीश, वादिरूप हस्तियोको सिंह, प्रकट-दु खप्रद भयङ्कर कर्मसन्ततिको नाशकरने वाले, आत्मानुभवी, समस्तशास्त्रपारङ्गत, दयालु, श्रीशुभचन्द्राचार्य्य, समस्त मुनिगणोकी रक्षा करें ॥३७॥३८॥

श्री शुभचन्द्राचार्य्यके पट्टधर, भद्र लोगोको उपदेशामृतवर्षी, श्रीसुमतिकीर्त्ति भट्टारक हुए ॥३९॥

ससारको क्षणभगुर जानकर मोक्षाभिलाषी हो तपस्वी हुए वे यतिपति श्रीसुमतिकीर्त्तिदेव, मोह-कामादिशत्रु-विजयी, जयवन्त रहे ॥४०॥

उनके पट्टधर सूर्य्यसमान, स्याद्वादविद्यामे निपुण, विशाल कीर्त्तिवाले, अपनी अमृतवाणीसे भव्यगणोकी पुष्टि करनेवाले मुनिगणसे पूजित, श्रीगुण-कीर्त्ति आचार्य्य हुए ॥४१॥

विद्वद्भूट, विशुद्धमति, मुमुक्षु, मधुरवचन, व्यवहारवेत्ता, तर्कशास्त्रज्ञ वह श्रीमान् गुणकीर्त्ति इस जगत्मे जयवन्त रहे ॥४२॥

उनके पट्टकमलको विकसित करनेमे पद्मबन्धु, कुवादियोंके मुखकुमुदोको मुद्रित करनेमे सूर्य्य, अन्धकार नष्ट करनेमे तपन, सूर्य्यसे भी अधिक तेजस्वी श्रीमान् वादिभूषण यतिवर चिरजीवी रहे ॥४३॥

अनेकन्यायशास्त्रवेत्ता, अनेक जैन नृपोसे पूजित, कर्णाटक देशको सुशोभित करनेवाले, कलिकालमे गौतमगणधरके समान, रत्नत्रयविभूषित, श्रीशुभचन्द्रा-चार्य्य समानप्रभाशाली, श्रीवादिभूषणगुरु वर्त्तमान रहे ॥४४॥

उनके पट्टकमलको विकसित करनेवाले, अज्ञानको शोषणकरनेवाले, भव्य-कमलोंके सूर्य्य श्रीरामकीर्त्तिभट्टारक हुए ॥४५॥

वह व्याकरणादि सर्वशास्त्रनिपुण, श्रीस्याद्वादन्यायायवेदी, राजमान्य, सर-स्वतीयगच्छपति रामकीर्त्ति भट्टारक इस जगत्मे अलङ्कृत रहे ॥४६॥

उनके पट्टपर सर्वशास्त्रके जाननेवाले सर्वकलासम्पन्न, श्रीयश कीर्त्ति हुए ॥४७॥४८॥

अज्ञान-तिमिरनाशक, भव्यजीवप्रतिबोधक, श्रीयश कीर्तिके पट्टको प्रसारनेवाले, सूर्य्यातिशायी तेजस्वी, श्रीपद्मनन्दी हुए ॥४९॥

वह श्रीमान् पद्मनन्दी मुनि कुवादिवादविजयी, शुद्धात्मलीन, निर्गलचरित्र, शास्त्रसमुद्रपारगामी, राजमान्य, श्रीरामकीर्त्तिके पट्टको अलकृत करें ॥५०॥

उनके पट्टधर, अनेक राजाओंको सम्बोधनेवाले, बुद्धिशाली, श्रीदेवेन्द्रकीर्त्ति हुए। वह श्रीदेवेन्द्रकीर्त्ति गुरु जगत्प्रसिद्ध अनेक राजाओंसे मानित सदा कल्याण करें ॥५१॥५२॥

उनके पट्टपर पापतिमिरविनाशक, श्रीक्षेमकीर्त्ति मुनि हुए। वह क्षेमकीर्त्ति मुनि वस्तुके हेयोपादेयतामें प्रवरबुद्धि, प्राणिमात्र-हिताकांक्षी, वचन माधुरीसे समस्त राजाओंको अनुरञ्जित करनेवाले इस पृथ्वीतल पर अनेक शतवर्ष जीव्यमान रहे ॥५३॥५४॥

उनके पट्टपर दुष्कर्महर्त्ता, भव्य-कमलोंके अपूर्व सूर्य्य, श्रीनरेन्द्रकीर्त्ति जयवन्त रहे, जो श्रीस्याद्वादशास्त्रज्ञ, स्फूर्य्यमाण, अध्यात्म-रसास्वादी, मोक्षमार्गको दिखानेवाले, सर्वज्ञमन्य-कुवादि-वादियोंके मदहर्त्ता हुए ॥५६॥

इनके पट्टरूपी समुद्रको बढानेमें पूर्णचन्द्रके समान, कामहस्तिविदारण-गजेन्द्र, सम्यक्ज्ञानपद्मविकाशी-सूर्य्य, उपदेशवृष्टि करनेमें मेघतुल्य, मिथ्यान्धकार नष्ट करनेमें अतिशायी भानु, अनेकशास्त्रपारगामी श्रीविजयकीर्त्ति हमारा मगल करें ॥५७॥५८॥

उनके पट्टपर वादीन्द्रचूडामणि श्रीनेमिचन्द्राचार्य्य हुए। वह षट्शास्त्र-पारगत, दिक्प्रसरितयशोभागी, आत्मज्ञान-रस-निर्भर, यतिशिरोमणि, हजारों वर्ष जीवित रहे ॥५९॥६०॥

उनके शिष्य, अनेक राजसभामें सम्मानित, श्रीचन्द्रकीर्त्ति भट्टारक हुए, जो श्रीऋषभदेव-चरणभक्तिपरायण, नित्यध्यानाध्ययनमें लीन, दयाके समुद्र, महाव्रती, आत्मानुभवी और गुणशाली थे तथा जिन्होंने इस भारतभूमिको सुशोभित किया ॥६१॥६२॥

श्रीपद्मनन्दी गुरुने बलात्कारगणमें अग्रसर होकर पट्टारोहण किया है और जिन्होंने पाषाणघटित सरस्वतीको ऊर्ज्जयन्तगिरि पर वादिके साथ वादित कराया (बुलवाया) है, तबसे ही सारस्वत गच्छ चला। इसी उपकृतिके स्मरणार्थ उन श्रीपद्मनन्दी मुनिको मैं नमस्कार करता हूँ ॥६३॥

द्वितीय शुभचन्द्रकी पट्टावली

स्वस्ति श्रीजिननाथाय स्वस्ति श्रीसिद्धसूरये ।
स्वस्ति पाठक-सूरिभ्यां स्वस्ति श्रीगुरवे नम ॥१॥
मङ्गल भगवानर्हन् मगल सिद्धसूरय. ।
उपाध्यायस्तथा साधुर्जैनधर्म्मोऽस्तु मगलम् ॥२॥
स्वस्ति श्रीमूलसघेऽवनितिलकनिभे मोक्षमार्गैकदीपे
स्तुत्ये भू-खेचराद्यैर्विगदतरगणे श्रीवलात्कारनाम्नि ॥
गच्छे श्रीशारदाया पदमवगमचरित्राद्यलङ्कारवन्तो ।
विख्याता गौतमाद्या मुनिगणवृषभा भूतलेऽस्मिञ्जयन्तु ॥३॥

स्वस्ति श्रीमन्महावीरतीर्थंकर-मुखकमल-विनिर्गत-दिव्यध्वनि-धरण-प्रकाश-प्रवीण-गौतमगणधरान्वय-श्रुतकेवलि-समालिङ्गित-श्रीभद्रवाहुयोगीन्द्राणाम् ॥४॥

तद्वशाकाश-दिनमणि-सीमन्धरवचनामृतपान-सन्तुष्टचित्त-श्रीकुन्दकुन्दाचार्याणाम् ॥५॥

तदाम्नायधरणधुरीण-कविनामक-वादि-वाग्मि-चतुर्विध-पाण्डित्यकला-निपुण-बौद्ध-नैयायिक-साख्य-वैशेषिक-भट्ट-चार्वाक-मताङ्गीकार - मदोद्यत - परवादि-गज-गण्ड-भैरव (भेदक) श्रीपद्मनन्दिभट्टारकाणाम् ॥६॥

तच्छिष्याग्रेसरानेकशास्त्रपयोधिपारप्राप्ताना, एकावलि-द्विकावलि-कनकावलि-रत्नावलि-मुक्तावलि-सर्वतोभद्र-सिहविक्रमादि-महातपो-वज्र-विनाशित-कर्म्मपर्वतानाम्, सिद्धान्तसार-तत्त्वसार-यत्याचाराद्यनेकराद्धान्तविधातृणाम्, मिथ्यात्वतमो-विनाशैकमार्त्तण्डानाम्, अभ्युदयपूर्व-निर्वाणसुखावश्यविधायि-जिनधर्माम्बुधि-विवर्द्धन-पूर्णचन्द्राणाम्, यथोक्तचरित्राचरणसमर्थन-निर्ग्रन्थाचार्यवर्य्याणाम्, श्री-श्री-श्रीसकलकीर्त्तिभट्टारकाणाम् ॥७॥

तत्पट्टाभरणानेकदक्षमोक्ष्य(दक्ष)-निष्पादन-सकल-कलाकलाप-कुशल-रत्न-सुवर्णरौप्यपित्तलाश्मप्रतिमा-यन्त्रप्रासादप्रतिष्ठायात्रार्चन-विधानोपदेशार्जितकीर्त्तिक पूरपूरित-त्रैलोक्यविवराणाम्, महातपोधनाना श्रीमद्भुवनकीर्त्तिदेवानाम् ॥८॥

तत्पट्टोदयाचलभास्कराणा, गुर्जरदेशप्रथमसागारधर्म्मवरिष्ठ-सद्धर्मनिष्ठानाम्, अहीरदेशाङ्गीकतैकादशप्रतिमापवित्रीकृतगात्राणा, वाग्वरदेश-स्वीकृतदुर्द्धर-महाव्रतभारधुरन्धराणा, कर्णाटदेशोत्तुङ्ग चैत्यचैत्यालयावलोकनार्जितमहापुण्यानाम्, तौलवदेशमहावादीश्वरराजवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्याद्यनेकविरुदावलिविराजमान-यतिसमूहमध्यसप्राप्तप्रतिष्ठानाम्, तैलङ्गदेशोत्तम-नरवृन्द-वन्दितचरणकमलानाम्, द्राविडदेशाप्तविदग्धवदनारविन्दविनिर्गतस्तवानाम्, महाराष्ट्रदेशार्ज्जितेन्दु-कुन्द-कुवलयोज्ज्वलयशोराशीनाम्, सौराष्ट्रदेशो-

त्तमोपासक-वर्ग-विहितापूर्वमहोत्सवानाम्, रायदेशनिवासिसम्यग्दर्शनोपेत-प्राणिसङ्घातकप्रमाणीकृतवाक्यानाम्, मेदपाटदेशानेकमुग्वाङ्गीवर्गप्रतिबोधकानाम्, मालवदेशमव्यचित्तपुण्डरीकवोवन-दिनकरावताराणाम्, मेवातदेशागमाध्यात्मरहस्यव्याख्यानरञ्जितविविधविवुधोपासकाना, कुरुजाङ्गलदेशप्राण्यज्ञानरोगापहरण-वैद्यानाम्, तूरवदेशपट्दर्शनतर्काध्ययनोद्मूताऽखर्वगर्वाकुमितहृदयप्रज्ञावदन्तर्लब्ध-विजयाना, विराटदेशोमयमार्गदर्शकाना, नमियाढदेशाधिकृतजिनवर्मप्रभावाना, नवसहस्राद्यनेकवर्मोपदेशकाना, टगराटहडीवटीनागरचलप्रमुखाऽनेकजनपद-प्रतिबोधन-निमित्त-विहित-विहाराणा, श्रीमूलसङ्घे वलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे डिल्ली (दिल्ली) सिंहासनाधीश्वराणा, प्रतापाक्रान्तदिङ्मण्डलाऽखण्डनसमानमैरवनरेन्द्रविहितातिमक्तिभाराणा, अष्टाङ्गसम्यक्त्वाद्यनेकगुणगणालङ्कृतश्रीमदिन्द्रमूपालमस्तकन्यस्तचरणसरोरुहाणां, गजोन्तलक्ष्मीध्वजान्तपुण्य - नाट्यान्तभोग - समुद्रान्तभूमिमागरक्षकसामन्तमस्तकधृष्टक्रमाग्रमेदिनीपृष्ठराजाधिराजश्रीदेवरायसमाराधितचरणवारिजाना, जिनधर्मधारकमुदिपालराय-रामनाथराय-वोमरसराय-कलपराय-पाण्डुरायप्रभृतिअनेकमहीपालार्च्चितकमलयुगलानाम्, विहितानेकतीर्थयात्राणा, मोक्षलक्ष्मीवशीकरणानर्घ्यरत्नत्रयालङ्कृतगात्राणा, व्याकरण-छन्दोलङ्कार-साहित्य-तर्कागमाध्यात्मप्रमुखशास्त्रसरोजराज-हसाना, शुद्धध्यानामृतपानलालसाना, वसुन्धराचार्याणाम्, श्रीमद्भट्टारकवर्य्यश्रीज्ञानभूषणभट्टारकदेवानाम् ॥९॥

तत्पट्टाम्भोजभास्कराणा, कारितानेकसविवेकजीर्णनूतन-जिनप्रासादोद्धरणधीराणा, समुपदिष्ट-विशिष्टाक्लिष्टप्रतिष्ठजिनबिम्बप्रकाराणा, अङ्गवङ्गकलिङ्ग-तौलव-मालव-मरहठ-सोराष्ट्र-गुर्ज्जर-वार्वर-रायदेश-मेदपाट-प्रमुख-जनपदजनजेगीयमानयशोराशीना, जैनराजान्यराजपूजित-पादपयोजाना, अभिनववालब्रह्मचारीश्रीभट्टारकविजयकीर्त्तिदेवानाम् ॥१०॥

तत्पट्टप्रकटचतुर्विधसंघ-समुद्रोल्लासन-चन्द्राणा, प्रमाणपरीक्षा-पत्रपरीक्षा-पुष्पपरीक्षापरीक्षामुख-प्रमाणनिर्णय-न्यायमकरन्द-न्यायकुमुदचन्द्रोदय-न्यायविनिश्चयालङ्कार-श्लोकवार्तिक-राजवार्त्तिकालङ्कार-प्रमेयकमलमार्त्तण्ड-आप्तमीमासा-अष्टसहस्त्री - चिन्तामणि - मीमासाविवरण - वाचस्पतितत्त्वकौमुदीप्रमुखकर्कशतर्क-जैनेन्द्र- शाकटायनेन्द्र- पाणिनि-कलाप-काव्य- स्पष्ट - विशिष्ट-सुप्रतिष्ठाष्टमुलक्षण-विचक्षणत्रैलोक्यसार- गोम्मटसार- लब्धिसार-क्षपणासार- त्रिलोकप्रज्ञप्ति-सुविज्ञप्त्याध्यात्मकष्टसहस्रीछन्दोलङ्कारादिशास्त्रसरित्पतिपारप्राप्ताना, शुद्धचिद्रूप-चिन्तन-विनाशि-निद्राणा, सर्वदेशविहरावाप्तानेकमद्राणा, विवेकविचार-चातुर्य्य-गाम्भीर्य्य-धैर्य्य-वीर्य्यगुणगणसमुद्राणा, उत्कृष्टपात्राणा, पालि-

तानेकग(स)च्छात्राणां, विहितानेकोत्तमपात्राणाम्, सकलविद्वज्जनसमागोभितगात्राणां, गौडवादितम सूर्य-कलिङ्गवादिजलदसदागति-कर्णाटवादिप्रथमवचनखण्डनसमर्थ - पूर्ववादिमत्तमातङ्गमृगेन्द्र-तौलवादिविडम्बनवीर- गुर्जरवादिसिन्धुकुम्भोद्भव-मालववादिमस्तकशूल-जितानेकाखर्वगर्वत्राटनवज्रावराणां ज्ञातसकलस्वसमयपरसमयगास्त्रार्थाना, अङ्गीकृतमहाव्रतानाम्, अभिनवसार्थकनामधेयश्रीशुभचन्द्राचार्याणाम् ॥११॥

तत्पट्टप्रवीणोत्कृष्टमति - विराजमान - मुनिश्चितासम्भववाधकप्रामाणादिसाधन- निकरससाधितासाधारणविशेषणत्रयालिंगितपरमात्मराजकुञ्जरबन्धुवदनाम्भोजप्रकटीभूतपरमागमवार्द्धिवर्द्धनसुधाकराणाम्, परवादिवृन्दारकवृन्दवन्दित-विगद-पादपङ्करुहाणां वालब्रह्मचारिभट्टारकश्रीसुमतिकीर्त्तिदेवानाम् ॥१२॥

तत्पट्टाम्बुज-विकाशन-मार्त्तण्डाना, पञ्चमहाव्रत-पञ्चसमिति-त्रिगुप्त्यष्टाविंशतिमूलगुणसंयुक्ताना, व्याख्यामृत-पोषित-जिनवर्गाणां, निजकर्मभूरुहदारणधरणप्रवीणानाम् परमात्मगुणातिगयपरीक्षितविश्वज्ञ-स्वरूपाणाम्, विशदविज्ञान-विनिश्चित-सामान्यविशेषात्मककार्यसमर्थाना, परमपवित्रभट्टारकश्रीगुणकीर्त्तिदेवानाम् ॥१३॥

तत्पट्टकुमुद-प्रकाशन-सुधाकराणां, अंग-वंग-तिलंग-कलिंग-वेट-भोट-लाटकुङ्कण-कर्णाट-मरहट्ट-चीन-चोल-हव्व-खुरासाण-आरव-त्तोलक-तिलात-मेदपाटमालव-पूर्व-दक्षिण-पश्चिमोत्तर- गुर्जर-वाग्वर-रायदेस-नागर- चाल-मरुस्थल-स्फूरदगि- कोशल- मगध- पल्लव-कुरुजांगल-कांची-लाश्रुस-पुट्टोट-काशी-कलिंग-सौराष्ट्र काश्मीर-द्राविड-गौड़-कामरू-मलत्ताण- मुगी-पठाण- वुगलाण-हडावट्ट-सपादलक्षसिन्धु-सिंघुल-कुन्तल-केरल-मगल-जालौरगल-सुतल-कुरल-जांगल-पंचाल-नट्टघट्ट-खेट्ट-कोरट्ट-वेणुतट-कलिकोट-मरहट्ट-कोरट्ट-चेरट्ट-खैरट्ट रगैरतट्टमहाराष्ट्र-विराट-किराट-नर्मद-सिन्धुतट-गंगातट-पल्लव-मल्लवार-कपोठ-गौड़वाडतिगल-किंगल-मलयम-मरुमेखल-नेपाल-हैवतरल-सखल-करल-वरल-मोरल-श्रीमालनेखलपिच्छल-नारल- डाहलताल-त्तमाल-सौमाल- गौमाल- रोमाल- तोमल-केमालहेमाल-देहल-सेहल-टमाल-कमाल-किरात-मेवात-चित्रकूट- हेमकूट-चूरड-मुरंड-उद्रयाणा-आर्द्रआद्र - पुलिन्द्र - सुराट्र - प्रमुखदेशार्ज्जितेन्दु-कुवलयोज्जल-यशोराशीना, सकलशास्त्रसमुद्रपारप्राप्तानां, समग्रविद्रज्जन-नमित-चरणपङ्करुहाणां, व्याख्यामृतपोषित-सकलभव्यवर्गाणां, सकलतार्किकशिरोमणीना, दिल्लीसिंहासनाधीश्वराणाम्, सार्थकनामविराजमान-अभिनवभट्टारकश्रीवादिभूषणदेवानाम् ॥१४॥

पट्टावलीका भाषानुवाद

श्री जिननाथको स्वस्ति हो, सिद्धाचार्योंको स्वस्ति हो, पाठक और आचार्यों-को स्वस्ति हो तथा श्रीगुरुको स्वस्ति हो ॥१॥

अर्हन्तदेव मङ्गलस्वरूप है। सिद्धाचार्यगण मगलस्वरूप हैं और उपाध्याय, साधु तथा जैनधर्म मगलमय हैं ॥२॥

मोक्षका मार्ग दिखानेके लिये अनन्यप्रदीप, भूखेचरोसे स्तुत्य, भूतलमे तिलकस्वरूप, श्रीमूलसघके अति उज्ज्वल बलात्कारनामक गणके सरस्वती-गच्छमे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्रसे समलकृत प्रसिद्ध गौतम आदि गणधर इस भूतलमे जयवन्त हो ॥३॥

श्रीमहावीर स्वामीके मुखकमलसे निकली हुई दिव्यध्वनिको धारण और प्रकाशन करनेमे प्रवीण गौतम गणधरके वशधर श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु स्वामी हुए ॥४॥

इनके वशाकाशके सूर्य श्रीसीमन्धरके वचनामृतके पानसे सन्तुष्ट चित्तवाले श्रीकुन्दकुन्दाचार्य हुए ॥५॥

इनके आम्नायको धारण करनेमे अग्रगण्य, कविता, गमकता वादिता और वाग्मिता आदि चार प्रकारकी पाण्डित्यकलामे निपुण, बौद्ध नैयायिक, सांख्य, वैशेषिक और चार्वाक मतको माननेवाले वादिगजके लिये सिंहके समान श्री पद्मनन्दि भट्टारक हुए ॥६॥

इनके शिष्योमे अग्रगण्य और अनेक शास्त्रसमुद्रमे पारगत, एकावली, द्विकावली, कनकावलि, रत्नावलि, मुक्तावलि, सर्वतोभद्र और सिंहविक्रमादि बडी-बड़ी तपस्यारूपी वज्रसे कर्मरूपी पर्वतोको नष्ट करनेवाले, सिद्धान्त-सार, तत्त्वसार और अनेक यत्याचारके सिद्धान्तग्रन्थोको बनानेवाले, मिथ्यात्व-रूपी अन्धकारको दूर करनेके लिये सूर्य, कुशलतापूर्वक मोक्षलक्ष्मीके सुखको प्रकटित करनेवाले, जिनधर्मरूपी समुद्रको बढानेके लिये पूर्णचन्द्रमाके सदृश, यथोक्त चरित्रका आचरण और समर्थन करनेवाले दिगम्बराचार्य श्री सकल-कीर्ति भट्टारक हुए ॥७॥

इनके पट्टके भूषणतुल्य सभी कलाओमे कुशल, रत्न, सुवर्ण, रौप्य, पित्तल, तथा पाषाणकी प्रतिमा, यन्त्र और प्रासादकी प्रतिष्ठा और अर्चन-विधान जन्य कीर्ति-कर्पूरसे त्रिभुवन-विवरको पूरित करनेवाले, महातपस्वी श्रीभुवनकीर्त्ति-देव हुए ॥८॥

इनके पट्टरूपी उदयाचलके लिये सूर्यके समान, गुर्जर देशमे सर्वप्रथम सागारधर्मका प्रचार करनेवाले, अहीरदेशमे स्वीकृत एकादश प्रतिमा (क्षुल्लक पद) से पवित्र शरीरवाले, वाग्वरदेशमे अगीकृत दुर्धर महाव्रत (मुनिपद) के भारको धारण करनेवाले, कर्णाटक देशमे ऊँचे-ऊँचे चैत्यालयोंके दर्शनसे महापुण्यको उपार्जित करनेवाले, तौलव देशके महावादीश्वर विद्वज्जन-चक्रवर्तियोमे प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाले, तिलग देशके सज्जनोसे पूजित चरण-कमलवाले, द्रविड देशके सुविज्ञोसे स्तुति किये जानेवाले, महाराष्ट्र देशमे उज्ज्वल यशका विस्तार करनेवाले, सौराष्ट्र देशके उत्तम उपासकोसे महोत्सव मनाये जानेवाले, सम्यग्दर्शनसे युक्त रायदेशके निवासी प्राणिसमूहसे प्रमाणी-कृत वाक्यवाले, मेदपाट देशके अनेक मूढोको समझानेवाले, मालवदेशके भव्योके हृदय-कमलको विकसित करनेके लिये सूर्यके समान, मेवातदेशके अन्यान्य विज्ञ उपासकोको अपने आध्यात्मिक व्याख्यानोसे रजित करनेवाले, कुरुजागल देशके प्राणियोके अज्ञानरूपी रोगको हटानेके लिये सद्वैद्यके समान, तुरवदेशमे षड्दर्शन-न्याय आदिके अध्ययनसे उत्पन्न अखर्व गर्व करने वालोको दबाकर विजय प्राप्त करनेवाले, विराट् देशमे उभय मार्गको प्रदर्शित करनेवाले, नमियाड़ देशमे जिनधर्मकी अत्यन्त प्रभावना और नव हजार उपदेशकोको नियत करनेवाले, टग, राट, हडीवटी, नागर और चाल आदि अनेक जनपदोमे ज्ञानप्रचारके लिये विहार करनेवाले, श्रीमूलसघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छके दिल्ली-सिहासनके अधिपति, अपने प्रतापसे दिङ्मण्डलको आक्रमण करनेवाले, अष्ट-अगयुक्त सम्यक्त्व आदि अनेक गुणगणसे अलकृत और श्रीमत् इन्द्र भूपालोंसे पूजित चरणकमलवाले, गजान्त लक्ष्मी, ध्वजान्त पुण्य, नाट्यान्त भोग, समुद्रान्त भूमिभागके रक्षक सामन्तोके मस्तकसे घृष्ट चरणकमलवाले श्रीदेवरायराजसे पूजित पादपद्मवाले, जिनधर्मके आराधक मुदिपालराय, रामनाथराय, बोमरस-राय, कलपराय, पाण्डुराय आदि अनेक राजाओसे अर्चित चरणयुगलवाले, अनेक तीर्थयात्राओको करनेवाले, मोक्षलक्ष्मीको वशीभूत करनेवाले, रत्नत्रयसे सुशोभित शरीरवाले, व्याकरण, छन्द, अलङ्कार, साहित्य, न्याय और अध्यात्म-प्रमुख शास्त्ररूपी मानसरोवरके राजहस, शुद्ध ध्यानरूपी अमृतपानकी लालसा करनेवाले और वसुन्धराके आचार्य श्रीमद्भट्टारकवर्य्य श्री ज्ञानभूषण हुए ॥९॥

जो इनके पट्टरूपी पद्मके लिये सूर्यके समान है, विवेकपूर्वक अनेक जीर्ण अथवा नूतन जिन-प्रासादोका उद्धार करानेवाले है, अनेक प्रकारके जिन-बिम्बकी प्रतिष्ठाका उपदेश देनेवाले है, जिनकी यशोराशिका मान अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, तौलव, मालव और मेदपाट आदि देशोंके निवासियोने किया है, जिनके

चरणकमल जैन राजाओ तथा अन्य राजाओसे पूजे गये है, ऐसे अभिनव बालब्रह्मचारी श्री भट्टारक विजयकीर्तिदेव हुए ॥१०॥

जो इनके पट्टरूपी पयोनिधको उल्लसित करनेके लिये चन्द्रमाके समान हैं, प्रमाणपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, पुष्पपरीक्षा, परीक्षामुख, प्रमाणनिर्णय, न्यायमकरन्द, न्यायकुमुदचन्द्रोदय, न्यायविनिश्चयालङ्कार, श्लोकवार्तिक, राजवार्त्तिकालङ्कार, प्रमेयकमलमार्तण्ड, आप्तमीमासा, अष्टसहस्री, चिन्तामणि, मीमासाविवरण, वाचस्पतिकी तत्त्वकौमुदी आदि कर्कश न्याय, जैनेन्द्र, शाकटायन, इन्द्र, पाणिनि, कलाप, काव्यादिमे विचक्षण हैं, त्रैलोक्यसार, गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणसार, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, अध्यात्माष्टसहस्री और छन्द, अलङ्कारादि शास्त्रसमुद्रके पारगामी है, शुद्धात्माके स्वरूपके चिन्तनसे निद्राको विनष्ट करनेवाले हैं, सब देशोमे विहार करनेसे अनेक कल्याणोको पानेवाले हैं, विवेकविचार, चतुरता, गम्भीरता, धीरता, वीरता आदि गुणगणके समुद्र है, उत्कृष्टपात्र हैं, अनेक छात्रोका पालन करनेवाले है, उत्तम-उत्तम यात्राओके करनेवाले हैं, विद्वन्मण्डलीमे सुशोभित शरीरवाले हैं, गौड़वादियोके अन्धकारके लिए सूर्यके समान हैं, कलिगके वादिरूपी मेघोंके लिये वायुके समान है, कर्नाटके वादियोके प्रथम वचनका खण्डन करनेमे परम समर्थ हैं, पूर्वके वादिरूपी मातगके लिये सिहके समान हैं, तौलके वादियोकी विडम्बनाके लिये वीर हैं, गुर्जरवादिरूपी समुद्रके लिये अगस्त्यके समान है, मालववादियोंके लिये मस्तकशूल है, अनेक अभिमानियोके गर्वका नाश करनेवाले हैं, स्वसमय और परसमयके शास्त्रार्थको जाननेवाले हैं और महाव्रतको अगीकार करनेवाले हैं, ऐसे अभिनव सार्थक नामवाले श्रीशुभचन्द्राचार्य हुए ॥११॥

इनके पट्टपर जो अलौकिक बुद्धिसे युक्त हैं, सुनिश्चित और असम्भव बाधकप्रमाणादि साधनसमूहसे ससाधित, तीनो असाधारण विशेषणोसे परमात्माको सिद्ध करनेवाले है, परमागमरूपी समुद्रको बढानेके लिये चन्द्रमाके समान है, जिनके स्वच्छ चरणकमल परवादियोके समूहसे अर्चित हैं, ऐसे बालब्रह्मचारी श्री भट्टारक सुमतिकीर्तिदेव हुए ॥११॥

इनके पट्टरूपी कमलके लिये सूर्यके समान, पाच महाव्रत, पाच समिति, तीन गुप्ति और अट्ठाईस मूलगुणोंसे युक्त, अपने उपदेशरूपी अमृतसे भव्योको परिपुष्ट करनेवाले, कर्मरूपी भयङ्कर पर्वतको चूर्ण करनेमे समर्थ, परमात्मगुणोकी अतिशय परीक्षासे सर्वज्ञका स्वरूप माननेवाले और समुज्ज्वल विज्ञानके बलसे सामान्य और विशेषरूप वस्तुको समझनेवाले परमपवित्र भट्टारक श्रीगुणकीर्त्तिदेव हुए ॥१२॥

इनके पट्टरूपी कुमुदको प्रकाशित करनेके लिये चन्द्रमाके समान, अङ्ग, वङ्ग, तैलङ्ग, कलिङ्ग, वेट, भोट, लाट, कुंकल, कर्णाट, मरहट, चीन, चोल्ह, हव्व, खुरखाण, आरव, तौलात, मेदपाट, माळव, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, गुर्जर, वाग्वर, रायदेश, नागर, चाल, मरुस्थल, स्फुरदगि, कोशल, मगध, पल्लव, कुरुजांगल, काञ्ची, लावुम, पुद्रोट, काशी, कलिङ्ग, सौराष्ट्र, काश्मीर, द्राविड, गौड, कामरू, मलत्ताण, मुगी, पठाण, वुगलाण, हडावट्ट, सपादलक्ष, सिन्धु, सिन्धुल, कुन्तल, केरल, मगल, जालोर, गंगल, सुन्तल, कुरल, जांगल, पंचालन, नट्ट, घट्ट खेट्ट, कोरट्ट, वेणुतट, कलिकोट, मरहट्ट, कोरट्ट, चैरट्ट, खेरट्ट, स्मरतट्ट, महाराष्ट्र, विराट, किराट, नर्मद, सिन्धुतट, गंगेतट, पल्लव, मल्लवार, कवोट, गौडवाड़, तिगल, किगल, मलयम, मरुमेखल, नेपाल, हैवतरुल, सखल, करल, वरल, मोरल, श्रीमाल, नेखल, पिच्छल, नारल, डाहल, ताल, तमाल, सोमाल, गोमाल, रोमाल, तोमल, केमाल, हेमाल, देहल, सेहल, टमाल, कमाल, किरात, मेवात, चित्रकूट, हेमकूट, चुरड, मुरड, उद्रयाण, आट्रमाट्र, पुलिन्द्र और सुराट्र आदि देशोंमे इन्दु और कुवलयके समान स्वच्छ यशोराशिको उपार्जित करनेवाले, सभी शास्त्ररूपी समुद्रमे पारगत, अपनी व्याख्या-सुधा-धारासे सभी भव्यजनोको पुष्ट करने वाले और सभी तार्किकोंके शिरोमणि दिल्ली-सिंहासनके अधीश्वर मार्यक नामवाले अभिनव भट्टारक श्रीवादिभूषणदेव हुए ॥१३॥

श्रुतमुनि-पट्टावलि[1]

(शक स० १३५५ ई० सन् १४३३)

(प्रथममुख)

श्री जयत्यजय्यमाहात्म्य विशासितकुशासन ।
शासन जैनमुद्भासि मुक्तिलक्ष्म्यैकशासन ॥१॥
अपरिमितसुखमनल्पावगममयं प्रवलवलहृतातङ्क(म्) ।
निखिलावलोकविभव प्रसरतु हृदये पर ज्योति ॥२॥

उद्दीप्ताखिलरत्नमुद्धृतजड नानानयान्तर्गृह
स स्यात्कारसुधाभिलिप्तिजनिभृत्कारुण्यकूपोच्छित ।
आरोप्य श्रुतयानपात्रममृतद्वीप नयन्त परा
नेते तीर्थकृतो मदीयहृदये मध्ये भवाब्ध्यासता ॥३॥

१ जैन शिलालेखसग्रह, प्रथमभाग, अभिलेख-संख्या १०८, पृष्ठसख्या १९५-२०७ ।

तत्राभवत् त्रिभुवनप्रभुरिद्धवृद्धि
श्रीवर्द्धमानमुनिरन्तिम-त्तीर्थनाथ ।
यद्दे हदीप्तिरपि सन्निहिताखिलाना
पूर्व्वोत्तराश्रितभवान् विशदीचकार ॥४॥
तस्याभव-प्परमचिज्जगदीश्वरस्य
यो यौव्वराज्यपदसश्रयत प्रभूत ।
श्रीगौतमो गणपतिर्भगवान्वरिष्ठ
श्रेष्ठैरनुष्ठितनुतिम्मु निभिस्स जीयात् ॥५॥
तदन्वये शुद्धिमति प्रतीते समग्रशीलामलरत्नजाले ।
अभूद्यतीन्द्रो भुवि भद्रवाहु पय-पयोधाविव पूर्णचन्द्र ॥६॥
भद्रवाहुरग्रिम समग्रवुद्धिसम्पदा
शुद्धसिद्धशासन सुशब्द-बन्ध-सुन्दर ।
इद्धवृत्तसिद्धिरत्र बद्धकर्म्मभित्तपो-
वृद्धिवर्द्धितप्रकीर्त्तिरुद्दधे महर्द्धिक ॥७॥
यो भद्रवाहु श्रुतकेवलीना मुनीश्वराणामिह पश्चिमोऽपि ।
अपश्चिमोऽभूद्विदुषा विनेता सर्व्वश्रुतार्थप्रतिपादनेन ॥८॥
तदीय-शिष्योऽजनि चन्द्रगुप्त समग्रशीलानतदेववृद्ध ।
विवेश यत्तीव्रतप प्रभाव-प्रभूत-कीर्तिर्भुवनान्तराणि ॥९॥
यदीयवशाकरत प्रसिद्धादभूददोषा यतिरत्नमाला ।
बभौ यदन्तर्म्मणिवन्मुनीन्द्रस्स कुण्डकुन्दोदितचण्ड-दण्ड ॥१०॥
अभूदुमास्वातिमुनि पवित्रे वशे तदीये सकलार्थवेदी ।
सूत्रीकृत येन जिनप्रणीत शास्त्रार्थजात मुनिपुङ्गवेन ॥११॥
स प्राणिसंरक्षणसावधानो बभार योगी किल गृद्धपक्षान् ।
तदाप्रभृत्येव वुधा यमाहुराचार्य्यशब्दोत्तरगृद्धपिच्छ ॥१२॥
तस्मादभूद्योगिकुलप्रदीपो वलाकपिच्छ स तपोमहर्द्धि ।
यदङ्गसस्पर्शनमात्रतोऽपि वायुर्व्विषादीनमृतीचकार ॥१३॥
समन्तभद्रोऽजनि भद्रमूर्त्तिस्तत प्रणेता जिनशासनस्य ।
यदीयवाग्वज्रकठोरपातश्चूर्णीचकार प्रतिवादिशैलान् ॥१४॥
श्रीपूज्यपादो धृतधर्म्मराज्यस्ततो सुराधीश्वर-पूज्यपाद ।
यदीयवैदुष्यगुणानिदानी वदन्ति शास्त्राणि तदुद्धृतानि ॥१५॥
धृतविश्ववुद्धिरयमत्र योगिभि
कृतकृत्यभावमनुविभ्रदुच्चकर्कै ।

जिनवद्बभूव यदनङ्गचापहृत्
स जिनेन्द्रबुद्धिरिति साधु वर्ण्णित ॥१६॥
श्रीपूज्यपादमुनिरप्रतिमौषधर्द्धि-
र्ज्जीयाद्विदेहजिनदर्शनपूतगात्र ।
यत्पादधौतजलसंस्पर्शप्रभावा-
त्कालायस किल तदा कनकीचकार ॥१७॥
तत पर शास्त्रविदां मुनीना-
मग्रेसरोऽभूदकलङ्कसूरि ।
मिथ्यान्धकारस्थगिताखिलार्था
प्रकाशिता यस्य वचोमयूखै ॥१८॥
तस्मिन्गते स्वर्ग्गभुव महर्षौ दिव पतीन्नर्त्तुमिव प्रकृष्टान् ।
तदन्वयोद्भूतमुनीश्वराणा बभूवुरित्थ भुवि सङ्भेदा ॥१९॥
स योगिसङ्घश्चतुर प्रभेदानासाद्य भूयानविरुद्धवृत्तान्
बभावय श्रीभगवान्जिनेन्द्रश्चतुर्म्मुखानीव मिथरतमानि ॥२०॥
देव-नन्दि-सिंह-सेन-सङ्घभेदवर्त्तिना
देशभेदत प्रबोधभाजि देवयोगिना ।
वृत्ततस्तमस्ततोऽविरुद्धधर्म्मसेविना
मध्यत प्रसिद्ध एष नन्दिसङ्घ इत्यभूत् ॥२१॥
नन्दिसङ्घे सदेशीयगणे गच्छे च पुस्तके
इंगुलेशवलिर्ज्जीयान्मङ्गलीकृतभूतल. ॥२२॥
तत्र सर्व्वशरीरिरक्षाकृतमतिर्व्विजितेन्द्रिय-
स्सिद्धशासनवर्द्धनप्रतिलब्ध-कीर्त्तिकलापक ।
विश्रुत-श्रुतकीर्त्ति-भट्टारकयतिरसमजायत
प्रस्फुरद्वचनामृतांशुविनाशिताखिलहृत्तमा ॥२३॥
कृत्वा विनेयान्कृतकृत्यवृत्तीन्निधाय तेषु श्रुतभारमुर्व्यं ।
स्वदेहभारं च भुवि प्रशान्तस्समाधिभेदेन दिव स भेजे ॥२४॥

(द्वितीयमुख)

गते गगनवाससि त्रिदिवमत्र यस्योज्झिता
न वृत्तगुणसहतिर्व्वसति केवलं तद्यश ।
अमन्दमदमन्मथप्रणमदुग्रचापोज्ज्वल-
त्प्रतापहतिकृत्तपञ्चरणभेदलब्ध भुवि ॥२५॥

श्रीचारुकीर्त्तिमुनिरप्रतिमप्रभाव-
स्तरमादभूत्निजयशोधवलीकृताश ।
यस्याभवत्तपसि निष्ठुरतोपशान्ति-
श्चित्ते गुणे च गुरुता कृशता शरीरे ॥२६॥
यस्तपोवल्लिभिर्व्वेल्लितावद्रुमो
वर्त्तयामास सारत्रय भूतले ।
युक्तिशास्त्रादिक च प्रकृष्टाशय-
श्शब्दविद्याम्बुधेर्वृद्धिकृच्चन्द्रमा ॥२७॥
यस्य योगीशिन पादयोस्सर्व्वदा
सगिनीमिन्दिरा पश्यतश्शार्ङ्गिण ।
चिन्तयेवाभवत्कृष्णता वर्ष्मण
सान्यया नीलता कि भवेत्तत्तनो ॥२८॥
येषा शरीराश्रयतोऽपि वातो रुज प्रशान्ति विततान तेषा ।
वल्लालराजोत्थितरोगशान्तिरासीत्किलैर्तात्किमु भेषजेन ॥२९॥
मुनिर्म्मनीषा-बलतो विचारित्त समाधिभेद समवाप्य सत्तम. ।
विहाय देह विविधापदा विवेश दिव्यं वपुरिद्धवैभव ॥३०॥
अस्तमायाति तस्मिन्कृतिनि यर्य्य-
म्णि नार्भविष्यत्तदा पण्डितयति-
ररोम वस्तु मिथ्यातमस्तोमपिहित
सर्व्वमुत्तमैरित्यय वक्तृभिरुपाधोपि ॥३१॥
विबुधजनपालक कुबुध-मत-हारक ।
विजितसकलेन्द्रिय भजत तमल बुधा ॥३२॥
धवल-सरोवर-नगरजिनास्पदमसदृशमाकृततदुरुतपोमह. ॥३३॥
यत्पादद्वयमेव भूपतितत्तिश्चक्रे शिरोभूषण
यद्वाक्यामृतमेव कोविदकुल पीत्वा जिजीवानिश ।
यत्कीर्त्या विमल बभूव भुवन रत्नाकरेणावृत्त
यद्विद्या विशदीचकार भुवने शास्त्रार्त्थजात महात् ॥३४॥
कृत्वा तपस्तीव्रमनल्पमेधास्सम्पाद्य पुण्यान्यनुपप्लुतानि ।
तेषा फलस्यानुभवाय दत्तचेता इवाप त्रिदिव स योगी ॥३५॥
तस्मिन्जातो भूम्नि सिद्धान्तयोगी
प्रोद्यद्वाचा वर्द्धयन् सिद्धशास्त्र ।

शुद्धे व्योम्नि द्वादशात्मा करोघै-
र्य्यद्वत्पद्मव्यूहमुन्निद्रयन्स्वै: ॥३६॥

दुर्व्वादिमुक्ता शास्त्रजात विवेको वाचानेकान्तार्त्थसम्भूतया य ।
इन्द्रोऽगन्या मेघजालीत्यया भूवृद्धा भूभृत्सहर्त्ति वा विभेद ॥३७॥

यद्वत्पदाम्बुजनतावनिपालमौलि-
रत्नांशवोऽनिशममु विदधु सराग ।
तदन्न वस्तु न वधूर्न्न च वस्त्रजात
नो यौव्वन न च बल न च भाग्यमिद्ध ॥३८॥

प्रविश्य शास्त्राम्बुधिमेष धीरो जग्राह पूर्व्वं सकलार्त्थरत्न ।
परेऽसमर्त्थास्तदनुप्रवेशादेकैकमेवात्र न सर्व्वमापु ॥३९॥

सम्पाद्य शिष्यान्स मुनि प्रसिद्धा-
नध्यापयामास कुशाग्रबुद्धीन् ।
जगत्पवित्रीकरणाय धर्म्मा-
प्रवर्त्तनायाखिलसविदे च ॥४०॥

कृत्वा भक्त्या ते गुरोरार्वशास्त्रं
नीत्वा वत्स कामधेनु पयो वा ।
स्वीकृत्योच्चैस्तर्त्पिवन्तोऽतिपुष्टा
शक्ति स्वेषा ख्यापयामासुरिद्धा ॥४१॥

तदीयशिष्येषु विदावरेषु गुणैरनेकै श्रुतमुन्यभिख्य ।
रराज शैलेषु समुन्नतेषु स रत्नकूटैरिव मन्दराद्रि ४२॥
कुलेन शीलेन गुणेन मत्या शास्त्रेण रूपेण च योग्य एष ।
विचार्य्य त सूरिपद स नीत्वा कृतक्रिय स्व गणयाञ्चकार ॥४३॥
अथैकदा चिन्तयदित्यनेना स्थिर्ति समालोक्य निजायुषोऽल्प ।
समर्प्य चास्मिन् स्वगण समर्त्थे तपश्चरिष्यामि समाधियोग ॥४४॥
विचार्य्य चैव हृदये गणाग्रणीर्न्निवेदयामास विनेयबान्धव ।
मुनि समाहूय गणाग्रवर्त्तिन स्वपुत्रमित्यं श्रुतवृत्तशालिन ॥४५॥

(तृतीयमुख)

मदनन्वयादेप समागतोऽय गणो गुणाना पदमस्य रक्षा ।
त्वयाग मद्वत्क्रियतामितीष्ट समर्प्पयामास गणी गण स्व ॥४६॥
गुरुविरहसमुद्यद्दु खदून तदीय
मुख गुरुवचोभिरस प्रसन्नीचकार ।

सपदि विमलिताब्द-श्लिष्ट-प्रासु-प्रतान
किमधिवसति योषिन्मन्दफूत्कारवाते ॥४७॥
कृतिततिहितवृत्तररात्त्वगुप्तिप्रवृत्तो
जितकुमतविशेषश् शोषिताशेषदोष ।
जितरतिपति-सत्वस्तत्त्व-विद्या-प्रभुत्व-
रसुकृतफल-विधेय सोऽभर्मद्दिव्यभूय ॥४८॥

गतेऽत्र तत्सूरिपदाश्रयोऽयं
मुनीश्वररराड्धमवर्द्धयत्तराम् ।
गुणैश्च शास्त्रैश्चरितैरनिन्दितै
प्रचिन्तयन्तद्गुरुपादपङ्कजम् ॥४९॥

प्रकृत्य कृत्य कृतसङ्घरक्षो विहाय चाकृत्यमनल्पबुद्धि ।
प्रवर्द्धयन् धर्म्ममनिन्दित तद्गुरूपदेशान् सफलीचकार ॥५०॥

अखण्डयदय मुनिर्व्विमलवाग्मिरत्युद्धान्
अमन्द-मद-सञ्चरत्कुमत-वादिकोलाहलान् ।
भ्रमन्नमरभूमिभृद् भ्रमितवारिविप्रोज्ज्वलत्
तरङ्ग-ततिविभ्रम-ग्रहण-चातुरीभिर्म्भुवि ॥५१॥

का त्व कामिनि कथ्यता श्रुतमुने कीर्त्ति किमागम्यते
ब्रह्मन् मत्प्रियसन्निभो भुवि बुधस्सम्मृग्यते सर्व्वत्त ।
नेन्द्र कि स च गोत्रभिद् धनपति कि नास्त्यसौ किन्नर
शेष कुत्र गतस्स च द्विरसनो रुद्र पशूना पति ॥५२॥

वाग्देवताहृदय-रञ्जन-मण्डनानि
मन्दार-पुष्प-मकरन्दरसोपमानि ।
आनन्दिताखिलजनान्यमृत वमन्ति
कर्णेषु यस्य वचनानि कवीश्वराणा ॥५३॥

समन्तभद्रोऽप्यसमन्तभद्र
श्री-पूज्यपादोऽपि न पूज्यपाद ।
मयूरपिञ्छोऽप्यमयूरपिञ्छ-
श्चित्र विरुद्धोऽप्यविरुद्ध एष ॥५४॥

एव जिनेन्द्रोदितधर्म्ममुच्चै प्रभावयन्त मुनि-वश-दीपिन ।
अदृश्यवृत्त्या कलिना प्रयुक्तो वधाय रोगस्तमवाप दूतवत् ॥५५॥

यथा खल प्राप्य महानुभावं तमेय पश्चात्कवलीकरोति ।
तथा शनैररोऽयमनुप्रविश्य वपुर्व्वबाधे प्रतिवद्धवीर्य्यं ॥५६॥

अङ्गान्यभूवन् सकृशानि यस्य न च व्रतान्यद्भुत-वृत्त-भाज ।
प्रकम्पमापद्वपुरिद्धरोगान्न चित्तमावस्यकमत्यपूर्व्वं ॥५७॥
स मोक्ष-मार्ग्गो रुचिमेप धीरो मुद च धर्म्मो हृदये प्रशान्ति ।
समादधे तद्विपरीतकारिण्यस्मिन् प्रसर्प्पत्यपिदेहमुप्पै ॥५८॥
अङ्गेपु तस्मिन् प्रविजृम्भमाणे

निश्चित्य योगी तदसाध्यरूपता ।

ततस्समागत्य निजाग्रजस्य

प्रणम्य पादाववदत् कृताञ्जलि ॥५९॥

देव पण्डितेन्द्र योगिराज धर्म्मवत्सल

त्वत्पद-प्रसादतररामस्तमर्जित मया ।

सद्यश श्रुत व्रत तपश्च पुण्यमक्षय

किं ममात्र वर्त्तित-क्रियस्य कल्प-काङ्क्षिण ॥६०॥

देहतो विनात्र कष्टमस्ति किं जगत्त्रये

तस्य रोग-पीडितस्य वाच्यता न शब्दत ।

देय एव योगतो वपु-र्व्विसर्ज्जन-क्रम-

स्साधु-वर्ग्ग-सर्व्व-कृत्य-वेदिना विदांवर ॥६१॥

विज्ञाप्य कार्य्यं मुनिरित्यमर्य्यं

मुहुर्मुहुर्व्वारयतो गणीशात् ।

स्वीकृत्य सल्लेखनमात्मनीन

समाहितो भावयाति स्म भाव्य ॥६२॥

उद्यद्-विपत-तिमि-तिमिङ्गिल-नक्र-चक्र

प्रोतुङ्ग-मृत्यमृति-भीमतरङ्ग-भाजि ।

तीव्राजवञ्जव-पयोनिधि-मध्य-भागे

क्लिश्नात्यहर्न्निशमय पतितस्स जन्तु ॥६३॥

इद खलु यदङ्गक गगन-वाससा केवल

न हेयमसुखास्पद निखिल-देह-भाजामपि ।

अतोऽस्य मुनय पर विगमनाय वद्धाशया

यतन्त इह सन्तत कठिन-काय-तापादिभि ॥६४॥

अथ विपयसञ्चयो विपमशेपदोषास्पद

स्पृगज्जनिजुषामहो वहुमवेषुसम्मोहकृत् ।

अत. खलु विवेकिनस्तमपहाय सर्व्वंसहा
विशन्ति पदमक्षय विविधकर्म्म-हान्युदितं ॥६५॥

(चतुर्थमुख)

उद्दीप्त-दु ख-शिखि-सगतिमङ्गयष्टि
तीव्राजवञ्जव-तपातप-ताप-तप्ता ।
स्रक्-चन्दनादिविषयामिष-तैल-सिक्तां
को वावलम्ब्य भुवि सञ्चरति प्रवुद्ध ॥६६॥

स्रष्टु स्त्रीणामनेसा सृष्टित कि
गात्रस्याधोभूमिसृष्ट्या च कि स्यात् ।
पुत्रादीनां शत्रु-कार्य्यं किमर्थं
सृष्टेरित्थं व्यर्थता धातुरासीत् ॥६७॥

इद हि वाल्य वहु-दु ख-बीज-
मिय वय.श्रीर्घन-राग-दाहा ।
स वृद्धभावोऽमर्षास्त्रशाला
दशेयमङ्गस्य विपत्फला हि ॥६८॥

लब्धं मया प्राक्तन-जन्मपुण्यात्
सुजन्म सद्गात्रमपूर्व्ववुद्धि ।
सदाश्रय श्रीजिन-धर्म्मसेवा
ततो विना मा च पर कृती क ॥६९॥

इत्य विभाव्य सकल भुवन-स्वरूप
योगी विनश्वरमिति प्रशम दधान' ।
अर्द्धावमीलितदृगस्खलितान्तरग
पश्यन् स्वरूपमिति सोऽवहित समाधौ ॥७०॥

हृदय-कमल-मध्ये सैद्धमाधाय रूपं
प्रसरदमृतकल्पैर्म्मूलमन्त्रै प्रसिञ्चन् ।
मुनि-परिषदुदीर्ण-स्तोत्र-घोषैस्सहैव
श्रुतमुनिरयमङ्गं स्व विहाय प्रशान्त ॥७१॥

अगमदमृतकल्प कल्पमल्पीकृतेना
विगलितपरिमोहस्तत्र भोगाङ्गकेषु ।
विनमदमर-कान्तानन्द-वाष्पाम्वु-धारा-
पतन-हृत-रजोऽन्तर्द्धाम-सोपानरम्य ॥७२॥

यतो याते तस्मिन् जगदजनि शून्य जनिभृता
मनो-मोह-ध्वान्तं गत-वलमपूर्वप्रतिहत
व्यदीप्युद्यच्छोको नयन-जल-मुष्ण विरचयन्
वियोग किं कुर्य्यादिह न महता दुस्सहतर ॥७३॥
पादा यस्य महामुनेरपि न कैर्भूभृच्छिरोभिर्धृता
वृत्त सन्न विदाम्वरस्य हृदय जग्राह कस्यामल ।
सोऽय श्रीमुनि-भानुमान् विधिवशादस्त प्रयातो महान्
यूय तद्विधिमेव हन्त तपसा हन्तु यतध्व बुधा ॥७४॥

यत्र प्रयान्ति परलोकमनिन्द्यवृत्ता-
स्स्थानस्य तस्य परिपूजनमेव तेषा ।
इज्या भवेदिति कृताकृतपुण्यरागे
स्थेयादित्य श्रुतमुनेरसुचिर निषद्या ॥७५॥
इषु-शर-शिखि-विधु-मित-शक-
परिधावि-शरद्द्वितीयगाषाढे
सित-नवमि-विधु-दिनोदयजुषि
सविशाखे प्रतिष्ठितेयमिह ॥७६॥
विलीन-सकल-क्रिय विगत-रोधमत्यूर्ज्जित
विलङ्घित-तमस्तुला-विरहितं विमुक्ताशयं ।
अवाङ्-मनस-गोचर विजित-लोक-शक्त्यग्रिम
मदीय-हृदयेऽनिश वसतु धाम दिव्यं महत् ॥७७॥
प्रबन्ध-ध्वनि-सम्बन्धात्सद्रागोत्पादन-क्षमा ।
मगराज-कवेर्व्वाणी वाणीवीणायतेतरा ॥७८॥

भाषानुवाद

१ कुशासनका विध्वस करनेवाला मुक्तिलक्ष्मीका एक शासन और अजेय है माहात्म्य जिसका, ऐसा समुज्ज्वल जैन शासन जयशाली होवे ।

२. सब सुखोका मूल और सब प्रकारके आतंको (मनोवेदनाओ)को दूर करनेवाली प्रकाशमय ज्योति हमारे हृदयमे फैले ।

३ रत्नत्रयके प्रकाश करनेवाले, मूर्खता हटानेवाले, विविध नयके विवेचक और स्याद्वाद-सुधासे वितृप्त ये तीर्थङ्कर हमारे हृदयमे विराजमान होवें ।

४ त्रिभुवनमे विख्यात अन्तिम तीर्थनाथ श्री वर्धमानस्वामी हुए । इनकी देहकी कान्तिने सभी सृष्टिको प्रकाशित कर दिया ।

५. इनके रहते-रहते मुनियोसे वदित श्रेष्ठ सघाधिपति श्रीमान् गौतम मुनि हुए।

६-८ इन्हीके समुज्ज्वल वशमे समुद्रसे चन्द्रमाके समान यतिराज श्री भद्रबाहुस्वामी हुए। इनकी कीर्त्ति तथा सिद्धशासन भूमण्डलमे व्याप्त थे। यद्यपि भद्रबाहुस्वामी श्रुतकेवली, मुनीश्वरो(श्रुतकेवलियो)के अन्तमे हुए, तो भी ये सभी पण्डितोके नायक तथा श्रुत्यर्थ प्रतिपादन करनेसे सभी विद्वानोके पूर्ववर्त्ती थे।

९-१० इन्हीके शिष्य शीलवान् श्रीमान् चन्द्रगुप्त मुनि हुए। इनकी तीव्र तपस्या उस समय भूमण्डलमे व्याप्त हो रही थी। इन्हीके वशमे बहुतसे यतिवर हुए, जिनमे प्रखर तपस्या करनेवाले, मुनीन्द्र कुन्दकुन्दस्वामी हुए।

११-१३ तत्पश्चात् सभी अर्थको जाननेवाले उमास्वातिनामके मुनि इस पवित्र आम्नायमे हुए, जिन्होने श्री जिनेन्द्र-प्रणीत शास्त्रको सूत्ररूपमे रूपान्तर किया। सभी प्राणियोके सरक्षणमे तत्पर योगी उमास्वाति मुनिने गृध्रपक्षको धारण किया। तभीसे विद्वद्गण उन्हे गृध्रपिच्छाचार्य कहने लगे। इन योगी महाराजकी परम्परामे प्रदीपरूप महर्द्धिशाली तपस्वी बलाकपिच्छ हुए। इनके शरीरके ससर्गसे विषमयी हवा भी उस समय अमृत (निर्विष) हो जाती थी।

१४ इसके बाद जिनशासनके प्रणेता भद्रमूर्त्ति श्रीमान् समन्तभद्रस्वामी हुए। इनके वाग्वज्रके कठोर पातने वादिरूपी पर्वतोको चूर्ण-चूर्ण कर दिया था।

१५-१७. इनकी परम्परामे श्री धर्मराज पूज्यपाद स्वामी हुए, जिनके बनाए हुए शास्त्रोमे जैनधर्मका बहुत ही महत्त्व मालूम होता है। इन्होने निरन्तर कृतकृत्य होकर ससार-हितैषिणी बुद्धिको धारण किया। अनगके ताप हरनेवाले साक्षात् जिनभगवान्के जैसे विदित होनेसे लोगोने इनका नाम 'जिनेन्द्र' रखा। औषधशास्त्रमे परम प्रवीण, विदेह-जिनेन्द्रदर्शनसे पवित्र होनेवाले श्रीमान् पूज्यपाद मुनि जयशाली रहे। इनके चरणकमलके धौत जलके ससर्गसे कृष्ण-लोहा भी सुवर्ण हो जाता था।

१८-१९ इनके बाद शास्त्रवेत्ता मुनियोमे अग्रेसर अकलकसूरि हुए। इन्हीके वाङ्मयरूपी किरणोसे मिथ्याधकारसे आच्छादित अर्थ ससारमे प्रकाशित हुआ। इनके स्वर्ग जानेपर इनकी परम्पराके मुनिसघोमे कई भेद (फूट) हुए।

२० इनके बाद श्रीमान् योगी जिनेन्द्र भगवान् अविरुद्ध वृत्तिवाले चार सघोको पाकर परस्पर समान चार मुखके ऐसे उन्हे समझकर शोभने लगे।

२१ क्रमश: देव, नन्दि, सिंह और सेन ये चार संघ निर्मित हुए, जिनमे नन्दिसंघ बड़ा प्रसिद्ध था।

२२ नन्दिसंघमे देशीयगण, पुस्तकगच्छके स्वामी इङ्गुलेश्वर, जिन्होंने सारे भूतलको मंगलमय कर दिया है, विजयशाली होवे।

२३–२५ उसी नन्दिसंघमे सम्पूर्ण प्राणियोकी रक्षा करनेवाले, इन्द्रिय निग्रही, स्याद्वादमतके प्रचार करनेसे कीर्त्तिकलापको पानेवाले, प्रसिद्ध यतिवर श्रुतकीर्त्ति भट्टारक हुए, जिनकी प्रभामयी वचनामृतकिरणोसे सारा अज्ञानान्धकार विनष्ट हो गया। विनयी सज्जनोको कृतकृत्य बनाकर तथा उनपर श्रुतशास्त्रका भार समर्पित कर और पृथ्वीपर अपनी देहका भार रखकर समाधिपूर्वक शान्त होकर उन्होने स्वर्गधामको अलङ्कृत किया।

२६ उन महात्मा दिगम्बरके स्वर्ग चले जानेपर इस भूतलपर उनकी कीर्त्ति स्थिररूपसे रह गयी।

२७ इनके शिष्य अप्रतिम प्रतापशाली श्रीचारुकीर्त्ति मुनि हुए। इन्होंने अपने सुयशसे दिशाओको भी समुज्ज्वल कर दिया। इनकी तपस्यामे निष्ठुरता, चित्तमें शान्ति, गुणमे गुरुता तथा शरीरमे कृशताकी मात्रा दिन-दिन बढने लगी।

२८ जिनके तपरूपी वल्लीसे वलयित होकर वृक्षरूपी संसारमे रत्नत्रयका प्रचार होने लगा। इनकी युक्ति, शास्त्रादि तथा प्रकृष्टागम विद्याम्बुधिके बढानेके लिए चन्द्रमाके तुल्य थे।

२९ जिस योगिसिंह महात्माके चरणकमलोकी सदा सेवा करनेवाली लक्ष्मीको देखकर (अहो मुझे यह कैसे मिले) ईर्ष्यासे विष्णुका सारा शरीर काला हो गया, नही तो उनके काले होनेकी दूसरी वजह नही थी।

३०. जिनके शरीरके सम्पर्कमात्रसे ही सभी रोगोकी शान्ति हो जाती थी। लोग कहा करते थे कि बल्लालराजकी कृपासे रोग छूटा है, दवासे क्या?

३१ मुनिने समाधिपूर्वक अनेक आपद्का स्थान इस विनश्वर शरीरको छोड़कर दिव्य शरीरको पाया।

३२ इनके स्वर्ग चले जानेपर उन जैसा कोई विद्वान् नही हुआ। उस समय यह संसार अज्ञानान्धकारसे आवृत्त था। ऐसा उत्तम वक्ताओने कहा।

३३. इसलिए कुमतान्धकारके विनाशक अपनी सभी इन्द्रियोको जीतनेवाले

और विद्वद्गणोंके रक्षक उन महात्माको हे विद्वद्वर्य्य ! भजो।

३४ जिनके चरणकमलको राजाओने शिरोभूषण बनाया, जिनके वचनामृतका पानकर पण्डितगण अहर्निश जीते थे, जिनकी कीर्त्तिरूपी समुद्रसे परिवेष्टित होकर यह पृथ्वीतल धवलित हुआ और जिनकी विद्याने भूतलमे शास्त्रोको विशद् बना दिया।

३५ वे महात्मा योगिराज एक चित्त होकर बडी कठिन तपस्याको करके तथा बहुत पुण्य इकट्ठा करके उन्ही पुण्योको उपभोग करनेके लिए स्वर्गको चले गये।

३६ उनके स्वर्ग चले जानेपर अपनी शास्त्रमयी वाणीसे सिद्धशास्त्रोको शृङ्खलित करते हुए, शुद्धाकाशमे वर्त्तमान, शास्त्ररूपी पद्मोको विकसित करते हुए सूर्य्यकेसे सिद्धातयोगीने सज्जनोके मनको प्रफुल्लित किया।

३७ इन्द्रका वज्र जिस प्रकार पर्वतोका भेदन करता है उसी प्रकार इन्होने एकान्त अर्थसे युक्त दुर्वादियोकी उक्तिको खण्ड-खण्ड कर दिया।

३८ उनके चरणोपर गिरे हुए राजाओकी मुकुट-मणिकी धूलियोने जिस प्रकारसे इनको रागवान् बनाया था, उस तरह सासारिक वस्तु, स्त्री, वस्त्र तथा यौवनादि उनको रागी नही कर सके।

३९ ये महात्मा शास्त्ररूपी समुद्रमे प्रविष्ट होकर अनेक अर्थरूप रत्न निकाल लाये और उन रत्नोको अपने शिष्योको वितरित कर दिया।

४०. इन्होने ससारको पवित्र करनेके लिए तथा धर्म्मका प्रचार होनेके लिए अपने शिष्योको कुशाग्रबुद्धि बनाकर पढाया।

४१. जिस प्रकार बछडा गायसे दूध ग्रहण करता है, उसी प्रकार गुरुमे असीम भक्तिकर उन सबोने उनसे सब शास्त्रोको ग्रहण कर ससारमे अपनी खूब कीर्त्ति फैलायी।

४२ जिस प्रकार समुन्नत पर्वतोमे रत्नकूटोसे मन्दराचल पर्वत शोभता है, उसी प्रकार उनके सकलशास्त्रवेत्ता शिष्योमे अनेक गुणो द्वारा श्रुतमुनि शोभाको प्राप्त हुए।

४३ कुल, शील, गुण, मति, शास्त्र और रूप इन सबोमे इन्हे योग्य समझकर सूरिपद दिया।

४४ इसके बाद सासारिक स्थितिको सोचते हुए इन्होने अपनी आयु थोडी जानकर यह विचारा कि अगर मेरा गण समर्थ हो जावे, तो मै समाधियोग्य तपस्या करूँगा।

४५ मनमें ऐसा सोचकर श्रुत-वृत्तशाली अपने गणाग्रवर्ती पुत्रको बुलाकर कहा कि

४६ हमारी वंशपरम्परासे ये गण चले आते हैं, इसलिए तुम भी इनकी रक्षा करो, ऐसा कहकर गणीने अपने गणको उनके सुपुर्द किया।

४७ असह्य विरहजन्य दुःखसे ये बहुत दुःखी हुए, किन्तु इनके गुरुने कोमल वचनोंसे इनको प्रसन्न किया।

४८ अच्छे-अच्छे सुकृत कार्यको करनेवाले, कुमति तथा दोषको समूल नष्ट करनेवाले और कामदेवको तत्त्वविद्याको जीतनेवाले ये दिव्य स्वर्गधाम-को गये।

४९–५० उनके स्वर्गधाम चले जानेपर सूरिपदको धारण करनेवाले ये अपने संघकी शनैः शनैः वृद्धि करने लगे। किन्तु गुणोंको, शास्त्रोंको तथा उनके अनिन्द्य चरित्रोंको वारम्बार स्मरण कर सदा अपने गुरुके चरणकमलकी ही चिन्ता करते थे।

५१. कृत्यको करके, अपने संघकी रक्षा करके तथा अपने अनिन्दित धर्म्मको उत्तरोत्तर बढ़ाते हुए इन्होंने अपने गुरुके उपदेशको सफल किया।

५२ इन्हीं मुनिने अपनी विमल वाक्धारासे उद्धत वादियोंको शमन करते हुए संसारमें अपने धर्म्मका प्रचार किया।

५३. हे कामिनी ! तू कौन है ? क्या श्रुतमुनिकी कीर्त्ति तू इधर आ रही है ? क्या इन्द्र है, नहीं, यह तो गोत्रभिद् है। कुबेर तो नहीं है ? किन्तु यह किन्नर नहीं मालूम पड़ता है। ब्रह्मन् ! मैं अपने ऐसे किसी विद्वान् मुनिको चारों तरफ खोज रहा हूँ।

५४. सरस्वती देवीके हृदयको रञ्जित करनेवाली, मन्दार तथा मकरन्दके रसके सदृश और सभी संसारको आनन्दित करनेवाली कवीश्वरोंकी सुमधुर वाणी सबके कानोंमें अमृतधाराको भरती है।

५५ समन्तभद्र होते हुए भी असमन्तभद्र, श्रीपूज्यपाद होते हुए भी अपूज्य-पाद और मयूरपिच्छ धारण करते हुए भी मयूरपिच्छको नहीं धारण करनेवाले हुए। आश्चर्य है कि इनमें विरुद्ध अविरुद्ध दोनों प्रवृत्तियाँ थीं।

५६ इस प्रकार जिनेन्द्रद्वारा कहे गये धर्म्मकी बड़ी वृद्धि हुई, किन्तु पीछेसे गुप्त रीतिसे कलिकालसे प्रयुक्त जो रोग (पंचम कालका प्रभाव) है वह धर्म्ममें बाधा पहुँचाने लगा।

५७ जैसे दुष्ट सज्जनको अपनी सेवासे सुखकर पीछे सर्वग्रास करनेको

तैयार हो जाते हैं उसी प्रकार पञ्चम कालका प्रभाव मुनियोंके प्रभावको रोककर उनके धर्म्म-कार्य्यमे बाधा पहुँचाने लगा।

५८-५९. जिनके अङ्गोंके खिन्न होने पर व्रतादिक नियम ज्यों-के-त्यों बने रहे, उस महात्माने मोक्षमे रुचि, धर्म्ममें हर्ष और हृदयमे शान्तिको अवधारित किया।

६० अनन्तर महात्माने अपने शरीरमे रोगको बढते हुए देखकर और उसको असाध्य समझकर अपने ज्येष्ठ भ्राताके निकट आकर प्रणाम करके कहा।

६१-६२ हे पण्डितप्रवर योगिराज! आपकी कृपासे मैंने सभी दोषोको प्रक्षालित किया, यशको विस्तृत किया और बहुतसे व्रतोको किया, परन्तु रोगग्रस्त शरीर रहनेकी अपेक्षा अब इस भूतलमें नही रहना ही अच्छा है।

६३. मुनिने सघको भी ऐसी सूचना देकर सघके बार बार रोकनेपर भी अन्तिम क्रिया सल्लेखनाको सम्पादित कर अन्तिम समाधि लगायी।

६४ भयङ्कर विपत्तिरूप ग्रहादि जीवोसे तथा मृत्युरूपी लहरोसे युक्त व्यग्रतारूपी समुद्रके बीचमे गिरकर यह जीव रात-दिन क्लेशको पा रहा है।

६५ दिगम्बर जैन तथा सभी देहधारियोके लिए यह दु खमय शरीर त्याज्य ही समझना चाहिये। इसीसे मुनि-गण पुनर्जीवन रोकनेके लिए काय-कष्टकर अनेक तपस्यायें करते हैं।

६६ यह विषय-सञ्चय भीषण दोषका स्थान समझना चाहिए। इसलिए सहिष्णु विवेकी सासारिक विषयको छोडकर विविध कर्मको नष्ट करनेके लिए अक्षयपदको प्राप्त होते हैं।

६७ बडे उद्दीप्त दु खाग्निसे तप्त, अनेक रोगोंसे युक्त और माला, चन्दन आदि विषम पदार्थोंसे सवलित इस शरीरके धारण करनेसे ससारमे क्या लाभ है?

६८ पापमयी स्त्रीकी सृष्टिसे क्या? शरीरके नीचे सृष्टि करनेसे क्या प्रयोजन? और पुत्रादिकोमे शत्रुता क्यो रख छोडी गयी? इसलिए मैं समझता हूँ कि ब्रह्माकी सृष्टि व्यर्थ ही है।

६९ पहले बाल्यावस्था ही दु खका बीज है, तत्पश्चात् युवावस्थाको भी रोगका अड्डा ही समझना चाहिए और वृद्धावस्थाको भी ऐसा ही विषमय समझकर यह मानना पडता है कि इस शरीरकी दशा ही विपत्ति-परिणामको दिखानेवाली है।

७०. प्राक्तन जन्मके पुण्यसे मैंने सुन्दर शरीर, सुन्दर मनुष्य-जन्म तथा

अच्छी वृद्धि पायी हैं, इसलिये मुझे सज्जनोंकी संगत्ति, और श्रीजिनधर्म्मकी सेवा करनी चाहिए, क्योंकि इनके बिना आदमी कृती नहीं हो सकता।

७१. सारे ससारका स्वरूप जानकर, योगिराट्—'सभी संसार विनश्वर है' ऐसा कहकर शान्तिको धारण करते हुए आधी आँखे मीचकर स्वरूपको देखते हुए समाधिको प्राप्त हुए।

७२ अपने हृदय-कमलमे स्वच्छ रूपको धारण कर तथा अमृतसदृश उन मूलमन्त्रोंसे सींचते हुए श्रुतमुनिने स्तोत्र-पाठके साथ-साथ शान्तिपूर्वक अपने शरीरको छोड़ा।

७३. जिनके उत्पन्न होनेपर अज्ञानान्धकारावृत्त यह ससार ज्ञानवान् होकर हर्षयुक्त हुआ, सो आज उन्हींके स्वर्ग जानेपर लोग उष्ण उच्छ्वास ले-लेकर आँखोंसे शोकाश्रुधारा बहा रहे हैं। ठीक है, बड़ोका वियोग दुस्सह होता ही है।

७४. इन महामुनिके चरण-कमल प्राय. सभी राजाओने शिरोधृत किए तथा इनकी सच्चरित्रता भी अपने हृदयमे सभी ऋषिवर्य्योंने गृहीत की। वही महात्मा आज भाग्यवश परलोकको चल बसे, इसलिये आप लोग भी उन्हींकेसे सद्धर्म्म-कार्योको पालन करनेके लिये अवतरित होनेकी कोशिश करें।

७५ जिन महात्माओंके चरित्र अनिन्द्य हैं, वे जिस स्थानमे परलोकको जाते हैं उस स्थानकी भी पूजा करनी उन्हीकी पूजा करनी है, इसलिए जिन-धर्म्म-प्रचारक श्रुतमुनिका यह स्थान (निषद्या) सदा बना रहे।

७६. शक १३६५ वैशाख शुक्ल नवमी बुधवारको इन्होंने स्वर्गको प्रस्थान किया।

७७. सभी क्रियाको शान्त करनेवाला, अज्ञानान्धकारको हटानेवाला, सभी आशयसे रहित और अवाङ्-मनस-गोचर ससारमे सभी शक्तिको जीतनेवाला जो कोई दिव्य तेज है, वह मेरे हृदयमे सदा रहे।

७८. इस प्रबन्धकी ध्वनिसे सम्बन्ध रखनेवाली, तथा सच्चे प्रेमको उत्पन्न करनेवाली मङ्गराजकी वाणी वीणाकी-सी होवे।

सेनगण-पट्टावली

वद्धाष्टकर्मनिर्घाटनपटुशुद्धसिद्धान्तप्रभावोधितनवखण्डमण्डनश्रीनेमिसेन-सिद्धान्तीनाम् ॥२०॥

अतीवघोरतरतरातपनसतप्तत्रैलोक्यप्राणिगणतापनिवारणकारणच्छत्रायमान-श्रीमच्छ्रीछत्रसेनाचार्याणाम् ॥२१॥

उग्रदीप्ततप्तमहातपोयुक्तार्यसेनानाम् ॥२२॥

संयमसपन्नश्रीलोहसेनमट्टारकाणाम् ॥२३॥

नवविधबालब्रह्मचर्यव्रतपूर्वकपरब्रह्मध्यानाधीनश्रीब्रह्मसेनतपोधनानाम् ॥२४॥

भव्यजनकमलसूरसेनमट्टारकाणाम् ॥२५॥

दारुसघसशयतमोनिमग्नाशाधरश्रीमूलसघोपदेशपितृवनस्वर्यातिककमलमद्र-मट्टारकाणाम् ॥२६॥

सारत्रयसपन्नश्रीदेवेन्द्रसेनमुनिमुख्यानाम् ॥२७॥

विहारनगरीप्रवेशसमयसारस्कन्वाष्टकयनाल्पाख्यानवाणवाधाहरणगगामध्य-पट्टाभिषेकनिरूपकत्रैविद्यकुमारसेनयोगीश्वराणाम् ॥२८॥

अंगवादिमङ्गशील-कडि(लि)ङ्गवादिकालानल-काश्मीरवादिकल्पान्तग्रीष्म-नैपालवादिस्वापानुग्रहसमर्थ-गौडवादिब्रह्मराक्षस-वालेवादिकोलाहल-द्राविड़वादि-त्राटनशील-तिलिङ्गवादिकलङ्ककारी-दुस्तरवादिमस्तकशूल- उड्डीयदेशेऽश्वगज-पतिसमासन्निविष्टप्रचण्डयमदण्डसुण्डालसुण्डादण्डखण्डनकालदण्डमण्डलदोर्दण्ड-मण्डितश्रीदुर्लभसेनाचार्याणाम् ॥२९॥

तप.श्रीकर्णावतसश्रीषेणमट्टारकाणाम् ॥३०॥

दुर्वार-दुर्वादिगर्वखर्वपर्वतचूर्णीकृतकुलिशायमानदक्षपरिराजलक्ष्मीसेनमट्टार-काणाम् ॥३१॥

नवलक्षधनुराधीशदशसप्तलक्षदक्षिणकर्णाटकराजेन्द्रचूडामौक्तिकमालाप्रमा-मधूनी(?)जलप्रवाहप्रक्षालितचरणनखबिम्बश्रीसोमसेनमट्टारकाणाम् ॥३२॥

अलकेश्वरपुराद्धरवच्छनगरे राजाधिराजपरमेश्वरयवनरायशिरोमणिमह-म्मदपातशाहसुरत्राणसमस्यापूर्णादखिलदृष्टिनिपातेनाष्टादशवर्षप्रायप्राप्तदेवलोक-श्रीश्रुतवीरस्वामिनाम् ॥३३॥

भमेरीपुरवनेश्वरमट्टश्रष्टीकृतानलनिहितयज्ञोपवीतादिविजितसिंहब्रह्मदेव-सधर्म्मशर्मकर्मनिर्मलान्त करणश्रीमज्झीवरसेनाचार्याणाम् ॥३४॥

हावभावविभ्रमविलासविलासाविभ्रमश्रृंगारमृङ्गीसमालिङ्गितबालमुग्वयौव-नविदग्धाखिलाङ्गनामनोवाक्कायनवविधबालब्रह्मचर्यव्रतोपेतश्रीदेवसेनमट्टार-काणाम् ॥३५॥

अनेकमव्यजनचातकनिकरजूषाधिकारकरणमधुरवाग्धारासारसयुतनूतनतन-पितृसदृशश्रीदेवसेनमट्टारकाणाम् ॥३६॥

तत्पट्टोदयाचलप्रभाकरनित्याद्येकान्तवादिप्रथमवचनखण्डनप्रचण्डवचनाम्बर-षट्दर्शनस्थापनाचार्यषट्तर्कचक्रेश्वरडिल्लि (दिल्ली) सिंहासनाधीश्वरसार्वभौम-

सामिमानवादीभसिंहाभिनवत्रैविद्यश्रीमच्छ्रीसोमसेनभट्टारकाणाम् ॥३७॥

तत्पट्टवार्द्धिवर्द्धनैकपूर्णचन्द्रायमानाभिनववादिसत्कृतसर्वज्ञप्राकृतसंस्कृतपरमेश्वरवज्रपंजरसमानानाम्, अगवंगकलिंगकाश्मीरकाम्भोजकर्णाटकमगधपालतुरलचेरल (मलह) केरमाटजितविद्वज्जनसेवितचरणारविन्दाना श्रीमूलसंघवृषभसेनान्वयपुष्करगच्छविरुदावलिविराजमानश्रीमद्गुणभद्रभट्टारकाणाम् ॥३८॥

तत्पट्टोदयाद्रिदिवाकरायमाणश्रीमत्कर्णाटकदेशस्थापितधर्मामृतवर्षणजलदायमानवीरतपश्चरणाचरणप्रवीणश्रीवीरसेनभट्टारकाणाम् ॥३९॥

विगताभिमानतपगतकषायागादिविविधग्रन्थकरणैककुशलताभिमानश्रीयुधवीरभट्टारकाणाम् ॥४०॥

तत्पट्टे सर्वज्ञवचनामृतस्वादकृतात्मकायसद्धर्मोदधिवर्द्धनैकचन्द्रायमाणतर्ककर्कशपुष्करायमाणमन्मथमथनसमुद्भूतत्रिविधवैराग्यभावितभागधेयजनजनितसपर्याश्रीमाणिकसेनभट्टारकाणाम् ॥४१॥

तत्पट्टोदयाचलदिवाकरायमाणानेकशब्दार्थान्वयनिश्चयकरणविद्वज्जनसरोजविकाशनैकपटुतरायमानश्रीगुणसेनभट्टारकाणाम् ॥४२॥

तदनुसकलविद्वज्जनपूजितचरणकमलभव्यजनचित्तसरोजनिवासलक्ष्मीसदृशलक्ष्मीसेनभट्टारकाणाम् ॥४३॥

विबुधविविधजनमनइन्दीवरविकाशनपूर्णशशिसमानानां कविगमकवादवाग्मित्वचातुर्विधपाण्डित्यकलाविराजमानानां, नयनियमतपोबलसाधितधर्मभारधुरधराणा, अखिलसुखकरणसोमसेनभट्टारकारणाम् ॥४४॥

- मिथ्यामततमोनिवारणमाणिक्यरत्नसमदिव्यरूपश्रीमाणिक्यसेनभट्टारकाणाम् ॥४५॥

आशीविषदुष्टकर्कशमहारोगमदगजकेसरिसिंहसमानानां, अनेकनरपतिसेवितपादपद्मश्रीगुणभद्रभट्टारकाणाम् ॥४६॥

तत्पट्टे कुमुदवनविकाशनैकपूर्णचन्द्रोदयायमानललितविलासविनोदितत्रिभुवनोदरस्थविबुधकदम्बकचन्द्रकरनिकरसन्निभयशोधरधवलितदिङ्मंडलानां, श्रीमदभिनवसोमसेनभट्टारकाणाम् ॥४७॥

तत्पट्टे महामोहान्धकारतमसोपगूढभुवनभवलग्नजनताभिदुस्तरकैवल्यमार्गप्रकाशनदीपकानां, कर्कशतार्किककणादवैयाकरणवृहत्कुम्भीकुम्भपाटनलंपटविर्या निजस्वस्याचरणकणखञ्जायितचरणयुगाद्रेकाणां, श्रीमद्भट्टारकवर्यभूर्यश्रीजिनसेनभट्टारकाणाम् ॥४८॥

तत्पट्टोदयाचलप्रकाशकरदिवाकरायमाण-श्रीमज्जिनवरवदनविनिर्गतसप्तभङ्गीनवनयोय(वचनोप)मनयात्मकद्वादशाङ्गाब्धिवर्द्धनैकषोडशकलापरिपूर्णचन्द्रायमानाज्ञानजाड्यमुद्रितभव्यजनचित्तसरससरसीरुहप्रबोधकस्ववचनरचनाडम्बरचारुचातुरीचमत्कृतत्सुरगुरुप्रख्यायमाणस्वगणाग्रावलिसिंचनधारायमाणकोटिमुकुटमहावादिराजराजेश्वरकाव्यचक्रवर्त्तिश्रीमच्छ्रीसमन्तभद्रभट्टारकाणाम् ॥४९॥

श्रीमद्रायराजगुरुवसुन्धराचार्यवर्यमहावादवादीपितामहविद्वज्जनचक्रवर्तिकडिकडिवाणपरिग्रहविक्रमादित्यमध्याह्नकल्पवृक्षसेनगणाग्रगण्यपुष्करगच्छविरुदावलिविराजमान दिल्लि(दिल्ली)सिंहासनाधीश्वरछत्रसेनतपोऽभ्युदयसमृद्धिसिध्यर्थं भव्यजनं क्रियमाणे. जिनेश्वराभिषेकमवधारयन्तु सर्वे जना ॥ इति सेनपट्टावली ॥

भाषानुवाद

बन्धकारक अष्टकर्मोंसे छुडानेमे चतुर शुद्ध और वर्द्धित सिद्धान्तकी शोभासे बोधित नवखण्डोकी शोभा श्रीमान् नेमिसेन सिद्ध हुए ॥२०॥

भयकर तापसे तप्त तीनो लोकोके प्राणियोके तापको दूर करनेवाले तथा उस तापको हटानेके लिए छत्रके समान श्री छत्रसेनाचार्य हुए ॥२१॥

अत्यधिक प्रकाशमान तथा तीव्र महातपसे युक्त श्री आर्यसेन आचार्य हुए ॥२२॥

अत्यन्त सयमी श्री लोहाचार्य भट्टारक हुए ॥२३॥

नव प्रकारके ब्रह्मचर्यव्रतके साथ परमेश्वरके ध्यानमे लीन श्री ब्रह्मसेन महातपस्वी हुए ॥२४॥

कमलरूपी भव्यजनोंके लिये सूर्यके समान श्री सूरसेन भट्टारक हुए ॥२५॥

काष्ठासघके सशयरूपी अन्धकारमे डूबे हुओको आशा प्रदान करनेवाले श्री मूलसघके उपदेशसे पितृलोकके वनरूपी स्वर्गसे उत्पन्न श्री कमलभद्र भट्टारक हुए ॥२६॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयसे युक्त श्री मुनीश्वर देवेन्द्रजी हुए ॥२७॥

विहारनगरमे प्रवेशके समय सारस्कन्धाष्टकके कथनका आल्याख्यान, वाणबाधाका हरण और गगाके मध्य पट्टाभिषेक करनेवाले त्रैविद्य श्री योगीश्वर कुमारसेन हुए ॥२८॥

अंगवादियोंके लिये भगगील, कलिंगवादियोंके लिये कालाग्नि, काश्मीर-वादियोंके लिये प्रलयकालकी उष्णता, नैपालवादियोंके लिये शाप-क्षमा करनेमें समर्थ, द्राविडवालोंके लिये त्रोटनशील, गौडवादियोंके लिये ब्रह्मराक्षस, केवल वादियोंके लिये कोलाहल, तैलंगवादियोंके लिये शिरोव्यथा, उड्डीयदेशमें गज, अश्व आदिके स्वामी, सभामें प्रविष्ट उग्र यमदण्ड, गजराजके सुण्डादण्डको छिन्न-भिन्न करनेवाले तथा कालदण्डके समान शोभित बाहुवाले श्री दुर्लभ-सेनाचार्य हुए ॥२९॥

तपस्याको ही कर्णभूषण माननेवाले श्रीमान श्रीषेण भट्टारक हुए ॥३०॥

दुर्वार्य दुर्वादियोंके गर्वरूपी पर्वतको चूर्ण करनेके लिये वज्रके समान दक्ष परिराज श्रीलक्ष्मीसेन भट्टारक हुए ॥३१॥

नवलक्ष धनुर्धरोंके स्वामी, दक्षिणके कर्नाटकीय सत्रह लाख राजाओंके मस्तकोंकी मणिमालाकी प्रभासे उद्भासित, मधुजलकी धारामें धुले हुए चरण-नखविम्बवाले श्री सोमसेन भट्टारक हुए ॥३२॥

अलकेश्वरपुरके भरोच नगरमें राजेश्वरस्वामी यवनराजाओंमें श्रेष्ठ मोहम्मद बादशाहकी रक्षाकी समस्याकी पूर्तिसे तथा दृष्ट होनेसे अठारह वर्षकी अवस्थामें स्वर्गगामी श्री श्रुतवीर स्वामी हुए ॥३३॥

भमेरीपुरमें धनेश्वर भट्टसे भ्रष्टकर्म हुए अग्निमें फेंके हुए यज्ञोपवीतादिके द्वारा जीते हुए ब्रह्मदेवके धर्मके सुखसे शुद्धान्तःकरण श्रीमान् धरसेनाचार्य हुए ॥३४॥

हाव, भाव, विभ्रम और विलासकी शोभाके श्रृंगाररूपी भृङ्गीसे आलि-गित, बाल, मुग्ध और युवती नागरिक स्त्रियोंसे मन वचन कायसे मुक्त तथा नव प्रकारके ब्रह्मचर्यसे युक्त श्री देवसेन भट्टारक हुए ॥३५॥

अनेक शुभचिन्तक मनुष्यरूपी चातकके समूहको प्रसन्न करनेवाले मधुवात-की धारासे मुक्त नया शरीर बनानेवाले श्री देवसेन भट्टारक हुए ॥३६॥

उनके पट्टके उदयाचलके सूर्य, नित्यादि एकान्तवादियोंके प्रथम वचनके खण्डनकारक, उग्र विस्तारवाले छहो दर्शनके स्थापनके आचार्य, छ तर्कशास्त्रके स्वामी, दिल्ली-सिंहासनके अधिपति, सार्वभौम, अभिमानयुक्त वादीरूप हाथीके लिये सिंहके समान त्रिकालज्ञ श्री सोमसेन आचार्य हुए ॥३७॥

उनके पट्टकी वृद्धिसे पूर्ण चन्द्रमाके समान, अभिनववादी, संस्कृतके ज्ञाता प्राकृत और संस्कृत भाषाके स्वामी, वज्रपंजरके तुल्य अंग, बंग, कलिंग, काश्मीर, कम्बोज, कर्नाटक, मगध, पाल, तुरल, चेरल और केरलके जीते हुए

विद्वानोसे सेवित चरणवाले श्री मूलसेन वृषभवंश, पुष्करगच्छकी विरुदावलीमे विराजमान गुणभद्र भट्टारक हुए ॥३८॥

उनके पट्टरूपी उदयाचलके सूर्य कर्नाटक देशमे स्थापित किये गये धर्मकी अमृतवर्षासे मेघके समान कठोर तपस्या करनेमे निपुण श्री वीरसेन भट्टारक हुए ॥३९॥

अभिमानरहित तपस्यासे नष्ट रागवाले, अनादि विविध ग्रन्थ रचनेके पाण्डित्यके गर्वसे युक्त श्रीयुत वीर भट्टारक हुए ॥४०॥

उनके पट्टमें सर्वज्ञदेवके वचनामृतके स्वादसे सच्चे धर्मरूपी समुद्रको बढानेके लिये चन्द्रमाके समान, अपने शरीरको कर्कश तर्कोंसे कमलके समान बनानेवाले तथा मदनको मथन करनेसे त्रिविध वैराग्यको प्रकट करनेवाले, भावी भाग्यशाली जनोंसे पूजित श्री माणिकसेन भट्टारक हुए ॥४१॥

इनके पट्टरूपी उदयाचलपर सूर्यके समान, अनेक शब्द, अर्थ तथा अन्वयका निश्चय करनेवाले, विद्वज्जन-सरोजके प्रस्फुटित करनेमे अत्यन्त पटु श्री गुणसेन भट्टारक हुए ॥४२॥

इसके बाद सभी विद्वज्जनोसे पूजित पादपद्मवाले और भव्यजनोंके चित्त-सरोजमे लक्ष्मीके समान निवास करनेवाले श्री लक्ष्मीसेन भट्टारक हुए ॥४३॥

देवता तथा विविध जनोके मनकुमुदको प्रकाशित करनेमें पूर्ण चन्द्रमाके समान, काव्य, न्याय, शास्त्रार्थ तथा वाग्मिता चतुर्विध पाण्डित्य-कलासे विराजमान, यम, नियम और तपोबलसे साधित धर्मके भारको धारण करनेवाले और सभीको सुखसम्पन्न करनेवाले श्री सोमसेन भट्टारक हुए ॥४४॥

मिथ्यामतके तमका निवारण करनेवाले, माणिक्यरत्न तथा रत्नत्रयसे युक्त श्री माणिक्यसेन भट्टारक हुए ॥४५॥

आशीविष (सर्पके लिये दुष्ट कर्कश महोरगके समान, मत्त हस्तीके लिये सिंहके समान तथा अनेक राजाओसे पूजित चरणकमलवाले श्री गुणभद्र भट्टारक हुए।

उन्हीके पट्टपर जनरूपी कुमुदवनको विकसित करनेके लिये पूर्ण चन्द्रोदयके समान, सुन्दर विलाससे विनोदित त्रिभुवन स्थित विबुध-समूहके लिये चन्द्रमाकी किरणोके समान, यशोधरसे दिङ्मण्डलको भी उज्ज्वल करनेवाले श्रीमान् अभिनव सोमसेन भट्टारक हुए ॥४७॥

उनके पट्टपर महामोहान्धकारसे ढके हुए, ससारके जनसमूहको दुस्तर कैवल्यमार्गको प्रकाशित करनेमे दीपकके समान, दुर्द्धर्ष नैयायिक कणाद और

वैयाकरणोंके वृहत् कुम्भका उत्पाटन करनेमें उद्यत बुद्धिवाले भट्टारकवर्योमें सूर्यके समान श्री जिनसेन भट्टारक हुए।

उनके पट्टरूपी उदयाचलको प्रकाशित करनेके लिये सूर्यके समान, श्री जिनेन्द्र भगवानके मुखसे विनिर्गत सप्तभङ्गी और नय आदिसे युक्त द्वादशाग रूपी समुद्रका वर्द्धन करनेके लिये पूर्ण चन्द्रमाके समान, अज्ञान और जडतासे मुद्रित भव्यजनोके चित्तसरोजको विकसित करनेवाले, अपने वचनको रचना-चातुरीके आडम्बरसे वृहस्पतिको भी चमत्कृत करनेवाले, अपने गणाग्रवल्ली-को सीचनेके लिये धाराके समान, करोडो मुकुटवादियोके राजराजेश्वर, काव्य-चक्रवर्ती श्री समन्तभद्र भट्टारक हुए ॥४९॥

श्रीमान् राजेश्वर गुरु वसुन्धराचार्य महावादियोके पितामह, विद्वानोमें चक्रवर्ती कडि-कडि (?) वाण परिग्रह विक्रमादित्य मव्याह्नके समय, कल्पवृक्षके समान, सेनगणके अग्रगण्य, पुष्करगच्छ-विरुदावलीसे विराजमान दिल्ली-सिंहासन-के अधिपति छत्रसेनकी तपस्याका अभ्युदय करनेवाली समृद्धिकी सिद्धिके लिये भव्यजनोके द्वारा किये गये जिनेश्वराभिषेकको सब लोग अवधारण करें ॥५०॥

विरुदावली

"स्वस्ति श्रीजिननायाय, स्वस्ति श्रीसिद्धसूरिणे (?)।
स्वस्ति पाठकसाधुभ्या, स्वस्ति श्रीगुरवे तथा ॥१॥
मगल भगवानर्हन् मगल सिद्धसूरय ।
उपाध्यायस्तथा साधुर्जैनधर्मोऽस्तु मगलम् ॥२॥
सद्धर्मामृतवर्षहर्षितजगज्जन्तुर्यथाम्भोधर.।
स्थैर्यान्मेरुरगाधताब्धिवखनिसारोह्यपारक्षम ॥
दुर्वारस्मरवारिवाहपवन शुम्भत्प्रभाभास्कर ।
चन्द्रः सौम्यतया सुरेन्द्रमहितो वीर श्रियो व क्रियात् ॥३॥
स्वस्ति श्रीमूलसघे प्रवरवलगणे कुन्दकुन्दान्वये च ।
विद्यानन्दिप्रबन्धु विमलगुणयुत मल्लिभूष मुनीन्द्रम् ॥
लक्ष्मीचन्द्र यतीन्द्र विबुधवरनुत वीरचन्द्र स्तुवेऽहम् ।
श्रीमज्ज्ञानादिभूप सुमतिसुखकर श्रीप्रभाचन्द्रदेवम् ॥४॥

श्री जिननाथ मगलमय हो, श्रीसिद्ध और सूरि मगलमय हो, उपाध्याय और साधु मगलमय हो और श्री गुरु मगलमय हो ॥१॥

भगवान् अर्हंत मगलमय हो, सिद्ध और आचार्य मंगलमय हो, उपाध्याय, साधु तथा जैनधर्म मगलमय हो ॥२॥

सद्धर्म (जैनधर्म) रूपी अमृतकी वृष्टिसे जगत्के जीवोको हर्षित करनेवाले, अतएव मेघके समान, स्थिरतामे मेरु पर्वतके समान, अगाधतामे समुद्रके समान, संसारके सारका ऊहापोह करके पार जानेमे समर्थ, दुर्दमनीय कामदेव रूपी मेघमण्डलके लिए पवनस्वरूप, शुभ्र-दीप्तिके कारण सूर्यके समान, सौम्यताके कारण चन्द्रमाके समान और देवताओके अधिपति इन्द्र द्वारा पूजित (वे भगवान) वीर आप लोगोका कल्याण करें ॥३॥

मगलमय श्री मूलसघमे श्रेष्ठ वलात्कारगणमे और कुन्दकुन्दकी शिष्य परम्परामे विद्यानन्दीके श्रेष्ठ वन्धु, शुभ गुणोसे युक्त मल्लिभूषण मुनीन्द्रकी, लक्ष्मीचन्द्र यतीन्द्रकी, देवताओसे वन्दित वीरचन्द्रकी और ज्ञान आदि गुणोसे भूषित, सुमति तथा सुख देनेवाले श्रीप्रभाचन्द्रदेवकी मैं स्तुति करता हूँ ॥४॥

स्वस्ति श्रीवीरमहावीरातिवीरसन्मतिवर्द्धमानतीर्थंकरपरमदेववदनारविन्दविनिर्गतदिव्यध्वनिप्रकाशनप्रवीणश्रीगौतमस्वामीगणधरान्वयश्रुतकेवलिश्रीमद्भद्रवाहुयोगीन्द्राण। श्रीमूलसघसजनितनन्दिसघप्रकाशवलात्कारगणाग्रणीपूर्वापराङ्गवेदिश्रीमाघनन्दिभट्टारकाणा तत्पट्टकुमुदवनविकाशनचन्द्रायमानसकलसिद्धान्तादिश्रुतसागरपारगतश्रीजिनचन्द्रमुनीन्द्राणाम् ॥१॥

तत्पट्टोदयाद्रिदिवाकरश्रीएलाचार्यगृध्रपिच्छवक्रग्रीवपद्मनन्दिकुन्दकुन्दाचार्यवर्य्याणाम् ॥२॥

दशाध्यायसमाक्षिप्तजैनागमतत्त्वार्थसूत्रसमूह-श्रीमदुमास्वातिदेवानाम् ॥३॥

सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्रतपश्चरणविचारचातुरीचमत्कारचमत्कृतचतुरवरनिकरचतुरशीतिसहस्रप्रमितिवृहदाराधनासारकर्तृ श्रीलोहाचार्याणाम् ॥४॥

अष्टादशवर्णविरचितप्रवोधसारादिग्रन्थश्रीयश कीर्तिमुनीन्द्राणाम् ॥५॥

कुन्देन्दुहारतुपारकाशसकाशयशोभरभूषितश्रीयशोनन्दीश्वराणाम् ॥६॥

मगलमय श्रीवीर, महावीर, अतिवीर, सन्मति, वर्द्धमान, तीर्थंकर परमदेवके मुखारविन्दसे निकली हुई दिव्य वाणीको प्रकाशित करनेमे निपुण श्री गौतमस्वामी गणधरके शिष्य श्रुतकेवली श्री भद्रवाहु योगीन्द्रके श्रीमूलसघसे उत्पन्न नन्दिसघका प्रकाशस्वरूप वलात्कारगणमे अग्रेसर तथा पूर्व एव अपर अंगको जाननेवाले श्रीमाघनन्दी भट्टारकके और उनके पट्टरूपी कुमुदवनको विकसित करनेवाले चन्द्रस्वरूप सम्पूर्ण सिद्धान्त आदि आगमरूपी समुद्रके पारगत श्री जिनचन्द्र मुनीन्द्रके ॥१॥

उनके पट्टरूपी उदयाचलपर उदित सूर्यके समान श्री एलाचार्य, गृध्रपिच्छ, वक्रग्रीव, पद्मनन्दी और कुन्दकुन्दाचार्यवरोके ॥२॥

जैनागमके सारको दश अध्यायोमें "तत्त्वार्थसूत्र"के रूपमे प्रस्तुत करनेवाले श्रीमान् उमास्वातिदेवके ॥३॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र, सम्यक् तपस्या और विचारचातुर्यके चमत्कारसे चतुर लोगोके समूहको चमत्कृत करनेवाले चौरासी हजार श्लोक परिमित 'वृहदाराधनासार'की रचना करनेवाले श्री लोहाचार्यके ॥४॥

अष्टादश वर्णो द्वारा 'प्रबोधसार' आदि ग्रन्थोके रचयिता श्री यश कीर्ति मुनिवरके ॥५॥

इन्दु, कुमुदकी माला, तुषार (हिम) और काश नामक तृणके समान स्वच्छ यश पुञ्जसे भूषित श्रीयशोनन्दीश्वरके ॥६॥

जैनेन्द्रमहाव्याकरणश्लोकवार्त्तिकालङ्कारादि (?) महाग्रन्थकर्तॄणां श्रीपूज्यपाददेवानाम् ॥७॥

सम्यग्दर्शनगुणगणमण्डितश्रीगुणनन्दिगणीन्द्राणाम् ॥८॥

परवादिपर्वतवज्रायमानश्रीवज्रनन्दियतीश्वराणाम् ॥९॥

सकलगुणगणाभरणभूषितश्रीकुमारनन्दिभट्टारकाणाम् ॥१०॥

निखिलविष्टपकमलवनमार्तण्डतप श्रीसजातप्रभादूरीकृत्तदिगन्धकारसिद्धान्तपयोधिशशधरमिथ्यात्वतमोविनाशनभास्करपरवादिमतेभकुम्भस्थलविदारणसिंहानां श्रीलोकचन्द्रप्रभाचन्द्रनेमिचन्द्रभानुनन्दिसिंहनन्दियोगीन्द्राणाम् ॥११॥

आचाराङ्गादिमहाशास्त्रप्रवीणताप्रतिबोधितभव्यजननिकरस्याद्वादसमुद्रसमुत्थसदुपन्यासकल्लोलाघ पातितसौगत-साख्य-शैव-वैशेषिक - भाट्टचार्वाकादिगजेन्द्राणां श्रीमद्वसुनन्दिवीरनन्दिरत्ननन्दिमाणिक्यनन्दिमेघचन्द्रशान्तिकीर्तिमेरुकीर्तिमहाकीर्तिविष्णुनन्दिश्रीभूषणशीलचन्द्रश्रीनन्दिदेशभूषणानन्तकीर्तिधर्मनन्दिविद्यानन्दिरामचन्द्ररामकीर्तिनिर्मयचन्द्रनागचन्द्रनयनन्दिहरिचन्द्रमहीचन्द्रमाधवचन्द्रलक्ष्मीचन्द्रगुणचन्दवासवचन्द्रगणीन्द्राणाम् ॥१२॥

जैनेन्द्र महाव्याकरण और श्लोकवार्तिकालकार (?) आदि महान् ग्रन्थोंके रचयिता श्रीपूज्यपाददेवके ॥७॥

सम्यक्‌दर्शनकी गुणराशिसे भूषित श्रीगुणनन्दो गणीन्द्रके ॥८॥

परवादीरूप पर्वतोंके लिए वज्रके समान श्रीवज्रनन्दी यतीन्द्रके ॥९॥

सकलगुणसमूहरूपी आभरणोसे अलकृत श्रीकुमारनन्दी भट्टारकके ॥१०॥

सम्पूर्ण ससार-रूप कमलवनको विकसित करनेमे सूर्यके समान, तपस्याकी छविसे उत्पन्न प्रभाद्वारा सभी दिशाओके अन्धकारको दूर करनेवाले, सिद्धान्तसमुद्रकी पुष्टि करनेमे चन्द्रमास्वरूप, मिथ्यात्वरूपी अन्धकारको दूर करनेके

लिये सूर्य तुल्य, परवादियोंके सिद्धान्तरूपी हाथीके मस्तकको विदीर्ण करनेमे सिंहके समान श्री लोकचन्द्र, प्रभाचन्द्र, नेमिचन्द्र, भानुनन्दी और सिंहनन्दी योगीन्द्रोंके ॥११॥

आचारांग आदि महाशास्त्रोकी प्रवीणता द्वारा भव्यजनोको प्रतिबोधित करनेवाले, स्याद्वादरूपी समुद्रकी उत्ताल तरंगरूपी सद्युक्ति द्वारा सौगत सांख्य-शैव-वैशेषिक-भाट्ट (मीमांसक) और चार्वाक आदि गजेन्द्रोको नीचे गिरानेवाले श्री वसुनन्दी, वीरनन्दी, रत्ननन्दी, माणिक्यनन्दी, मेघचन्द्र, शान्तिकीर्ति, मेरुकीर्ति, महाकीर्ति विष्णुनन्दी, श्रीभूषण, शीलचन्द्र, श्रीनन्दी, देशभूषण, अनन्तकीर्ति, धर्मनन्दी, विद्यानन्दी, रामचन्द्र, रामकीर्ति, निर्भयचन्द्र, नागचन्द्र, नयनन्दी, हरिचन्द्र, महीचन्द्र, माधवचन्द्र, लक्ष्मीचन्द्र, गुणचन्द्र, वासवचन्द्र और लोकचन्द्र गणीन्द्रोके ॥१२॥

सुरासुरखेचरनरनिकरचर्चितचरणाम्भोरुहाणां श्रुतकीर्तिभावचन्द्रमहाचन्द्र-मेघचन्द्रब्रह्मनन्दिशिवनन्दिविश्वचन्द्रस्वामिभट्टारकाणाम् ॥१३॥

दुर्धरतपश्चरणवज्राग्निदग्धदुष्टकर्म्मकाष्ठाना श्रीहरिनन्दिभावनन्दिस्वर-कीर्तिविद्याचन्द्ररामचन्द्रमाघनन्दिज्ञाननन्दिगङ्गकीर्तिसिंहकीर्तिहेमकीर्तिचारुकीर्ति-नेमिनन्दिनाभिकीर्तिनरेन्द्रकीर्तिश्रीचन्द्रपद्मकीर्तिपूज्यभट्टारकाणाम् ॥१४॥

सकलतार्किकचूडामणिसमस्तशाब्दिकसरोजराजितरणिनिखिलागमनिपुण-श्रीमदकलङ्कचन्द्रदेवानाम् ॥१५॥

ललितलावण्यलीलालक्षितगात्रत्रैविद्याविलासविनोदितत्रिभुवनोदरस्थविबुध-कदम्बचन्द्रकरनिकरसन्निभयशोभरसुधारसधवलितदिग्मण्डलाना श्रीललितकीर्त्ति-केशवचन्द्रचारुकीर्त्यभयकीर्तिसूरिवर्याणाम् ॥१६॥

देवता, राक्षस, खेचर और मनुष्यो द्वारा पूजित चरणकमलवाले श्रुतिकीर्त्ति, भावचन्द्र, महाचन्द्र, मेघचन्द्र, ब्रह्मनन्दी, शिवनन्दी और विश्वचन्द्र स्वामी भट्टारकोके ॥१३॥

अत्यन्त कठिन तपस्यारूपी वज्राग्नि द्वारा बुरे कर्मरूपी काष्ठको जला चुकनेवाले हरिनन्दी, भावनन्दी, स्वरकीर्त्ति, विद्याचन्द्र, रामचन्द्र, माघनन्दी, ज्ञाननन्दी, गङ्गकीर्त्ति, सिंहकीर्त्ति, चारुकीर्त्ति, नेमिनन्दी, नाभिकीर्त्ति, नरेन्द्र-कीर्त्ति, श्रीचन्द्र और पद्मकीर्ति पूज्य भट्टारकोंके ॥१४॥

सभी तार्किकोके शिरोभूषण, समस्त वैयाकरणरूपी कमलोंके लिए सूर्य और सम्पूर्ण आगममे निपुण श्रीअकलङ्कचन्द्रदेवके ॥१५॥

मञ्जुल लावण्यपूर्ण शरीरवाले, तीनो विद्याओंके विलाससे त्रिभुवनके विद्वानोको आनन्दित करनेवाले और चन्द्रकिरणोंके समान स्वच्छ यश पुञ्ज-रूपी सुधारससे दिशाओंको समुज्ज्वल करनेवाले श्री ललितकीर्त्ति, केशवचन्द्र, चारुकीर्त्ति और अभयकीर्त्ति आचार्यवरोके ॥१६॥

जाग्रज्जिनेन्द्रसिद्धान्तसमशत्रुमित्रप्रेयोरसाकुलितसिंहगजादिसेव्यानां श्रीवसन्तकीर्त्तिश्रीवादिचन्द्रविशालकीर्त्तिशुभकीर्तियतिराजानाम् ॥१७॥

राजाधिराजगुणगणविराजमानश्रीहम्मीरभूपालपूजितपादपद्मसैद्धान्तिकसयमसमुद्रचन्द्रश्रीधर्मचन्द्रभट्टारकाणाम् ॥१८॥

तत्पदाम्बुजभानुस्याद्वादवादिवादीश्वरश्रीरत्नकीर्तिपुण्यमूर्तीनाम् ॥१९॥

महावादवादीश्वरवादिपितामह-प्रमेयकमलमार्तण्डाद्यनेकग्रन्थविधायक-श्रीमहापुराणस्वयम्भूसप्त(?)भक्तिपरमात्मप्रकाशसमयसारादिसूत्रव्याख्यानसर्ज्जनसजातकोविदसभाकीर्त्तिभट्टारकाणा श्रीमत्प्रभाचन्द्रभट्टारकाणाम् ॥२०॥

अनेकाध्यात्मशास्त्रसरोजषण्डविकासनमार्तण्डमण्डलययाख्यातचारित्रसुविधानसन्तोषिताखण्डलाना श्रीपद्मनन्दिदेवभट्टारकाणाम् ॥२१॥

त्रैविद्यविद्वज्जनशिखण्डमण्डलीभवत्कायवर(?)कमलयुगलावन्तीदेशप्रतिष्ठोपदेशकसप्तशत-कुटुम्ब-रत्नाकरज्ञातिसुश्रावकस्थापकश्रीदेवेन्द्रकीर्तिशुभकीर्तिभट्टारकाणाम् ॥२२॥

श्री जिनेन्द्रके सिद्धान्तोको जाग्रत करनेवाले, शत्रु, मित्र और उदासीन सबको प्रीतिरससे वशीभूत करनेवाले एव सिंह, हाथी आदिसे सेव्य श्रीवसन्तकीर्ति, श्रीवादिचन्द्र, विशालकीर्त्ति और शुभकीर्ति यतिवरोके ॥१७॥

राजाओके राजा और गुणोंसे अलकृत श्री हम्मीरराजा द्वारा पूजितचरणकमलवाले और सिद्धान्तसम्बन्धी सयमरूपी समुद्रको सम्वृद्ध करनेवाले चन्द्रमाके समान श्री धर्मचन्द्र भट्टारकके ॥१८॥

उनके पदाब्जोको प्रफुल्लित करनेवाले सूर्यस्वरूप, स्याद्वाद-वादियोके प्रमुख पुण्यमूर्त्ति रत्नकीर्तिके ॥१९॥

महावाद-वादीश्वर, वादि-पितामह, प्रमेयकमलमार्तण्ड आदि अनेक ग्रन्थोके रचयिता, श्रीमहापुराण, स्वयम्भू, सप्त (?) भक्ति, परमात्मप्रकाश और समयसार आदि सिद्धान्त-ग्रन्थोकी व्याख्या करनेवाले परम शास्त्रज्ञ सभाकीर्त्ति भट्टारक (?) और श्रीप्रभाचन्द्र भट्टारकके ॥२०॥

अनेक अध्यात्मशास्त्ररूपी कमलसमूहको विकसित करनेवाले सूर्यस्वरूप, यथाख्यातचारित्रके विधान द्वारा देवेन्द्रको प्रसन्न करनेवाले श्रीपद्मनन्दिदेव भट्टारकके ॥२१॥

तीनो विद्याओके ज्ञाताओमे शिरोभूषण-स्वरूप, मण्डलाकार परिवेष्टित ससारियोद्वारा सेवित युगल (चरण) कमलवाले (?), अवन्तीदेशकी (मूर्त्ति) प्रतिष्ठामे उपदेश देनेवाले सातसौ परिवार-रूपी समुद्रके अन्तर्गत ज्ञाति-मुश्रावकोके उद्धारक श्रीदेवेन्द्रकीर्त्ति और शुभकीर्त्ति भट्टारकोके ॥२२॥

तत्पट्टोदयसूर्याचार्यवर्यनवविधब्रह्मचर्यपवित्रचर्यामन्दिरराजाधिराजमहा-मण्डलेश्वरव्रजागगगजयसिहव्याघ्रनरेन्द्रादिपूजितपादपद्माना, अष्टशाखाप्राग्-वाटवंशावतसाना, षड्भाषाकविचक्रवर्त्तिभुवनतलव्याप्तविशदकीर्तिविश्वविद्या-प्रासादसूत्रधारसद्ब्रह्मचारिशिष्यवरसूरिश्रीश्रुतसागरसेवितचरणसरोजाना, श्री-जिनयात्राप्रतिष्ठाप्रासादोद्धरणोपदेशनैकदेशभव्यजीवप्रतिबोधकाना, श्रीसम्मेद-गिरिचम्पापुरीउज्जयन्तगिरिअक्षयवटआदीश्वरदीक्षासर्वसिद्धक्षेत्रकृतयात्राणा, श्रीसहस्त्रकूटजिनविम्वोपदेशकहरिराजकुलोद्योतकराणा, श्रीरविनन्दिपरमाराध्य-स्वामिभट्टारकाणाम् ॥२३॥

तत्पट्टोदयाचलबालभास्करप्रवरपरवादिगजयूथकेसरिमण्डपगिरिसन्त्रवाद-समस्याप्तचन्द्रपुविकटवादिगोपदुर्गमेघाकर्षणभविकजनसस्यामृतवाणिवर्षणसुरेन्द्र-नागेन्द्रादिसेवितचरणारविन्दाना, मालवमुलतानमगधमहाराष्ट्रगौडगुर्ज्जरागवग-तिलगादिविविधदेशोत्थभव्यजनप्रतिबोधनपटुवसुन्धराचार्यग्यासदीनसभामध्य-प्राप्तसम्मानश्रीपद्मावत्युपासकाना श्रीमल्लिभूषणभट्टारकवर्य्याणाम् ॥२४॥

उनके पट्ट पर उदित सूर्यके समान, आचार्यप्रवर, नौ प्रकारके ब्रह्मचर्य द्वारा चारित्ररूपी मन्दिरको पवित्र करनेवाले, राजाधिराज महामण्डलेश्वर-वज्राग, गग और जयसिह इन श्रेष्ठ राजाओ द्वारा पूजित चरणकमलवाले, अष्टशाख प्राग्वाट् वशमे उत्पन्न, छ भाषाओमे कविसम्राट्, पृथ्वीतलपर विस्तृत स्वच्छ कीर्त्तिवाले, अखिल विद्याओके प्रासादके सूत्रधार, पूर्ण ब्रह्मचारी शिष्य-श्रेष्ठ सूरी श्री श्रुतसागरजी द्वारा सेवित चरणकमलवाले, श्री जिन-यात्रा, प्रतिष्ठा और मन्दिरोद्धारके उपदेशो द्वारा मुख्य मुख्य देशोके भव्य जीवोको उद्बोधित करनेवाले, श्रीसम्मेदगिरि, चम्पापुरी, उज्जयतगिरि, आदीश्वरदीक्षास्थान, अक्षयवट, और सभी सिद्धक्षेत्रोको यात्रा करनेवाले, श्री सहस्त्रकूट जिनबिंबोपदेशक एव हरिवशको उद्भासित करनेवाले श्रीरविनन्दी नामक परम-आराध्य स्वामी भट्टारकके ॥२३॥

उनकी पट्ट (गद्दी) रूपी उदयाचलपर उगनेवाले प्रातःकालिक सूर्यके समान, अत्यन्त श्रेष्ठ अन्यमतवादीरूपी हाथियोंके समूहके लिए सिंहस्वरूप, मण्डपगिरि (माडलगढ) के मन्त्रवाद समस्यामें चन्द्रमाकी पवित्रता प्राप्त करनेवाले, विकट परवादीरूप गोपोंके (अजेय) दुर्गको अपनी प्रखर बुद्धिसे वशमें करनेवाले, भव्यजनरूपी फसलपर अमृत समान वाणीकी वर्षा करनेवाले, देवेन्द्र और नागेन्द्रसे सेवित चरणकमलवाले, मालव-मुलतान-मगध-महाराष्ट्र-सौराष्ट्र-गौड-अंग-वंग-आन्ध्र आदि विविध देशोंके भव्यजनोंको उपदेश देनेमें निपुण, भूमण्डल भरके आचार्य, गयासुद्दीनकी सभामें सम्मान प्राप्त करनेवाले और श्रीपद्मावतीदेवीके उपासक श्रीमल्लिभूषण महाभट्टारकके ॥२४॥

तत्पट्टकुमुदवनविकासनशरत्सम्पूर्णचन्द्राणां, जैनेन्द्रकौमारपाणिन्यमरशाकटायनमुग्धबोधादिमहाव्याकरणपरिज्ञानजलप्रवाहप्रक्षालितानेकशिष्यप्रशिष्यशेमुखीसंस्थितशब्दाज्ञानजम्बालानामनेकतपश्चरणकरणसमुत्थकीर्तिकलापकलितरूपलावण्यसौभाग्यभाग्यमण्डितसकलशास्त्रपठनपाठनपण्डितविविधजीर्णनूतनस्फुटितप्रासादविधायकश्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्रबिम्बप्रतिष्ठादिमहामहोत्सवकारकाणां तिगल-(?) तौलवतिलंगकन्नड (?) कर्णाटभोटादिदेशोत्पन्ननरेन्द्रराजाधिराजमहाराजराजराजेश्वरमहामण्डलेश्वरभैरवरायमल्लिरायदेवरायवंगरायप्रमुखाष्टादशनरपतिपूजितचरणकमलश्रुतसागरपारगतवादवादीश्वरराजगुरुवसुन्धराचार्यभट्टारकपदप्राप्तश्रीवीरसेनश्रीविशालकीर्तिप्रमुखशिष्यवरसमाराधितपादपद्मानां, श्रीमल्लक्ष्मीचन्द्रपरमभट्टारकगुरूणाम् ॥२५॥

उनके पट्टरूपी कुमुदवनको विकसित करनेके लिए शरदृतुके पूर्ण चद्रमाके समान जैनेन्द्र, कौमार, पाणिनि, अमर, शाकटायन, मुग्धबोध आदि महाव्याकरणके परिज्ञानरूपी जल-प्रवाहसे अनेक शिष्य-प्रशिष्योंकी बुद्धिमें स्थित शब्दसम्बन्धी अज्ञानरूपी पंकको धो देनेवाले, विविध तपस्याओंके द्वारा प्रसारित यश समूहवाले और रूपलावण्यसे भूषित तथा सौभाग्यसे मण्डित, सभी शास्त्रोंके पठन-पाठनमें पंडित, अनेक पुराने तथा नये टूटे-फूटे मन्दिरोंके उद्धारक श्रीजिनेन्द्रकी प्रतिमा-प्रतिष्ठा आदि बडे-बडे उत्सवोंके करनेवाले, तौलव-आन्ध्र-कर्णाट-लाट-भोट आदि देशोंके नरेन्द्र-राजाधिराज-महाराज-राजराजेश्वर-महामण्डलेश्वर भैरवराय-मल्लिराय-देवराय-वंगराय इत्यादि अठारह राजाओंसे पूजित चरणकमलवाले, शास्त्ररूपी सागरके पारगत, वादियोंके ईश्वर, राजाओंके गुरु, भूमण्डलके आचार्य, भट्टारकपदको प्राप्त श्रीवीरसेन, श्रीविशालकीर्त्ति प्रभृति शिष्यों द्वारा आराधित चरणकमलवाले श्रीलक्ष्मीचन्द परम भट्टारकके ॥२५॥

तद्वंशमण्डनकन्दर्प्पसर्प्पदर्प्पदलनविश्वलोकहृदयरञ्जनमहाव्रतिपुरन्दराणा, नवसहस्रप्रमुखदेशाधिराजाधिराजमहाराजश्रीअर्जुनजीयराजसभामध्यप्राप्तसम्मानाना, षोड्शवर्षपर्यन्तशाकपाकपक्वान्नशाल्योदनादिर्षप्पि प्रभृतिसरसाहारपरिवर्जिताना, दुर्व्वारादिसर्वगर्वपर्वतचूरीकरणवज्रायमानप्रथमवचनखण्डनपण्डितानां, व्याकरणप्रमेयकमलमार्तण्डछन्दोलंकृतिसारसाहित्यसंगीतसकलतर्कसिद्धान्तागमशास्त्रसमुद्रपारगताना, सकलमूलोत्तरगुणमणिमण्डितविबुधवरश्रीवीरचन्द्रभट्टारकाणाम् ॥२६॥

तत्पट्टोदयाद्रिदिनमणिनिखिलविपश्चित्चक्रचूडामणिसकलभव्यजनहृदयकुमुदवनविकासनरजनीपतिपरमजैनस्याद्वादनिष्णातशुद्धसम्यक्त्वजनजातगताभिमानिमिथ्यावादिमिथ्यावचनमहीधरशृङ्गशातनप्रचण्डविद्युद्दण्डाना, संस्कृताद्यष्टमहाभाषाजलधरकरणछटासन्तर्प्पितभव्यलोकसारंगाणा, चतुरशितिवादविराजमानप्रमेयकमलमार्तण्डन्यायकुमुदचद्रोदयराजवार्त्तिकालंकारश्लोकवार्त्तिकालंकाराप्तपरीक्षापरीक्षामुखपत्रपरीक्षाष्टसहस्री-प्रमेयरत्नमालादिस्वमतप्रमाणशशधरमणिकण्ठकिरणावलीवरदराजीचिन्तामणिप्रमुखपरमतप्रकरणैन्द्रचान्द्रमाहेन्द्रजैनेन्द्रकाशकृत्स्नकालापकमहाभाष्यादिशब्दागमगोम्मटसारत्रैलोक्यसारलब्धिसारक्षपणसारजम्बूद्वीपादिपञ्चप्रज्ञप्तिप्रभृतिपरमागमप्रवीणानामनेकदेशनरनायनरपतितुरंगपतिगजपतियवनाधीशसभासम्प्राप्तसम्मानश्रीनेमिनाथतीर्थंकरकल्याणपवित्रश्रीउज्जयन्तशत्रुंजयतुंगीगिरिचूलगिर्य्यादिसिद्धक्षेत्रयात्रापवित्रीकृतचरणानामगवादिमंगशील-कलिंगवादिकर्पूरकालानलकाश्मीरवादिकदलीकृपाण-नेपालवादिशापानुग्रहसमर्थ-गुर्जरवादिदत्तदण्ड-गौडवादिगण्डभेरुदण्डदत्तदण्ड-हम्मीरवादिब्रह्मराक्षस-चोलवादिहल्लकल्लोलकोलाहल-द्राविडवादित्राटनशील-तिलंगवादिकलककारि-दुस्तरवादिमस्तकशूल-कोंकणवादिवरोत्वातमूल-व्याकरणवादिमर्दित-मरट्टतार्किकवादिगोधूमवरट्ट-साहित्यवादिसमाजसिंहज्योतिष्कवादिभूर्णी (?) तलिहमन्त्रवादियन्त्रगोत्रतन्त्रवादिकलप्रकुचकुम्भनिवोल (?) रत्नवादियत्नकारसमस्तानवद्यविविधविद्याप्रासादसूत्रधाराणा, सकलसिद्धान्तवेदिनिर्ग्रन्थाचार्यवर्यशिष्यश्रीसुमतिकीर्त्तिस्वपरदेशविख्यातशुभमूर्त्तिश्रीरत्नभूषणप्रमुखसूरिपाठकसाधुससेवितचरणसरोजानां, कलिकालगौतमगणधराणा, श्रीमूलसंघसरस्वतीगच्छशृंगारहाराणा, गच्छाधिराजभट्टारकवरेण्यपरमाराध्यपरमपूज्यभट्टारकश्रीज्ञानभूषणगुरूणाम् ॥२७॥

उनके वंशके भूषण, कामदेवरूपी सर्पके गर्वको चूर करनेवाले, अखिल लोकके हृदयको आनन्दित करनेवाले, महाव्रतिश्रेष्ठ, नवसहस्र प्रधान देशोंके अधिपतियोंके अधिपति महाराज श्रीअर्जुनकी राजसभामें सम्मान पानेवाले,

सोलह वर्ष तक शाक-पाक, पक्वान्न, शालीका भात और घी आदि रसयुक्त आहारको छोडनेवाले, दुश्चारादि (?) के सम्पूर्ण गर्वरूपी पर्वतको चूर्ण करनेमे वज्रके सदृश, प्रथम-वचनको खडन करनेमें पडित, व्याकरण-प्रमेयकमलमार्तण्ड-छद-अलङ्कार-सार-साहित्य-सगीत-सम्पूर्ण-तर्क-सिद्धान्त और आगमशास्त्ररूपी समुद्रके पारगत, सम्पूर्ण मूलोत्तरगुणरूपी मणियोसे भूषित, विद्वानोमे श्रेष्ठ श्रीवीरचन्द्र भट्टारकके ॥२६॥

उनके पट्ट (गद्दी) रूपी उदयाचलपर उदित सूर्यके समान, सम्पूर्ण विद्वन्मण्डलीके चूडामणि, सभी भव्यजनोके हृदयरूपी कुमुद-वनको विकसित करनेके लिए रजनीपति, परम जैन स्याद्वादमें निष्णात, शुद्ध सम्यक्त्वको प्राप्त, जात और मृत (?) अभिमानी मिथ्यावादियोंके मिथ्यावचनरूपी महीधरो (पर्वतों) के शृगको तोड़नेमे प्रचड विद्युत्दण्डके सदृश, सस्कृत आदि आठ महाभाषारूपी जलधरहेतुक छटाद्वारा भव्यजनरूपी मयूरादि पक्षियोको तृप्त करनेवाले, चौरासी वादियोमे विराजमान, प्रमेयकमलमार्त्तण्ड-न्यायकुमुदचन्द्रोदय-राजवार्तिकालकारश्लोकवार्त्तिकालकार-आप्तपरीक्षा-परीक्षामुख-पत्रपरीक्षा-अष्टसहस्री- प्रमेयरत्नमाला आदि अपने मतके प्रमाणरूपी चन्द्रमणिको कण्ठमे धारण करनेवाले, किरणावली-वरदराज-चिंतामणि प्रभृति परमतमे, ऐन्द्र, चान्द्र, माहेन्द्र, जैनेन्द्र काश,कृत्स्न, कापालक और महाभाष्यादि शब्दशास्त्रमे, गोम्मटसार, त्रैलोक्यसार, लब्धिसार, क्षपणसार और जम्बूद्वीपादि पचप्रज्ञप्ति-प्रभृति परम आगमशास्त्रोमें प्रवीण, अनेक देशोंके नरनाथ, नरपति, अश्वपति, गजपति और यवन अधिपतियोकी सभाओमे सम्मान प्राप्त करनेवाले, श्रीनेमिनाथ तीर्थंकरके कल्याणसे पवित्र किये हुए, श्री उर्ज्जयन्त, शत्रुंजय, तुगीगिरि, चूलगिरि आदि सिद्धक्षेत्रोकी यात्रासे अपने चरणोको पवित्र किये हुए, अगदेशके वादियोको भग्न करनेवाले, कलिग देशके वादीरूपी कपूरके लिए भयकर अग्निके समान, काश्मीरके वादीरूपी कदलीकेलिए तलवारके समान, नेपालके वादियोको शाप और अनुग्रह करनेकी शक्ति रखनेवाले, गुजरातके वादिओको दण्ड देनेवाले, गौड़ (बगालका हिस्सा) के वादीरूपी गडभेरुदण्ड पक्षीको दण्ड देनेवाले, हम्मीर (राजा) के वादियोके लिए ब्रह्मराक्षसके सदृश, चोलके वादियोमे महान् कोलाहल मचानेवाले, द्रविड वादियोको त्राटन देनेवाले, तिलगवादियोको लाछित करनेवाले, दुस्तर (कठिन) वादियोके लिए मस्तकशूल रोगके समान, कोकण देशके वादियोंके लिये उत्कट वातमूल रोगके समान, व्याकरण शास्त्रके वादियोको चकनाचूर करनेवाले, तर्कशास्त्रके वादियोंको गेहूँका आटा बनानेवाले, साहित्यके वादि-समाजके लिए सिंहसदृश, ज्योतिषके वादियोको भूमिसात् करनेवाले, मत्रवादियोंको यन्त्र (कोल्हू) मे डालनेवाले,

त्तत्ववादियोकी छाती विदीर्ण करनेवाले, रत्नवादियोका यत्न करनेवाले, सम्पूर्ण निर्दोष विविध विद्यारूपी प्रासाद (भवन) के सूत्रधार, सभी सिद्धान्तोंको जाननेवाले, जैनाचार्यप्रवर, शिष्य श्री सुमतिकीर्त्ति, अपने और दूसरे देशोमे प्रसिद्ध शुभमूर्त्ति श्रीरत्नभूषण प्रभृति सूरि, पाठक और साधुओसे सेवित चरणकमलवाले तथा कलिकालके लिए गौतम गणधर-स्वरूप, श्रीमूलसघ सरस्वतीगच्छके श्रृङ्गारहार-सदृश गच्छाधिराज भट्टारकोमे श्रेष्ठ, परम आराध्य और परम पूज्य भट्टारक श्री ज्ञानभूषण गुरुवरके ॥२७॥

तत्पट्टकुमुदवनविकासनविशदसम्पूर्णपूर्णिमासारशरच्चन्द्रायमानानां कविगमकवादिवाग्मिचतुर्विधविद्वज्जनसमासरोजिनीराजहंससन्निभाना, सारसामुद्रिकशास्त्रोक्तासकललक्षणलक्षितगात्राणा, सकलमूलोत्तरगुणगणमणिमण्डितानां, चतुर्विधश्रीसघहृदयाह्लादकराणा, सौजन्यादिगुणरत्नरत्नाकराणा, सघाष्टकभारधुरंधराणा, श्रीमद्रायराजगुरुवसुन्धराचार्यमहावादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिवकुडीकुडीयमाण (?) परगूहविक्रमादित्यमध्याह्नकल्पवृक्षबलात्कारगणविरुदावलीविराजमानडिल्लीगुर्जरादिदेशसिंहासनाधीश्वराणा-श्रीसरस्वतीगच्छश्रीबलात्कारगणाग्रगण्यपाषाणघटितसरस्वतीवादनश्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वयभट्टारकश्रीविद्यानन्दिश्रीमल्लिभूषणश्रीमल्लक्ष्मीचन्द्रश्रीवीरचन्द्रसाम्प्रतिकविद्यमानविजयराज्ये श्रीज्ञानभूपणसरोजचञ्चरीकश्रीप्रभाचन्द्रगुरूणाम् ॥२८॥

तत्पट्टकमलबालभास्करपरवादिगजकुम्भस्थलविदारणसिंह-स्वदेशपरदेशप्रसिद्धाना, पचमिथ्यात्वगिरिशृगशातनप्रचण्डविद्युद्दण्डाना, जगमकल्पद्रुमकलिकालगौतमावताररूपलावण्यसौभाग्यभाग्यमण्डितजिनवचनकलाकौशल्यविस्मापिताखण्डलमहावादवादीश्वरराजगुरुवसुन्धराचार्यहुवडकुलशृंगारहारभट्टारकश्रीमद्वादिचन्द्रभट्टारकाणाम् ॥२९॥

उनके पट्टरूपी कुमुदवनको विकसित करने लिए स्वच्छ शरद्कालीनपूर्णिमाके चन्द्रमाके समान, कवि-गमक-वादी-वाग्मिक इन चारो प्रकारके विद्वानोकी सभारूपी सरोजिनीके राजहसके सदृश, सामुद्रिक शास्त्रमे कथित सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त शरीरवाले, सम्पूर्ण मूलोत्तर गुण-मणियोंसे अलकृत, चारो प्रकारके सघोंके हृदयाह्लादक, सौजन्य आदि गुणरत्नोके सागर, सघाष्टकके भारकी धुरीको धारण करनेवाले, श्रीमान् राय (?) के राजगुरु, भूमडलके आचार्य, महावादियोंके पितामह, अखिल विद्वज्जनोंके चक्रवर्ती (वकुडी कुडीयाण ?) शत्रुगृहके लिए विक्रमादित्य, मध्याह्नके लिए कल्पवृक्ष, बलात्कारगणकी विरुदावलीमे विराजमान, दिल्ली, गौर्जर (गुर्जर) आदि देशोंके सिंहासनाधीश्वर, श्रीमूलसघ-श्रीसरस्वतीगच्छ-श्रीबलात्कारगणमे अग्र-

गण्य, पत्थरकी वनी सरस्वतीको वुलवानेवाले श्रीकुन्दकुन्दाचार्यके वशमे भट्टारक श्रीविद्यानंदी, श्रीमल्लिभूषण, श्रीलक्ष्मीचन्द्र और श्रीवीरचन्द्रके, सप्रति विद्यमान विजयराज्यमे श्रीज्ञानभूषणरूपी सरोजके लिए चचरीक भट्टारक श्रीप्रभाचन्द्र गुरुके ॥२८॥

उनके पट्टरूपी कमलके लिए वालसूर्य, परमतवादीरूपी गजके मस्तकको विदीर्ण करनेमे सिंहके समान, स्वदेश और परदेशमे ख्यातिप्राप्त, पाँच मिथ्यात्व-स्वरूप पर्वतके शिखरको नष्ट-भ्रष्ट करनेमें प्रचड विजलीके समान, चलते-फिरते कल्पवृक्ष-स्वरूप, कलिकालमे गौतमावतार रूप, लावण्य और सौभाग्यसे युक्त, अपने वचनकी चातुरीसे इन्द्रको विस्मयमे डालनेवाले, महावाद-वादीश्वर, राजगुरु, भूमण्डलके आचार्य, हुवडकुलके शृगारहार, भट्टारक श्रीवादिचन्द्रके ॥२९॥

तत्पट्टैकसम्पूर्णचन्द्रस्वराद्धान्तविद्योत्कटपरवादिगजेन्द्रगर्वस्फोटनप्रवलेन्द्रमृगेन्द्राणां, कृत्स्नाद्वयशब्दश्रुतछदोलकृतिकाव्यतर्कादिपठनपाठनसामर्थ्यप्रोत्थकीर्त्तिवल्ल्याच्छादितवंगागतिलंगगुर्जरनवसहस्रदक्षिणवाग्वरादिदेशमण्डपानां, महावादीश्वरश्रीमन्मूलसघशृगारहारश्रीमद्वादिचन्द्रपट्टोदयाद्रिवालदिवाकराणां, त्रिजगज्जनाह्लादनप्रकृष्टप्रज्ञाप्रागल्भ्याभिनववादीन्द्रसकलमहत्तममहतीमहीमहतामहस्क (?) महन्महीपतिमहितश्रीमहीचन्द्रभट्टारकाणाम् ॥३०॥

तत्पट्टोदयाद्रिवालविभाकरविद्वज्जनसभामण्डनमिथ्यामतखण्डनपण्डितानाम्, परवादिप्रचण्डपर्वतपाटनपवीश्वराणां, भव्यजनकुमुदवनविकाशनशशावरधर्म्मामृतवर्षणमेघानां, लघुशाखाहुवडकुलशृंगारहारडिल्लीगुर्ज्जरसिंहासनाधीशवलात्कारगणविरुदावलीविराजमानभट्टारकश्रीमेरुचन्द्रगुरूणाम् ॥३१॥

सकलसिद्धान्तप्रतिवोधितभव्यजनहृदयकमलविकाशनैकवालभास्कराणां, दशविधधर्मोपदेशनवचनामृतवर्षणतर्प्पितानेकभव्यसमूहानां, श्रीमन्मेरुचन्द्रपट्टोद्धरणधीराणां, श्रीमच्छ्रीमूलसघ-सरस्वतीगच्छवलात्कारगणविरुदावलीविराजमानभट्टारकवरेण्यभट्टारकश्रीजिनचन्द्रगुरूणां, तपोराज्याभ्युदयार्थं भव्यजनै. क्रियमाणे श्रीजिननाथाभिषेके सर्वे जनाः सावधाना. भवन्तु ॥३२॥

उनके पट्टको (सुशोभित करनेके लिए एकमात्र पूर्णचन्द्र, अपने सिद्धान्तकी विद्यामे उत्कट, परमतवादी-रूपी गजेन्द्रके गर्वको फोडनेवाले प्रवल मृगेन्द्र सदृश, अखिल अद्वय (अद्वैत) शब्दको सुने हुए, छन्द-अलंकार-काव्य-तर्क आदिके पठन-पाठनकी सामर्थ्य रखनेके कारण फैली हुई कीर्त्तिलतासे वग-अंग-तैलंग-गुर्जर-नव-सहस्र दक्षिण, वाग्वर आदि देशरूपी मडपको आच्छादित करनेवाले (?) महा-

वादीश्वर श्रीमूलसंघके शृंगारहार, श्रीवादिचन्द्रके पट्टरूपी उदयाचलपर बालसूर्य-के समान, त्रिभुवनके जनोंको आह्लादित करनेवाले, प्रखरबुद्धि और निपुणताके कारण एक नवीन वादिश्रेष्ठ, सम्पूर्ण पृथ्वीके बड़े-से-बड़े भूभागके महान् महीपतियोंसे पूजित श्रीमहीचन्द्र भट्टारकके ॥३०॥

उनके पट्टस्वरूप उदयगिरिपर (उदित) बालभास्कर, विद्वानोंकी सभाके भूषण, मिथ्यामतके खण्डनमें पण्डित, परमतके वादीरूपी, प्रचण्ड पर्वतको तोड़नेमें श्रेष्ठ वज्रके समान, भव्यजनरूपी कुमुदवनको विकसित करनेके लिये चन्द्रमा, धर्मस्वरूप अमृतको बरसानेमें मेघतुल्य, लघु शाखाके हुबड कुलके शृंगारहार, दिल्ली और गुजरातके सिंहासनाधीश, बलात्कारगणकी विरुदावलीमें विराजमान भट्टारक श्रीमेरुचन्द्र गुरुके ॥३१॥

सम्पूर्ण सिद्धान्तों द्वारा ज्ञानवान बनाये गये भव्यजनोंके हृदयकमलको विकसित करनेमें एकमात्र बालसूर्य, दशविध धर्मोके उपदेश-वचनामृतकी वृष्टि-से अनेक भव्यसमूहको तृप्त करनेवाले श्रीमेरुचन्द्रके पट्टका उद्धार करनेमें धीर, श्रीमूलसंघ सरस्वती गच्छ बलात्कारगणकी विरुदावलीमें विराजमान, भट्टारकोंमें श्रेष्ठ, भट्टारक श्रीजिनचन्द्र गुरुके तपोराज्यके अभ्युदयके लिए भव्यजनों द्वारा किये जानेवाले श्रीजिननायके अभिषेकमें सभी लोग सावधान होवें ॥३२॥

नन्दिसंघकी पट्टावलिके आचार्योंकी नामावलि

(इण्डियन एन्टीक्वेरीके आधारपर)

१ भद्रबाहु द्वितीय (४), २ गुप्तिगुप्त (२६), ३ माघनन्दी (३६), ४. जिनचन्द (४०), ५ कुन्दकुन्दाचार्य (४९), ६ उमास्वामी (१०१), ७ **लोहाचार्य्य** (१४२), ८ यश कीर्ति (१५३), ९ यशोनन्दी (२११), १० देवनन्दी (२५८) ११. जयनन्दी (३०८), १२ गुणनन्दी (३५८), १३ वज्रनन्दी (३६४), १४ कुमारनन्दी (३८६), १५ लोकचन्द्र (४२७), १६ प्रभाचन्द्र (४५३), १७ नेमचन्द्र (४७८), १८ भानुनन्दी (४८७), १९. सिंहनन्दी (५०८), २० श्रीवसुनन्दी (५२५), २१ वीरनन्दी (५३१), २२. रत्ननन्दी (५६१), २३ माणिक्यनन्दी (५८५), २४. मेघचन्द्र (६०१), २५ शान्तिकीर्ति (६२७), २६ मेरुकीर्ति (४४२)।

ये उपर्युक्त छब्बीस आचार्य दक्षिण देशस्थ भद्दिलपुरके पट्टाधीश हुए।

२७ महाकीर्ति (६८६), २८ विष्णुनन्दी (७०४), २९ श्रीभूषण (७२६), ३०. शीलचन्द्र (७३५), ३१. श्रीनन्दी (७४९), ३२ देशभूषण (७६५), ३३ अनन्तकीर्ति (७६५), ३४ धर्म्मनन्दी (७८५), ३५. विद्यानन्दी (८०८), ३६ रामचन्द्र (८४०),

३७ रामकीर्ति (८५७), ३८ अभयचन्द्र (८७८), ३९ नरचन्द्र (८९७), ४०. नागचन्द्र (९१६), ४१. नयनन्दी (९३९), ४२ हरिनन्दी (९४८), ४३ महीचन्द्र (९७४), ४४ माघचन्द्र (९९०)।

उल्लिखित महाकीर्तिसे लेकर माघचन्द्र तकके अट्ठारह आचार्य उज्जयिनीके पट्टाधीश हुए।

४५ लक्ष्मीचन्द्र (१०२३), ४६ गुणनन्दी (१०३७), ४७ गुणचन्द्र (१०४८), ४८. लोकचन्द्र (१०६६)। ये उल्लिखित चार आचार्य्य चन्देरी (बुन्देलखण्ड) के पट्टाधीश हुए।

४९. श्रुतकीर्ति (१०७९), ५० भावचन्द्र (१०९४), ५१ महाचन्द्र (१११५),

उल्लिखित तीन आचार्य्य भेलसे [भूपाल सी० पी०]के पट्टाधीश हुए।

५२ माघचन्द्र (११४०)।

यह आचार्य कुण्डलपुर (दमोह) के पट्टाधीश हुए।

५३ ब्रह्मनन्दी (११४४), ५४ शिवनन्दी (११४८), ५५. विश्वचन्द्र (११५५), ५६ हृदिनन्दी (११५६), ५७ भावनन्दी (११६०), ५८. सूरकीर्ति (११६७), ५९ विद्याचन्द्र (११७०), ६० सूरचन्द्र (११७६), ६१ माघनन्दी (११८४), ६२ ज्ञाननन्दी (११८८), ६३. गगकीर्ति (११९९), ६४ सिंहकीर्ति (१२०६)।

उपर्युक्त बारह आचार्य बाराके पट्टाधीश हुए।

६५ हेमकीर्ति (१२०९), ६६. चारुनन्दी (१२१६), ६७ नेमिनन्दी (१२२३), ६८. नाभिकीर्ति (१२३०), ६९ नरेन्द्रकीर्ति (१२३२), ७० श्रीचन्द्र (१२४१), ७१ पद्म (१२४८), ७२. वर्द्धमानकीर्ति (१२५३), ७३ अकलकचन्द्र (१२५६), ७४. ललितकीर्ति (१२५७), ७५ केशवचन्द्र (१२६१), ७६. चारुकीर्ति (१२६२), ७७. अभयकीर्ति (१२६४), ७८ बसन्तकीर्ति (१२६४)।

इण्डियन ऐण्टिक्वेरीकी जो पट्टावली मिली है उसमे उपर्युक्त चौदह आचार्योका पट्ट ग्वालियरमे लिखा है, किन्तु वसुनन्दीश्रावकाचारमे इनका चित्तौड़मे होना लिखा है, पर चित्तौडके भट्टारकोकी अलग भी पट्टावली है। जिनमे ये नाम नही पाये जाते है। सम्भव है कि ये पट्ट ग्वालियरमे हो। इनको ग्वालियरकी पट्टावलीसे मिलानेपर निश्चय होगा।

७९ प्रख्यातकीर्ति (१२६६), ८० शुभकीर्ति (१२६८), ८१ धर्म्मचन्द्र (१२७१), ८२ रत्नकीर्ति (१२९६), ८३ प्रभाचन्द्र (१३१०)।

ये उल्लिखित ५ आचार्य अजमेरमे हुए है।

८४ पद्मनन्दी (१३८५), ८५ शुभचन्द्र (१४५०), ८६ जिनचन्द्र (१५०७), ये तीन आचार्य दिल्लीमे पट्टाधीश हुए हैं।

इनके बाद पट्ट दो भागोमें विभक्त हुआ। एक नागौरमे गद्दी स्थापित हुई और दूसरी चित्तौडमे। निम्नलिखित आचार्योके नाम चित्तौड़ पट्टके हैं। प्रभाचन्द्रजीसे चित्तौडका पट्ट प्रारम्भ होता है। ८७ प्रभाचन्द्र (१५७१), ८८ धर्म्मचन्द्र (१५८१), ८९. ललितकीर्ति (१६०३), ९० चन्द्रकीर्ति (१६२२), ९१. देवेन्द्रकीर्ति (१६६२), ९२ नरेन्द्रकीर्ति (१६९१), ९३ सुरेन्द्रकीर्ति (१७२२), ९४ जगत्कीर्ति (१७३३), ९५ देवेन्द्रकीर्ति (१७७०), ९६. महेन्द्रकीर्ति (१७९२), ९७ क्षेमेन्द्रकीर्ति (१८१५), ९८ सुरेन्द्रकीर्ति (१८२२), ९९ सुखेन्द्रकीर्ति (१८५९), १०० नयनकीर्ति (१८७९), १०१ देवेन्द्रकीर्ति (१८८३), १०२ महेन्द्रकीर्ति (१९३८)।

नागौरके भट्टारकोंकी नामावली

१. रत्नकीर्ति (१५८१), २ भुवनकीर्ति (१५८६), ३ धर्म्मकीर्ति (१५९०), ४ विशालकीर्ति (१६०१), ५ लक्ष्मीचन्द्र, ६. सहस्रकीर्ति, ७ नेमिचन्द्र, ८ यशकीर्ति, ९ भुवनकीर्ति, १० श्रीभूषण, ११ धर्म्मचन्द्र, १२ देवेन्द्रकीर्ति, १३ अमरेन्द्रकीर्ति, १४ रत्नकीर्ति, १५ ज्ञानभूषण, १६ चन्द्रकीर्ति, १७ पद्मनन्दी, १८ सकलभूषण, १९ सहस्रकीर्ति, २०. अनन्तकीर्ति, २१ हर्षकीर्ति, २२ विद्याभूषण, २३ हेमकीर्ति। यह आचार्य १९१० माघ शुक्ल द्वितीया सोमवार को पट्टपर बैठे।

इनके बाद क्षेमेन्द्रकीर्ति हुए, इनके पट्ट पर मुनीन्द्रकीर्ति हुए और अब नागौरकी गद्दीपर श्रीकनककीर्ति महाराज विराजमान है।



कविवर नवलशाह

कविवर नवलशाहकी हिन्दीमे एक महत्वपूर्ण सचित्र रचना 'वर्धमान पुराण' उपलब्ध है। उन्होने इस ग्रथके अन्तमे जो प्रशस्ति दी है, उस प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि ये गोलापूर्व जातिमे उत्पन्न हुये थे। इनका बैंक चन्देरिया और गोत्र वड था। इनके पूर्वज भीषमसाहू भेलसी (बुन्देलखण्ड) ग्राममें रहते थे। उनके चार पुत्र थे वहोरन, सहोदर, अहमन और रतनशाह। एकदिन भीषण साहूने अपने पुत्रोको बुलाकर उनसे परामर्श किया कि कुछ धार्मिक कार्य करना चाहिये। हमे जो राज-सम्मान और धन प्राप्त है उसका सदुपयोग करना चाहिये। सबके परामर्शपूर्वक दीपावलीके शुभ मुहूर्तमे उन्होने पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठाका आयोजन किया, जिसमे दूर-दूर देशसे धार्मिकजन आकर सम्मिलित हुये। उन्होने जिनबिम्ब विराजमान किया। तोरण-ध्वजा-छत्रादिसे मन्दिरको सुशोभित किया। आगत सावर्मीजनोका सत्कार किया। और चारसघको दान दिया, फिर रथयात्राका उत्सव किया। चार सघने मिलकर इनका टीका किया। और एकमत होकर इन्हे 'सिघई' पदसे विभूषित किया। यह बिम्वप्रतिष्ठा वि० सम्वत् १६५१ के अगहन मासमे हुई थी। उस समय बुन्देलखण्डमे महाराज जुझारका राज्य था।

इनके पूर्वजोने भेलसीको छोडकर खटोला गावमें अपना निवास बनाया। इनके पिताका नाम सिघई देवाराय और माताका नाम प्रानमती था। सिघई देवारायके चार पुत्र थे नवलशाह, तुलाराम, घासीराम और खुमानसिंह। नवलशाह ही प्रस्तुत कविवर हैं। कविवरने वर्धमानपुराणकी रचना महाराज छत्रसालके पौत्र और सभासिंहके पुत्र हिन्दुपतिके राज्यमे की थी। कविवरने लिखा है कि उन्होने और उनके पुत्रने मिलकर आचार्य सकलकीर्तिके वर्धमान-पुराणके आधारसे अपने 'वर्धमानपुराण'की रचना की है। ग्रथके अध्ययनसे कविवरकी काव्य-प्रतिभा और सिद्धान्त-ज्ञानका अच्छा परिचय मिलता है। वे चारो अनुयोगोंके विद्वान थे, कवि तो थे ही।

समय-निर्णय

इनका समय निश्चित है। इन्होने वर्धमानपुराणकी समाप्ति विक्रम सम्वत्

१८२५ फागुन शुक्ला पूर्णमासी वुधवारको हुई है[1]। इससे इनका समय विक्रमकी १८वी शतीका अन्तिम पाद और १९वी शताब्दीका प्रथम पाद निश्चित होता है अर्थात् इनका समय विक्रम संवत् १८२५ है।

रचना-परिचय

इनकी एकमात्र रचना वर्धमानपुराण प्राप्त है। इसमे भगवान् महावीरके पूर्व भवो और वर्तमान जीवनका विशद एवं विस्तृत परिचय दिया गया है। इसकी भाषासे अवगत होता है कि उस समय हिन्दीकी खड़ी बोलीका आरम्भ हो गया था। कविने अपनी यह रचना प्राय अपने समयकी हिन्दीकी खढी बोलीमे की है। रचना सरस और सरल है।

ग्रंथमे १६ अधिकार दिये गये हैं। प्रथम अधिकारमे मङ्गलाचरणके अनन्तर वक्ता और श्रोताके लक्षण दिये गये है।

दूसरे अधिकारमे भगवान महावीरके पूर्व भवोमेसे पुरुरवा भीलके भवमे उसके द्वारा किये गये मद्य-मासादिकके परित्यागका वर्णन करते हुये उसके सौधर्म स्वर्गमे देवपदकी प्राप्ति वर्णित है। तीसरे भवमे भरत चक्रवर्तीके पुत्रके रूपमे मरीचिकी पर्याय-प्राप्ति और उसके द्वारा मिथ्या मतकी प्रवृत्ति, फिर ब्रह्मस्वर्गमे देवपर्यायकी प्राप्ति, वहाँसे चलकर जटिल तपस्वीकी पर्याय, तत्पश्चात् सौधर्म स्वर्गकी प्राप्ति, फिर अग्निसह नामक परिव्राजककी पर्याय, फिर तृतीय स्वर्गमे देवपद-प्राप्ति, वहासे आकर भारद्वाज ब्राह्मणकी पर्याय, फिर पाचवें स्वर्गमे देवपर्याय, फिर असख्य वर्षों तक अनेक योनियोमे भ्रमणादिका कथन किया गया है।

तृतीय अधिकारमे स्थावर ब्राह्मण, माहेन्द्र स्वर्गमे देव, राजकुमार विश्वनन्दि, दशवे स्वर्गमे देव, त्रिपृष्ठनारायण, सातवे नरकमे नारकी इन भवोका वर्णन है। चतुर्थ अधिकारमे सिंह पर्याय और चारण मुनियो द्वारा सम्बोधन प्राप्त करनेपर सम्यक्त्वकी प्राप्ति, फिर सौधर्म स्वर्गमे देवपर्याय, राजकुमार कनकोज्वल, सातवें स्वर्गमे देव, राजकुमार हरिषेण, दशवें स्वर्गमे देवपर्यायका कथन है।

पाँचवे अधिकारमे प्रियमित्र चक्रवर्तीके भवका तथा बारहवें स्वर्गमें देवपदकी प्राप्तिका वर्णन है।

छठवे अधिकारमे राजा नन्दके भवमे तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध तथा सोलहवें स्वर्गमे अच्युतेन्द्र पदकी प्राप्तिका वर्णन है।

१. वर्धमान पुराण १६।३३०-३३३।

सातवे अधिकारमे कुण्डपुरनरेश सिद्धार्थके महलोमे कुवेर द्वारा तीर्थंकर-जन्मसे पूर्व रत्नोकी वर्षा, माता द्वारा सोलह स्वप्नोका दर्शन और महावीरका गर्भकल्याणक वर्णित है।

आठवे और नौवें अधिकारमे भगवानके जन्मकल्याण-महोत्सवका विस्तृत वर्णन किया गया है।

दशवे अधिकारमे भगवान्‌के वाल्यजीवन, किशोरावस्था, युवावस्था, वैराग्य और दीक्षा, कूलराजा द्वारा भगवानको प्रथम आहार, चन्दनाके हाथोंसे आहार लेनेपर चन्दनाकी कष्टनिवृत्ति, तपश्चर्याकालमे विविध उपसर्गोका सहन और केवलज्ञानप्राप्तिका वर्णन है।

ग्यारहवें अधिकारमे देवो द्वारा भगवानका केवलज्ञानकल्याणक-महोत्सव मनाने और कुवेर द्वारा रचित समवशरणका वर्णन है।

वारहवें अधिकारमे गौतम इन्द्रभूतिका समवशरणमे आना, उसके द्वारा भगवानकी स्तुति करना और भगवानसे जैनेन्द्री दीक्षा लेने आदिका वर्णन है।

तेरहवेंसे पन्द्रहवे अधिकार तक गौतम गणधर द्वारा किये गये प्रश्नो और प्रश्नोके समाधानस्वरूप भगवानकी दिव्यध्वनिमे निरूपित तत्त्व-निरूपण वतलाया गया है।

सोलहवे अधिकारमे भगवानका विभिन्न देशोमे विहार गौतम गणधर द्वारा श्रेणिकके तीन पूर्वभव, अन्तमे विहार करते हुए भगवानका पावामे निर्वाण, गौतमस्वामीको केवलज्ञानकी प्राप्ति और उनका धर्मविहार, धर्म उपदेश आदिका वर्णन करते हुए अधिकारके अन्तमे अपना विस्तृत परिचय देकर ग्रन्थको समाप्त किया है।

कविने इस काव्य-ग्रन्थमे दोहा, छप्पय, चौपाई, सवैया, अडिल्ल, गीतिका, सोरठा, करखा, पद्धरि, चाल, जोगीरासा, कवित्त, त्रिभगी और चर्चरी छन्दोका प्रयोग किया है, जिनकी सख्या सव मिलाकर ३८०६ है।

१९वी शताब्दीकी यह हिन्दी रचना वहु प्रचलित रही है। इसका एक बार प्रकाशन सूरतसे हो चुका है। वह अव अनुपलब्ध है।



પરિશિષ્ટ

१. ग्रन्थकारानुक्रमणिका

इन्द्रनन्दि प्रथम (इन्द्रनन्दि योगीन्द्र)	ई० १०वीं शतीका आदि	३।१७७
इलगोवडिगल		४।३१४
उग्रादित्याचार्य	वि० ८वीं शती सम्भवत	३।२५०
उच्चारणाचार्य	ई० २-३ शती	२।३२
उदयचन्द्र	ई० १२वीं शती	४।१८४
उदयादित्य	ई० ११५०	४।३११
ऋषिपुत्र	ई० ६-७वीं शती	२।२६२
एलाचार्य	ई० १ली शती	४।३१२
एलाचार्य	८-९वीं शती	२।३१९
ओड्डय्य	ई० ११७०	४।३०८
कनकनन्दि	वि० ११वीं शती	२।४५२
कनकामर मुनि	वि० १२वीं शती	४।१५९
कमलभव	ई० १२३५	४।३११
कर्ण पार्य	ई० १२वीं शती	४।३०९
कल्याणकीर्ति	ई० १४३९	४।३११
कान्ति देवी	ई० १२वीं शती	४।३०८
काणभिक्षु	ई० ९वीं शती	२।४५२
कामराज		४।३२१
किशनसिंह	स० १८वीं शती	४।२८०
कीर्तिवर्मा	११२५ ई०	४।३११
कुणवेल		४।३१६
कुन्दकुन्द	ई० १ली शती	२।९८
कुमार या कुमारस्वामी (कार्तिकेय)	वि० २-३री शती	२।१३३
कुमारनन्दि	ई० ९वीं शती	२।४४७
कुमारसेन	वि० ८वीं शती	२।४४९
कुमुदेन्दु	१२७५ ई०	४।३११
कुंवरपाल	वि० १७वीं शती	४।२६२
केशवराज	११५० ई०	४।३१०
कोटेश्वर	१५०० ई०	४।३११
खड्गसेन कवि	वि० सं० १८वीं शती	४।२८०
खुशालचन्द काला	वि० स० १८वीं शती	४।३०३
गणधरकीर्ति	वि० १२वीं शती	३।२४३
गुणचन्द्र	वि० १६१३-१६५३	३।४२२

गुणदास (गुणकीर्ति)		४।३१९
गुणधर	वि० पू० १ली शती	२।२८
गुणभद्र	वि० १५-१६वी शती	४।२१६
गुणभद्राचार्य	ई० ८९८	३।८
गुणभद्र द्वितीय	वि० १३वी शती	४।५९
गुणवर्म	ई० १२२५	४।३०९
गृद्धपिच्छाचार्य (उमास्वामी या उमास्वाति)	ई० २री शती	२।१४५
गगादास	वि० १८वी शती	३।४४७
गगादास		४।३२२
ज्ञानकीर्ति	वि० १७वी शती	४।५६
ज्ञानभूषण	वि० स० १५००-१५६२	३।३४८
चन्द्रम	ई० १६०५	४।३११
चतुर्मुख कवि	ई० ७८३से पूर्ववर्ती	४।९४
चन्द्रकीर्ति भट्टारक	१७वी शती	३।४४१
चामुण्डराय	ई० १०वी शती	४।२५
चिन्तामणि		४।३२२
चिमणा		४।३२१
चिरन्तनाचार्य	५-६वी शतीसे पूर्ववर्ती	२।७९
छत्रसेन	वि० १८वी शती	३।४४५
जगजीवन	वि० १७-१८वी शती	४।२६०
जगन्नाथ	वि० १७-१८वी शती	४।९०
जगमोहनदास	वि० १८६५के करीब	४।३०५
जटासिंहनन्दि	वि० ७-८वी शती	२।२९१
जनार्दन	शक स० १७वी शती	४।३२२
जन्नकवि	ई० १२वी शती	४।३०९
जयचन्द छावड़ा	वि० १९वी शती	४।२९०
जयसागर	वि० स० १६७४	४।३०२
जयसेन द्वितीय	ई० ११-१२वी शती	३।१४२
जयसेन प्रथम	वि० ११वी शती	३।१४०
जल्हिगले	वि० १५वी शती	४।२४२
जिनचन्द्र भट्टारक	वि० १६वी शती	३।३८१
जिनचन्द्राचार्य	ई० ११-१२वी शती	३।१८४

देवेन्द्रकीर्ति	वि० १८वीं शती	३।४४८
देवेन्द्रकीर्ति		४।३२१
देवेन्द्रमुनि	१२०० ई०	४।३११
दोड्डय्य	वि० १६वीं शती	४।७५
दौलतराम कासलीवाल	वि० स० १७४५	४।२८१
दौलतराम द्वितीय	वि० सं० १८५५-१८५६	४।२८८
द्यानतराय कवि	वि० स० १७३३	४।२७६
धनञ्जय महाकवि	ई० ८वीं शती करीब	४।६
धनपाल	वि० १०वीं शती	४।११२
धनपाल द्वितीय	वि० १५वीं शती	४।२११
धनसागर	स० १८वीं शती	३।४५२
धरसेन	ई० सन् ७३	२।४३
धर्मकीर्ति	वि० १७वीं शती	३।४३२
धर्मधर	वि० १६वीं शती	४।५७
धर्मसेन		४।३१२
धवल कवि	शक स० १०-११वीं शती	४।११६
नथमल विलाला	वि० १९वीं शती	४।२८१
नयनन्दि	वि० ११-१२वीं शती	३।२९०
नयसेन	११२१ ई०	३।२६४
नयसेन	११२५ ई०	४।३०८
नरसेन (नरदेव)	वि० १४वीं शती	४।२२३
नरेन्द्रसेन	ई० सन् १७३०	३।४२४
नरेन्द्रसेन	वि० १२वीं शती मध्य	२।४३३
नागचन्द्र (अभिनव पम्प)	११०० ई०	४।३०८
नागदेव	वि० सं० १५७३ के पूर्व	४।६२
नागवर्म	ई० ९९०	४।३१०
नागवर्मा द्वितीय	ई० ११४५	४।३१०
नागहस्ति	वी० नि० स० ७वीं शती	२।७१
नागेन्द्रकीर्ति		४।३२२
नागोआया		४।३२१
नृपतुंग	ई० सन् ८१४	४।३११
नेमिचन्द्र	१३वीं शती	४।३०९
नेमिचन्द्र कवि	१५वीं शती	४।२४३

नेमिचन्द्र टीकाकार	ई० १६वी शती मध्य	३।८१४
नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती	ई० १०वी शती अन्त	२।४१७
नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव (नेमिचन्द्र मुनि)	वि० १२वी शतीका आदि	२।४३९
पदुमनार		४।३१३
परमेष्ठीसहाय	स० १८६५के करीब	४।३०५
पद्मकीर्ति मुनि	शक स० ९९९ करीब	३।२०५
पद्मनन्दि द्वितीय	ई० ११वी शती	३।१२५
पद्मनन्दि प्रथम	ई० ९७७-१०४३	३।१०७
पद्मनन्दि भट्टारक	ई० १४वी शती	३।३२५
पद्मनाभ	ई० १५८०	४।३११
पद्मनाभ कायस्थ	ई० १४-१५वी शती	४।५४
पद्मप्रभ मलधारिदेव	ई० ११०३ के पूर्व	३।१४५
पद्मसिंह मुनि	वि० स १०८६ के पूर्व	३।२८८
पद्मसुन्दर	वि० १७वी	४।८२
पाण्डे जिनदास	वि० १७वी शती	४।३०४
पात्रकेसरी (पात्रस्वामी)	वि० ६ठी शती अन्त	२।२३७
पामो	स० १८वी शती	३।४५२
पार्श्वदेव	ई० १२-१३वी शती	३।३०२
पार्श्व पण्डित	ई० १२०५	४।३११
पुण्यसागर		४।३२१
पुष्पदन्त	ई० १-२री शतीके करीब	२।५०
पुष्पदन्त महाकवि	ई० १० वी शती	४।१०४
पोन्न कवि	ई० ९५० के करीब	४।३०७
प्रभाचन्द्र	ई० ११वी शती	३।४५
प्रभाचन्द्र वृहत्	वि० ४-५वी	३।२९९
प्रभाचन्द्र भट्टारक	वि० १६वी शती	३।३८४
वखतराम	१९वी शती	४।३०५
वट्टकेर	ई० सन् की १ ली शती	२।११७
वनारसीदास महाकवि	वि० स० १६४३	४।२४८
वन्धुवर्मा	ई० १२००	४।३११
वल्हकवि (वूचिराज)	वि० १६वी शती	४।२३०
वालचन्द्र	ई० १२वी शती	४।१८९

बाहुबली	ई० १५६०	४।३११
बुधजन	१९वी शती मध्य	४।२९८
बुलाकीदास		४।२६३
ब्रह्म कृष्णदास	वि० १७वी शती	४।८४
ब्रह्मगुलाल	वि० १७वी शती	४।३०४
ब्रह्मज्ञानसागर	वि० १७वी शती	३।४४२
ब्रह्मजयसागर	वि० १८वी शती	४।३०२
ब्रह्मजिनदास	वि० स० १४५०-१५२५	३।३३८
ब्रह्मजीवन्धर	वि० १६वी शती	३।३८७
ब्रह्मदेव	ई० १२वी शती	३।३१०
ब्रह्मनेमिदत्त	वि० १६वी शती	३।४०२
ब्रह्म साधारण कवि	वि० १५वी शती	४।२४२
भगवतीदास	वि० १७वी शती	४।२३८
भट्टवोसरि	ई० ११वी शती अन्त	३।२४५
भट्टाकलङ्क,	ई० १६०४	४।३११
भागचन्द	१९-२०वी शती	४।२९६
भारामल	वि० स० १८-१९वी शती	४।३०४
भावसेन त्रैविद्य	ई० १३वी शती मध्य	३।२५६
भास्कर	ई० १४२४	४।३११
भास्करनन्दि	वि० स० १६वी शती	३।३०७
भुवनकीर्ति भट्टारक	वि० स० १५०८-१५२७	३।३३६
भूतवलि	ई० ८७के करीब	२।५५
भूधरदास	वि० १८वी शती	४।२७२
भूधरमिश्र		४।३०६
भैया भगवतीदास	वि० १८वी शती	४।२६३
मगरस	ई० १५०८	४।३१०
मगराज	ई० १५५०	४।३११
मधुर	ई० १३८५	४।३११
मनरगलाल	वि० १९वी शती	४।३०६
मनोहरलाल (मनोहरदास)	स० १८वी शती	४।२८०
मलयकीर्ति	वि० १५वी शती	३।४२८
मल्लिभूषण भट्टारक	वि० १६वी शती	३।३७३
मल्लिषेण	ई० ११वी शती	३।१६९

महनन्दि मुनि	वि० १६वी शती	३।४१९
महाकीर्ति		४।३२१
महावीराचार्य	ई० ९वीं शतीका आदि	३।३४
महासेन द्वितीय	ई० ८-९वी शती	३।२८६
महासेनाचार्य	ई० १०वी शतीका उत्तरार्व	३।५५
महितसागर	शक स० १६९४	४।३२०
महीचन्द्र	शक स० १६-१७वी शती	४।३२१
महीन्दु (महीचन्द्र)	वि० १६वी शती	४।२२५
महेन्द्रसेन (महेन्द्रभूषण)	वि० १७-१८वी शती	३।४५१
माघनन्दि	ई० १२वी शती उत्तरार्ध	३।२८२
माणिकचन्द कवि	वि० १७वी शती	४।२३७
माणिक्यनन्दि	ई० १००३	३।४१
माणिक्यराज	वि० १६वी शती	४।२३५
माधवचन्द त्रैविद्य	ई० ९७५-१०००	३।२८८
मानतुङ्ग	६-७वी शती	२।२६७
मेघराज		४।३१९
मेधावी पण्डित	वि० १६वी शती	४।६७
यतिवृषभ	ई० १७६के करीव	२।८०
यश कीर्ति	वि० १५-१६वी शती	३।४०७
यश.कीर्ति प्रथम	वि० ११-१२वी शती	४।१७८
यशोभद्र	वि० ६ठी शतीके पूर्व	२।४५०
योगदेव पण्डित	१५-१६वी शती	४।२४३
रइधू महाकवि	वि० स० १४५७-१५३६	४।१९८
रघु	शक स० १७-१८वी शती	४।३२२
रत्नकीर्ति	शक स० १८वी शती	४।३२२
रत्नकीर्ति (रत्ननन्दी)	वि० १६वी शती उत्तरार्ध	३।४३४
रत्नाकरवर्णी	ई० १६वी शती	४।३०९
रन्न कवि	ई० १०वी शती	४।३०७
रविचन्द्र मुनीन्द्र	ई० १२-१३वी शती	३।३१६
रविषेण	वि० सं० ८४०से पूर्व	२।२७६
राजमल्ल	वि० १६-१७वी शती	४।३०४
राजमल्ल	वि० १७वी शती	४।७६
राजसिंह कवि (रल्ह)	वि० १४वी शती	४।३०६

राजादित्य	ई० ११२०	४।३११
रामचन्द्र मुमुक्षु	ई० १३वी शती मध्य	४।६९
रामसेन	ई० ११वी शती उत्तरार्ध	३।२३२
रूपचन्द्र (रूपचन्द्र पाण्डे)	स० १६४०	४।२२५
लक्ष्मणदेव	१४वी शती	४।२०७
लक्ष्मीचन्द्र	शक स० १७वी शती	४।३२१
लक्ष्मीचन्द्र कवि		४।२४३
लक्ष्मीदास	वि० १८वी शती	४।३०४
ललितकीर्ति	वि० १९वी शती	३।४५२
लाखू	वि० स० १२७५-१३१३	४।१७१
लोहट	वि० १८वी शती	४।३०३
वज्रसूरि	वि० ६ठी शती	२।४५०
वप्पदेव	वि० ५-६ठी शती	२।९५
वर्द्धमान द्वितीय	वि० १६-१७वी शती	३।४४६
वर्द्धमान प्रथम (भट्टारक)	ई० १४वी शती उत्तरार्द्ध	३।३५८
वसुनन्दि प्रथम	ई० ११-१२वी शती	३।२२३
वाग्भट्ट प्रथम	ई० ११-१२वी शती	४।२२
वादिचन्द्र	वि० स० १६३७-१६६४	४।७१
वादिराज	ई० १०१०-१०६५	३।८८
वादीभसिंह	वि० ९वी शती	३।२५
वामदेव पण्डित	वि० १५वी शती	४।६५
वामन मुनि	ई० १२-१३वी शती	४।३१६,३१७
विजयकीर्ति भट्टारक	वि० १६वी शती	३।३६२
विजयवर्णी	ई० १३वी शती	४।३३
विजयसिंह	वि० १६वी शती	४।२२७
विद्यानन्द	ई० ७७५-८४०	२।३४८
विद्यानन्दि भट्टारक	वि० स० १४९९-१५३८	३।३६९
विनयचन्द्र	ई० १२वी शती	४।१९१
विमलकीर्ति	१३वी शती	४।२०६
विमलसूरि	ई० ४थी शती लगभग	२।२५४
विशालकीर्ति	शक स० १८वी शती	४।३२२
विशेषवादि	ई० ११वी शतीसे पूर्व	२।४५१
वीर कवि	वि० स० ११वी शती	४।१२४

सदासुख काशलीवाल	वि० स० १८५२	४।२९४
सुधारू कवि		४।३०६
समन्तभद्र	ई० २री शती	२।१७१
सहवा	शक स० १७वी शती	४।३२२
सालिवाहन कवि	वि० १७वी शती	४।२६२
साल्व	ई० १५५०	४।३११
सावाजी	शाक स० १६वी शती	४।३२१
विद्धसेन	वि० स० ६२५ के आसपास	२।२०५
सिहनन्दि	ई० २री शती	२।४४४
सिह महाकवि	वि० १२-१३वी शती	४।१६६
सुप्रभाचार्य	११-१२वी शती	४।१९७
सुमति	८वी शतीके लगभग	२।४४६
सुमतिकीर्ति	वि० १६-१७वी शती	३।३७७
सुमतिदेव	७-८वी शती	३।२८७
सुरेन्द्रकीर्ति	वि० १८वी शती	३।४५१
सुरेन्द्र भूषण	वि० १८वी शती उत्तरार्द्ध	३।४५०
सूरिजन		४।३२१
सोमकीर्ति	वि० स० १४८०-१५००	३।३४४
सोमदेवसरि	ई० ९५९	३।७०
सोमनाथ	ई० ११५०	४।३११
सोमसेन	वि० १७वी शती उत्तरार्ध	३।४४३
स्वयम्भुदेव महाकवि	ई० ७८३	४।९५
हरिचन्द कवि (जगमित्रहल)	वि० १५वी शती	४।२१४
हरिचन्द द्वितीय	१५वी शती	४।२२२
हरिचन्द्र महाकवि	ई० १०वी शती	४।१४
हरिदेव	वि० १२-१५वी शती	४।२१८
हरिषेण	ई० १०वी शती मध्य	३।६३
हरिषेण	वि० ११वी शती	४।१२०
हस्तिमल्ल	ई० ११६१-११८१	३।२७५



२ ग्रन्थानुक्रमणिका

अध्यात्मसन्दोह	जोइन्दु	२।२५१
अध्यात्मसवैया	रूपचन्द्र	४।२५८
अनगारधर्मामृत (धर्मामृत)	आशाधर	४।४६
अनयमीकथा	भगवतीदास	४।२४०
अनन्तकथा	जिनसागर	३।४५०
अनन्तनाथपुराण	जन्न	४।३०९
अनन्तनाथपूजा	गुणचन्द्र	३।४२३
अनन्तनाथस्तोत्र	क्षत्रसेन	३।४४०
अनन्तव्रतकथा	भट्टारक पद्मनन्दि	३।३२५
अनन्तव्रतकथा	ललितकीर्त्ति	३।४५३
अनन्तव्रतकथा	नेमिचन्द्र	४।२४३
अनन्तव्रतकथा	अभयकीर्त्ति	४।३२१
अनन्तव्रतकथा	चिमणा	४।३२१
अनन्तव्रतपूजा	जिनदास	३।३३९
अनन्तव्रतरास	जिनदास	३।३३९
अनादिबत्तीसिका	भगवतीदास	४।२७२
अनिरुद्धहरण	ब्रह्म जयसागर	४।३०३
अनुपेहारास	जल्हिगले	४।२४२
अनुभवप्रकाश	दीपचन्द शाह	४।२९४
अनेकार्थनाममाला	भगवतीदास	४।२४१
अपराजितशतक	रत्नाकरवर्णी	४।३०९
अमरकोशटीका	आशाधर	४।४५
अमरसेनचरित्त	माणिक्यराज	४।२३७
अमितगतिश्रावकाचारवचनिका	भागचन्द	४।२९७
अम्बादेवीरास	देवदत्त	४।२४३
अम्बादेवीरास	देवदत्तमहाकवि	४।१२४
अम्बिकाकल्प	शुभचन्द्र	३।३६५
अम्बिकारास	ब्रह्म जिनदास	३।३४३
अर्घकाण्ड	दुर्गदेव	३।२०४
अर्थप्रकाशिकावचनिका	सदासुख काशलीवाल	४।२९६
अर्थप्रकाशिका-टीका	परमेष्ठीसहाय	४।३०५
अर्थसदृष्टि	टोडरमल	४।२८६

अर्द्धकथानक	बनारसीदास	४।२५५
अर्द्धनेमिपुराण	नेमिचन्द्र	४।३०९
अर्हत्पाशाकेवली	वृन्दावनदास	४।३०१
अर्हन्तआरती	महीचन्द्र	४।३२१
अलङ्कारचिन्तामणि	अजितसेन	४।३१
अष्टपदार्थ		४।३१८
अष्टपाहुडभाषा	जयचन्द छाबडा	४।२९२
अष्टशती (देवागमविवृत्ति)	अकलङ्क	२।३१७
अष्टसहस्री	विद्यानन्द	२।३६३
अष्टाङ्गसम्यक्त्वकथा	जिनदास	३।३४०
अष्टाङ्गहृदयोद्योतिनीटीका	आशाधर	४।४५
अष्टाह्निका-पूजा	सकलकीर्त्ति	३।३३०
अष्टाह्निका-कथा	शुभचन्द्र	३।३६५
अष्टाह्निकागीत	शुभचन्द्र	३।३६६
अहनानुरूपकवितासंग्रह		४।३१७
आइरियभत्ति	कुन्दकुन्द	२।११५
आकाशपञ्चमी कथा	ललितकीर्त्ति	३।४५३
आगमविलास	द्यानतराय	४।२७८
आगमसार	भट्टारक सकलकीर्त्ति	३।३३०
आचारसार	वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती	३।२७१
आत्मबत्तीसी	दौलतराम कासलीवाल	४।२८२
आत्मसम्बोधकाव्य	रइधू	४।२०१
आत्मसम्बोधनकाव्य	ज्ञानभूषण	३।३५२
आत्मानुशासन	गुणभद्र	३।११
आत्मानुशासन-टीका	प्रभाचन्द्र	३।५०
आत्मानुशासन-वचनिका	टोडरमल	४।२८६
आत्मावलोकन	दीपचन्दशाह	४।२९४
आदीत्यरास	भगवतीदास	४।२३९
आदित्यवारकथा	पुण्यसागर	४।३२१
आदित्यवारकथा	गङ्गादास	४।३२२
आदित्यवारकथा	भगवतीदास	२।२४०
आदित्यवारकथा	गङ्गादास	३।४४८

आश्चर्यचतुर्दशी	भगवतीदास	४।२७२
आस्रव-त्रिभङ्गी	श्रुतमुनि	३।२७४
आध्यात्मिक पत्र	टोडरमल	४।२८६
इष्टोपदेश	पूज्यपाद	२।२२९
इष्टोपदेश-टीका	आशाधर	४।४५
उत्तरपुराण	भट्टारक सकलकीर्त्ति	३।३३३
,,	गुणभद्र	३।९
उदयनकुमारकाव्य		४।३१७
उदयादित्यालङ्कार	उदयादित्य	४।३११
उपदेशरत्नमाला	रइधू	४।२०१
उपदेशशतक	द्यानतराय	४।२७७
उपदेशशुद्धसार	तारणस्वामी	४।२४४
उपदेशसिद्धान्त (उपदेशरत्नमाला)	दीपचन्दशाह	४।२९४
उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला	रत्नकीर्त्ति	४।३३२
उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला-वचनिका	भागचन्द	४।२९७
उपासकाचार	अमितगति द्वितीय	२।३९४
उपासकाध्ययन	वसुनन्दि प्रथम	३।२२७
ऋषभनाथकी धूलि	सोमकीर्त्ति	३।३४७
ऋषिपञ्चमी	सुरेन्द्रभूषण	३।४५०
ऋषिमण्डल-पूजा	ज्ञानभूषण	३।३५२
ऋषिमण्डलपूजा-वचनिका	सदासुख कासलीवाल	४।२९६
एकीभावस्तोत्र	वादिराज	३।१०३
औदार्यचिन्तामणि	श्रुतसागरसूरि	३।३९८
कथाकोश	श्रीचन्द्र	४।१३५
,,	जोधराजगोदीका	४।३०३
,,	ब्रह्मदेव	३।३१३
कथाकोशछन्दोवद्ध	टेकचन्द	४।३०८
कथाविचार	भावसेन त्रैविद्य	३।२६०
कन्नडव्याकरण	नयसेन	३।२६५
कमलवत्तीसी	तारणस्वामी	४।२४४
करकण्डुचरिउ	कनकामर	४।१६१
करकण्डुचरित्त	रइधू	४।२०१

कृपणजगावनचरित	ब्रह्म गुलाल	४।३०४
केवलभुक्तिप्रकरण	शाकटायन	३।२४
कोइल-पंचमी-कहा	ब्रह्म साधारण	४।२४२
कोमुइ-कहा-पबधु	रइधू	४।२०१
क्रियाकलाप	आशाधर	४।४५
क्रियाकलाप-टीका	प्रभाचन्द्र	३।५१
क्रियाकोश	किशनसिंह	४।२८०
क्रियाकोषभाषा	दौलतराम कासलीवाल	४।२८२
क्षत्रचूडामणि	वादीभसिंह	३।३१
क्षपणासार	नेमिचद्र सिद्धान्तचक्रवर्ती	२।४३३
क्षपणासार-वचनिका	टोडरमल	४।२८६
क्षेत्रगणित	राजादित्य	४।३११
क्षेत्रपाल-गीत	शुभचन्द्र	३।३६६
क्षेत्रपाल-पूजा	गगादास	३।४४८
क्षेत्रपाल-स्तोत्र	जिनसागर	३।४५०
खगेन्द्रमणिदर्पण	मगराज	४।३११
खटोलना-गीत	रूपचन्द्र	४।२५९
खटोला-रास	ब्रह्मजीवन्धर	३।३८८
खातिकाविशेष	तारणस्वामी	४।२४४
खिण्डीरास	भगवतीदास	४।२३९
गणधरवलयपूजा	शुभचन्द्र	३।३६५
,,	सकलकीर्ति भट्टारक	३।३३०
गणितसार (त्रिशतिका)	श्रीधर	३।१९२
गणितसारसग्रह	महावीराचार्य	३।२६
गद्यकथाकोश	प्रभाचन्द्र	३।५०
गद्यचिन्तामणि	वादीभसिंह	३।३३
गन्धहस्तिमहाभाष्य (अनुपलब्ध)	समन्तभद्र	२।१९८
गरुडपञ्चमी-कथा	महीचन्द्र	४।३२१
गिरिनार-यात्रा	मेघराज	४।३२०
गीतपरमार्थी (परमार्थगीत)	रूपचन्द	४।२५८
गीतवीतराग	अभिनव चारुकीर्ति	४।८७
गुणमञ्जरी	भगवतीदास	४।२७२

गुणस्थानभेद	दीपचंदशाह	४।२९४
गुणस्थान-वेलि	ब्रह्मजीवन्धर	३।३८८
गुरु-छन्द	शुभचन्द	३।३६९
गुरु-जयमाल	जिनदास	३।३४०
गुरूपदेशश्रावकाचार	डालूराम	४।३०६
गुरु-पूजा	चन्द्रकीर्त्ति	३।४४२
गुरु-पूजा	ब्रह्मजिनदास	३।३३९
,,	जिनदास	३।३४०
गुर्वावली	सोमकीर्त्ति	३।३४७
गोम्मटदेव-पूजा	ब्रह्मज्ञानसागर	३।४४३
गोम्मटसार कर्मकाण्ड	नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती	२।४२४
गोम्मटसार कर्मकाण्ड-टीका	टोडरमल	४।२८६
गोम्मटसार जीवकाण्ड	नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती	२।४२३
गोम्मटसार जीवकाण्ड-टीका	टोडरमल	४।२८६
गोम्मटसार-पूजा	,,	४।२८६
गोम्मटेश्वर-चरित्र	चन्द्रम	४।३११
गोवैद्यग्रन्थ	कीर्त्तिवर्मा	४।३११
ज्ञानचेतनानुप्रेक्षा	गुणचन्द्र	३।४२३
ज्ञानचन्द्राभ्युदय	कल्याणकीर्त्ति	४।३११
ज्ञानदर्पण	दीपचदशाह	४।२९४
ज्ञानदीपक	ब्रह्मदेव	३।३१३
धानदीपिका	आशाधर	४।४५
ज्ञानलोचनस्तोत्र	जगन्नाथ	४।९१
ज्ञानविरागविनती	ब्रह्मजीवन्धर	३।३८७
ज्ञानसमु्चसार	तारणस्वामी	४।२४४
ज्ञानसार	पद्मसिंहमुनि	३।२८८
ज्ञानसूर्योदयनाटक	वादिचद्र	४।७३
ज्ञानसूर्योदयनाटक-वचनिका	भागचन्द	४।२९७
ज्ञानार्णव	शुभचंद्र	३।१५३
ज्ञानार्णव-भाषा	जयचद छावडा	४।२९२
चदप्पहचरिउ	श्रीधर प्रथम	४।१४४
,,	यश कीर्त्ति	४।१७९

चौवीसदण्डक	दौलतराम कासलीवाल	४।२८२
चौरासीजाति-जयमाल	जिनदास	३।३४०
चौवीसी-पाठ	मनरंगलाल	४।३०६
चौबीसी-पाठ	वृन्दावनदास	४।३०१
छत्रसेनगुरु-आरती	छत्रसेन	३।४४६
छद्मस्थवाणी	तारणस्वामी	४।२४४
छन्दशतक	वृन्दावनदास	४।३०१
छन्दोनुशासन	अभिनव वाग्भट्ट	४।३९
छन्दोम्बुधि	नागवर्म	४।३१०
छहढाला	दौलतराम द्वितीय	४।२८९
छेदपिण्ड	इन्द्रनन्दि द्वितीय	३।२२१
जंबुसामिचरिउ	वीर कवि	४।१२७
जंबूदीवपण्णत्ति	पद्मनन्दिप्रथम	३।११०
जटामुकुट	गङ्गादास	३।४४८
जन्माभिषेक	पूज्यपाद	२।२२५
जम्बूचरित	खुशालचन्द काला	४।३०३
जम्बूद्वीपपूजा	जिनदास	३।३४०
,,	ब्रह्म जिनदास	३।३३९
जम्बूस्वामीचरित	नथमल विलाला	४।२८१
,,	राजमल्ल	४।७९
,,	पाण्डे जिनदास	४।३०४
,,	दयासागर	४।३२२
,,	ब्रह्म जिनदास	३।३४०
,,	भट्टारक सकलकीर्त्ति	३।३२९
जम्बूस्वामीपुराण	जिनसेन	४।३२२
जम्बूस्वामी रास	भुवनकीर्त्ति	३।३३७
,,	ब्रह्म जिनदास	३।३४३
जम्बूस्वामिवेलि	वीरचन्द्र	३।३७६
जयधवला (कसायपाहुड-टीका)	जिनसेन द्वितीय	२।३४७
जलगालन-रास	ज्ञानभूषण	३।३५४
जसहरचरिउ	अमरकीर्त्तिगणि	४।१५७
,,	पुष्पदन्त	४।१११

जीवन्धरपुराण	जिनसागर	३।४५०
,,	जिनसागर	४।३२२
जीवन्धररास	भट्टारक भुवनकीर्त्ति	३।३३७
,,	जिनदास	३।३४०
जीवन्धरषट्पादि	कोटेश्वर	४।३११
जीवसम्बोधनै		४।३१८
जीवसिद्धि (अनुपलब्ध)	समन्तभद्र	२।१९८
जैनगणिततटीकोदाहरण	राजादित्य	४।३११
जैनेन्द्रव्याकरण	पूज्यपाद	२।२३०
जोइभत्ति	कुन्दकुन्द	२।११५
जोगीरास	भगवतीदास	४।२४०
जोगीरासो	पाण्डे जिनदास	४।३०४
ज्येष्ठजिनवरकथा	ललितकीर्त्ति	३।४५३
ज्येष्ठजिनवरपूजा	चन्द्रकीर्त्ति	३।४४२
,,	जिनसागर	३।४५०
,,	ब्रह्म जिनदास	३।३३९
,,	जयसागर	४।३०२
ज्येष्ठजिनवररास	ब्रह्म जिनदास	३।३४२
ज्योतिर्ज्ञानविधि	श्रीधर	३।१९३
ज्वालामालिनीकल्प	इन्द्रनन्दि प्रथम	३।१८०
ज्वालिनीकल्प	मल्लिषेण	३।१७६
झुम्बिकगीत	ब्रह्म जीवन्धर	३।३९०
झूलना	छत्रसेन	३।४४६
टडाणागीत	बल्ह	४।२३२
ढडाणारास	भगवतीदास	४।२३९
णमोकारगीत	सकलकीर्त्ति	३।३३०
णायकुमारचरिउ	पुष्पदन्त	४।११०
णिज्झरपंचमी-कहा	ब्रह्म साधारणकवि	४।२४२
णिद्दुक्खसत्तमी-कहा	गुणभद्र	४।२१८
,,	बालचन्द्र	४।१९०
णिव्वाणभत्ति	कुन्दकुन्द	२।११६
णेमिणाह-चरिउ	रइधू	४।२०१

तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकार (महापुराण)	पुष्पदन्त	४।११०
तीनचौबीसी-स्तुति	ब्रह्म जीवन्धर	३।३९१
तीर्थंकरके भजन	महितसागर	४।३२०
तीर्थजयमाला	जयसागर	४।३०२
तीसचौबीसीपाठ	वृन्दावनदास	४।३०१
तीसचौबीसीपूजा	शुभचन्द्र	३।३६५
तेरहद्वीपपूजा	,,	३।३६५
तत्त्वार्थश्रुतसागरी-टीका	टेकचन्द	४।३०५
त्रिभङ्गीसार	तारणस्वामी	४।२४४
त्रिलोकसार-टीका	माधवचन्द त्रैविद्य	३।२८८
त्रिलक्षणकदर्थन	पात्रकेसरी (पात्रस्वामी)	२।२४१
त्रिलोकदर्पण	खडगसेन	४।२८०
त्रिलोकसार	नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती	२।४२७
त्रिलोकसार-सस्कृतटीका	माधवचन्द्र त्रैविद्य	३।२९०
,,	टोडरमल	४।२८६
त्रिलोकसारपूजा	वामदेव	४।६७
त्रिषष्ठिस्मृतिशास्त्र	आशाधर	४।४७
त्रेपनक्रिया	ब्रह्मगुलाल	४।३०४
त्रेपनक्रियागीत	सोमकीर्त्ति	३।३४७
त्रेपनक्रिया-विनती	गगादास	३।४४८
त्रैलोक्यदीपक	वामदेव पण्डित	४।६६
,,	वामदेव	४।६७
थोस्सामि-थुदि (तित्थयरभत्ति)	कुन्कुन्द	२।११६
दसणकहरयणकरडु	श्रीचन्द्र	४।१३४
दसण-पाहुड	कुन्दकुन्द	२।११४
दयारस-रास	गुणचन्द्र	३।४२४
दर्शन-सार	देवसेन	२।३७०
दर्शन-स्तोत्र	ब्रह्म जीवन्धर	३।३८७
दशभक्त्यादिमहाशास्त्र	वर्द्धमान द्वितीय	३।४४७
दशलक्षण	महितसागर	४।३२०
दशलक्षणकथा	ब्रह्म ज्ञानसागर	३।४४३

धर्मनाथपुराण	मधुर	४।३११
धर्मपरीक्षा	अमितगति द्वितीय	२।३९३
,,	श्रुतकीर्त्ति	३।४३२
,,	विशालकीर्त्ति	४।३२२
,,	जयसेन	४।३०८
,,	मनोहरलाल	४।२८१
धर्मपरीक्षारास	ब्रह्म जिनदास	३।३४२
धर्मरत्नाकर	जयसेन	३।१४१
धर्मरत्नोद्योत	जगमोहनदास	
धर्मरसिक	सोमसेन	३।४४५
धर्म-विलास (द्यानत-विलास)	द्यानतराय	४।२७८
धर्मशर्माभ्युदय	हरिचन्द	४।२०
धर्मसग्रहश्रावकाचार	मेधावी	४।६८
धर्मसरोवर	जोधराज गोदीका	४।३०३
धर्मसारदोहाचौपाई	शिरोमणिदास	४।३०३
धर्मामृत	जयसेन	४।३०८
,,	गुणदास	४।३१९
,,	जयसेन	३।२६५
धर्मोपदेशचूडामणि	अमरकीर्त्ति गणि	४।१५८
धर्मोपदेशपीयूषवर्षी श्रावकाचार	ब्रह्म नेमिदत्त	३।४०५
धवलाटीका	वीरसेन	२।३२४
ध्यानप्रदीप	अमरकीर्त्ति गणि	४।१५८
नट्रीणाई कवितासग्रह		४।३१७
नन्दीश्वर-आरती	देवेन्द्रकीर्त्ति	३।४४९
नन्दीश्वर-उद्यापन	जिनसागर	३।४५०
नन्दीश्वरपूजा	चन्द्रकीर्त्ति	३।४४२
नन्दीश्वरव्रत-कथा	ललितकीर्त्ति	३।४५३
नरकउतारीदुग्धारसकथा	गुणभद्र	४।२१८
नरकउतारिदुधारसी-कथा	बालचन्द्र	४।१९१
नरपिंगल	शुभचन्द्र	४।३११
नवकारपच्चीसी	धनसागर	३।४५२
नवरस पद्यावली	बनारसीदास	४।२५२

नेमिजिनेश्वर सगीत	मगरस	४।३१०
नेमिधर्मोपदेश	ब्रह्म ज्ञानसागर	३।४४३
नेमिनरेन्द्रस्तोत्र स्वोपज्ञ	जगन्नाथ	४।९१
नेमिनाथ छन्द	शुभचन्द्र	३।३६९
नेमिनाथपुराण	ब्रम्ह नेमिदत्त	३।४०४
,,	भागचन्द	४।२९७
,,	कर्णपार्य	४।३०९
नेमिनाथपूजा	ब्रम्ह ज्ञानसागर	३।४४३
नेमिनाथबारहमासा	वल्ह	४।२३३
नेमिनाथ भवान्तर	सहवा	४।३२२
,,	महीचन्द्र	४।३२१
नेमिनाथरास	जिनसेन द्वितीय (भट्टारक)	३।३८७
नेमिनाथवसन्त	वल्ह	४।२३२
नेमिनिर्वाणकाव्य	वाग्भट् प्रथम	४।२४
,,	ब्रह्मनेमिदत्त	३।४०४
नेमिनिर्वाणकाव्यपञ्जिका टीका	ज्ञानभूषण	३।३५२
नेमीश्वरगीत	सकलकीर्ति	३।३३०
नेमीश्वररास	जिनदास	३।३४०
नौकारश्रावकाचार	जोइन्दु	२।२४८
न्यायकुमुदचन्द्र (लघीयस्त्रयव्याख्या)	प्रभाचन्द्र	३।५०
न्यायदीपिका	भावसेन त्रैविद्य	३।२६१
,,	अभिनव धर्मभूषण	३।३५७
न्यायदीपिकावचनिका	सदसुख कासलीवाल	४।२९६
न्यायविनिश्चय (सवृत्ति)	अकलङ्क	२।३०९
न्यायविनिश्चयविवरण	वादिराज	३।१०४
न्यायसूर्यावलि	भावसेन त्रैविद्य	३।२६१
पउमचरिउ	स्वयम्भू	४।९८,१०३
पउमचरिय	विमलसूरि	२।२५७
पचमीचरिउ	स्वयभु	४।१०१,१०३
,,	चतुर्मुख	४।९५
पक्खवइवयकहा	गुणभद्र	४।२१७
पखवाडारास	भगवतीदास	४।२३९

पञ्चकल्याणकपूजा	शुभचन्द्र	३।३६५
पञ्चकल्याणकोद्यापनपूजा	ज्ञानभूषण	३।३५२
पञ्चगुरुभक्ति	कुन्दकुन्द	२।११५
पञ्चपरमेष्ठीगुणवर्णन	जिनदास	३।३४०
,,	महितसागर	४।३२०
पञ्चपरमेष्ठीपूजा	सकलकीर्ति	३।३३०
पञ्चमङ्गल (मङ्गलगीतप्रबन्ध)	रूपचन्द्र	४।२६०
पञ्चसंग्रह	अमितगतिद्वितीय	२।३९५
पञ्चाध्यायी	राजमल्ल	४।८१
पञ्चास्तिकाय	कुन्दकुन्द	२।११३
,,	बुधजन	४।२९८
पञ्चास्तिकायटीका	अमृतचन्दसूरि	२।४१७
पञ्चास्तिकाय-तात्पर्यवृत्तिटीका	जयसेन द्वितीय	३।१४३
पञ्चेन्द्रियसवाद	भैया भगवतीदास	४।२६९
पण्डितपूजा	तारणस्वामी	४।२४४
पत्तुपाट्ट-कवितासंग्रह		४।३१७
पत्रपरीक्षा	विद्यानन्द	२।३५६
पदमपुराणवचनिका	दौलतराम कासलीवाल	४।२८२
पदार्थसार		४।३१८
पदसंग्रह	भागचन्द्र	४।२९७
,,	बुधजन	४।२९८
,,	जयचन्द छावडा	४।२९२
,,	दौलतराम द्वितीय	४।२८९
पदसाहित्य	भैया भगवतीदास	४।२६५
,,	द्यानतराय	४।२७७
,,	भूधरदास	४।२७६
पद्मचरित (पद्मपुराण)	रविषेण	२।२७८
पद्मनन्दि-पञ्चविंशति	पद्मनन्दि द्वितीय	३।१२९
पद्मपुराण	खुशालचन्द्र काला	४।३०३
,,	धर्मकीर्ति	३।४३४
,, (अपूर्ण)	चिन्तामणि	४।३२२
,,	गुणदास	४।३१९

पद्मावतीकथा	जिनसागर	३।४५०
पद्मावतीपूजा	सुरेन्द्रकीर्ति	३।४५१
पद्मावतीस्तोत्र	जिनसागर	३।४५०
,,	छत्रसेन	३।४४६
पद्यसंग्रह	नरेन्द्रकीर्ति	४।३२२
परमहंस (रूपक काव्य)	सूरिजन	४।३२१
परमहंसरास	ब्रह्मजिनदास	३।३४१
परमागमसार	श्रुतमुनि	३।२७५
परमात्मप्रकाश	जोइंदु	२।२४८
परमात्मप्रकाशवचनिका	दौलतराम कासलीवाल	४।२८२
परमात्मराजस्तोत्र	सकलकीर्ति	३।३३५
परमार्थदोहाशतक (दोहापरमार्थ)	रूपचन्द्र	४।२५७
परमार्थपुराण	दीपचन्दशाह	४।२९४
परमार्थप्रकाशवृत्ति	ब्रह्मदेव	३।३१५
परमेष्ठीप्रकाशसार	श्रुतकीर्ति	३।४३२
परीक्षामुख	माणिक्यनन्दि	३।४३
पल्लिविधानकथा	ब्रह्मज्ञानसागर	३।४४३
पल्लिव्रतोद्यापन	शुभचन्द्र	३।३६५
पवनदूत	वादिचन्द्र	४।७३
पाण्डवपुराण	चन्द्रकीर्ति	३।४४२
,,	बुलाकीदास	४।२६३
,,	यशःकीर्ति	३।४११
,,	शुभचन्द्र	३।३६७
,,	ठकाप्पा	४।३२२
,,	वादिचन्द्र	४।७३
पात्रकेसरीस्तोत्र (जिनेन्द्रगुण-संस्तुति)	पात्रकेसरी	२।२४०
पारिखनाथभवान्तर	मेघराज	४।३२०
,,	गङ्गादास	४।३२२
पार्श्वनाथकाव्यपञ्जिका	शुभचन्द्र	३।३६५
पार्श्वनाथचरित्र	वादिराज	३।९२
पार्श्वनाथपुराण	पार्श्व पण्डित	४।३११
,, (पार्श्वपुराण)	चन्द्रकीर्ति	३।४४२

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय-टीका (अपूर्ण)	टोडरमल	४।२८६
,, (टीकापूर्ति)	दौलतराम कासलीवाल	४।२८२
पुरुषार्थसिद्ध्युपायटीका	भूधरमिश्र	४।३०६
पुष्पदन्तपुराण	गुणवर्म	४।३०९
पुष्पाञ्जलिकथा	जिनसागर	३।४५०
पुष्पाञ्जलिरास	जिनदास	३।३३९
पुष्पाञ्जलिव्रतकथा	ललितकीर्ति	३।४५३
,,	ब्रह्मजिनदास	३।३३९
पुष्पाञ्जलिव्रतपूजा	शुभचन्द्र	३।३६५
पूजाष्टकटीका	ज्ञानभूषण	३।३५२
पूर्णपञ्चाशिका	द्यानतराय	४।२७७
पोसहरास	ज्ञानभूषण	३।३५४
प्रतिबोधचिन्तामणि	श्रीभूषण	३।४४१
प्रतिष्ठातिलक	ब्रह्मदेव	३।३१३
प्रतिष्ठापाठ	हस्तिमल्ल	३।२८
प्रतिष्ठासारसंग्रह	वसुनन्दिप्रथम	३।२३१
प्रतिष्ठासूक्तिसंग्रह	वामदेव	४।६७
प्रद्युम्नचरित	सिंह कवि	४।१७०
,,	रइधू	४।२०१
,,	सुधारू कवि	४।३०६
,,	महासेन	३।५७
,,	सोमकीर्ति	३।३४७
प्रमाणनिर्णय	वादिराज	३।१०५
प्रमाणपदार्थ (अनुपलब्ध)	समन्तभद्र	२।१९८
प्रमाणपरीक्षा	विद्यानन्द	२।३५५
प्रमाणपरीक्षावचनिका	भागचन्द	४।२९७
प्रमाणप्रमेयकलिका	नरेन्द्रसेन	३।४२७
प्रमाणसंग्रह (सवृत्ति)	अकलंक	२।३११
प्रमाणसंग्रहभाष्य (प्रमाणसंग्रहालङ्कार)	वृहद् अनन्तवीर्य	३।४१
प्रमा-प्रमेय	भावसेन त्रैविद्य	३।२५९
प्रमेयकमलमार्त्तण्ड (परीक्षामुख-व्याख्या)	प्रभाचन्द्र	३।५०

प्रमेयरत्नमाला ,,	लघु अनन्तवीर्य	३।५३
प्रमेयरत्नमालालङ्कार (प्रमेयरत्नालङ्कार)	अभिनव चारुकीर्ति	४।८८
प्रमेयरत्नमालाटीका	जयचन्द्र छावडा	४।२९२
प्रमेयरत्नाकर (अनुपलब्ध)	आशाधर	४।४५
प्रवचनसार	कुन्दकुन्द	२।१११
प्रवचनसार	जीवराज गोदीका	४।३०३
,,	वृन्दावनदास	४।३०१
प्रवचनसारटीका	अमृतचन्द्र सूरि	२।४१६
प्रवचनसारतात्पर्यवृत्तिटीका	जयसेन द्वितीय	३।१४३
प्रवचनसारसरोजभास्कर	प्रभाचन्द्र	३।५०
प्रश्नोत्तरोपासकाचार	सकलकीर्ति	३।३३३
प्राकृतपञ्चसंग्रह	अमितगति द्वितीय	२।३९५
प्राकृतपञ्चसंग्रहटीका	सुमतिकीर्ति	३।३७९
प्राकृतपञ्चसंग्रहवृत्ति	पद्मनन्दि प्रथम	३।१२४
प्राकृतलक्षण	शुभचन्द्र	३।३६५
प्राकृतव्याकरण	समन्तभद्र	२।१९८
प्रीतिंकरचरित	जीवराज गोदीका	४।३०३
प्रीतिंकरमहामुनिचरित	ब्रह्मनेमिदत्त	३।४०४
बनारसीविलास	बनारसीदास	४।२५४
बलहद्दचरिउ	रइधू	४।२०४
बारस-अणुवेक्खा	कुन्दकुन्द	२।११४
बारस-अणुवेक्खारास	योगदेव पण्डित	४।२४३
बारह-भावना	रइधू	४।२०१
बारहमासा	गुणचन्द्र	३।४२३
,,	महेन्द्रसेन	३।४५१
बारहव्रत	गुणचन्द्र	३।४२३
बारहव्रतगीत	जिनदास	३।३४०
बालग्रहचिकित्सा	देवेन्द्रमुनि	४।३११
बाहुबलिचरिउ (कामचरिउ)	धनपाल द्वितीय	४।२१४
बाहुबलिवेलि (बाहुवेलि)	वीरचन्द्र	३।३७७
बीजगणित	श्रीधर	३।१९२

રત્નત્રય-રાસ	સકલકીર્તિ	૩।૩૩૦
રત્નત્રયી	રઇધૂ	૪।૨૦૧
રત્નભૂષણસ્તુતિ	જયસાર	૪।૩૦૨
રત્નાકરશતક	રત્નાકરવર્ણી	૪।૩૦૯
રયણત્તયવય-કહા	ગુણભદ્ર	૪।૨૧૮
રયણસાર	કુન્દકુન્દ	૨।૧૧૫
રવિવય-કહા (આદિત્યવારકથા)	યશ કીર્તિ	૩।૪૧૧
રવિવય-કહા	બ્રહ્મસાધારણ કવિ	૪।૨૪૨
રવિવાર-કથા	મહિતસાગર	૪।૩૨૦
રવિવ્રત-કથા	નેમિચન્દ્ર	૪।૨૪૩
"	બ્રહ્મજિનદાસ	૩।૩૪૩
રસરત્નાકર	સાલ્વ	૪।૩૧૧
રાખીબન્ધન રાસ	બ્રહ્મજ્ઞાનસાગર	૩।૪૪૩
રાજમતી-નેમિસુર ઢમાલ	ભગવતીદાસ	૪।૨૪૦
રાજમતિ-રાસ	ગુણચન્દ્ર	૩।૪૨૪
રાજીમતિ-વિપ્રલમ્ભ	આશાધર	૪।૪૫
રાત્રિભોજન-કથા	ભારામલ	૪।૩૦૫
રાત્રિભોજનત્યાગ-કથા	બ્રહ્મનેમિદાસ	૩।૪૦૬
રાત્રિભોજન ત્યાગવ્રતકથા	કિશનસિંહ	૪।૨૮૦
રામચન્દ્રહલદુલિ	ગુણદાસ	૪।૩૧૯
રામચરિત	બ્રહ્મજિનદાસ	૩।૩૪૦
રામપુરાણ	સોમસેન	૩।૪૪૪
"	પદ્મનાભ	૪।૩૧૧
રામ-સીતારાસ	બ્રહ્મજિનદાસ	૩।૩૪૧
રામાયણ	કુમુદેન્દુ	૪।૩૧૧
રાયમલ્લાભ્યુદયમહાકાવ્ય	પદ્મસુન્દર	૪।૮૩
રાવણપાર્શ્વનાથસ્તોત્ર	ભટ્ટારક પદ્મનદિ	૩।૩૨૩
રિટ્ઠણેમિચરિઉ	સ્વયભુ	૪।૧૦૧,૧૦૩
રિષ્ટસમુચ્ચય	દુર્ગદેવ	૩।૧૯૯
રુક્મિણીહરણ	ગુણદાસ	૪।૩૧૯
રોહિણીરાસ	જિનદાસ	૩।૩૩૯
રોહિણીવિહાણકહા	દેવનદિ	૪।૨૪૨

रोहिणीव्रतकथा	ललितकीर्ति	३।४५३
रोहिणीव्रतरास	भगवतीदास	४।२४०
लघीयस्त्रय (स्वोपज्ञवृत्तिसहित)	अकलङ्कदेव	२।३०६
लघुद्रव्यसंग्रह	नेमिचन्दमुनि	२।४४२
लघुनयचक्र	देवसेन	२।३८१
लवुसीतासतु	भगवतीदास	४।२४०
लद्धिविहाणकहा	गुणभद्र	४।२१८
लब्धिविधानकथा	ललितकीर्ति	३।४५३
लब्धिसार	नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती	२।४३२
लब्धिसार टीका	टोडरमल	४।२८६
लवणांकुशकथा	जिनसागर	३।४५०
लाटीसंहिता	राजमल्ल	४।८०
लिंगपाहुड	कुन्दकुन्द	२।११४
वड्ढमाणकहा (जिणरत्तिविहाणकहा)	नरसेन	४।२२३
वड्ढमाणचरिउ	श्रीधर प्रथम	४।१४२
,,	हरिचन्द्र जयमित्रहल	४।२१६
वर्धमानचरित	नवलशाह	४।४४५
वर्द्धमानचरित	भट्टारक पद्मनन्दि	३।३२६
,,	असग	४।१२
,,	भट्टारक सकलकीर्ति	३।३३१
वर्द्धमानपुराण	आचण्ण	४।३११
वरांगचरिउ	तेजपाल	४।२११
,,	देवदत्त	४।२४३
वरांगचरित		४।१२४
,,	जटासिंहनन्दि	२।२९५
,,	भट्टारक वर्द्धमान प्रथम	३।३६०
वल्लैयापति महाकाव्य		४।३१७
वसन्तविलास (वसन्तविद्याविलास)	सुमतिकीर्ति	३।३८०
वसुनन्दिश्रावकाचार टब्बा	दौलतराम काशलीवाल	४।२८२
वस्तुकोश	नागवर्मा द्वितीय	४।३१०
वारहमासी गीत	महीचन्द	४।३२१
विक्रान्तकौरव	हस्तिमल्ल	३।२८०

समयसार-तात्पर्यवृत्तिटीका	जयसेन द्वितीय	३।१४३
समयसारनाटक-वचनिका	सदासुख कासलीवाल	४।२९६
समयसार-हिन्दीटीका	राजमल्ल	४।३०४
समवशरणपूजा (केवलज्ञानचर्चा)	रूपचन्द्र	४।२५७
समवशरणषट्पदी	छत्रसेन	३।४४६
समाधितन्त्र	पूज्यपाद	२।२२९
समाधितन्त्र-टीका	प्रभाचन्द्र	३।५०
समाधिमरणोत्साहदीपक	सकलकीर्त्ति	३।३३०
समाधिरास	भगवतीदास	४।२४०
सम्बोधपचाशिका	रइधू	४।२०१
सम्बोधसत्ताणुभावना	वीरचन्द्र	३।३७७
सम्बोधसहस्रपदी	महितसागर	४।३२०
सम्मइजिणचरिउ	रइधू	४।२०२
सम्मत्तगुणणिहाणकव्व	,,	४।२०५
सम्मेदाचलपूजा	गंगादास	३।४४८
सम्यक्त्वकौमुदी	दयासागर	४।३२२
,,	मगरस	४।३१०
,,	जोधराज गोदीका	४।३०३
सम्यक्त्वप्रकाश	डालूराम	४।३०६
सम्यक्त्वभावना	रइधू	४।२०१
सम्यग्गुणारोहणकाव्य	,,	४।२०१
सयलविहिविहाणकव्व	नयनन्दि	३।२९४
सरस्वतीपूजा	जिनदास	३।३४०
,,	ज्ञानभूषण	३।३५२
,,	चन्द्रकीर्त्ति	३।४४२
सरस्वतीमन्त्रकल्प	मल्लिषेण	३।१७६
सरस्वती-स्तुति	ज्ञानभूषण	३।३५२
सर्वज्ञसिद्धि (लघु तथा बृहत्)	अनन्तकीर्त्ति	३।१६७
सर्वार्थसिद्धि-वचनिका	जयचन्द छाबडा	४।२९२
सवणबारसिविहाणकहा	गुणभद्र	४।२१७
सहस्रनामस्तवनसटीक	आशाधर	४।४५
सागारधर्मामृत (धर्मामृत)	,,	४।४६
सारचतुर्विंशतिका	सकलकीर्त्ति	३।३३०

सारसमुच्चय	दौलतराम कासलीवाल	४।२८२
सार्द्धद्वयद्वीपपूजा	शुभचन्द्र	३।३६५
,,	ब्रह्म जिनदास	३।३३९
साहसभीमविजय (गदायुद्ध)	रत्न	४।३०८
सिद्धतत्त्वसारो	रइधू	४।२०५
सिद्धचक्ककहा	नरसेन	४।२२३
सिद्धचक्कमाहप्प	रइधू	४।२०१
सिद्धचक्रपाठ	ललितकीर्ति	३।४५३
सिद्धचक्रपूजा	शुभचन्द्र	३।३६५
सिद्धचक्राष्टक टीका	श्रुतसागर सूरि	३।३९४
सिद्धपूजा	दौलतराम कासलीवाल	४।२८२
सिद्धभक्ति	कुन्दकुन्द	२।११५
सिद्धभक्तिटीका	श्रुतसागर सूरि	३।३९४
सिद्धान्तसार	भावसेन त्रैविद्य	३।२६१
,,	जिनचन्द्र	३।३८३
,,	,,	३।१८६
सिद्धान्तसारदीपक	नथमल विलाला	४।२८१
,,	सकलकीर्ति	३।३३४
सिद्धान्तसारसंग्रह	नरेन्द्रसेन	२।४३५
सिद्धिप्रियस्तोत्र	पूज्यपाद	२।२३४
सिद्धिविनिश्चयटीका	वृहद् अनन्तवीर्य	३।४१
सिद्धिविनिश्चय सवृत्ति	अकलङ्क	२।३१२
सिद्धिस्वभाव	तारणस्वामी	४।२४४
सिरिपालचरिउ	दामोदर द्वितीय	४।१९६
सिरिवालचरिउ	रइधू	४।२०३
सीताहरण	महेन्द्रसेन	३।४५१
,,	ब्रह्मसागर	४।३०३
सीमन्धरस्वामीगीत	वीरचन्द्र	३।३७७
सीलपाहुड	कुन्दकुन्द	२।११५
सुअंधदहमीकहा	उदयचन्द्र	४।१८७
सुकुमालचरिउ	श्रीधर तृतीय	४।१५०
सुकुमालचरित	सकलकीर्ति	३।३३२
सुकौशलस्वामीरास	जिनदास	३।३३९
सुक्कोसलचरिउ	रइधू	४।२०४

आभार

परिशिष्टकी दोनों अनुक्रमणिकाएँ डॉ० सुदर्शनलालजी जैन प्राध्यापक काशी हिन्दूविश्वविद्यालयने तैयार की हैं, इसके लिए उन्हे हृदयसे धन्यवाद हैं।